੧ਓ

श्री वाहेगुरु जी की फतह ॥

श्री गुरु नानक चमत्कार

(चतुर्थ भाग)

भाई साहिब भाई वीर सिंह

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार

(चतुर्थ भाग)

अर्थात्

जीवन चरित्र

साहिब श्री गुरू नानक देव जी

जैसा कि

उनके चरणों को प्राप्त पुरुषों के प्रसंगों द्वारा विदित हुआ

लेखक

भाई साहिब डा० वीर सिंह

'सुन्दरी', 'राणा सूरत सिंह' इत्यादि ग्रन्थों के प्रणेता

२००१

भाई वीर सिंह साहित्य सदन

नई दिल्ली

श्री गुरू नानक चमत्कार (चतुर्थ भाग)
भाई साहिब भाई वीर सिंह

हिन्दी में प्रथम संस्करण : १९६८
द्वितीय संस्करण : २००१

प्रकाशक :
भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मुद्रक :
भाई वीर सिंह प्रैस,
भाई वीर सिंह मार्ग,
नई दिल्ली

मूल्य : ९०/-

प्रकाशकीय

(चर्तुथ भाग)

संत कवि भाई साहिब डा: वीर सिंह जी की इस रचना 'श्री गुरू नानक चमत्कार' को हिन्दी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हमें अति हर्ष हो रहा है। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' के हिन्दी रूपान्तर का यह चतुर्थ तथा अंतिम भाग है। पहले तीन भाग १९६२, १९६४ और १९६७ तथा इस भाग का १९६८ में प्रथम प्रकाशन हुआ था। मूल रूप में 'श्री गुरू नानक चमत्कार' पंजाबी भाषा में दो भागों में प्रकाशित है। हिन्दी में इसी रचना के चार भाग बना दिये गये हैं।

भाई साहिब डा: वीर सिंह जी पंजाबी साहित्य के एक सर्वतोमुखी मूर्धन्य साहित्यकार हैं, जिन्होंने पंजाबी काव्य एवं भाषा को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। 'श्री गुरू नानक चमत्कार' भाई साहिब जी की गद्य-रचना है। इसमें श्री गुरू नानक देव जी का जीवन-वृत्तान्त है। भाई साहिब की इच्छा थी कि समानता के उपदेशक, ईश्वर प्रेमी, जगततारक गुरू नानक देव जी की जीवन-लीलाओं एवं उपदेशों को पंजाबी भाषा से अपरिचित अन्य भारतवासियों तक भी पहुँचाया जाए। इस दृष्टि से भाई वीर सिंह साहित्य सदन की ओर से यह प्रयास किया गया है।

अनुवाद मूल रचना की अपेक्षा एक कठिन कार्य है। पर इसको सफल बनाने के लिए भरसक यत्न किया गया है। पुस्तक की भाषा और शैली अत्यन्त सरल रखी गई है, जिससे साधारण पाठक भी पूरा लाभ उठा सकें। बहुत सीमा तक मूल लेखक की ही भाषा ले ली गई है। मूल रचना में आए प्रचलित फारसी और अरबी के कुछ शब्द भी ले लिए गये हैं। गुरुवाणी की प्रामाणिकता बनाए रखने की दृष्टि से उन्हें गुरुमुखी से ज्यों का त्यों देवनागरी लिपी में दे दिया गया है।

हमारा विश्वास है कि भाई साहिब भाई वीर सिंह जी की मूल रचना का यह अनुवाद हिन्दी पाठकों को भी उसी तरह उत्प्रेरित करेगा, जैसे कि यह पंजाबी पाठकों को करता आया है।

भाई वीर सिंह साहित्य सदन,
नई दिल्ली।

डा: जसवंत सिंह नेकी
आनरेरी जनरल सैक्रेटरी

विषय-सूची

अदेशी दाता की चौथी उदासी

१. अहंकारी तपस्वी

जिस यौवन का मान करते हो, वह यौवन छलकर चला है।

जिस तप का अहंकार करते हो, वह तप व्यर्थ जा रहा है।

अपनी स्तुति करता है और दूसरों की निंदा यही तप का फल मिला है।

तू बड़ी-बड़ी ढींग मारता है, पर तेरी आशा की पूर्ति नहीं होती। 'जो नम्र होगा तौलते समय वही भारी होगा'।

२. गीत

पहली यात्रा के अंत के लगभग मरदाना गुरू जी के साथ लाड़भरी रूष्टता में आ जाता है लिखा है और फिर मांगता है। अंत में कहता है-'या (तू) वह वचन कर कि तू मेरे कर्मों का विचार भी नहीं करेगा, तब मैं तेरे साथ रहता हूँ, यदि, तू यह काम नहीं करता तो मुझे विदा कर। तब गुरू जी ने कहा, 'जो मरदाना तू दीन दुनिया में निहाल हुआ। (पुरातन जन्मसाखी पृष्ठ ६१) मरदाने के उस समय के लाड़ निम्नलिखित कविता[१] में अंकित हैं :-

३. मरदाने का लाड़

हे गुरू नानक, मेरे मालिक, मैं किस तरह तेरे साथ पूरा उतर सकूं। मेरी बुद्धि कम है, मुझे कोई सूझबूझ नहीं, मेरे पास सुन्दर रूप तथा धन भी नहीं। न ही मेरे नैन मृग की भाँति हैं, न बुलबुल की सी मेरी मधुर बोली है और न ही मोर सी सुन्दर चाल है। न ही मेरे पास कोई ढंग है और ही कोई गुण मेरे पल्ले में है, किस तरीके से मेरा तेरे साथ निर्वाह हो? मैं भूलता हूँ तुम समार्ग पर चलाते हो, जब मैं बिछड़ता हूँ, तुम मुझे अपने साथ मिला लेते हो। मैं तोड़ता हूँ, पर तुम टूटे हुए को फिर से गाँठ लेने वाले हो और बिगड़े हुए को सम्भाल लेते हो। मैं मुँह मोड़ता हूँ तुम फिर से मुझे अपने गले से लगाते हो, मैं बिछड़ता हूँ और तुम फिर मेरे अंगों का पालन करते हो। मैं रुष्ट हो जाता हूँ, मूर्ख हूँ, तुम मुझे अपनी गोदी में बैठा लेते हो। मैं पागल हूँ, पर हे गुरू नानक, तू मुझ से प्यार करता है, इसलिए मेरा तुझ से निर्वाह हो रहा है। तू सदैव अपने दर्शन प्रदान करता है, अपने चरणों से लगाता है, अपनी कृपा-दृष्टि द्वारा निहाल करता है। तू मुझसे प्यार करता हुआ कभी थकता नहीं, कभी व्याकुल नहीं होता, हे प्यारे लाल! तू कभी भी मेरे अवगुणों को नहीं

---

१. यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत है।

देखता, इसीलिए तो तेरे साथ निर्वाह हो रहा है। भूल करना, जुड़ी हुई को तोड़ना, यही मेरा परिश्रम है। तू मेरी इस आदत के होते हुए भी मुझ पर प्रसन्न होता है, इसीलिए तो तेरे साथ निर्वाह हो रहा है।

इस तरह मेरी तुझ से प्रीत निभ रही है, हे मेरे प्यारे गुरू नानक जी!

यों तेरे साथ निभ रही है, हां मेरी तुझसे इस तरह प्रीत निभ रही है।

सूचना :–कर्तारपुर कुछ समय विश्राम किया, फिर पश्चिम की यात्रा आरम्भ की।

❑ ❑

७४ मक्का

: १ :

देखने वाला दीखने वाले, के प्यार में फिर रहा है। 'अदृष्ट' अपने अदृष्ट निज स्वरूप में निमग्न है। पर 'दृष्टा' 'अदृष्ट' के प्रेम में रंग रांता रहे, यह दर्शन दुर्लभ है।

एक ओर सतलुज और व्यास, दूसरी ओर चनाब और जेहलम, बीच में बह रही है रावी सुन्दर जल की नदी, जिसके किनारे कहीं भी न टिकने वाले आ टिके हैं उपकारी बादलों की भाँति सदैव चलने वाले, प्यार के पादशाह और शान्ति के सरदार। यहाँ पर कुछ समय से ऐसे निवास कर रहे हैं जैसे हिमालय की शिखा पर चुपके से बर्फ आ टिकती है। चारों ओर शीतलता फैल रही है। जले दिल वाले आते हैं और शीतलता लेकर जाते हैं। घबड़ाये हुए या इकट्ठे होते हैं और मन का धैर्य लेकर वापस लौटते हैं। दया की वर्षा होती है। सतोगुणों तथा शुभ एवं श्रेष्ठ गुणों की खेतियाँ लह-लहा उठती हैं, मीठी-मीठी ओस पड़ती है, और आत्म-रस की शीतलता फैल रही है।

किसी-किसी समय ओले पड़ते हैं और ऐसी ठण्ड हो जाती है कि दाँत बजने लगते हैं, और बुराई को कंपकंपी लगने लगती है तब वे दूर-दूर गर्म हवाओं के देश को भागे जाते हैं।

धन्य श्री गुरू नानक देव जी! आपने अपनी बाल्य तथा कुमारावस्था तलवंडी में व्यतीत की, युवावस्था में सुलतानपुर आये, घर-बार वहाँ पर निवास किया और गृहस्थी कह-लवाये। यहाँ से ही घर-बार का त्याग किया, यात्रा शुरू की और सैदपुर संडियाली, तलवंडी, हड़प्पे, तुलंभे, पट्टन आदि स्थानों से होते हुए सतलुज पार होकर दिल्ली, नानक मते से होते हुए वाराणसी, गया, पटना, बिहार, बंगाल, आसाम चिट्टागांग, सोनपुर, तनासरम से होते हुए कट्टक, जगन्नाथ पुरी आदि तीरथों को देखकर वापिस लौटे। सारे पूरब में से फिरते आगरा, मथुरा, होते हुए सुलतानपुर और फिर तलवंडी आये और पहली यात्रा समाप्त हुई। फिर अपने ही देश में स्थान-स्थान पर फिरे, फिर तलवंडी आये और वहाँ कुछ महीने रहकर ऊपर को अस्सी-नब्बे कोस रावी के किनारे-किनारे चलते दोदे के समीप उजाड़ में डेरा डाला।[१] कर्तार के रंग, यहाँ पर धर्मस्थान स्थापित हो गया, मकान बन गये, कर्तारपुर बन गया। जहाँ गुरू नानक देव जी का एक नाम का यश गूँज उठा, हिन्दू-मुसलमान हर एक धर्म, हर एक मत के मनुष्य आने लगे और उनका उद्धार होने लगा। पर ज्यादा समय अभी व्यतीत नहीं हुआ था कि आपने दूसरी यात्रा आरम्भ कर दी। इस बार दक्षिण की ओर चल पड़े और सिंहलद्वीप पहुँचे। वहाँ से फिर लौटे और कुछ समय के पश्चात् कर्तारपुर आ पहुँचे। आते-जाते दक्षिण देश के अनेकों स्थान और नाम का प्रचार किया। कुछ समय

---

१. तब बाबा दरिया के ऊपर वह गया। [पुरातन जन्मसाखी]

फिर कर्तारपुर में बैठकर प्रभु यश का प्रचार होता रहा। फिर आपने उत्तरखण्ड की ओर यात्रा आरम्भ की। काश्मीर से होकर मानसरोवर और तिब्बत में जा निकले और वहाँ से पूरब की ओर होते हुए चीन में चरण रखकर फिर भूटान में आ निकले और फिर हिमालय के इस ओर घूमते-फिरते जम्मू होकर मैदानों में आ निकले और कर्तारपुर आ पहुँचे। कुछ समय फिर कर्तारपुर ठहरे और स्वदेश में प्रचार किया। फिर उपकारी बदाल तथा परोपकारी वायु की भाँति चल पड़े। चौथी यात्रा आरम्भ की और अब की बार मक्के जा पहुँचे। पता लगता है कि आप समुद्र के मार्ग से गए थे[१] और वापसी पर मर्दाना, बगदाद, ईरान आदि होते हुए पृथ्वी के रास्ते से आये थे और फिर कर्तारपुर आ निवास किया था। पाँचवीं यात्रा लिखी तो है पर पता गोरख हट्टी तक का ही दिया है। अनुमान है कि यह यात्रा स्वदेश में और सीमा प्रांत ही की थी।

: २ :

हमज़ा गौस के समय गुरू जी ने सियालकोट में दो पैसे का सच्च तथा झूठ लेने के लिए मरदाने को शहर भेजा था[२]। मरदाना दुकान-दुकान सच्च-झूठ को खरीदने के लिए फिरा था। दुकानदार सुनते, हँसते, उत्तर देते थे कि हमारे पास नहीं है। मूला नामक एक दुकानदार था। उसने पैसे ले लिए थे और 'मरना सच्च है और जीवित रहना झूठ है' यह बात एक कागज़ पर लिखकर मरदाने के हाथ में पकड़ा दिया था। जब मरदाना गुरू जी के पास कागज़ लेकर आया तो आप हँसे। जब मूला दर्शन करने के लिए आया था तो श्री गुरू जी ने पूछा था—भाई! जो कुछ तैने कागज़ पर लिखा है, क्या उसे हृदय पर लिखा है? उसने कहा, श्रीमान्! जो कुछ मैंने सुना था, लिख दिया है। हृदय पर लिखना अथवा कमाना तो मुझ में अभी नहीं है। फिर वार्तालाप चल पड़ी। मूले को वैराग्य की तरंग आ गई। दुकान का त्याग किया और सतगुरू जी के साथ चल पड़ा। जब मूले का गुरू जी के साथ रहते कुछ समय व्यतीत हो गया तो एक दिन श्री गुरू जी ने कहा, 'मूला! तेरी मँगेतर अब मरना चाहती है, उसने समझा है कि तू मर गया है अथवा सदैव के लिए फकीर बन गया है। तू जा और उसके साथ विवाह करके उसे मरने से बचा ले। प्रभु से तुझे कुछ धन भी दिलवा देते हैं, इससे दुकान खोल लेना। पर देख, तैने जो मरना सच्च और जीवित रहना झूठ समझा था, वह सुनी-सुनाई बात थी, जिस वैराग्य के कारण तैने दुकान का त्याग किया था, वह जोश था, जो अभ्यास तू अब कर रहा है, उसे मत छोड़ना, फिर तुझे कम्पन नहीं होगा; सचेत रहना, पत्नी, पदार्थ, पुत्र आदि के मोह में कर्तार भूल जाता है, कर्तार के भूलने से जीवन सच्च और मरना झूठ होकर दिखाई देता है। यदि कर्तार याद रहे तो मरना तथा जीवन चार दिनों का ही दिखाई देता रहता है।

समय व्यतीत होता गया। बाबा जी तीसरी यात्रा भी कर आये; अब जब चौथी यात्रा के लिए तैयार हुए तो पहले सियालकोट आए और मरदाने से कहा कि जा मूला को लिवा

---

१. गुरू जी कराची से चलकर अदन देश के पास जाकर ठहरे...। अदन से जहाज द्वारा तीसरे दिन अरब देश में जद्दा नामक शहर में जा उतरे।

२. तवारीख खालसा में पृष्ठ ३०७ पर हमज़ामौसा की साखी में दो पैसे के सच्च-झूठ की साखी लिखी है।

ला; पर मरदाने ने आकर बताया कि जब वह दुकान गया तो वहाँ अड़ोस-पड़ोस वालों ने बताया कि मूला घर गया है, जब वह घर पर गया और आवाज़ें लगाईं तो उसकी पत्नी ने कहा कि बाहर गया है। तब गुरू जी चुप होकर सोचने लगे। फिर बोले, मरदाना! मूले के परिवार को चिंता हो रही है कि हम उससे घर, दुकान, पुत्र, पत्नी का त्याग करवाकर उसे साथ ले चलने के लिए आए हैं। इसलिए उन्होंने उसे छिपा लिया है, पर हम तो देखने के लिए आए थे कि मूला गृहस्थ में पड़कर तैर रहा है कि डूब रहा है? यदि डूब रहा है तो उसे जाकर तारें। उस समय तो अकेला था वैराग्य की तरंग आ गई थी, अब पत्नी, पुत्र के मोह ने जीवन सच्च करके दिखा दिया है, बिना जल देखे ही कपड़े ऊपर को सिकोड़ लिए हैं।

मरदाना—हाँ जी! यदि सत्य उसके हृदय में चुभा होता तो यहाँ आकर कह देता कि मैं हाज़िर हूँ, पर मैं अब साथ नहीं जा सकता, पत्नी, पुत्र, पदार्थ का मोह अब बिछड़ने नहीं देता। तब बेमुख तो न होता और आप भी उसके सच्च कहने का मूल्यांकन करते। (काँपकर) पर हे दाता! तेरी तू ही जाने; माया बलवती है, मैं स्वयं कई बार डोल जाता हूँ, मैं क्यों किसी को कुछ कहूँ। दूसरे को तौलना तो सहल है, पर आप तुल सकना कठिन है। दूसरों के अवगुण नैनों के सामने आ जाते हैं और अपने अवगुण ओझल हो जाते हैं।

इस तरह वार्तालाप होता रहा। कुछ समय के पश्चात् ख़बर आई कि मूले को गोबर वाली कोठड़ी में छिपाया था कि आप कहीं उसे अपने साथ ही न ले जायें, वहाँ उसे साँप डस गया है।

तब गुरू जी ने कहा—मरदाना! देखा तैने? कर्तार का रंग। करते तो हम भले के लिए हैं, पर उसका फल उलटा होता है। मूले की किराड़ों के साथ जो मित्रता थी, वह वणिक वृत्ति में डाल गई।

मरदाना—वणिक, क्या श्रीमान्! जिसे गाँवों में किराड़ कहा जाता है।

गुरू जी—हाँ, भाई! उसे किराड़ कहा जाता है जो हर बात में लेने की ही वृत्ति में रहे। साधु-संत से भी मिले, सीस झुकाए और अपनी साधारण आवश्यकताओं के लिए ही मिले। मरदाना! जगत संत से अपने उद्धार के लिए बहुत कम ही मिलता है। सांसारिक आवश्यकताओं के लिए लोग संतों के द्वार पर घूमते हैं, इसलिए कि इनमें शक्ति है, यह कोई दया करेंगे तो माल-धन बहुत होगा। कोई रोग दूर करने के लिए, कोई और संकट दूर करने के लिए संत-सेवा करता है, पर संत से आत्म-लाभ लेने वाले व्यक्ति कम हैं।

जिज्ञासु को चाहिए कि वणिक वृत्ति वालों की संगति न करे। उनकी संगत से वृत्ति वणिक हो जाती है। संत को चाहिए कि वणिक वृत्ति वाले सेवक की प्रीत को झूठा समझे; क्योंकि उसका ढोंग झूठा है, वह अपने मनोरथ से प्यार करता है, कर्तार अथवा सत्य मार्ग से प्यार नहीं करता। पर जिस जीवन तथा उसके भोगों के लिए झूठ बोलता है उस जीवन

का अंत कहाँ होगा, उसे पता नहीं, जिस स्थान को सुरक्षित समझता है, काल (मृत्यु) वहाँ भी गर्ज रहा।[१]

: ३ :

सियालकोट से चलकर तलवण्डी आए। तलवंडी से श्री गुरू जी कट्टास आ पहुँचे, वैशाखी का मेला यहाँ पर गुज़ारा।[2] यह ठिकाना पिंडदादन खां नामक नगर से उत्तर की ओर बारह-तेरह कोस की दूरी पर है। यहां पर उछलते हुए जल का ठिकाना है। हिन्दुओं से पुश्कर की भांति इसे भी शिवजी का नेत्र मानते हैं। वैशाखी पर हरेक मत के साधु तथा गृहस्थी एकत्र होते हैं। इस समय को प्रभु के नाम तथा यशोगान को समझकर गुरू जी यहाँ आये थे। आपका अद्भुत प्रकार का रीति-रिवाज देखकर और नाम सुनकर, जिसकी प्रसिद्धि सब ओर हो रही थी, संन्यासियों, योगियों आदि के मुखिया चर्चा करने के लिए आ एकत्र हुए, गृहस्थियों के झुण्ड भी इकट्ठे हो गए। गुरू जी को भेषधारियों के आचरण के पतन का पता था। जिनका आचरण अच्छा था उनकी बृद्धि की भटकन का भी पता था। बिना पूरण वैराग के बीतराग शिक्षादाता से शिक्षा लेकर कमाई किए बिना अपने आप घर-बार का त्याग करके संन्यासी होकर फिरने के भयंकर परिणाम भी पता थे। अत: आपने सच के हथोड़े का कड़ा आघात लगाया।

संन्यासियों का महन्त-आप संन्यास को बुरा क्यों कहते हैं?

गुरू जी-मैं किसी को बुरा नहीं कहता। मैं उसे संन्यासी कहता हूँ जिसका जीवन-ढंग ऐसा हो कि गुरू धारण करे, उसके बताए हुए शब्द का अभ्यास करे, उसमें लौ लगी रहे। नाम में उसका प्यार उसे ऐसा तृप्त करे कि उसे फिर कोई भूख, कोई कामना न रहे और वह जगत का भला करे।

संन्यासी-वैराग्य हुए बिना कौन घर का त्याग करके कष्ट सहने के लिए चल पड़ता है?

गुरू जी-कोई हृदय हिलाने वाला उपदेश सुनकर या गृहस्थ का कोई कष्ट सहन कर सकने के कारण कोई एक कच्चे वैराग की लहर उठी खड़ी होती है; तजुर्बेकार गुरू का उपदेश प्राप्त न होने के कारण वह मन के पीछे लग कर घर का त्याग करके उठ चलता है: फिर शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए दूसरों के घरों में माँगता फिरता है।

संन्यासी-फिर भी वह मनमुख तो नहीं।

---

१. इस समय का श्री गुरू जी का उच्चारण किया एक श्लोक है-

"नालि किराड़ा दोसती कूड़ै कूड़ी पाइ।।
मरणु न जापै मूलिआ आवै कितै थाइ।।"

उपर्युक्त वार्तालाप इस श्लोक का खुला अनुवाद है। किराड़ का मूल है। क्रयार=खदीदने वाला। पंजाब में यह शब्द प्राय: गाँवों के व्यापारियों के लिए कुछ घृणा से प्रयुक्त होता है। गुरू के श्लोक से तात्पर्य है वणिक वृत्ति वाला मनुष्य जो लेना ही लेना चाहता है और उसमें विहिति अविहिति नहीं विचारता।

२. तवारीख खालसा-३८४।

गुरू जी–गृहस्थ धर्म, जिसकी शिक्षा माता-पिता से स्वाभाविक ही प्राप्त हो गई थी, उसे बुरे बैराग ने आकर खो लिया और आगे से पूरा गुरू मिला नहीं, अतः त्याग की शिक्षा न ली, फिर शेष क्या रह जाता है? खोटी बुद्धि के चक्करों में भटकना। यदि पढ़-सुन भी जाता है तो थकान ही पल्ले पड़ती है, यदि देश देशान्तरों में फिरता है तो भी चक्कर ही पल्ले पड़ता है।

संन्यासी–उसका क्या कारण है? पढ़ सुनकर तो सुमति आती है।

गुरू जी–पाठ तो पढ़ लिए, पर जो, चाहे उसे देह कहो, चाहे अन्तःकरण कहो–उसे ब्रह्मचर्य की अग्नि में पकाया नहीं और वेद का अभ्यास नहीं किया, तो फिर अन्तःकरण को स्वतः ही वासना में और अपरिपक्व देह की इन्द्रियों के भोगों में ही जा पड़ना होगा अतः संन्सासी फिर पशु के समान उदरपूरण आदि भोगों में ही रह जाता है। १ ।

यही दशा योगियों की है, न वैराग्य है न गुरू के दिए नाम का अभ्यास है और न शरीर की साधना ही है। जिसकी जिस समय इच्छा हुई, पंसारी की दुकान से एक पैसे का गेरू लिया, उसे पीसा, घोला और उसमें वस्त्र रंगकर पहन लिए। चिथड़ों की गुदड़ी बना ली, पर आजकल के योगी नए वस्त्र को फाड़कर छोटे टुकड़े बनाकर उन्हें जोड़कर गुदड़ी बनाते हैं, साथ ही झोली बना लेते हैं। भेष तो बन गया, पर भेषमात्र ने योगारूढ़ तो नहीं कर दिया, हाँ, भिक्षा माँगने वाला भिखारी बना दिया और माँग-माँग कर इकट्ठी करके जमा करने वाला मायाधारी बना दिया। जगत को उपदेश भी दे देता है और घर-घर में माँगता फिरता है और यह बताने के लिए कि मैं त्यागी हूँ, पर उसका मन ज्ञान-नेत्रों से अन्धा है, उसने अपनी इज़्ज़त इहलोक तथा परलोक में खो दी है, शब्द को अनुभव नहीं करता, भ्रम में भूलकर फिर रहा है, मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी उसे जुए के खेल में हार बैठा है। २ ।

कई त्यागी बाहर धूनी लगाकर बैठते हैं, पर अन्दर की अग्नि बुझती नहीं। अन्दर की अग्नि तो भक्ति द्वारा बुझती है। पूरे गुरू के बिना भक्ति प्राप्त नहीं होती, वे निगुरे तीरथों पर मारे-मारे फिर रहे हैं, पर इसमें भ्रम दूर नहीं होते, मैल नही उतरता, वे निन्दा में लग जाते हैं। कई राख छानकर मलकर बैठते हैं, पाठ पढ़ते हैं, पर झूठ बोलते हैं। पूरे गुरू से मिलते नहीं और न ही नाम जपते हैं, इसलिए सुखी नहीं होते। ३ ।

कई त्यागी जटाएँ बांध लेते हैं, कई सिर मुड़वा लेते हैं, इन्हें भी आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता, माया की ओर लगन होती है। मन दशों दिशाओं में भागता रहता है। कई हाथों में कमण्डल लिए फिरते हैं, मन में तृष्णा निवास करती है। दूसरों की स्त्रियों के पीछे भागते फिरते हैं। शिष्य भी बनाते हैं, पर नाम से परिचित नहीं हैं अन्त में वे दुखी होते हैं।।६।। वास्तव में त्यागी वही है, चाहे वह संन्यासी हो, चाहे योगी, चाहे वैरागी, चाहे कोई अन्य त्यागी, जो प्रभु के नाम द्वारा तमोगुण को फाड़ सके और वासना रहित हो जाय।।७।। हरि नाम के रस को पीए, मन को शान्ति आए और लौ लगे तो संन्यासी है। मुख्य बात यह है कि नाम का आँचल पकड़े बिना कल्याण नहीं होता।

इस तरह के उपदेश[1] सुनकर अनेकों मत-मतान्तरों के अनेकों साधुओं का उद्धार हुआ

१. वह उपदेश श्री गुरू जी ने मारू महला १ में लिखा है–'मनमुखु लहरि घरु तजि विगूचै।' यही ख्याल पूर्ण गिरि के साथ संन्यास के विचार के समय वार्तालाप में आए थे, बाद में शब्द का उच्चारण हुआ था, वही शब्द यहाँ पर संन्यासियों के लिए उच्चारण किया। देखिए इसी पुस्तक में 'पूरण गिरि' का प्रसंग।

और अनेकों गृहस्थियों को सुख मिला।

यहाँ से चलकर गुरू साहब रोहतास[१] आए। तवारीख खालसा में लिखा है; बाबे जी ने एक स्थान को खुदवाया तो वहाँ पर एक चशमा निकला–जिसमें से जल की धारा अब तक निरन्तर चल रही है। यह चशमा अब तक चारी है। इसे 'चोहा साहब गुरू नानक साहब' कहते हैं। बहुत सुन्दर गुरूद्वारा बना हुआ है। रोहतास के गुरू नानक के इस स्त्रोत के बारे में बूटाशाह ने अपने इतिहास में इस प्रकार लिखा है :–

> मुतसिल क़िला रुहतास बर कल्ला कोहे चशमा असत कि अज़ युमने कदूमे नानकशाह दर आंजा जारी शुदह व शेरशाह अफ़ग़ान आं मकान रा पसंद नमूद व क़िला अज़ संग महीते वदा चशमा तैयार नमूद व आं चशमा अज़ां जा कि खुशक शुदह बेरूं किला अजराए शुदह।। शेरशाह बिसीआर करअत आं चशमा दर इहाता किला बगरिफत। चश्मा अंदरूं किला करार नमे गरिफत व अज़ दीवार किला बेरूं शुदह रवां मे शुद। नाचार शेरशाह दसत अज़ कशीद। चुनांचि दीवार हा किला ता हनूज़ मौजूद अंद व चश्मा ज़ेरे आं बर ज़मीन रवां असत। व मरदुमा सादर व वारद रूहतास दरां जा शब बाश में शवंद।।

जिसका अनुवाद यह है :–

'रोहतास का किला पर्वत की शिखा पर है, जिसके निकट एक चशमा है जो नानक शाह के चरणों की कृपा से जारी हुआ। शेरशाह अफगान ने उस मकान को पसन्द किया और उस चशमे के पास पत्थरों का किला बनवाया। यह चशमा वहाँ से सूखाकर किले के बाहर जारी हो गया। शेरशाह ने कई बार यह चशमा किले के अन्दर बन्द करना चाहा, पर चशमा किले के अन्दर नहीं रहता था और किले की दीवार से बाहर निकलकर बहने लगता था। शेरशाह मजबूर होकर हट गया। चुनाँचे उस किले की दीवारें अब तक कायम हैं और चशमा उस पर्वत के नीचे पृथ्वी पर जारी है और रोहतास आने वाले लोग रात को यहाँ पर विश्राम करते हैं।'

यहाँ से चलकर गुरू जी बाल गुँदाई के टीले पर आए। वहाँ से चलकर कई स्थानों से होते हुए, कई स्थानों पर कौतुक दिखाते हुए डेरा इस्माइलखाँ जा पहुँचे। यहाँ एक खेत में से गुज़रते समय एक युवक ने आपके आगे कुछ भूने हुए चन्ने रखे और दूध तथा अन्य कुछ खाने के लिए लेने को जब घर को जाने लगा तो बाबे ने पास बैठा लिया और यह श्लोक उच्चारण किया :–

'सथर तेरा लेफ निहाली भाऊ तेरा पकवान।
नानक सिफती तृपतिआ आऊ बैठ सुलतान।।[२]

---

१. रोहतास जिला जहलम (पश्चिमी पाकिस्तान) में है और जहलम शहर से कोई दस-ग्यारह मील की दूरी पर है।

२. यह श्लोक श्री गुरू ग्रन्थ जी में नहीं है।

पुरातन जन्मसाखी में लिखा है, 'तब पातशाही मिली चन्नों की मुट्ठी के बदले।'[१]

: ४ :

यहाँ से चलकर अनेकों स्थानों से होकर सिंध देश में जा पहुँचे।

यहाँ एक स्थान पर मक्के जाने वाले हाजी इकट्ठे हो रहे थे। वहाँ एक हाजी आपसे मिला।[२] वह गुरू जी के साथ बातचीत करके साथी बन गया और रात को इकट्ठे रहे। हाजी ने दूसरे दिन बातों-बातों में पूछा, 'आप दरवेश (फकीर) हैं, भेष आपका दरवेशों फकीरों का है, पर दरवेश भंग पीते हैं। आपके पास न तो भंग है और न ही भंग की थैली, पीने के लिए न प्याला है और न उसे रगड़ने के लिए कोई डंडा है।[३]

गुरू जी–हे दरवेश! मुझे मेरे प्रभु का भय प्राप्त हुआ है, यह भय तो मेरी भंग बन गई है, मेरा चित्त थैली है, जिसमें मैं इस भंग को रखता हूँ। मुझे इस भंग का नशा चढ़ा रहता है, ऐसा कि मैं बावला हुआ रहता हूँ। इसी बावलेपन ने मुझे अतीत अथवा त्यागी फकीर बना दिया है। मुझे कर्तार के दर्शन की भूख लगी रहती है, यही मेरे हाथ में प्याला है, प्रभु के द्वार पर हाथ में प्याला पकड़कर मैं प्रत्येक समय भिक्षा माँगने के लिए खड़ा रहता हूँ। तुम जो मस्ती में खेल करते हो, मैं वह खेल नहीं खेलता। मेरे अन्दर कर्तार के दर्शन की जो इच्छा है यही मेरी मस्ती है जो हर समय मुझे चढ़ी रहती है। (ऊपर को देखकर) हे कर्तार; मैं यह तेरे द्वार से माँगता हूँ; हे मेरे कर्तार! भिक्षा दीजिए, भिक्षा, भिक्षा दीजिए।। १ ।। रहाऊ ।।

(हाजी की ओर देखकर) हे साईं लोक! तैंने मुझसे पूछा है कि मैं हिन्दू हूँ अथवा मुसलमान! यदि मैं फकीर हूँ तो कौन-सा फकीर हूँ? अतः सुन! केशर, फल, कस्तूरी ये सभी पदार्थ हरएक के शरीर पर चढ़ते हैं, अर्थात् इनकी जाति नहीं पूछता, इनकी कदर इनके अपने गुण के कारण है; वैसे ही भक्त अथवा फकीर की भक्ति गुण है, जाति कोई गुण नहीं। फिर देखिए, चन्दन की रीति यह है कि हरएक को सुगन्धित कर देता है, इसी तरह भक्त में जो भक्ति की ज्योति है, वह सबको भक्ति में लगा देती है। घी चर्म के कुप्पे में से और रेशम कीड़े में से निकलता है, इसलिए घी तथा रेशम को कभी भी किसी ने निन्दनीय नहीं कहा। इसी तरह ही भक्ति है, चाहे वह किसी वर्ण, जाति अथवा धर्म में से क्यों न हो? जो प्रभु के नाम में लौ लगाए रखे और नम्र होकर चले, वह प्रभु का प्यारा

---

१. पुरातन जन्मसाखी में यह साखी पहली यात्रा में लिखी है पर तवारीख खालसा में चौथी यात्रा में लिखी है और इस बात का पता दिया है कि यह लड़का मनकेरे का खान (शासक) बना।

२. इस यात्रा में यह बाना था–पाँवों में चर्म की खड़ाऊ, चर्म की सलवार, गले में हड्डियों की माला, माथे पर बिन्दी का टीका, जब बालकों में खेलते थे तब नीले वस्त्र थे। खेलते-खेलते हज में जा निकले, तब एक हाजी मिला, रात को इकट्ठे रहे।

३. 'ऐ दरवेश तेरे कासा, लकड़ी, चमड़ी, भंगड़ी कुछ नहीं, तू हिन्दू है कि मुसलमान?'

[पुरातन जन्मसाखी]

है। हे हाजी! ऐसे पुरुषों के द्वारा की भिक्षा कैसे प्राप्त हो। मैं इस ख्याल में हूँ, अब तू ही मेरी जाति अथवा जन्म को समझ ले।[१]

मुसलमानों तथा ईसाईओं की बुनियाद इसराईली थे, जिन्हें यहूदी भी कहते हैं। यह लोग अपने आप को ईश्वर की मुख्य जाति मानते हैं। इनमें से उत्पन्न हुई ईसाई भी ईसा पर अपना विश्वास लाए बिना किसी को स्वर्ग का अधिकारी नहीं समझते और उनके बाद मुसलमान सिवाए अपने, दूसरों को काफर (नास्तिक) एक ईश्वर को न मानने वाले, मुलहिद (नास्तिक) नाना प्रकार के अपमान भरे शब्दों से याद करते हैं और अपने आपको स्वर्ग का अधिकारी समझते हैं। वह हाजी भी इसी पक्षपात में पला हुआ था, उसे गुरू जी की बातचीत बड़ी अद्भुत-सी लगी। सच तो अपना चुभवां प्रभाव डालता था, पर पक्षपात से पला हुआ मन एकाएक बदलने वाला नहीं था। सोच सोचकर कहने लगा–हे दरवेश, तू वैरागी है और मैं गृहस्थी हूँ। वैरागी तो अल्ला की लौ में, जैसे कि आपने कहा है रह सकता है, पर गृहस्थी तो इस लौ में नहीं रह सकता।

तब गुरू जी ने कहा संसार नाशवान् है, इसके साथ प्यार करना नाश के साथ प्यार करना है। इस नाशवान् संसार की प्राप्ति के लिए लोग कुकर्म करते हैं, सत्य-असत्य की पहचान नहीं करते, अपने आप से अनजान, ईश्वर से अनजान, जिस तरह पशु होते हैं। उनके अंत के बारे में क्या पूछते हो। जिस तरह के ख्याल सारी आयु में रहे, वैसी ही दशा रहेगी। ईश्वर अंदर निवास करे, हुजूरी का पाठ पढ़े, सांसारी बने, पर ईमानदार (धर्मी) भी रहे, शुभ कर्म और और शुभ विचार हों। प्रभु को याद रखे, इस तरह सांसारी गृहस्थी भी धर्मात्मा बन सकता है।

इस तरह से वार्तालाप करके एक दिन आगे को चल पड़े। मार्ग में धूप बहुत तेज हो गई, पर कुछ समय के पश्चात् एक छोटा-सा बादल आ गया और उसने छाया कर दी। हाजी ने देखा और समझा कि यह बादल मेरे ऊपर अल्ला ने भेजा है। मैं मुसलमान हूँ यह मुसलमान नहीं लगता, इसके सिर पर छाया कैसे हो, कहीं अल्ला नाराज़ हो जाये कि छाया भेजी तो तेरे लिए थी और तैंने उसकी छाया में जो मुसलमान नहीं था, उसे क्यों चलाया? इस तरह विचार करके उसने कहा : 'हे दरवेश! तू हिन्दू है, ठीक है न? तू मक्के को मत चल, हिन्दू का वहाँ क्या काम? यदि तुझे चलना ही है तो आगे होकर चल या पीछे, मेरे साथ-साथ मत चल'। तब गुरू जी ने कहा, 'अच्छा तुम आगे चलो'। गुरू जी यह कहकर पीछे हटते-हटते

१. यह वार्तालाप उस शब्द का खुला अनुवाद है, जो गुरू जी ने उस समय राग तिलंग महला १ में उच्चारण किया है :–

भऊ तेरा भांग खलड़ी मेरा चीतु। मैं देवाना भइआ अतीतु।
कर कासा दरसन की भूख। मैं दरि मागऊ नीता नीत।।१।।
तऊ दरसन की करऊ समाइ। मैं दरि मागत भीखिआ पाइ।।१।।रहाऊ।।
केसरि कुसम मिरगमै हरणा सरब सरीरी चड़ना।
चन्दन भगता जोति इनेही सरबे परमलु करणा।।२।।
घिअ पट भाँडा कहै न कोई। अैसा भगतु वरन महि होइ।।
तेरे नामि निवे रहे लिवलाइ। नानक तिन दरि भीखिया पाइ।।३।।१।।२।।

कहीं दृष्टि से ओझल हो गए। पर हाजी के आश्चर्य की सीमा न रही, जैसे ही दरवेश दृष्टि से ओझल हुआ, बादल भी उसके साथ उड़ गया और धूप सिर को गर्म करने लगी। तब हाजी लगा अफसोस करने, कहने लगा, 'प्रभु के दर्शन हुए, मैं सहन न कर सका, मेरे साथ छलावा हो गया।' [पुरातन जन्मसाखी]

: ५ :

तवारीख खालसा के अनुसार गुरू जी जहाज (जलयान) द्वारा जद्दा पहुँचे, जो अरब देश के पश्चिम की बंदरगाह है, यहाँ हव्वा की कब्र से पूर्व की ओर डेरा डाला। गुरू जी के साथ मरदाना तथा सणखत्रे वाला गौंस भी था। यहाँ शाह शरफ नामक एक भारती फकीर के साथ फकीरी पर विचार हुआ। (तवारीख खालसा)–फिर शरफ के साथी हाजियों ने गुरू जी को मक्के जाने से रोका, पर आप न रुके और मक्के पहुँच ही गए।[१]

मक्के में हज (यात्रा) पर संसार भर के मुसलमान इकट्ठे होते हैं। भारत में से श्री अनेकों मुसलमान वहाँ गये हुए थे इनमें नामी फकीर भी थे। उच्च के मखदूम रुकनदीन, पट्टन के पीर साहब जिन्हें जन्मसाखी में पीर पतलीआ (पीर पट्टनीआ) करके लिखा है, मुलतान के परी वहावलदीन, लअल जति आदि। एक मनुष्य जीवन अथवा जीवनशाह नामक लगता है कि भारती था, जिसने मक्के में जा डेरा डाला था तथा और अनेकों पंजाबी हिन्दी मुसलमान वहाँ थे।

यह जीवन नामक हिन्दी मुसलमान वहाँ मक्के शरीफ की सेवा किया करता था। पिछली रात प्रातःकाल की नमाज़ से पहले सफाई करने कराने की सेवा इसने अपने सिर पर ले रखी थी। जैसे हरिमन्दिर साहब अमृतसर में अनेकों प्रेमी पिछली रात जाकर सेवा करते हैं। आज जब जीवन सेवा करता-करता पश्चिम की ओर आया तो क्या देखता है कि एक मनुष्य सोया हुआ है और उसके पाँव काबे (मुसलमानों का मक्के का मन्दिर) की ओर हैं। मुसलमानों में नमाज़ मक्के की ओर मुँह करके पढ़ते हैं, मक्के की ओर पैर करने आदि से उनका भारी अपमान है अतः उसे क्रोध आ गया और आकर लात मारी और कहने लगा :–

तू कौन है जो खुदा की ओर पैर करके सो रहा है?[२] तब आपने आँखें मलते-मलते जीवन की ओर देखा[३]–'भले पुरुष! क्या हुआ है'? तब उसने अपनी बात फिर से दुहराई, तब आप एक अंगड़ाई तोड़कर कहने लगे, हे ईश्वर के प्यारे! जिधर ईश्वर का घर नहीं है, मेरे पैर तू उधर कर दे और गुस्से मत हो। क्रोध में भरे हुए ने पैर पकड़े और उन्हें घसीटा कि पैर दूसरी ओर कर दिए, पर क्या देखता है कि जिधर पैरों को करता है उधर ही साथ-साथ मक्का घूमता जाता दिखाई देता है। यों करते और देखते उसका आश्चर्य अति बढ़ गया। बढ़ी हुई हैरानी ने स्तुति का झुकाव पकड़ा और उन्हें कलावान् समझकर पैर चूमे।[४]

---

१. हाज़रनामा यहाँ पर उच्चारण किया बताया जाता है। कई कहते हैं कि मक्के में उच्चारण किया है, पर यह हाज़रनामा गुरू ग्रंथ साहब में नहीं है।

२. "जीवण मारी लत दी केहड़ा सुता कुफर कुफारी। लतां वल खुदाइ दे किऊँ कर पिआ होइ बजगारी।" (वारा भाई गुरुदास)।

३. भाई गुरुदास जी ने इसका नाम जीवण दिया है। पुरातन जन्मसाखी वाले ने इसका रुकनदीन दिया है।

४. पुरातन जन्मसाखी।

गुरू नानक देव जी का यह ढंग अपने ही प्रकार का अनोखा था कि आप हार मान लेनी, पर उस हार में अपनी विजय हो जानी और दूसरे की हार। मान लिया भाई मेरे पैर खुदा की ओर ही सही तू, उधर कर दे जिधर खुदा नहीं। वह जानता है कि खुदा हर ओर है, मैंने खुदा को एक देशीय समझकर भूल की है और गुरू जी ने सर्व देशीय बताकर मेरी भूल दूर की है और अपने ठीक मार्ग का ज्ञान प्रदान किया है।

इस समय उच्च वाले पीर मखदूम रुकनदीन अब्दुल फते जलाल सोनी भी आ पहुँचे। आप, हज़रत अली नकी के वंश के सैयद साहब थे। चाहे भारत में आ रहे थे, जब मक्के जाते थे तब इनका सम्मान शरीफ की भाँति होता था। इनके आ जाने पर सम्मान करने से अरब तथा अन्य देशों से आये हाज़ी, जो अब इर्द-गिर्द आ रहे थे, वे भी सत्कार में हो गए। गुरू जी का उत्तर सुनकर तथा चमत्कार समझकर सारे सम्मान करने लगे। फिर गुरू जी की तथा इन फकीरों की तथा अन्य अरब लोगों की विचार तथा गोष्ठी होती रही। जो भारतीयों के साथ हुई वह पंजाबी भाषा हिन्दी में और जो अरब लोगों के साथ हुईं वे अरबी में, पर वे अभी अप्राप्य हैं।

पहली बात जो इस समय रुकनदीन साहब के साथ हुई, वह यह प्रश्न था कि तुम्हारे पास जो पुस्तक है इसमें हिन्दू बड़ा लिखा है अथवा मुसलमान? गुरू जी ने उत्तर दिया कि बड़ा तो कर्म है। हिन्दू ने शुभ कर्म किया, वह बड़ा हो गया, यदि मुसलमान ने धारण किया, तो वह बड़ा, कर्मों के बिना हिन्दू अथवा मुसलमान किसी को भी परलोक में कोई सहारा नहीं मिलेगा। कुसंभे का रंग कच्चा होता है, जल से धोने पर उतर जाता है, वैसे ही कर्म की परिपक्वता के बिना केवल कथन मात्र के धर्म का रंग कच्चा है। वे (हिन्दू) ज़ोर-ज़ोर से राम कहते हैं, वे (मुसलमान) रहीम कहते हैं, पर जब देखें तो दोनों नाम एक ही के हैं, फिर आपस में बैर-विरोध क्यों करते हैं। अत: कर्म रहित तथा बैर-विरोध वाले दोनों न तो राम के हैं और न रहीम के, वे शैतान के हैं और वैसे ही शैतानी मन्त्रणा में पड़कर अपने आपको खो रहे हैं[१] यह पूरी बात सुनकर वे आगे से उत्तर देने से रुक गए। पर एक प्रश्न कर दिया :-

क्या रोज़ा (व्रत) रखना, नमाज़ पढ़ना, भक्ति करना, अच्छी वस्तुएँ हैं अथवा बुरी?

गुरू जी-भाई व्रत तथा भक्ति नमाज़ तथा अन्य तपस्या तब ही स्वीकार होती है यदि मुनष्य अपने दस द्वारों पर पहरा दे, वैराग में रहकर अपने मन को अपने अधीन करे, दृष्टि को वश में करे, तृष्णा तथा संकल्पों की दौड़ को रोके। एक दिन नहीं, महीने के तीसों दिन परमेश्वर के साथ प्यार के रंग में रहे, तब मनुष्य वहाँ (परलोक में) स्वीकार होगा। प्रभु में ध्यान रखना, यह व्रत है और झूठी प्रसन्नता के त्याग का नृत्य कर, आपे पर दृष्टि रखे, देखता रह कि यह किधर जाता है, फिर तू ही सचमुच का विद्वान हो जायेगा। आशा

१. बाबा आखे हाजीआं, शुभ अमलां बाझों दोवें रोई।
हिन्दू मुसलमान दोइ दरगह अंदर लहनि न ढोई।
कच्चा रंग कसुंभ का पाणी धोते थिर न रहोई।
करन बखीली आप विच राम रहीम एकु थाइ खलोई।
राह शैतानी दुनिआं गोई।। ३३ [भा : गु : वार १]

तथा संशय का त्याग कर और व्याकुलताओं को दूर कर, मन में दया का निवास कर, असत्य तथा घमंड का त्याग कर दे। काम रूपी अग्नि की लपेटों से से मन को सुरक्षित कर और शीतल सुख का ज्ञाता बन, यों (भक्ति कर और) व्रत रख, तो तेरा भरोसा पूरा होगा और सिरे चढ़ जायेगा।[१] उसने प्रणाम की, कहने लगा, वाह वाह, आज खुदा के फकीरों का दर्शन हुआ है और फिर जाकर पट्टन के पीर साहब को बताया कि गुरू नानक आया है और यह चमत्कार आज घटा है और यह बात मेरे साथ हुई है। तब चाव से भरा हुआ पट्टनवाला पीर (शेख इब्राहीम) उनके साथ वहां आ गया, जहाँ गुरू बाबे का डेरा था। अब जो वार्तालाप हुआ उसमें रूकनदीन ने पूछा–हे अल्ला वाले! आपने कहा था कि कर्म बड़ा है, इन्द्रियों पर अधिकार जमाना है और प्रभु से प्यार करना है। इनके बिना न हिन्दू बड़ा न है मुसलमान। हिन्दू वेद का पाठ करते हैं, मुसलमान कुरान का, दोनों को इस पाठ का कुछ लाभ भी है कि नहीं?

गुरू जी–वेद भी तथा कुरान भी पढ़ लिया, पर पढ़कर मन एकाग्र न किया तो क्या लाभ हुआ? देखिए अपने ही देश के फकीर कबीर जिसका पोषण मुसलमानों के घर में हुआ था, क्या कहता है :–

बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ॥
टुकु दमु करारी जऊ करहु, हाजिर हजूर खुदाइ॥१॥
बंदे खोजु दिल हर रोज न फिरु परेसानी माहि॥
इहु जु दुनीआ सिहरू मेला दसतगीरी नाहि॥१॥ रहाऊ ॥
दरोगु पड़ि पड़ि खुसी होहि बेखबर बादु बकाहि॥
हकु सचु खालकु खलक मिआने सिआम मूरति नाहि॥२॥
असमान मिआने लहंग दरीआ गुसल करदन बूद॥
करि फकरू दाइम लाइ चसमे जह तहा मऊजूद॥३॥
अलाह पाकं पाक है, सक करऊ जे दूसर होहि॥
कबीर करमु करीम का ऊहु करै जानै सोइ॥४॥१॥

(तिलंग कबीर जी)

यह शब्द तथा इसका भाव सुनकर सुनने वालों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। फिर आपसे पूछा गया कि हम सभी संसार में खड़े हैं, पीर अथवा फकीर, पर हैं सभी संसार में। संसार का प्रभाव भारी है, खुदा को कैसे प्राप्त किया जाता है? यह सुनकर श्री गुरू जी का रंग

---

१. यह उस उपदेश की खुली टीका है जो पुरातन जन्मसाखी में है, पर गुरू ग्रंथ साहब में नहीं है और यों है :–रोज़ा बंदगी कबूल॥ दस दुआरे चीन मरदा होइ रहु रंजूल॥१॥रहाऊ॥ मारि मनूआ द्रिसटि बाधहु दऊड़ तलब दलीलि॥ तीन दिन इऊ रंगु राखऊ पाक मरद असीलि॥१॥ सुरति का तू राख रोजा निरति तजहु चाऊ॥ आतमे कऊ निगह राखहु सती त उलमाऊ॥ तजि सुआदि सहजि बिकारि रसना अंदेस मनि दलगीर॥ मिहर लै मन माहि राखहु कुफर तजि तकबीर॥३॥ कंमि लहरि बुझाइ मानते होइ रहु ठरूर॥ कहै नानक राखु रोजा सिदक रही मामूर॥४॥

पलटा; जिसे उन्होंने खुदा कहा था, गुरू की कोमल तरबों का प्रियतम था, नैन ऊँचे हो गए और बहुत मीठे-मीठे वेग में अपने शब्द गाया :-

यक अरज गुफतम पेसि तो दर गोस कुन करतार॥
हका कबीर करीम तू बेऐब परवदगार॥१॥
दुनीआ मुकामे फानी तहकीक दिल दानी॥
मम सर मूइ अजराईल गिरफतह दिल हेचि न दानी॥१॥ रहाऊ॥
जन पिसर पदर बिरादरां कस नेस दसतंगीर॥२॥
आखिर बिअफतम कम न दारद चूँ सवद तकबीर॥२॥
सब रोज गसतम दर हवा करदेम बदी खिआल॥
गाहे न नेकी कार करदम मम ईं चिनी अहवाल॥३॥
बदबखत हम चु बखील गाफिल बेनजर बेबाक॥
नानक बुगोयद जनु तुरा तेरे चाकरां पा खाक॥४॥१॥

[तिलंग महला १]

यह सुनते ही दोनों के मन प्रार्थना में लग गए। ईश्वर का स्पर्श प्राप्त हुआ, तब पीर पतलीए तथा रूकनदीन ने हाथ चूमा, पैर चूमे।[१] फिर उन्होंने गुरू नानक देव जी की खड़ाऊ यादगार तथा पूजा के लिए रख लीं।[२]

कुछ दिन आप मक्के में रहे, यहाँ आपके कुछ चिन्ह तवारीख खालसा ने लिखे हैं, जिनकी खोज पड़ताल होनी उचित है। फिर आप मदीने चले गए और वहाँ से बगदाद जा पहुँचे।

ऐतिहासिक पक्ष

मक्के की यात्रा का वर्णन सबसे पुराना भाई गुरुदास जी ने अपनी पहली वार में किया है। पुरातन जन्मसाखी में भी है और साखी नं॰ २ (१७९१) वाली जो पुरातन जन्मसाखी तथा बाले वाली के बीच की है) में भी है, बाले वाली तथा बाद की सभी पुस्तकों में है।

१. काबे के चरणों के पीछे फिरने के बारे में

काबे के फिरने से कई मुसलमान कहते हैं कि यह बात किस तरह हो सकती है कि काबा गुरू जी के चरणों के साथ फिरा हो, परन्तु मुसलमानों की प्रामाणिक पुस्तकों में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें काबे के अपनी असली जगह से हिलने-जुलने को माना गया है। हज़रत इबन अरबी अपनी लिखित 'फतूहात मकीअ' में लिखते हैं कि इन्होंने काबे के बारे में अपने मन में कुछ अनुचित ख्याल किए। जब यह काबे की परिक्रमा करने लगे तब इन्होंने देखा कि काबा अपनी बुनियादों सहित अपनी जगह से उठकर आकाश की ओर चल पड़ा है और काबे ने निश्चय कर लिया है कि मुझ पर गिरकर मुझे मार डाले। काबे

---

१. पुरातन जन्मसाखी।
२. धरी निशानी कौस दी मक्के अंदर पूज कराई।

ने मुझे यहाँ तक कह दिया कि 'आगे हो मैं तुझे बताऊँ कि तेरे साथ क्या व्यवहार करता हूँ। मैंने भयातुर होकर काबे की स्तुति की जिस पर वह दोबारा अपने असली स्थान पर आ गया। [देखिए इसरारि शरीअत दूसरा भाग पृष्ठ ७४]। इसी तरह एक और किबंदती है कि रायबा (राबीआ) जब दूसरी बार हज (यात्रा) करने के लिए गई तब जंगल में काबे को अपने स्वागत के लिए आते देखकर कहा कि मैं तो ख़ुदा की इच्छा करती हूँ, ख़ुदा के घर को क्या करना है। जो मेरी ओर एक बित्ता भर चलकर आयेगा, मैं उसकी ओर एक गज बढ़ूँगी, मैं काबे को क्या करूँ, काबे के वैभव से किस तरह प्रसन्न होऊँ। इससे आगे लिखा है कि हज़रत 'इब्राहीम अजम' मक्के गए, खाना काबा को अपने स्थान पर ने देखकर चकित हो गए कि हैं। 'यह क्या घटना घटी है, न जाने मेरी आँखों में कोई खलल आ गया है?' आकाशवाणी हुई 'तेरी दृष्टि में कोई अंतर नहीं पड़ा, काबा एक दुर्बल स्त्री के स्वागत के लिए गया हुआ है जो इस ओर आ रही है।' (तज़करातुल औलीआ पृष्ठ ६२)। यह लिखित तथा किंवदंतियां बताती हैं कि काबे को अपनी जगह से हिलने-जुलने तथा अपनी जगह का त्याग कर जाने आदि से मुसलमान इनकार नहीं कर सकते। गुरू जी के चरणों के फिरने से काबे के फिरने वाली बात को तो केवल सिक्ख तथा हिन्दू, बल्कि मुसलमान तक भी आँखों देखी बात की भाँति मानते हैं, जैसा कि मौलाना अब्दुल रहीम साहब 'बिसमिल' फीरोजपुरी अपनी एक पुस्तक में गुरू जी के मक्के जाने का उल्लेख करते हुए गुरू जी की उच्चता बताकर लिखते हैं :-

तू वह काअना है कि कअबे ने कीआ तेरा तवाफ।
ज़ाहिरो नातन तिरा मानिंदे आईना है साफ।

२. जीवन, रुकनदीन, पीर पतलीआ आदि

लगता है कि जीवन भारतीय मुसलमान था। जिस तरह हिन्दू अपने निश्चय के अनुसार कल्याण के लिए हरिद्वार, वाराणसी, प्रयाग तथा मथुरा आदि स्थानों पर जीवन के दिन व्यतीत करने के लिए जा बैठते हैं, इसी तरह जीवन ने अपने निश्चय अनुसार मक्के में जा निवास किया और वहाँ झाड़ू की सेवा करता था। जब श्री गुरू नानक देव जी मक्के गए तब जीवन करामात देखकर काँपा, विद्वानों को बुलाया, अरब के मुसलमानों के निरूतर होने तथा इन दोनों (जीवन तथा रूकनल) ने हिन्दी होने के नाते तथा हिन्दू धर्म के ज्ञाता होने के कारण गुरू जी के साथ चर्चा की, परन्तु मक्के में हुई गोष्ट से पता चलता है कि यह दोनों भी निरूतर हो गए। इनके निरूतर होने के समय पीर बहाउद्दीन, गऊस कुतुबुद्दीन, जलालदीन, कमालदीन तथा शाह शरफ, लालजति आदि मुसलमान फकीर जो अपनी तपस्या तथा भरोसे के कारण हिन्द के मुसलमानों में पूजनीय माने जाते थे, पास बैठे हुए बोल उठे और उन्होंने भी हिन्दू मत पर शंकाएँ कीं, परन्तु गुरू जी का मत हिन्दुओं तथा मुसलमानों, दोनों से पृथक था। इसलिए इनकी तथा अन्य इमामों (मुल्ला) की हिन्दू धर्म के बारे में बताई हुई त्रुटियाँ कोई प्रभाव न डाल सकीं, जिससे इन्हें भी गुरू जी की गौरवता के आगे सीस झुकाना पड़ा। गुरू जी का मनोरथ इन लोगों को सहनशीलता सिखाने का तथा इनकी कट्टरता को कम करके यथार्थ पर लाने का था।

३. रुकनदीन के बारे में विशेष

रियासत बहावलपुर में 'उच्च शरीफ' नामक एक स्थान है जहाँ 'सय्यद जलालसानी' भखदूम 'रुकनदीन' 'अब्बुलफते' हुए हैं। यह हज़रत अली नकी की वंश के सय्यद साहब थे। चाहे यह अरब से भारत में आ गए थे, पर जब यह मक्के जाते थे तब वहाँ के शरीफ के समान होते थे। जब गुरू बाबा जी मक्के गए तब मखदूम 'रुकनदीन' साहब भी वहाँ पर ही थे, इनके साथ 'लाल जति' आदि कई भारतीय फकीर भी वहाँ ही थे। जब सतगुरू बाबा जी के चरणों के साथ काबा फिरा तब सभी मुसलमानों ने गुरू बाबा के साथ धर्म विषय के प्रश्नों उत्तरों के लिए 'मखदूम रुकनदीन्' जी को ही आगे किया। आपका नाम ही जन्मसाखियों में 'रुकनल' लिखा है। जब हर तरह से गुरू बाबे की ओर से आपको पूरा उत्तर मिला और अपनी आँखों से उनकी कृपा को देखा तब आप गुरू जी के प्रेमी बन गए और आपसे कोई चिन्ह माँगा। तब सतगुरू जी ने अपनी खड़ाव प्रदान की। यह उस प्रकार की खड़ाऊ है, जिसकी खूँटी नहीं होती। इसे मक्के में अपने पास रखकर बड़े सत्कार सहित आप दर्शन करते तथा अन्य प्रेमियों को दर्शन कराते रहे। जब आप भारत वापिस लौटे तब प्यारे गुरू की निशानी वे खड़ाऊ भी साथ ही ले आए। यह खड़ाऊ आज तक सत्कार सहित उच्च शरीफ के पीर जी के तोशेखाने में रखी हैं और बड़े सत्कार सहित उन्होंने रखी हुई हैं। कई बार धनवान सिक्खों ने बहुत सारा धन, भूमि आदि भेंट देकर यह खड़ाऊ लेने की इच्छा की, पर वहाँ के पीर साहब जी ने पवित्र वस्तु जानकर नहीं दीं। हाँ, कभी-कभी दर्शन[१] करवा देते है, पर खास-खास मेलों पर निकालते हैं। उच्च के पीर केश रखते हैं और गुरू जी को मानते हैं। गुरू जी उच्च के पीर को वरदान देकर गए थे। महाराजा रणजीत सिंह ने उस वरदान का सत्कार किया।

[सम्पादित सू : प्र : पृष्ठ ६२७-६२९-६३७]

कौस–खड़ाऊ को कहते हैं। हज (यात्रा) करते समय जो नियम है, उसके अनुसार हाजी लोग एक पड़ाव पहले वस्त्र बदलते तथा जूता उतार लेते हैं, यदि खड़ाऊ पहन ली जायें तो कोई बाधा नहीं।

सूचना :–यहाँ से आप कई जगह से होते बग़दाद आए हैं। बग़दाद में व्यतीत हो चुके संक्षेप समाचार इस प्रकार हैं :–

१. यह पाकिस्तान की स्थापना से पहले के समाचार हैं।

७५ बग़दाद की फेरी

: १ :

'खलीफा हारूँ रशीद' की राजधानी तथा 'ज़बीदा'[१] की सुशोभित पुरी जो कभी रूम ईरान अरब का केन्द्रीय नगर रहा था, आज अभी सोया पड़ा था और नगर से बाहर एक स्थान पर ऐसा मीठा राग आरम्भ हो गया कि सुन सुनकर जी मगन होता जाता है। अमृत वेला है, तीसरे पहर का घण्टा बज चुका है, मीठी-मीठी ओस पड़ रही है, भीनी-भीनी रैन है, तारे सौंदर्य भरे नैनों से आकाश से पृथ्वी की ओर देख रहे हैं और सुखों के झोंके दे रहे हैं। रस की फुहार पड़ रही है, साफ तथा हल्की हवा की धीमी-धीमी रों रूमक रही है। दरिया के पानी से गले लगकर आती हुई हवा ठंडी तथा रस से भरी है और रस दान कर रही है। पिछली रात के चन्द्र का प्रकाश मंद-मंद सौंदर्य लेकर धरती पर बिछता जा रहा है। इस प्रकृति के टिकाव तथा रस भरे रंग में सरोद हो रहा है, आसा का मन को आकृष्ट करने वाला राग हो रहा है, जो इस समय किसी जागृत मन को आपे में ले जाकर आपे के इस रंग में मस्ती के देश में पहुँचा रहा है। इतने में साज़ के साथ कोई सुन्दर कण्ठ भी छिड़ा। आवाज आई :-

बलिहारी गुर आपणे दिऊहाड़ी सदवार॥
जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार॥

हैं? तुरकानी धरती, मुसलमानों की आबादी, यहाँ 'आसा दी वार' कैसे पहुँची?

हाँ जी, आसा जी की वार का स्वामी, आसा की वार में ईश्वरीय रहस्य बताने वाला दाता आप जो पहुँचा हुआ है और कई दिनों से यहाँ पर रंग लगा रहा है। लोग आते हैं, उनका सत्संग करते हैं, उपदेश सुनते हैं, सच्ची, स्वच्छ, ईश्वरीय प्यार की बात समझते तथा उसके अनुसार चलते हैं। हाँ, दाता उन्हें उनकी भाषा में समझाते हैं। वे समझते हैं, जीवन दान लेते हैं और ईश्वर के नाम की लौ में जीवित हो उठते हैं। इस तरह के थोड़े से मनुष्यों का यहाँ पर सत्संग है, वे सवेरे शहर से निकलकर इस स्थान पर, जो शहर से बाहर है, आ इकट्ठे होते हैं, कीर्तन सुनते हैं, चाहे समझते नहीं पर राग का स्वर, लै उन्हें जोड़ देती है। दाते का दर्शन आत्म रंग लगा देता है। कई लोग इनमें 'जपुजी' नामक वाणी का अर्थ भाव आपसी भाषा में सुनते हैं और याद करने के लिए लिख लेते हैं। यों उस धरती पर, जहाँ मुसलमानी तेज शिखर पर है, अपना सिक्का जमाकर जा बैठे हैं अदेश से आए हुए-गुरू नानक देव जी।

पर यह नहीं समझना चाहिए कि आपके साथ वहाँ पर कोई झगड़ा नहीं हुआ, हुआ और बड़े ज़ोर का हुआ। आपके निवास का, उपदेश का, कीर्तन का चर्चा शहर में चल पड़ा, जो लोग अनुयायी हुए उनके साथ ईर्ष्या तथा कट्टरता का व्यवहार होना आरम्भ हो

---
१. खलीफा हारूँ रशीद की नेक तथा प्रवीन पत्नी।

गया। मुसलमानी शराअ (धर्म) में राग करना वर्जित है। इस राग पर चर्चा चली। लोगों ने कहा : यह कौन है जो फकीर होकर अल्ला वाला कहलाकर, गुरू बनकर फिर राग करता और सुनता है। फिर इसके सेवकों में से कोई भी पाँच बार नमाज़ नहीं पढ़ता। जो अनुयायी बने हैं, वे कुछ विरद तो करते हैं, पर न जाने वह कैसा और क्या विरद है। फिर बीच-बीच लोग उनकी आत्मिक शक्ति की बातें भी सुनते थे, करामात भी देखते थे कि इब रानी अवतारों के अनुयायी लोग, अवतार की निशानी समझते थे। कई बार कोई अकेला मनुष्य और कभी कई-कई मनुष्यों के झुण्ड इकट्ठे होकर जाते थे कि जाकर कोई बहस चलाएँ, बेअदबी करें, पर चर्चा चलाकर मुँह की खाते थे और चेहरे की कान्ति तथा प्रभाव देखकर बेअदबी करने का साहस ही टूट जाया करता था। तब भी शराअ के विरुद्ध एक दो बातें देख-देखकर विरोध प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। अंत में विरोधी लोगों ने यह मन्त्रणा की कि अपने शहर के तथा मुसलमानी संसार के बड़े पीर हज़रत दस्तगीर को गद्दी पर गद्दीदार से कहें, वे ठीक कोई प्रबंध कर सकेंगे। आप वे पीर हैं, शराअ का फतवा दे सकते हैं, समय के शासक से कहकर दण्ड दिलवा सकते हैं। यों सोचकर पीर के पास शिकायत पहुँचाई। पीर जी ने गहरा विचार किया कि जो मनुष्य इस धरती पर आकर हमारे पूर्वजों के स्थानों के पास बैठकर राग करता है और जानता है कि मुसलमान इस बात को अच्छा नहीं समझेंगे, वह अवश्य ही मस्तिष्क में कुछ सोच तथा शक्ति रखता है, अन्यथा कोई साधारण मनुष्य कब इतना साहस कर सकता है, जिसका फल शराअ की ओर से दण्ड मिलना स्पष्ट दिखाई पड़ रहा हो। वह हिन्दू नहीं हो सकता, क्योंकि हिन्दू में इतना साहस कहाँ है कि इतनी दूरी पर आकर कुछ कहे। अत: मैं धीरे से कदम उठाऊँ। यह सोचकर अपनी ओर से संदेश भेजा कि राग बंद कीजिए, यहाँ यह वर्जित है। अत: जब मनुष्य मना करने के लिए आए तब बाबे ने कहा, 'जब तक पीर नहीं आता तब तक हम राग बन्द नहीं करते।'[१]

: २ :

बग़दाद में पीर दस्तगीर की गद्दी बड़ी प्रसिद्ध गद्दी है। अब तक सारे मुसलमानी देशों से लोग वहाँ जाते हैं। भारत में भी बहुत से लोग उस गद्दी के चेले हैं। इन दिनों जिनकी वार्ता हम लिख रहे हैं, वहाँ कोई भारतीय मुसलमान भी गद्दी के अनुयायी गए हुए थे। इनमें से किसी ने सतगुरू जी की वाणी का पाठ सुना और नए बने चेलों से उनकी भाषा में समझाई जा रही वाणी का भाव समझा, तब पीर के पास दूसरी शिकायत पहुँची कि वह नया आया फकीर इस्लामी धर्म के विरुद्ध बातें भी करता है। अपने चेलों को बताता है कि पाताल के नीचे और पाताल है और आकाश से आगे आकाश भी और है और वे लाखों और हैं। पर इस्लामी मत में तो सात-सात बताकर, सारे चौदह खण्ड बताए हैं। शराअ का यह एक और नुकता तथा जो पीर के हाथ आया। एक तो राग करना, दूसरे वर्जना करने पर भी ने रुकना, तीसरा सिद्धान्तों के विरुद्ध उपदेश करना।

मुसलमानी सिद्धान्तों की विरोधता मुसलमानों में ऐसा यन्त्र है कि जिसके साथ विरोधी को भलीभाँति घड़ा जा सकता है; यह यन्त्र पीर जी के हाथ चढ़ गए थे। इस नए

१. जनमसाखी भाई मनी सिंघ जी।

आये अनोखे मनुष्य की बढ़ रही कीर्ति तथा यश एक और दुखदाई काँटा था। कई बार दूसरे राजे के ऐश्वर्य की भाँति पीरों को भी दूसरे फकीरों का प्रताप चुभा करता है, अतः अब पीर जी ने विचार करके लोगों से कहा कि मैं तुम्हें वर्जना नहीं करता, जो मुसलमानी धर्म के सिद्धान्त कहते हैं, तुम वही करो, क्योंकि हमने पहले वर्जना कर रखी है, पर वे रुके नहीं। अब मुसलमानी मत का नियम चलेगा। मुसलमानी धर्म इस तरह के मनुष्य को संगसार, पत्थर मार-मारकर मार देना ही बताता है, अतः तुम ऐसे ही करो।

आइस सगरे नगर पठाई :-
संगसार तिस करीए जाई।
सभ चल जाहु न लावहु देरा।
हुक्म भंग कीनो उन मेरा।
... ...
इह बगदाद जु थान महाना।
तुरकाने को बड़ो ठिकाना।
जेकर इहाँ अवज्ञा होई।
पुन मृयाद रखै नहिं कोई। [गुरू नानक प्रकाश]

यह सुनकर मूर्ख लोग पत्थर लेकर जगत गुरू को, जगत का उद्धार करने के लिए आए को; संगसार करने के लिए चल पड़े।[१]

जगत दाता अपने रंग में बैठा था कि लोग आ गए, दूर-दूर तक चारों ओर भीड़ लग गई। गुरू बाबे ने सबके हाथों में पत्थर देखे, आप समझ गए कि यह सब हमारी सेवा के लिए ही आए हैं। हाँ, ईश्वर के प्रेमियों तथा दूतों को, जो उसके पास से जगत को ऊँचा करने के सुख संदेश लेकर आते हैं, उन्हें सदैव इसी तरह का आदर मिलता है। आप यह कुछ देखकर घबराए नहीं, उठकर खड़े हो गए। एक मनुष्य आगे बढ़ा और कहने लगा कि शराअ की शरण ले लो अन्यथा पत्थरों से मार दिए जाओगे। यह समय नमाज़ के लिये बांग देने का था। धर्म की कट्टरता वाले मूर्ख जोश में यह भी भूल रहे थे कि वह नमाज़ का समय था, नमाज़ को तो न खोएँ, नमाज़ पढ़कर ही इसे पत्थरों से मार डालेंगे। पर गुरू बाबा जी इन लोगों के हृदयों की कालिमा को जानते थे और सुमति प्रदान करने में अपूर्व शक्ति रखते थे। आप उठकर खड़े हो गए, कानों पर हाथ रख लिए और आकाश की ओर देखकर बिल्कुल उसी स्वर में तथा उसी लै में आपने बांग देनी आरम्भ कर दी, जिसमें कि मुसलमान बांग दिया करते हैं। 'अल्ला हू अकबर'[२] भी कहा,

१. इन देशों में इतनी कट्टरता थी कि भाई कर्म सिंघ इतिहासकार को, कुछ समय पहले चीफ़ खालसा दीवान की ओर से बग़दाद में गुरू जी के चिन्हों की खोज करने के लिए भेजा गया था। उन्होंने बताया कि मस्जिद में जब लोगों को पता चल गया कि वह मुसलमान नहीं था तो लोग मारने के लिए भागे। तब एक पोलीस अफसर ने जो कि पंजाबी मुसलमान था, आपको पंजाबी भाई जानकर बड़ी कठिनता से बचाया था।

२. ईश्वर बड़ा है।

'ला इलाह इल्लिल्ला'[१] भी उच्चारण किया। 'हय्य अल, अलफलाह'[२] भी किया, पर 'मुहंमद रसूल अल्ला' नहीं कहा और यों बांग के अंत में पंजाबी के पद बोलकर उसे समाप्त किया:

गुर बर अकाल; सति श्री अकाल,
चित चरण नाम, घरि घरि प्रणाम,
प्रभु कृपाल, जो सरबं जीवाल।[३]

ईश्वर को सबसे (अकबर=) बड़ा कहना, उसे यह कहना कि कोई और अल्ला नहीं, सिवाये उस अल्ला के और नेकी के लिए खड़े हो जाओ, ईश्वर के आगे झुकने के लिए खड़े हो जाओ, यह कहना गुरू जी के अपने सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं था और फिर अपनी भाषा में ईश्वर को 'गुरुवर' सबसे श्रेष्ठ गुरू कहना, आदि सब कुछ ठीक था, पर यह अक्षरों के अर्थ थे, भाव की बात कम थी। यदि लोगों को अर्थ तथा उसके भाव का ज्ञान होता तो इस बांग को बदलना एक और अपराध हो जाता और पत्थराऊ को और तेज़ी से वास्तविक रूप दिया जाता, जो बात बल्कि पीछे रह गई। बाँग की आवाज़ का, उसके सुन्दर राग का उसके मनमोहक स्वर का और उससे सतगुरू जी से प्रकाश ले रहे आत्मबल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सुनने वाले मानो मूर्छित हो गए। सभी पर शून्यता छा गई। शून्यता कैसी समाधि के रंग की, सबकी बुद्धि अचल होकर एकाग्र हो गई। यहाँ तक कि नगर में जहाँ तक आवाज़ गई लोग शून्य हो गए। हाथों में उठाए हुए पत्थर हाथों में से गिर पड़े, पत्थर उठाने तथा मारने का साहस ही किसी में न रहा। नगर के लोग तथा पीर जी, जहाँ जहाँ थे अपने-अपने स्थान पर शून्य हो गए थे।[४]

तब फिर बाबा जी ने अपने कृपा कटाक्ष से पीर को चेतन किया, अत: पीर सब चेलों की ओर देखकर चकित हो गया तब पीर ने अंतस में दृष्टिपात करके देखा कि यह फकीर बहुत मस्ताना है और सभी वंशों का निरर्थक समझकर इसने एक ईश्वर के वंश को पहचाना है, और धरती आकाश में खुदा ने इस सुप्रसिद्धि किया है—और प्रभु की याद के बिना इसका एक श्वास भी व्यर्थ नहीं जाता।[५]

अब पीर को पता चला कि यह फकीर है, ईश्वरीय प्यार की लौ में है, यह कोई ऐसी बात नहीं है। इसके पास चलकर जाना कोई अपमान वाली बात नहीं होगी। यह विचार कर पीर उठा और आ उपस्थित हुआ। क्या देखता है कि पत्थराव करने वाले सभी समाधिस्थित हो रहे हैं हाथों में से पत्थर गिर पड़े हैं। तब उसने आकर सलाम किया और प्रार्थना की, "इन पर भी कृपा करके इन्हें होश में ले आइए" तब गुरू बाबा ने वचन किया "यह सभी सुख में हैं, यह मुझ पर पत्थर बरसाने के लिए आए थे, हमने शब्द के बाण से इनके मनों पर पत्थर बरसाए हैं, अत: इनके मन शब्द से बिंध गए हैं और यह रस के

---

१. सिवाय ईश्वर के और कोई ईश्वर नहीं।
२. नेकी के लिए खड़े हो जाओ।
३. जन्मसाखी भाई मनी सिंघ जी।
४. दिती बांग निमाज कर सुन्न समान होया जहाना। सुन्न मुन्न नगरी भई देख पीर भइया हैराना। [भाई गुरुदास १-३५]
५. जन्मसाखी भाई मनी सिंघ जी।

देश में हैं।" पीर ने कहा–"कृपा करो जो रस देश में से इस देश में आ जायें और आकर दर्शन करें"। तब पीर ने बाबे के चरणों पर हाथ लगाया और कहा–यहाँ बगदाद में. कभी किसी की करामात नहीं चली थी, पर तुम बहुत प्रवीन फकीर हो, जिसने हमारे सामने ऐसी कला दिखाई है, इसलिए अब हमारी भूल, क्षमा कीजिए। तब बाबे ने सबकी ओर कृपा दृष्टि करके सबको मुक्त किया। जब मुक्त हुए तब करबद्ध गुरू बाबे के आगे सीस झुकाया। अर्थात् बाबा जी की कृपा द्वारा सबकी शून्य समाधि खुल गई और सबने सीस झुकाया।

: ३ :

फिर बाबा गिआ बगदाद नो बाहर जाइ कीआ असथाना।
इक बाबा अकाल रूप दूजा रबाबी मरदाना।
दिती बांग निमाज़ कर सुन्नि समान होआ जहाना।
सुन्न मुन्न नगरी भई देख पीर भइआ हैराना।
देखे धिआन लगाइ कर इक फकीर बड़ा मसताना।
पुछिआ फिर के दसतगीर कऊन फकीर किसका घराना?
नानक कलि विच आइआ रब फकीर इको पहचाना।
धरत अकाश चहूँ दिस जाना।

[वारां भाई गुरुदास १-३५]

अब सतगुरू जी के सामने पीर जी बैठकर पूछने लगे :–

पीर–आप बड़े तेज वाले फकीर हैं, आपका बोल प्रभाव वाला और बरकत वाला है, फिर समझ में नहीं आता कि आप इसलामी धर्म के इतने पाबंद क्यों नहीं हैं? क्या आप कृपा करके बता सकते हैं कि आप कौन फकीर हैं? किस फकीरी संप्रदाय से आप संबंध रखते हैं और आपका नाम क्या है? जिससे आपके कथन तथा कर्म की समझ हमारे मन में हो जाये?

गुरू जी–मैं कौन से फकीरी संप्रदाय से संबन्ध रखता हूँ? मेरा मत किस प्रसिद्ध फकीर के नाम पर चला है? इन बातों का एक ही उत्तर है कि मैं संसारी नहीं, इसलिए मेरा संप्रदाय तथा वंश कोई नहीं, मुझे अकाल ने जगत में भेजा है, मैं केवल उस एक प्रभु को पहचानता हूँ जो धरती आकाश तथा चारों नुक्कड़ों में प्रत्यक्ष जाना जा रहा है। मैं उन फकीरों को रद करने के लिए आया हूँ कि जो अपने चारों ओर लकीरें लगाकर कैद हुए बैठे हैं और जो मान के चबूतरे पर गद्दी लगाकर बैठते और अहंकार कर रहे हैं, जो प्रभु के कहलाते हुए विषयों में लग रहे हैं, इस तरह के फकीरों को निरर्थक करने के लिए मैं आया हूँ। तुम्हारे जो चौदह वंश और बहत्तर फिरके हैं और इनकी फिरके बंदी है, यह सीमाएँ हैं, प्रभु ने प्यार किया है, सीमाएँ तथा पंक्तियाँ, जिनमें अहंकार हो, मैंने उन्हें तोड़ दिया है और यदि तू हमारा नाम पूछे तो हम निरंकार के हैं, हमें निरंकारी कह लीजिए, यदि माता-पिता का रखा हुआ नाम चाहो तो वह नानक है।

जब पीर ने नाम सुना तो फिर सीस झुकाया। पीर उनका नाम सुन चुका था मक्के से आकर लोगों ने आपके समाचार बताए थे। अतः 'पीर हिन्दी' कहकर उसने फिर सीस

झुकाया और कहा : आपका नाम सुनकर मन शांत हुआ है। आपका यश पहले सुन चुका हूँ कि आपने अल्ला को प्राप्त किया है और आप केवल उसी के नाम का ढंढोरा देते हैं, पर हे प्रभु स्वामी के प्यारे जी! यह राग बड़ी चंचल वस्तु है, विकारों की ओर ले जाती है, जगत के अयाश तथा दुराचारी इसकी संगत से चौपट हो रहे हैं। वह वस्तु जो अल्ला से बेमुख करके विषयों की ओर ले जाए, उसे आपने कैसे रोक रखा है, कृपया समझा दीजिए, हमें आश्चर्य हो रहा है, आपका प्यार राग के साथ देखकर।

गुरू जी–राग मन को चंचल करने वाली वस्तु नहीं पर एकाग्र करने वाली वस्तु है। राग मन को पिघलाता है, राग को सुनकर मन द्रवता है, कोमल होता है। फिर कोमल हो चुके मन को ऊँचे रंग में रंगा जा सकता है। इस मन में राग के साथ विशालता आती है, सुन्दर विचार, अकथनीय वलवले इससे उत्पन्न होते हैं और फिर सुन्दर कामों की ओर प्रेरणा होती है। कई बार उखड़े, उदास, व्याकुल मन इससे सुखी तथा साफ हो जाते हैं। बुरे ख्याल, बुरी, वासनाओं के प्रवाह को राग निर्मल करके स्वच्छ कर देता है। तुमने देखा होगा कि इस राग को वृद्ध, बालक, युवक सभी पसंद करते हैं, पशु-पक्षी राग सुनकर मोहित होते हैं।

पीर (बात काटकर)–सभी पसंद करते हैं, क्या राग कोई अल्ला ने बनाया है?

गुरू जी–राग ईश्वरीय वस्तु है, मनुष्य ने इसे रचा नहीं, पर खोजा है।

पीर–पर श्रीमान्! रबाब, सरोद, सितार आदि राग के जन्त्र तो मनुष्य ने रचे हैं, इनके बिना राग कहाँ से होता?

गुरू जी–सरकंडे का पौधा पवन के लगने से सरर-सरर करके राग करता है। पत्थरों के साथ लग-लगकर बह रही नदी राग कर रही है, वन में से गुजर रही हवा राग कर रही है, पक्षियों के कंठ राग गा रहे हैं, मनुष्य का कण्ठ प्रभु ने राग गाने वाला बनाया है, पानी निकालने के लिए मनुष्य द्वारा निर्मित कूआ चलते समय अपने में राग का स्वर निकाल रहा है। प्रभु ने राग को सुनने के लिए कान बनाए हैं और राग का ज्ञान, निर्णय जोड़ तथा रस प्राप्त कर लेने की शक्ति तथा मोहित होने वाला गुण प्रभु ने मन में डाला है, राग सुनकर नकल कर लेने की तथा रागों के ऊपर ध्यान दे देकर इसके अन्तर को समझने की बुद्धि उसी ने प्रदान की है, पत्थर को राग का क्या पता, केंचुए को राग का क्या पता?

पीर–पर इसमें भी कोई सन्देह है कि राग ने अयाशी बढ़ाई है, राग दुराचारियों तथा बुरों के घर में रहता है, राग ने डोम मिरासी आदि भिखारी तथा कंजड़ आदि निम्न वर्ग के लोग पैदा किए हैं।

गुरू जी–तुम सत्य कहते हो कि राग का निवास निम्न स्थान पर हो रहा है, पर इसमें राग का कोई दोष नहीं। राग एक उच्च गुण है, एक शक्ति है। इसमें बल है, प्रभाव है, जब इसे केवल अपनी आत्मा की भाषा बनाकर प्रयुक्त किया जाये तब इस शोर, बेढंगेपन, झगड़े तथा बेसुरी में, हाँ विवाद तथा कलह वाले संसार में एकस्वरता पैदा करता है। मन में एक संतुलन पर ठहरने का भाव उत्पन्न करता है। यदि मन उदासी, शोक में गिर जाये तो राग उसे ऊँचा करके 'एक संतुलन' में ले आता है। अंदर, अहंकार, फाड़ देने वाली प्रसन्नता तथा जोश हो तो यह उसे निम्न करके 'एक संतुलन' पर स्थिर कर देता है। राग

साँप जैसे विषैले को मस्ती में ले आता है और वह अपने डसने के स्वभाव को भूलता है। पीर जी! राग का प्रभाव है एकस्वरता, एक संतुलन, स्वच्छता, मस्ती तथा मगनता, पर यह है राग का प्रभाव निरोल मात्र अपना। विशुद्ध, निरोल राग[१] मानो अंतस की भाषा है, जैसे मने के विचारों को प्रकट करने के लिए भाषा है, जिसमें हम अपने भाव प्रकट करते हैं, वैसे अन्दर के वलवले राग द्वारा प्रकट होते हैं। अंतस की एकाग्रता भी राग से ही आती है, पर इस बोली में भाव समझना बड़ा कठिन है, इसलिए मनुष्य ने राग में अपनी भाषा मिलाई है। वह बुलबुल तथा कोयल की भाँति विशुद्ध राग का स्वर छेड़ने से उसमें अपनी भाषा (वैखरी बोली) भी गाता है, जिसमें मन के तरंग तथा ख्याल प्रकट करता है। यह ख्याल बोली में उच्चारण किए हुए राग के साथ मिलकर अपना प्रभाव अधिक प्रकट करते हैं। अतः कई मनुष्यों ने इस तरह से राग में बुरे वाक्य मिलाकर गाए हैं और यों राग का प्रयोग बुरे स्थानों पर किया है। यह राग है जो सम्भव है तुम्हारी शरअ ने वर्जित किया हो। जब काम, क्रोध, वैर, विरोध के वाक्य रागों में मिलाकर गाए जायें, तब राग का प्रभाव बुरा होता है, पर यह राग का अपना प्रभाव नहीं, यह उन बुरे वाक्यों का है, इसलिए बुरे वाक्यों की संगत से बुरे प्रभाव डालने वाला राग को बुरा न समझो पर बुरे वाक्यों को बुरा समझो। राग को उन बुरे वाक्यों से पृथक कर लो, राग फिर अपना विशुद्ध तथा निर्मल प्रभाव डालेगा। कभी किसी रसिक को केवल तानपूरे को छेड़कर बैठा हुआ देख लें कि वह विशुद्ध स्वरों के प्रभाव में कैसे मस्ती में होता है या कभी आपे के रस में निमग्न होता है। विशुद्ध राग तो ऐसी वस्तु है कि पशु वृत्ति के भावों को भी उच्च करके विस्मय में ले जाता है।

अब तुम आप ही विचार कर लो कि मैले कपड़े में बाँधे हुए हीरे को मलिन तथा त्याग के योग्य कहना बुरा है कि नहीं? हीरा, हीरा ही है, मलिन कपड़े से उसे अलग कर लो, फिर बुरे वाक्य (वाक्य कहो, गीत कहो, कुछ कहो) बुरे वचनों के स्थान पर तुम राग में अच्छे, उच्च, सच्चे ख़्याल तथा निर्मल तरंग वाले वाक्य डालकर गायन करो तब उसे राग की सहायता से तुम्हारे निर्मल भावों का अपना सुन्दर प्रभाव बढ़ जायेगा। क्या तुम्हारे मत में अल्ला की स्तुति नहीं लिखी गई?

पीर–अवश्य ही लिखी है, यही तो उसकी भक्ति है।

गुरू जी–फिर सोचो स्तुति तीन प्रकार से होती है : एक तो स्तुति के भाव, ख्याल, तरंग अन्दर उत्पन्न होते हैं और साहब के ध्यान में उसके चरणों के अर्पण होते हैं। दूसरे वे ख्याल जिह्वा द्वारा वाणी का रूप लेकर प्रकट होते हैं, मन प्रभु की ओर होता है और जिह्वा वे ख्याल अर्पण करती है। तीसरे वे स्तुति वाले अन्तस के तरंग तथा वलवले वाणी का रूप लेकर राग से मिलकर गायन होते हैं। यह तीसरा प्रकार विशेष समय पर अपने ऊपर और दूसरों के ऊपर बड़ा प्रभाव डालता है और थोड़ा बहुत हरेक पर प्रभाव डालता है।

राग एक पिघला देने वाली, मन को कोमल करने वाली वस्तु है। जिस समय मन कठोर हो, इस पर शुभ विचारों को लिखना बड़ी कठिन बात है, पर जब मन कोमल हुआ

---

१. जिसमें बोल नहीं है, स्वरों का अलाप राग मात्र है।

हो उस समय शुभ ख्यालों को इसके ऊपर लिखना सहज होता है। इसलिए जब ईश्वरीय प्यार के ख्याल, स्तुति के तरंग, प्रेम के तरंग, शिक्षा के वाक्य, मनों पर कुरेदने हों तो राग का ताव देकर मन को पिघला लें, तो वह आसानी से मन में अंकित हो जाते हैं।[१]

पीर–बातें तो सारी दिल चुभती कहीं हैं, यही बात होगी जिसके कारण राग वर्जित है, राग के वर्जन का तात्पर्य नहीं होगा, पर बुरे विचार के गानों की अवश्य ही वर्जना होगी।

गुरू जी–पीर जी! एक और बेबसी की बात है, राग रोकने से नहीं रुकता। चाहे कोई मुसलमान है अथवा यहूदी, चाहे ईसाई है, चाहे हिन्दू, चाहे उसके मत में राग उचित है अथवा अनुचित है, गाता तो सब कोई है। राजा भी गाता है और कंगाल भी गाता है। हल चलाने वाले को हल के पीछे चलते हुए देखो किसी-न-किसी समय वह कुछ गायेगा। मल्लाह को चप्पू लगाते देखो, किसी-न-किसी समय कोई गीत छेड़ देगा, चाहे वह अच्छा गाये, चाहे बुरा, पर गायेगा अवश्य ही। मज़दूर टोकरी उठाता, चूना काटता, कोई-न-कोई स्वर लगाएगा, पनिहारी पानी की गागर सिर पर ले जाती हुई राग करेगी, युद्ध में गए हुए राजे के लिए रानी उसकी याद में विरह करेगी। यों तुम चल फिरकर सब ओर देख लो, हरेक व्यक्ति गाने की टू टां करता है। यदि यह बात होनी है कि गाने से लोगों ने रुकना नहीं तो सुन्दर-सुन्दर ख्याल, उच्च वलवले, स्वच्छ तरंग, स्तुति के भाव, सच्चे प्रेम के रंग, शिक्षा के वाक्य, उपदेशों के भाव, सुन्दर वाक्यों में रचे और गायन करे। गरीब अमीर सबको प्यारा लगे, सबकी जिह्वों पर चढ़ जायें, अपने रंगों मौजों में पक्षियों की भाँति स्वर छेड़ें, गायें, न जाने किस समय कौन-सा ख्याल, कौन-सा गीत तारने वाला प्रभाव कर जायेगा, सर्वसाधारण का आचरण संवरेगा, उनके मन विशाल होंगे; उनकी पशु वृत्तियाँ तथा निम्न तरंग ऊँचे हो जायेंगे। यदि तुम ने राग को धर्म से, उच्च भावों तथा स्वच्छ तरंगों से अलग कर दिया उन लोगों ने बेबसे ही अपनी वास्तविकता के स्वभाव में कुछ-न-कुछ गाना है, वे अवश्य ही गायेंगे, पर क्या? जो उन्हें सुलभ है। सुलभ क्या है? प्रेम सुन्दरता के झगड़े, बुरी वासनाओं के गीत, मज़ाक, ठट्ठे, बैर ईर्श्या के गीत झूठे झगड़े लड़ाइयाँ, इन वस्तुओं को रागों में गाते हुए लोग निम्न ख्यालों में रहेंगे।

हे पीर! राग घटिया नहीं है, राग अपने-आप घटिया निवासों में नहीं जा रहा, पर तुम्हारे राग को त्याग देने से घटिया लोग पेट भरने के लिए इसे घटिया निवासों में ले गए हैं और जगत का आचरण तथा सदाचार खोकर तथा वासना को प्रसन्न करने वाले शारीरिक सुखो में मस्त देने वाले कामों की रुचि दिलाकर अपना पेट भरने में लग रहे हैं। अतः यह भूल है, जो राग के से पवित्र प्राकृतिक प्रेरक को भक्ति, के उच्च तरंग के मंडल से अलग

---

१. पिछली बातचीत का निचोड़ यह है :–

१. राग मनुष्य की रचना नहीं, मनुष्य ने इसके नियमों की खोज की है, अतः यह कोई प्राकृतिक वस्तु है।

२. यह राग हम देखते हैं कि मन को पिघलाता है, पिघले हुए मन पर डाले हुए विचार स्थिर होते हैं और गहरे उतरते हैं। अतः उत्तम ख्यालों तथा उच्च वलवलों के मनों पर अंकित करने के लिए हम राग जैसी सुन्दर वस्तु को क्यों न प्रयोग में लायें? हाँ, राग के उस प्रयोग को–जो बुरे गीत तथा गाने राग में मिलाकर गाने से अन्दर बुरे ख्याल उत्पन्न होते हैं–उसे रोकें।

किया जाये। राग का प्रयोजन यह है कि यह आत्मा को हिसाबी-किताबी लेखे गिनती से ऊँचा करे, शारीरिक सुखों से दृष्टि को ऊँचा ले जाये, विस्मय द्वारा विशुद्ध आत्म रस के मण्डल में ले जाये और फिर परमात्मा के मिलाप आदि में डाल दे। राग एक सीढ़ी है जो धरती से आकाश तक ले जाती है, राग एक किश्ती है जो शरीर की तंग नदी से बेखुदी के सागर में ले जाती है।

पीर (लम्बा तथा नि:श्वास भरकर) अपने ठीक कहा है, आश्चर्य है कि हमारे मत में राग क्यों वर्जित है?

गुरू साहब तो उपरोक्त वार्ता करते-करते अपने प्रभु की स्तुति के रंग में मग्न हो गए थे, नैन मुँदे हुए थे, सारा शरीर एक संगीतक जन्त्र की भाँति ईश्वरीय झन्नाहट से राग रूप हो रहा था। पीर की अन्तिम बात पर भी आपके नैन नहीं खुले। तब पीर जी ने मरदाने की ओर देखा, मरदाने ने अपने प्रभु को अपने रंग में देखकर तनिक आगे बढ़कर पीर जी को धीरे से कहा—हज़रत मुहम्मद जी ने भी ईश्वरीय राग द्वारा स्तुति की वर्जना नहीं की। तुम चेते करो। एक उल्लेख आता है कि नहीं कि एक दिन हज़रत जी एक राग रंग के मण्डल में अपनी आदर योग्य धर्म पत्नी को लेकर आप गए थे, राग से यदि उनकी घृणा होती तो अपनी पत्नी को क्यों आज्ञा देते और फिर आप क्यों साथ जाते और सुनते।[१]

कुरान सारा गद्य में नहीं, कविता में भी है, कविता की रचना का एक प्रयोजन उसके राग में गाये जाने का भी होता है। अत: राग का उचित होना एक तरह से कुरान से ही स्पष्ट हो गया। फिर सोचो कोई आयत, राग के अनुचित होने में वहाँ है नहीं।

: ४ :

कुछ समय के पश्चात् सतगुरू जी के ईश्वरीय नैन खुले तो ईश्वरीय प्रेम से दमक रहे थे। पीर जी ने नैन देखे, शरीर में से एक झन्नाहट गुज़री, कलेजे में कुछ हुआ, आपने नैन झुका लिए, मन ने कहा—इसके नैन पीछे आदेश के साथ लगे हुए हैं, कैसी रसीली दृष्टि है, पर यह हमारी भाँति शरअ कट्टरता में बँधा हुआ मोमन क्यों नहीं, पर क्या कहूँ, जो बाते राग के संबंध में आपने की हैं, वे काट करती हैं, किसी को यह कोई दुख देने वाली बात नहीं कहता, फिर सार कहता है सार। अच्छा चलो और पता करें, दूसरे आश्चर्य का समाचार सुनें। यह जो लाखों पाताल और आकाश कहे हैं, इसका समाचार पूछें, कैसे कहता है, सच्च झूठ को कैसे तोलता है। तब पीर ने कहा :—

आपने कहा है कि लाखों पाताल और आकाश हैं, यह कैसी बात है? हमारे मतानुसार तो चौदह खण्ड कहे हैं, सात आकाश के और सात पाताल के। आपने कैसे लाखों की गिणती बताई है? क्या आपने कहीं पढ़ा है, देखा है अथवा अनुमान लगाया है?

गुरू जी अभी उसी रंग में थे, कभी नैन खुलते थे, कभी मुँदते थे, कभी झुकते थे। आपने प्रश्न सुन लिया था, पहले तो आप बोले नहीं, पर कुछ समय ठहरकर नीमस्त आवाज़ में बोले : जिन्होंने चौदह देखे होंगे, उन्होंने चौदह की सूचना दी, जिन्होंने लाखों देखे, उन्होंने लाखों ही तो कहने हुए, अपनी-अपनी दृष्टि है, उसमें झगड़ा काहे का?

१. सहीअ बुखारी तथा रोज़ातुल्ल इहबाब।

पीर–हमें क्यों नहीं दिखाई पड़ते?

गुरू जी–कई मनुष्यों की दृष्टि तथा हिसाब चौदह खण्ड तारों के आकाशों में जाँचती है, पर रचना परे-से-परे है।[१] लाखों खण्ड हैं उनमें करोड़ों अरबों तारे, सूर्य, चन्द्र हैं और वे करोड़ों असंख्य मील चलते हैं।[२] पीर जी! ब्रह्माण्ड बहुत बड़ा है, परे-से-परे है, यह जो दूरी दिखाई देती है, जिसके ऊपरी दिखाई पड़ने वाली ओर को हम आकाश और नीचे की ओर दिखाई देने वाले को पाताल कहते हैं, वह परे-से-परे है। गणना कौन कर सकता है? रचियता अपनी रचना को आप पूरी तरह जानता है। हम मन वाले होने के कारण बहुत कुछ जाँच पड़ताल कर सकते हैं, पर अन्त नहीं जान सकते, सारी व्याख्या को नहीं जान सकते। हम में चाहे गिणती में न आने के कारण अगणित कहा जाये, पर यह मत समझना कि यह ब्रह्माण्ड बिल्कुल ही अगणित है। रचियता तथा कर्तार के लिए यह गणना वाला है, अन्त वाला है, केवल वह आप बेअन्त है, अगणित है।

पीर–यह कैसे? हैं.......!

गुरू जी–हमारे लिए यह इतना बड़ा तथा दूर-दूर है कि हम इसे अगणित–बेअन्त कहते हैं, पर रचियता की रचना होने के कारण उसके सामने यह अन्त वाली है। यदि तुम इसे उसके तुल्य बेअन्त अनंत कहोगे तो दो बेअन्त हो जायेंगे, दो को बेअन्त कहना, दोनों को अन्त वाले कहने के अधीन है।...पीर जी, ईश्वर अनंत है, केवल वह अगणित है।

पीर–(अधर काटकर)–ठीक ठीक...ठी...क, पर फिर आपने कैसे लाखों देखे हैं?

गुरू जी–आकाश के उपग्रहों ग्रहों की गणना करना तो ज्योतिषी लोगों का काम है, फकीरों का काम नहीं, रात को दिखाई देने वाले तारे और इनके मण्डल अथवा आकाशों का बटवारा उनकी विद्या का व्यवसाय है। हमारा व्यवसाय रचियता का प्रेम है, फकीरों को तो रात को सिर पर चमकता हुआ आकाश विस्मय का रंग लगाता है। मनुष्य की साधारण आँख के लिये असीम गहराईयों में इन अरबों खरबों चमकते हुए सौन्दर्य भरे पिण्डों का सिर नीचे करके उड़ते जाना हर्ष तथा विस्मय का रंग चढ़ाता है। ज्योतिषी इनकी गिणती-मिनती करता है, पर फकीर की विस्मय की दृष्टि किसी समय मिट्टी के 'नैन बंद करके समाधि में खुलती है और यदि उस समय आकाशी ज्योतियों की ओर एकाग्र हो बैठें तो कोई गहरे दृश्य दिखाई पड़ते हैं तब दिखाई पड़ता है कि यह अरबों खरबों हैं। गणित वाले जो चौदह गिन रहे हैं, कभी सात गिनते थे, अब चौदह गिनते हैं, कभी और आगे बढ़ेंगे। हाँ फकीर को रात का गगन मण्डल विस्मय का रंग देता है और कभी स्वाभाविक ही जाग उठे अन्तस के नैन इतनी विशालता दिखाते हैं कि अरबों खरबों असंख्य पर जाकर भी दूरी की गिनती और न ही इन सौंदर्य के शरीरों की गिनती समाप्त होती है। फकीर की अपनी इच्छा के साथ जा रही दृष्टि तो अन्दर को जाती है और वह रूर के देश के खण्ड देखती

---

१. पाताला पाताल लख आगासा आगास।

२. भै विचि सूरजु भै विचि चन्दु।। कोह करोड़ी चलत न अन्तु।।

हुई अन्त में प्रभु पालन-पोषण करने वाले वाहिगुरू के चरणों की शरण तक पहुँचती है। वे लोग और हैं और उनका अनुभव दिखाने का है, स्वरूप की लखता में साक्षीपन के मार्ग की बातें हैं और अंत साक्षात्कार है। प्रेमी प्यार के, प्रेम के रंग में होते हैं। आकाश मण्डल की अथवा अंतरिक्ष (space) की झलक आपको अपने आप पड़ती रहती है, उन्होंने गणना में से क्या निकालना है? क्योंकि उनका मार्ग तो अनेकता के देश में एकता की ओर जाने का है; फैलाव में से केन्द्र की ओर जाने का है, फैलाव–लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई में से केन्द्र पर पहुँचने का है। दृष्टमान के घेरे में से दृष्ट की ओर जाने का है, पर हाँ, दुष्टमान के रूप रंग, सौंदर्य, चमत्कार से नैन नहीं मुँदने, पर उससे विस्मय का स्पर्श लेना है। विस्मय के स्पर्श से भी मन से, बुद्धि से ऊँचा उठता है। दृष्टमान के चमत्कार, दृष्टमान की सुन्दरता रहित मनों को आपे में ले जाती है और आपा को आपे में आगे जाकर रचियता के चरणों की शरण प्राप्त होती है।

विसमादु देखै हाजरा हजूरि।।

: ५ :

पुछे पीर तकरार कर इह फकीर वड़ा अताई।।
एथे विच बग़दाद दे वड़ी करामात दिखलाई।।
पाताला आकाश लख ओड़क भाली खबर सुनाई।।
फेर दुराइण दसतगीर असीं भि वेखां जो तुहि पाई।।
नाल लीता बेटा पीर दा अखीं मीटि गइआ हवाई।।
लख आकास पाताल लख अख फुरंक विच सभ दिखलाई।।
भर कचकौल प्रसाद दा धुरों पतालों लई कड़ाही।।
जाहर कला न छपै छपाई।।३६।।

[भाई गुरुदास वार–१]

पीर अब आश्चर्य-से-आश्चर्य में जा रहा था; कहने लगा : हे गुरू नानक! क्या आप मुझे भी दिखा सकते हैं कि आकाश चौदह नहीं अपितु लाखों हैं।

गुरू जी--जब ज्योतिषियों के हिसाब तथा नैन और बड़े हो जायेंगे, तब वे बता सकेंगे। हमारा मार्ग दूसरा है, वह लौ का मार्ग है। हाँ, वह एक प्रकार का ध्यान का मार्ग है। यदि तुम ध्यान लगाओगे, तो तुम भी देख लोगे।

पीर का पुत्र पास ही बैठा था, वह सरल बालक बातें सुन-सुनकर आश्चर्यता में जा रहा था, पिता की बात सुनकर कहने लगा :–हे बाबा नानक! यह झलक मुझे दिखा, किसी तरह मुझे दिखा!

पीर–अच्छा बाबा जी! हमारे पुत्र की लालसा अधीर है, इसी को दिखाओ, हमारी तसल्ली हो जायेगी।

तब बाबा जी ने पीर के बेटे का हाथ पकड़ लिया और कहा कि आँखें मूँद ले।[१] जब उसने आँख मूद लीं, तो क्या देखता है कि वह गुरू नानक जी के साथ आकाश में उड़ता

१. जन्मसाखी भाई मनी सिंघ जी।

चला जा रहा है। क्या देखता है कि अगणित सूर्य चन्द्र हैं। सूर्यों के अनेकों प्रबंध हैं। फिर उनसे बड़े प्रबंध और हैं। आगे-से-आगे परे-से-परे हैं। जब गणना की तब अचंभा होता गया। फिर उसकी आँख देखने तथा गिणती करने से थक गई, जिसे वह ऊपरी तथा नीचे का भाग समझता था, वह अन्तर उस दृष्टि में न रहा। अपनी धरती उसे बहुत छोटी-सी वस्तु दिखाई दी। दूर से जो ग्रह छोटा-सा ठिकाना दीखता, वे जब उसके पास पहुँचते, तो उसे अपनी धरती के समान, कभी उससे बड़ा और कभी छोटा-सा दिखाई देता। कई धरतियां देखीं, कई सूर्य की भाँति प्रज्वलित तथा प्रकाशमान और कई शून्य पिण्ड देखे। यों देखता हुआ जब वह थक गया तब गुरू बाबे ने कहा : जिसे तू पाताल समझता है, उसे भी देख ले। उधर भी उसने दृष्टि डाली तो वही लाखों की गिनती दिखाई दी। जब एक धरती पर गए तो वहाँ सत्संग सभा लग रही दिखाई दी, कीर्तन हो रहा सुनाई दिया। यहाँ पीर का पुत्र कहने लगा कि अब चलें, चिरंकाल व्यतीत हो गया है फिरते-फिरते और मैं थक गया हूँ। सब सतगुरू जी ने कहा : तेरा पिता नहीं मानेगा, इसलिए तो कोई निशानी ले चल। वह निशानी ले जो तेरे पिता को निश्चय करा दे। तब वहाँ सत्संग सभा में बालक को प्रसाद का थाल दिखाई दिया, कहने लगा, मेरा कचकौल इससे भर दीजिए, यदि वहाँ पहुँचने पर यह मेरे पास रहा तो पिता मान लेगा, क्यों जो वहाँ से चलते समय मेरे पास कुछ नहीं था, तो सोचेगा कि कैसे इसके पास हलवा (कड़ाह प्रसाद) आ गया है। अत: कचकौल कड़ाह (हलवे) का भरकर बालक ने साथ ले लिया और उसे प्रतीत हुआ कि धरती को लौट रहे हैं। जब नैन खुले तो क्या देखता है कि बग़दाद में ही पिता के सामने उसी तरह बैठा है। तब पीर ने पुत्र से पूछा, सुनाओ बेटा! तब बालक ने कहा कि पिताजी मैं तो थक गया हूँ, किसी आश्चर्यजनक वेग के साथ मुझे मेरा आपा उड़ता हुआ प्रतीत हुआ है; और मेरे नैनों ने अगणित सूर्य, अगणित धरतियाँ और चन्द्र देखे हैं और इन तारों और सूर्यों के कितने ही प्रबंध देखे हैं। जो हम इस धरती से तारे दिखाई देते हैं, वे सूर्यों की भाँति बड़े-बड़े हैं। खण्डों की संख्या भी अधिक है। आकाश तथा पाताल का हिसाब हमारी धरती से नहीं लग सकता। यह तो एक विशाल अंतरिक्ष में बड़े-बड़े पिण्ड हैं, जो अंतरिक्ष में घूम रहे हैं। मेरी समझ में तो ब्रह्मांड परे-से-परे है। देखते-देखते नैन और सोचते-सोचते हृदय थक गया है।

पीर—कहीं से कोई निशानी भी लाया है कि वैसे ही दृष्टि की जादूगरी से यह दृश्य देखे हैं?

बेटा—जादू से नज़रबन्दी तो नहीं हुई, मुझे तो अनुग्रह द्वारा दृष्टि खुली हुई लगी है। मैंने सचमुच देखा है, पर जो कुछ देखा है वह यहाँ की अपेक्षा और प्रकार का था। वहाँ मुझे काल कुछ और ही तरह का भासा है। दृष्टि खुलते समय मैंने काफी समय व्यतीत हो चुका प्रतीत किया है; दृष्टि खुलने पर यों प्रतीत होता है कि यहाँ का तो बहुत ही कम समय लगा है। मैंने पिताजी! एक सभा देखी है, जिन्होंने गुरू बाबा का बड़ा आदर किया, वहाँ से मैंने हलवे का कचकौल निशानी के लिए साथ ले लिया था।

देखो वह सचमुच ही मेरे पास है।[१] जब पीर ने सचमुच पुत्र का कचकौल हलवे (प्रसाद) से भरा हुआ देखा तो चकित हो गया, क्योंकि जब पुत्र ने नैन मूंदे थे तो वह

१. 'History of Spiritualism' में ऐसी घटनाएँ आजकल हो रही बताई हैं।

रिक्त था और वहाँ कोई दूसरा हलवा देने के लिये आया ही नहीं था। वह वस्तु अदेश से आई निश्चय करके पीर सतगुरू जी की प्रत्यक्ष शक्ति को मान गया।

'इह विचारकै पीर तबै पग बन्दन ठाना :'
"सुनहो सरब मुरीद खता पग लग बखशावो॥
नर कर लखों न याहि रूप अल्ला दरसावो" [गुरू नानक सूर्योदय]

सबने सत्कार सहित सीस झुकाया, भूल के लिये क्षमा माँगी, श्री गुरू जी ने नाम का उपदेश दिया और कहा :–

पख बाद को भूल न करीए।
इक खुदाइ सभ बिखै निहरीए।
करहु जि दृढ़ अस विधि अभ्यायासा।
प्राप्त होइ मुक्ति सुख रासा॥ [श्री गुरू नानक प्रकाश]

: ६ :

अब बाबा जी ने कुछ समय वहाँ पर विश्राम किया। लोग बिना संकोच के आते-जाते रहे, पीर जी भी प्राय: आते, वार्तालाप करते और सुख प्राप्त करते। गुरू बाबा जी केवल पापियों, मूर्खों, दुखिओं पर दया करने वाले नहीं थे, बल्कि वे उस कष्ट को–जो अमीरी तथा अधिक धन वालों में होता है–समझते और उन पर भी बहुत दया करते थे। फिर वे ईश्वर के नाम पर चल रहे लोगों पर–जिन्होंने भूल में फँसकर आप अंधकार में चलना तथा औरों को ठोकरों के मार्ग पर चलाना आरम्भ किया था, उन पर ज्यादा दया करते थे। इसीलिए ठिकानों पर पहुँचकर पीरों, महन्तों के साथ जा टकराते। किसी-न-किसीं तरह त्रुटियों से पार करते थे। इस ठिकाने पर भी वही कुछ किया। पीर आपके विशुद्ध उपदेश से निर्वैर हो गया और सतगुरू जी में जीवनदान का उल्लास भरा स्रोत देखकर उससे भाग लेकर सुखी हुआ, पर कंभी-कभी सतगुरू जी के साथ प्रेम हो जाने पर भी उत्तर प्रश्न करता रहता था। एक बार आपने पूछा कि जिस तरह कुम्भकार बर्तन बना बनाकर रखता जाता है, उसी तरह यह कच्ची बुद्धि वाले मनुष्य रच-रचकर धरती पर रखे जाने में कर्तार ने क्या गुन समझा? चक्र से जिस तरह बर्तन तैयार होकर उतरते हैं, उसी तरह आकाश के चक्र से मनुष्य पैदा हो-होकर जगत में चले आते हैं। तब गुरू बाबा जी ने जो उत्तर दिया उसका कुछ पता इन अक्षरों से चलता है।

गुरू जी–पीर जी! बर्तन तो कच्ची मिट्टी से ही बनाए जाते हैं। चक्र पर गीली मिट्टी ही चढ़ती है, गीली मिट्टी को गूंधा जा सकता है। पक्की मिट्टी से कुछ नहीं बन सकता, पर कुम्भकार बर्तन घड़कर कच्चे रखने के लिए नहीं रखता, उसका मन्तव उन्हें आवे में रखकर पक्का करने का होता है। इस धरती के सुख तथा दुख और उनसे चित की घबड़ाहट जीवों को किसी खोज में, जिज्ञासा में, डालते हैं। उस खोज में से कुछ प्राप्त होता है, फिर जीव सुख, दुख भोगने से तगड़ा होता, अन्त में आग में पड़कर पक्के हुए बर्तन की भाँति संपूर्ण हो जाता है। अत: पीर जी! जैसे आपने कहा है कि जैसे-जैसे आकाश

का चक्र चलता है, वैसे-वैसे जीवों का जन्म होता है। पर यह भी समझ लो कि उत्पन्न हुए शरीरधारी मनुष्य का बड़ों की संगति में पोषण होता है।[१]

पीर–तो फिर जगत में जो हमें दुख प्रतीत होता है, क्या इसका कोई प्रयोजन है?

गुरू जी–प्रभु अपनी बातें आप ही जानता है, पर पीर जी! प्रत्यक्ष जो कुछ दिख रहा है कि अखाड़े में यदि मल्ल[२] को ज़ोर लगाने, कुश्ती करने, गिरने, उठने, तथा आपसे बड़े के साथ लड़ने का दुख है, वही उसके भुजाबल को दूसरों पर विजई होने की शक्ति देता है। जो सुख-शय्या पर बैठे रहते हैं, वे कभी शूरवीर नहीं बनते, अतः दुख औषधि है और सुख रोग है। जीव, जो इस माया में आया है, या यों कह लें कि आत्मा जो पदार्थ के अखाड़े में उतारी गई है, वह पदार्थ पर विजय प्राप्त करने के लिए है। माया अथवा पदार्थ बाधा डालते हैं, पतन की ओर ले जाते हैं, आत्मा बलवान हो-होकर, साहस बटोरकर कुश्ती करती है और उस पर विजय प्राप्त करती हुई अन्त में घोषित हो जाती है, जैसे कच्चे बर्तन आवे में से गुज़रकर पक्के हो जाते हैं। प्रभु अपने रहस्य का आप ज्ञाता है, पर प्रत्यक्ष दीखता है कि वह योद्धा महाबलि शूरवीर बन जाता है, जो पदार्थ अथवा माया पर विजय प्राप्त करता है।

पीर जी–बहुत ठीक है, वाह-वाह····एक प्रार्थना और है कि हिन्दू मतानुसार आत्मा जन्म लेती और मरती रहती है और इस्लाम में दूसरी बार जन्म नहीं होता, इसका क्या विचार है?

गुरू जी–जिस तरह कोई बात दूसरे लोक में होती है उसी तरह और लोकों में उसका पता नहीं चलता और मूर्ख लोग हरेक बात पर हठ करने लग पड़ते हैं। पीर जी! जो यहाँ आकर पक्का हो गया, जिसने अपनी बुद्धि का भुजाबल पक्का कर लिया, ज्ञान अग्नि में जिसने कच्चे दानों को भून लिया, उसके लिए तो अब यहाँ कोई ठिकाना नहीं, वह परिपक्वता के देश में जायेगा। जो फल वृक्ष पर ही पक्का हो गया, वह फिर शाखा के साथ लटका नहीं रहता, अब शाखा उसका देश नहीं, वह स्वामी के घर पहुँचेगा, उसका अब वह देश है।

जो जीव यहाँ आकर समय को व्यर्थ नष्ट कर गया, जिसने अपने आपको पकाया नहीं, कच्चेपन में ही चला गया, उसे 'कच पकाई' का वहाँ जाकर पता चलता है, जहाँ कच्चे-पक्के की देखरेख[३] होती है। उसका वह 'कच्च' उसके फिर जन्म लेने की 'आवश्यकता' है जो उसके कच्चेपन के रूप में उपस्थित है, भुने हुए दाने का उत्पन्न होने वाला अंकुर नहीं रहता, पर बिना भुने दाने में उत्पन्न होने का अंकुर होता है, वह उत्पन्न हो सकता है। वैसे ही कच्चों के दोबारा पकने के लिए उन्हें 'अदेशी दया' बार-बार समय और, अवसर पड़ने पर देता है, उनमें से 'दोबारा पैदा होना' भी एक दोबारा पकने का दोबारा अवसर प्राप्त होता है, जो फिर पक्के तथा पोषित हो, कच्चेपन को दूर करे और

१. जन्मसाखी भाई मनी सिंघ जी।
२. 'हऊ गोसाईं दा पहिलवानड़ा।' गुरू अर्जुन साहब का वाक्य है।
३. कच पकाई ओथै पाइ, नानक गइआ जापै जाइ।। [जपुजी]

त्रुटियों को हटाये। माता-पिता का पुत्र को फिर-फिर अखाड़े में भेजना, उसे फिर-फिर अवसर प्रदान करना कि वह मल्ल बन जाये।

पीर जी! सोचों में तथा विचारों में पड़ना हमारी बुद्धि का काम है, इनसे हम सुख भी प्राप्त करते हैं और दुख भी। सोच यदि सीधे मार्ग पर चलती रहे तो संशय दूर करती है और विश्वास के देश में पहुँचा देती है। फिर बुद्धि की एक और सूझ होती है जो प्रभु के देश में ले जाती है। यदि बुद्धि द्वारा संशय सीखते जायें और संशयों की निवृत्ति की बुद्धि न बढ़े तो 'आशा, संशय के देश में जा पहुँचते हैं और मन स्थिर नहीं रहता। बुद्धि हमें सूझ प्रदान करती है, पर प्रवृत्ति का और फिर बुद्धि का प्रवाह बाहर की ओर है। आपे में ले जाने वाला नाम है जो प्रभु की हुजूरी में रखता है। हुजूरी में निवास, हाँ आठों पहर हुजूरी का निवास यही जीवन है, यही परिपक्वता है। जो हुजूरी वाला हो गया, उसका देश हुजूरी है, वह फिर क्यों हुजूरी से बाहर होकर कब बाहर आकर गिरेगा? वह तो अपने देश को प्राप्त हो गया, सदैव वहाँ रहेगा। इस शरीर में वह हुजूरी में निवास करता है, यदि शरीर नहीं रहेगा वह हुजूरी में रहेगा। हाँ, नाम जपो, प्रभु की स्तुति करना और नाम का अखंड कीर्तन, यह प्रभु की हुजूरी का निवास प्रदान करता है। यह उस प्यारे से हमें कभी दूर नहीं होने देता। वह मनुष्य कच्चा है, जो हुजूरी से अनुपस्थित है, जो हुजूरी में रहता है वह परिपक्व हो गया। हाँ, जो निरन्तर हुजूरी में निवास करता है, वह सफल हो गया। माया के मोह ने–हमारे इर्द-गिर्द के सामानों ने–हमें हुजूरी में से खींच-खाँचकर निकालना है, पर हमने बीच में निवास करते हुए हुजूरी से बाहर नहीं आना, यही हमारा अखाड़े का युद्ध है। हमको भूल से भुला देने वाली रूचियों तथा संशयों से युद्ध करना है और उन पाँच महाबलि योद्धों पर विजय प्राप्त करनी है, जो हुजूरी से अनुपस्थित करने वाले दूत हैं, उन पर विजय प्राप्त करनी हैं और उन्हें अधीन कर लेना है और सदैव हुजूरी में निवास करना है, यही हमारी विजय है। वह प्रभू सदैव प्रकट प्रत्यक्ष है, हम उसकी उपस्थिति में हैं, पर मन को उपस्थिति से अनुपस्थित रखते हैं, अब हमको सीखना है, मन को सदैव हुजूरी में उपस्थित रखना।

पीर जी (निश्वास लेकर)–सच्च, सच्च पर कोई प्रयत्न?

गुरू जी–प्रभु की स्तुति का कीर्तन और नाम का जाप आठों पहर नाम को पकड़े रखो, नाम हुजूरी में रखता है। उसकी स्मृति, उसकी प्यार भरी याद, स्तुति वाली याद, धन्यवाद तथा प्रार्थना वाली याद, यह नाम है।

यह सुनता हुआ पीर रंग में 'रंग राँता' होता गया। उसी स्वाद में हुजूरी में स्थिर हो गया।[१]

---

१. इतिहास गुरू खालसा (हिन्दी) तथा खालसा तवारीख आदि में एक और प्रसंग बगदाद का है कि वहां का पातशाह अत्याचारी था और गुरू जी के उपदेश के साथ सुमार्ग पर चला था और कैद कर रखे फकीरों को मुक्त करा दिया। नसीहतनामे का उपदेश हुआ और उसके घर में आपके आशीर्वाद से पुत्र पैदा हुआ। 'सनों बरडस' नामक पुस्तक में, जिसका उल्लेख आगे है, बहलोल नामक फकीर का उद्धार करने का उल्लेख है।

ऐतिहासिक खोज

सतगुरू जी ने बग़दाद में कई लोगों और फकीरों का उद्धार किया। समय ने समाचार अपनी चद्दर में छिपा रखे हैं। जो कुछ समय याद रहे वे लिखे गए। अतः नमूना मात्र जन्मसाखियों आदि से प्राप्त हुए हैं।

फिर भाई गुरुदास जी की लिखित है, जिनके समय का हिसाब यों है :-

श्री गुरू अंगद देव जी १३ वर्ष गद्दी पर विराजमान रहे। फिर श्री गुरू अमरदास जी गद्दी पर विराजे। भाई गुरुदास गुरू अमरदास जी से मिले, गुरू अमरदास २२ वर्ष गद्दी पर रहे। अतः भाई गुरुदास जी आदि गुरू जी के थोड़े से वर्ष पश्चात लगभग शरणागत हुए, उस समय उनकी युवावस्था होगी। यों आप गुरू नानक देव जी के समय के कितने निकट पहुँच गए। इसलिए आपको श्री गुरू नानक देव के समकालीन, निकटवर्तीयों और साथ रहने वालों से आँखों देखे समाचार प्राप्त होने कैसे संभव थे।

जन्मसाखियों के अतिरिक्त सबसे पुराना पता बगदाद में सतगुरू जी के जाने का भाई गुरुदास जी ने अपनी रचना 'वार १ पऊरी ३४–३६ में बताया है। भाई जी ने लिखा है कि सतगुरू जी ने बांग देकर सारे नगर को शून्य कर दिया, जिससे आश्चर्य हुआ और पीरों ने आकर वाद-विवाद किए आश्चर्य तथा विवाद बताते हैं कि सतगुरू जी ने मुसलमानों वाली बांग की अपेक्षा अपनी बनाई हुई बाँग दी। मुसलमानी मत के केन्द्र पर ऐसा करना बड़ा ही अद्भूत है। फिर पीर ने आकर चर्चा की, लाखों आकाश-पाताल के विषय पर चर्चा होकर प्रत्यक्ष दृश्य दिखाकर बाबे ने विजय प्राप्त की। यहाँ पीर का, जिसके साथ चर्चा हुई, दस्तगीर नाम बताया है। अबदुल कादिर जीलानी की दस्तगीर उपाधि थी। कहा जाता है कि इसके साथ सौ के लगभग नाम थे। भाई गुरुदास जी दस्तगीर कहकर उस गद्दी के उस समय के पीर की ओर संकेत कर रहे हैं। यह गद्दी अब तक बगदाद में चल रही है। भाई मनी सिंघ जी की साखी में इस बाँग की–जो गुरू बाबे ने दी थी–यह लखित लिखी है :

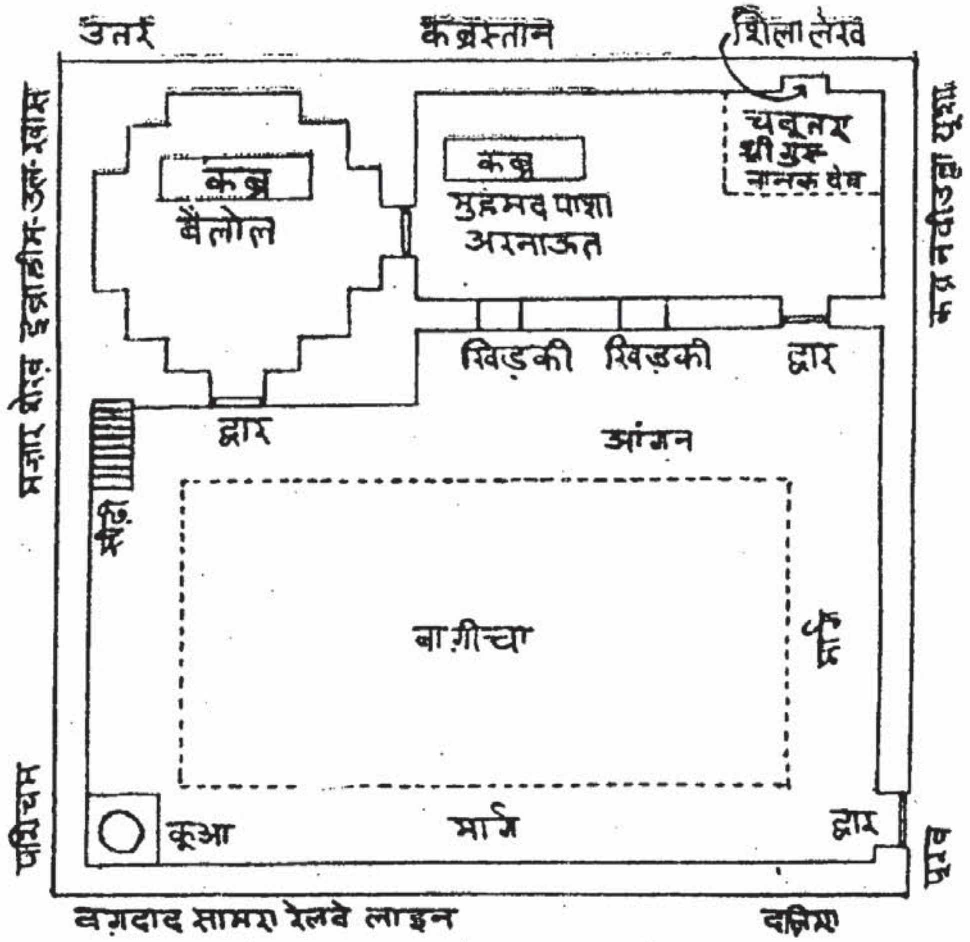
गुरवर अकाल, सतिश्री अकाल, चितचरण नाम, घरि-घरि प्रणाम, प्रभ कृपाल जो सरब जीवाल'।

इसके संबंध में खोज करने पर हमें सन् उन्नीस सौ बीस-बाईस के लगभग स्वीडन नारवे के निवासी संन्यासी श्री आनन्दाचार्य जी रचित काव्य की पुस्तक स्नोबर्डस (Snow Birds) नामक प्राप्त हुई। इसमें एक कविता लिखी है, जिसमें वे लिखते हैं कि बग़दाद नगर के बाहर एक मन्दिर में ९१२ हिजरी के एक अरबी भाषा के शिलालेख (Inscription) को पढ़कर हमने लिखी है। उस शिलालेख की लिखित आपने इस प्रकार दी है–

"Here spake the Hindu Guru Nanak to Fakir Balol and for these sixty

चित्र चार दीवारी

श्री गुरू नानक स्थान—बग़दाद



winters since the Guru left Iran, the soul of Balol[१] has rested on the Master's word, like a bee poised on a dawn lit honey rose."

> "यहाँ हिन्दू फकीर नानक ने बैलोल फकीर के साथ वार्तालाप किया और यह साठ वर्ष, जबसे आप ईरान से वापिस चले गए बैलोल की आत्मा स्वामी (अर्थात् गुरू नानक) के वचनों पर स्थिर रही जैसे मधु भरे पौ के प्रकाश से चमकने वाले गुलाब पर मधु मक्खी बैठ रही होती है।[२]

संभव है बैलोल–बैलोल दाना की गद्दी का उत्तराधिकारी था, पर इसका कोई और बहलोल होना ज्यादा संभव है। इस विषय पर खोज की आवश्यकता है, उस स्थान की भी जहाँ बैठकर उसके साथ वार्तालाप हुआ और यह शिलालेख लगा।

खालसा समाचार ४ जुलाई १६१८ में लिखा है की चीफ खालसा दीवान की ओर से भेजे जाने पर भाई कर्म सिंघ (हिस्टोरियन) ने प्रथम संसार युद्ध से पूर्व बग़दाद को देखा

---

१. इस फकीर संबंधी सतगुरू जी की भेंट का कुछ समाचार खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी की ओर से छप चुका है! देखो ट्रैक्ट नं० ७३३ "चुप प्रीत दे शहनशाह व्यापारी"। यह सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ था।

२. जो कविता श्री आनन्दाचार्य जी ने इस शिलालेख को देखकर लिखी है, वह इस प्रकार है:–

On reading an Arabic Inscription in a Shrine outside the town of Baghdad dated 912 Hejira.

Upon this simple slab of granite didst thou sit, discoursing of fraternal love and holy light, O Guru Nanak, prince among India's holy sons!

What song from the source of the Seven Waters thou didst sing to charm the soul of Iran!

What peace from Himalaya's lonely caves and forests thou didst carry to the vine–groves and rose gardens of Baghdad!

What light from Badarinath's snowy peak thou didst bear to illumine the heart of Balol, the saintly Persian disciple!

Eight fortnights Balol hearkened to thy words on life and the Path and spring Eternal, while the moon waxed and waned in the pomegranate grove beside the grassy desert of the dead.

And after thou hadst left him to return to the beloved Bharata's land, the Fakir, it is said would speak to none nor listen to the voice of man or angel.

His fame spread for and wide and the Shah came to pay him homage–but the holy man would take no earthly treasures nor hear the praise of kings and courtiers.

Thus lived he–lonely, devoted, thoughtful for sixty winters, sitting before the stone where on thy sacred feet had rested.

And ere he left this House of Ignorance he wrote these words upon the stone : Here spake the Hindu Guru Nanak to Fakir Balol, and for these sixty winters, since the Guru left Iran, the soul of Balol has rested on the Master's word, like a bee poised on a dawn lit honey rose."

था, उन्होंने अबदुल कादर जीलानी के द्वार से बाहर जो शहर से उत्तर पूरब की ओर है— यहाँ गुरू नानक साहब जी ने निवास किया था—का पता दिया था, इससे अनुमान होता है कि पीर दस्तगीर के ठिकाने पर गुरू जी का स्मारक होगा, पर वे बताते हैं कि वहाँ मुसलमान के सिवा और किसी को जाने की आज्ञा नहीं है। वे ज़बानी कहा करते थे कि किसी और स्थान पर उन्होंने 'पीर हिन्दी' का एक और ठिकाना तथा वहाँ पर दीपक जलाए जाते भी देखे थे और पीर हिन्दी गुरू नानक देव जी को ही कहते थे।

अब बग़दाद से पता करने पर हमें एक और सूचना मिली है कि शहर से कोई एक मील की दूरी पर पश्चिम की ओर रेलवे लाईन बग़दाद समाररा रेलवे के निकट एक चिन्ह अभी तक कायम है, वहाँ एक चारदीवारी है, जिसमें गुरू नानक देव जी का स्मृति चबूतरा है, जिसके ऊपर दीवार में एक शिलालेख है। उस चारदीवारी का चित्र पिछले पृष्ठ पर दिया गया है।

इसमें लगे हुए शिलालेख का फोटो कई सज्जन लाए हैं, जिन्हें ठीक तरह पढ़ा नहीं जा सकता। हमने इसका ताज़ा फोटो बग़दाद से मँगवाया है जो मिश्रित तुर्की अरबी भाषा में है, उसका फोटो सामने अलग पृष्ठ पर प्रकाशि किया जा रहा है।

इसके अक्षर इस तरह पढ़े जाते हैं:—

"कोरला मुराद अैलदी हज़रत रबे मजीद,
बाबा नानक फकीर औल्या नाकि इमारते जदीद,
यदीलर इमदाद अैदूब किलदी कि तारीखेना :—
यापदी नव्वाब अजरायरा अबी मुरीद सईद। [सन् ९१७ जिहरी]

इसका उर्दू अनुवाद इस प्रकार है:—

जब मुराद ने हज़रत रबि मजीद बाबा नानक औलीया अल्ला की इमारत गिरी हुई देखी तो अपने हाथों की मदद से नई बनाई ताकि तारीख के तौर पर पुश्त दर पुश्त कायम रहे और उनके नेकबख़त मुरीद का सवाब जारी रहे। सन् ९१७ (हिजरी)

इस अनुवाद पर भी भिन्न-भिन्न विचार हैं।[१]

---

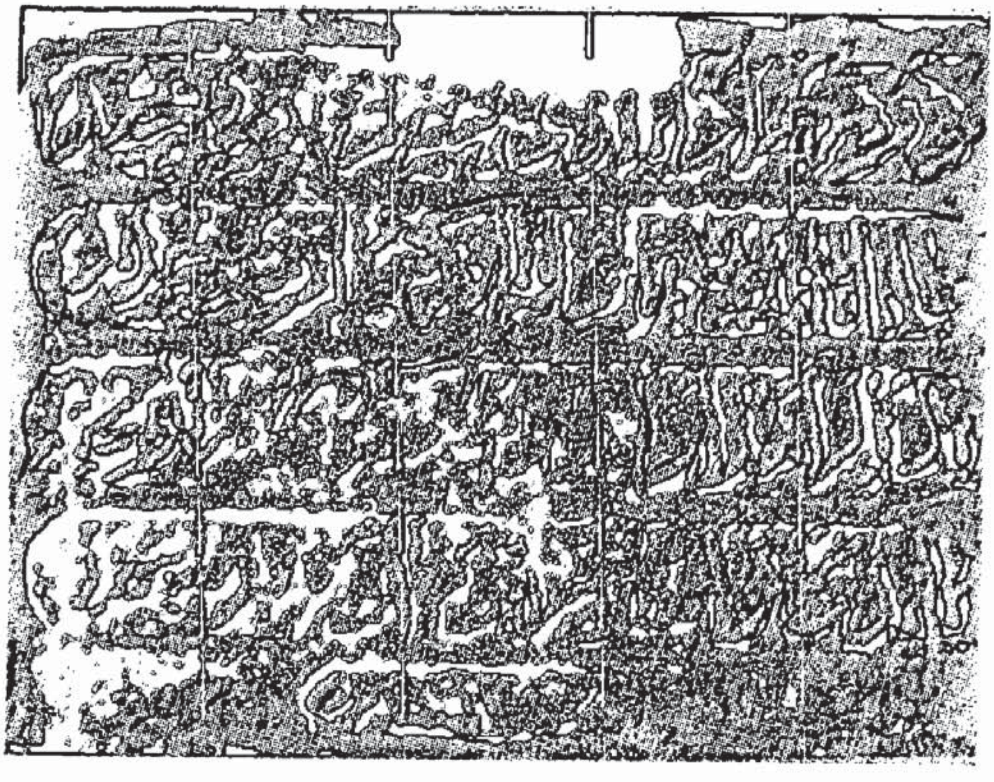
१. इसके बाद विशेष खोज करने पर पता लगा है कि एक अनुवाद इस तरह है:—

देखी जिसने हज़रत बाबा नानक फकीर की दरगाह,
रब मजीद ने उसे उसके मन की मनसा दे दी
और सातों (आकाशों के देवता ने उसकी)
सहायता की, और यह उस इमारत की
तिथि निकली कि अनुग्रह का स्त्रोत (अपने)
सौभाग्यवान चेलों के लिए जारी किया।

एक और अनुवाद है:—

देखिए हज़रत रब मजीद ने किस तरह मनसा
पूरी कि कि बाबे नानक का भवन एकाएक
नया बन गया, सात पीरों ने सहायता की और
यह इसकी तिथि निकली कि (उसके) सौभाग्यवान
चेले (अनुयायी) की प्रथा से धरती पर पूज्य स्थान स्थापित हो गया।

बग़दाद में सतगरू जी स्मृति स्थान पर
अरबी शिलालेख



पृष्ठ ३४ के सामने

सन् जो शिलालेख में है, वह ९१७ हिजरी पढ़ा जाता है, एक (१) की लिखित में तनिक टेढ़ापन होने के कारण वह ९२७ हिजरी भी प्रतीत होता है। श्री आनन्दाचार्य ने जो शिलालेख पढ़ा वह अरबी का बताते हैं और उसमें सन् ९१२ पढ़ा है। संशय होता है कि स्वामी जी ने सन् ९१२ हिजरी ग़लत पढ़ा है। ९१७ अथवा ९२७ ही ठीक जचेगा। अभी तक पता नहीं चला कि वह शिलालेख कहाँ पर है अथवा कहीं गिर चुका है। श्री गुरू नानक देव जी की आयु ९१२ हिजरी में ३६, ९१७ हिजरी में ४१, तथा ९२७ हिजरी में ५१ साल की थी।

इस शिलालेख का चाहे कोई अर्थ ठीक हो और कैसे हो, एक बाहर की साक्षी मिल गई कि श्री गुरू नानक देव जी वहाँ अवश्य ही गए और वहाँ मुसलमानी मत के केन्द्र में, जहाँ हिन्दू का नाम लेना सुगम नहीं, वहाँ आपने इतना सम्मान प्राप्त किया कि वहाँ आपके लिए स्मारक बन गया। फिर वहाँ आपका इतना सत्कार था कि उस भवन के किसी कारण गिर जाने पर मुराद ने दोबारा स्मारक खड़ा किया और इसे उसने पुण्य समझा और पुश्त-दर-पुश्त इस यादगार के कायम रहने को उसने अपने अहोभाग्य समझे। मुसलमानी धर्म के केन्द्र में पाँच शताब्दियों तक इस यादगार का कायम रहना सतगुरू जी के वहाँ जाने और अलौकिक सत्कार प्राप्त करने की साक्षी भर रहा है। हमारे लिए तो भाई गुरुदास जी की जो साक्षी है, वही काफी है। यह हमने बाहर से प्राप्त हुए उल्लेख बताए हैं।

[गुरू नानक प्रकाश टीका, पृष्ठ १०५१ के नीचे की टिप्पणी]

१. गुरू नानक देव जी के विरह में माता चोणी जी का गीत[१]

मैं तेरी प्रतीक्षा कर रही हूँ, तेरा मार्ग देख रही हूँ। मेरे अंदर जो छिपी हुई विरह की पीड़ा है वह मुझे चैन नहीं लेने देती, मैं पथिकों से तुम्हारे आने के बारे में पूछ रही हूँ। मैं बादलों की भाँति फिर रही हूँ, अता पता खोज कर रही हूँ। काग उड़ाती हूँ, रेखाएँ खींचती हूँ, न्योछावर हो रही हूँ। मुझे विरह के मारकर वैरान कर दिया है और मैं विरह के कारण मछली की भाँति तड़प रही हूँ। विरह के दुख के कारण मेरी आँखों में अश्रु भर-भरकर छम-छम बरसते हैं। हे सतगुरू! मैं तुम्हें याद कर-करके कुर्री की भाँति विकलती हूँ। एक बार आओ, अपना दर्शन दिखाओ मैं रो-रोकर यही विनय करती हूँ। एक बार आओ, आकर अपने चरणों के साथ लगा लो, मैं तुम्हारे चरणों की शरण में चित लगाए बैठी हूँ। मैं तुम पर न्योछावर हो रही हूँ, तुम कब वापिस लौटोगे?

❑ ❑

इस शिलालेख को लिखित की भाषा अरबी तुर्की मिली जुली होने के कारण, इसके अर्थ करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, इसकी तीसरी पंक्ति का पाठ है :– "यदीलर इमदाद अैदूब किलदी कि तारीखेना"। इसका पहला पद 'यदी' तुर्की का है और इसका अर्थ 'सात' है और 'सातों ने सहायता की' का अर्थ कई इस तरह कहते हैं कि 'सात पीरों ने सहायता की' अथवा 'सात पृथ्वीयों तथा आकाशों ने सहायता की'।

इस पंक्ति के अंतिम पद 'तारीखेन' से पता चला है कि अगली पंक्ति में तारीख (संवत्) है, अगली चौथी पंक्ति का पाठ है:– 'यापदी नवाब अजरायरा अबी मुरीद सईद'। अबजद के हिसाब से इन पदों की संख्या कर्मवार २७+५९+२०५+२१५+१३+२५४+१४४ = ९१७ बनती है, जो शिलालेख के नीचे लिखे हिजरी सन् के साथ मिलती है।

१. यहाँ पर अनुवाद प्रस्तुत है।

७६ कंधार की फेरी

: १ :

गुरू नानक जाकऊ भइआ दइआला॥
सो जनु होआ सदा निहाला॥ [आसा म: ५]

सिकन्दर जब भारत पर आक्रमण करने आया तो उसका मन्तव्य यह था कि यूनान से भारत तक, भारत सहित एक विशाल राज्य कायम कर ले। इसलिए वह एक इलाके के बाद दूसरा इलाका लेता हुआ स्थान-स्थान पर बस्तियाँ और नगर बसाता हुआ आया और वहाँ युनानी आबादी के स्थान बनाता हुआ कई जगह पर किलाबंदी करता हुआ आया, यही सोचकर कि लगातार सिलसिला कायम रहे। अफ़गानिस्तान में जो कंधार नामक नगर है, कईओं का विचार है कि यह नगर भी उन नगरों में से एक है। हिरात से लेकर हिन्द तक के मार्ग का यह शहर एक बड़ी अकलमंदी का फौजी ठिकाना है। चाहे इसे सिकन्दर ने बसाया, चाहे यह पहले की कोई आबादी थी, पर इसे किलेबंद करने का काम सिकन्दर का ही प्रतीत होता है। यह शहर शताब्दियों तक अपने धन उत्पन्न करने वाले हरे-भरे मैदानों के बीच में आबाद रहा; इसने कई रंग देखे, अन्त में यहाँ पर बादशाह ने आ चक्कर लगाया, जिसे उसने विजय करके अपना एक अड्डा बनाया और अपनी लूटमार का धन तथा खज़ाना यहाँ पर रखा। जब नादर मारा गया तो अहमदशाह अब्दाली ने उठकर शीघ्रता से कन्धार पर अधिकार जमा लिया और सारा खज़ाना सँभालकर वह पातशाह बन गया। उसने कुछ दूरी पर नया कंधार बसाकर अपनी राजधानी स्थापित की। अब वाला कंधार, जिसके बीच में चौक है और चौराहा शहर को चार भागों में बाँटता है और टूटी-फूटी चारदीवारी में है, अमहदशाह का बसाया हुआ है और पहला कंधार उससे कुछ दूरी पर खंडहर हुआ पड़ा है। चार शताब्दियों से अधिक समय व्यतीत हो गया है कि यह खंडहरों वाला कंधार घना आबाद था। चहल-पहल, रौनक हो रही थी कि एक शाँत देश का पातशाह इस पर आया। यह किले, कोट को विजय करने वाला तथा अकारण रक्त की नदियाँ बहाकर अपने आतंक जमाने वाला आक्रमणकारी नहीं था और न ही यह भय तथा सहम देकर लोगों पर आतंक जमाता था। यह शूरवीर हृदयों को विजय करता था और क़ैद हो चुके मनों को मुक्ति प्रदान करने के कारण मुक्ति का पातशाह कहा जाता था। वह आपे-को आपे-की दासता से मुक्त कराकर आपे के स्रोत पर पहुँचाकर सदैव आनन्द के रंगों में ले जाया करता था। हाँ, यह आपे में मिलाता और वैर को हटाकर मनुष्य-को-मनुष्य से मिलाकर भाई भाई बनाता था। इसलिए उसे 'शन्ति का अवतार' भी कहते हैं।

हाँ जी, एक दिन यह शूरवीर कंधार की धरती में आ निकला। इसके साथ न कोई सैना है, न तोपखाना, न तीर, न बंदूक, एक आप है और दो साथी और हैं जो पूछते हैं–"हे स्वामी जी! किधर किस ठिकाने पर जा रहे हैं?"

आपने उत्तर दिया—देखो कर्तार के रंग! वह स्वयं लिए जा रहा है किसी के पास, जिस पर वह तुष्ट हुआ है, जो अब कहीं मिल जायेगा और उसका कार्य सिद्ध हो जायेगा।"

: २ :

सफल दरसनु पेखत पुनीत॥

इतने में नगर आ गया। दाता जी बेरोक अन्दर चले गए। हाँ जी एक मकान के आगे आ खड़े हुए, जिसमें से एक सुन्दर युवक मुग़ल निकला। घर से निकलते ही आँखें चार हुईं, एक आश्चर्यजनक नैनों के जोड़े के साथ, जिन्हे देखकर वह स्तम्भित हो गया और उसके शीघ्रता से निकलकर चल रहे कदम उन्हीं कदमों पर ठहर गए। नीझ लगाकर देखता है और चकित होता है। कभी मन में एक झन्नाहट-सी छिड़ती है, कभी आकर्षणा होता है, कभी दृष्टि चरणों की ओर जाती है। कुछ क्षण इसी दशा में रहकर पूछा: आपजी का, हे सुन्दर नैनों वाले! नाम क्या है?

उत्तर—मेरा नाम निरंकारी नानक है।

मुग़ल—नानक, नानक..........न..........निरअं..........का री। नाम का क्या अर्थ हुआ। (ऊपर की ओर देखकर) ऐसा नाम तो पहले कभी नहीं सुना।

गुरू जी—इसके अर्थ हैं, 'खुदा का बन्दा'।

मुग़ल—'बंदह ऐ खुदा', वाह-वाह भाग जागे, 'बंदह ए खुदा' मिला है। बंदह ए ख़ुदा! वाह, वाह!

चेहरे की ओर देखता गया और किसी स्वाद में भरता गया। फिर कहने लगा:— किस देश से आए हैं, काबुली अथवा खुरासानी, अथवा हिन्दी?

गुरू जी—देश तो खुदा है, पर लोग हिन्दी कहते हैं।

मुग़ल—वाह-वाह जिनका खुदा देश है, उनका दर्शन भी खुदा है। हाँ, फिर आपका पीर गुरू अवतार कौन है?

गुरू जी—हमें भेजने वाला खुदा स्वयं है, हमें तो गुरू पीर वही एक ही मिला है।

मुग़ल—बंदह ए खुदा, देश खुदा, पीर खुदा, दर्शन तो बड़े उच्च; स्वच्छ तथा सुन्दर हैं, रसूल नहीं देखा, पर मन कहता है रसूल की अपेक्षा सुन्दर हैं, नहीं-नहीं मैं तो नास्तिक होता जा रहा हूँ, यह दर्शन तो 'दीदारे खुदा' प्रतीत हो रहा है। क्यों जी खुदा के देश के निवासी! खुदा को जानने वाले! हैं न आप उसी के दर्शन की भाँति? अग्नि, अग्नि से लाल गुलाल गोला दमकता है, दमकता हुआ अग्नि ही तो होता है न? (स्वगत) अरे यार वली! भला जब तक तो शरअ फिकह दर्शन धर्मशास्त्र पढ़ने की लालसा थी, तब तक तो हिसाब-किताब था, यह अल्ला है यह रसूल है, यह गुरू है, यह कुफ्र है, यह नास्तिकता है, यह धर्म है, यह पवित्रता है, अमका बचने वाला है, अमका नास्तिक है, अमका मुशरिक (एक ईश्वर को न मानने वाला) है, अमका काफिर है, अधर्मी है। जब तक यह हिसाब रहा, तब तक शुष्क हो रहे, लकड़ी—पेड़ से काटकर फेंकी हुई लकड़ी—शुष्क लकड़ी, आज यह दर्शन देखकर रगों में ताजगी फिर रही है। लकड़ी नरम होकर, उसमें से

भर चुकी लचक फिर से जागृत हो उठी है, फिर अब काहे का लेखा? हे यार वली यार! लेखा हिसाब गणना को जला दे, यह दर्शन जो रग-रग में प्राण भर रहा है, इसे मान ले कि यह खुदा का दर्शन है, कभी पहले ऐसा स्वाद देखा है? सूफी लोगों की संगति भी देखी और पीरों के चरण भी चूमे, यह नहीं देखा, जो कुछ इस क्षण जी को होता जा रहा है। हैं हे मेरे मन! भरोसा ला कि पवित्र चेहरा, अल्ला के दर्शन का दर्पण है। हाँ यह दर्शन 'दीदारे खुदा' (ईश्वर का दर्शन) है।

यों मन के साथ मनोवाद करता हुआ किसी रस में भरकर, किसी स्वाद में रस लेता हुआ यारवली सीस झुकाता हुआ चरणों के साथ लिपट गया। नैना वाले दाता ने सिर, यारवली का सिर, अपने पवित्र हाथों से उठाया, किसी दर्द भरे प्यार से ऊँचा उठाया। हाँ, दाता ने अपने ही सुन्दर हाथों से मस्ती के भार के कारण गिर रहा सिर सँभाला। यारवली का कण्ठ गदगद हो रहा था, मुँह से बात नहीं निकलती थी, पर जोर लगाकर कहने लगा: हे दाता हे दाता!

तुम खुदाइ हो धरयो शरीरा।
भंजहु जनम मरण की पीरा। [गुरू नानक प्रकाश]

गुरू जी–खुदा स्वयं आप है इहलोक तथा परलोक का स्वामी! मैं बन्दा, ज़र खरीद उसका दास हूँ। तू आया सँभाल, क्यों वैसे ही मनुष्य के पीछे पड़ता है?

यारवली–मैं अपनी भलाई का इच्छुक हूँ। मैं उस खुदाए बे रंगों बे नाम का खोजी हूँ। सारी आयु खोज में व्यतीत हुई है, पर कहीं से भी दर्शन का दान नहीं मिला। तेरे दर्शन में मुझे खुदा दिखाई दिया है, अब मुझे अपना शिष्य बना लें। यदि तू आप है तो मुझे मिला ले, यदि वह (ईश्वर) तेरा है तो उस प्रभु के साथ मिला दे। मुझे कोई पता नहीं, मैं पढ़ा लिखा मूर्ख हूँ। मुझे अब तक पता नहीं चला। अब तेरे दर्शन करने से पता चला है कि तू है खुदा का, तू है स्वयं खुदा, दया कर और मुझे क्षमा कर। यह कहकर फिर चरणों पर जा गिरा।

सतगुरू जी ने फिर सिर उठा लिया और अब अन्दर जाकर घर के बाहर वाले ओसारा में जा बैठे।

यारवली (करबद्ध)–दाता! पहले मिजाज[१] में तो मूर्तियों का रूप तो अन्दर घुस जाता था, पर जब मैंने गुरू पीर का ध्यान धारण किया, तो चिरंकाल तक मेरे अन्दर चित्र न गया। प्रयत्न किए और व्यर्थ मुसीबत ही पल्ले में पड़ी। यह क्या है कि आपका पवित्र दर्शन अपने आप अभी-अभी आँखों द्वारा हृदय में उतरा है। हाँ आप अपने आप आए हैं, आप ही कृपा कीजिए।

गुरू जी–हे अल्ला के प्रेमी! कह अल्ला, बात को समझ ले:– पहले तैने प्रभु का ध्यान नहीं धारण किया बल्कि सुन्दर वस्तुओं का ध्यान धारण किया–इस दृष्टमान की सुन्दर वस्तुओं का, शरीरधारियों का–बे मैल लगा गए हैं, इसी को इशक मजाज़ी (असत्य से प्रेम) कहते हो न। उससे आकर्षण का अभ्यास तो हो जाता है पर मिजाज़ (दृष्टमान)

---

१. झूठा प्यार–साँसारिक प्रेम। दृष्टमान का प्यार।

के साथ शारीरिक मोह बढ़ जाता है और उसे तोड़ना कठिन हो जाता है। फिर तैने गुरू पीर पर, रसूल पर, खुदा पर, आसक्त होना सीखा, अत: सच्चे आकर्षण के लिए तो बहुत समय लगता है। मन अधीर होकर फकीरों तथा कवियों के दीवान (काव्य पुस्तकें) पढ़ने में झूमता है और यह ख्याल कर लेता है कि वह भी लेखकों का-सा है और उनकी भाँति अलग को ताने देने लग पड़ता है। यों भी एक सूक्ष्म मैल बढ़ता है।

फिर अल्ला के यार! गुरू प्राय: वह मिलते हैं जिनका आदर्श केवल चेलों की संख्या बढ़ाना होता है। इस तरह चेलों की ओर से बहुत से सलाम होते देखकर बहुत-सा आदर लेकर उनकी बुद्धि में जो एक उल्लास-सा रहता है, इसे वे अपनी बुद्धि का आत्मिक सुख समझते हैं। जिस समय वे अपने चेलों को कोई आत्मिक कथा वार्ता सुना रहे होते हैं और यदि सुनने वाले खूब धनाढ़ हों तो बुद्धि और तरह की-सी होती है और यदि वे निर्धन हों और स्त्रोता भी एक आध ही हो तो स्वर और ढंग से निकलता है। ज्यों-ज्यों सुनने वालों की संख्या बढ़ती है, त्यों-त्यों उनका सुख, जिसे वे आत्मा का सुख समझते हैं, बढ़ता है। वास्तव में वह भी आत्मा पर एक सूक्ष्म मैल-सा पड़ता है और इसी जैसे कई सामान होते हैं। उनकी संगत किस तरह कल्याणकारी हो सकती है। कोई हो ईश्वर का प्यारा उसके नाम पर आसक्त, अपने मन को शान्त देखने का इच्छुक, उस पर तो उसकी संगत तो कोई प्रभाव डाल सकती है, ज्यादा लोगों के आने से उसे ज्यादा मैल दिखाई देता है। वह अपने मन को, दूसरों के विचारानुसार कुल का साक्षी (देखने वाला) होता है। यदि वह कोई बात करता है तो विशुद्ध उसकी भलाई की, स्वच्छ तथा सच्ची, यारे अल्ला! 'सच्च' कुछ कड़ुआ-सा होता है। सुन आधी रात हो अथवा पिछली रात हो, परिवार सारा सो गया हो, जगत तो सोया ही होता है, मौत और निद्रा तो एक जैसे ही कहे जाते हैं। उस समय मानो सारा संसार कुटुमकवीला मरा पड़ा होता है, जागने वाला एक यह अकेला आप ही होता है, वह समय है आपे को देखने का। भरोसे वाला फकीर हो, चाहे वह पीर हो या मुरीद, उस समय बैठ जाये और देखे कि वह किस रंग में है। हाँ मन को दूसरे ख्यालों की ओर से वर्जना करे और अपने अन्दर झांके, आपे को देखे, उस समय अंतस की मलीनता तथा काई दीख पड़ेगी। उस समय यदि आपा स्वच्छता में जा रहा है तो आपे में एकाग्र होगा, एकान्त, मूकता, अकेलापन देखकर भला मनायेगा और अपने आपको एकाग्र करेगा। यदि प्रभु अनुग्रह करे तो उस समय कोई असली स्वाद आयेगा, कोई एकाग्रता का रस जमेगा। उस समय की मन की अपनी ही दशा होगी; इसे समझो। फिर जब दिन चढ़े, परिवार के आदर की, धन-दौलत के ऐश्वर्य की, चेलों द्वारा दिए गए सम्मान की, जगत की ओर से वाह-वाह की, जो-जो उच्चता अन्दर आये, स्वाद आये और यों दशा बदले, उसका दृष्टा तथा उसकी पहचान वाला बने और पहचान करे कि यह सांसारिक पदार्थों के सुख हैं, यह सच्चे सुख नहीं। यों वास्तविक आपे के साथ सच्चे होने का ढंग आता है जो हकीकत (सच्चे प्रेम) का पहला पड़ाव होना चाहिए।

यारवली-(नि:श्वास लेकर)-खूब!

गुरू जी-पहला कदम-आपे के साथ सच्चा होना, आपे के साथ धोका करना, त्याग देना, पिछली रात को जगाकर आपे को देखना तथा इसके छिद्र देखकर निकालना। दिन को बुद्धि जो-जो धोके करती रही है, उन्हें देखना और उन बड़े-बड़े धोकों को दूर करना।

हम इस समय संसार की चोरियों के बारे में नहीं कह रहे, अपितु हम मन की चोरियों की बात सुना रहे हैं, जो बड़े-बड़े धर्मात्मा तथा पवित्रात्माओं के अंदर घटती हैं।[१] यह कई बार मन में स्वाभाविक ही घटती हैं, मन का स्वभाव ही ऐसा ही हो जाता है। यह सूक्ष्म रेखाएँ हैं–जो सच्च तथा मन के बीच में अन्तर डाले रखती हैं। आपे को देखना कि कैसे यह थोड़ी-थोड़ी बात के पीछे इन गूढ़ चोरियों में लगा रहता है। इन्हें देखना, निकालना और सोचना कि यह क्या है, जगत क्या है और जगत के मान क्या हैं, जगत की बड़ाई, सुख तथा भोग, जिनके कारण इसका मन छोटे चक्करों में चलता रहता है और सत्य पर नहीं खड़ा होता।

यारवली–फिर अनुग्रह क़ीजिए न, इस अन्दर की दुष्टता से छुड़ाइए न।

गुरू जी–यह अन्दर शैतान, शैतान तथा कलियुग कोई बाहर से आने वाली वस्तु नहीं, मन की यह दशा ही शैतान है, इसके अपने ही चक्कर सत्य के साथ अन्तर डालते हैं। 'सच्च' का अभाव ही आपे को प्रभु में नहीं लगने देता। अब तैने बात समझ ली है न? गुरू भी इसी मैल में फँसे थे और चेले भी इसी में फँसते हैं।

यारवली–श्रीमान! समझ लिया है। आपने आपे की चोरी का अनोखा मार्ग बताया है, आपे को आपा छलता रहता है।......हाय! कोई अनुग्रह कीजिए न।

गुरू जी–हाँ, जब मनुष्य आप दूसरे को छलता है, चाहे छल सूक्ष्म है चाहे मोटा, साथ अपने आपको भी छलता है। अत: खोजी को पहले इन छलों को देखने वाला बनना है। फिर उस पर विचार करना है। फिर उस पर अधिकार जमाने की शक्ति प्राप्त करता है। दूसरी बात है–ईश्वर को स्मृति में बसाना–उसकी हुजूरी में निवास करना–यह है प्यार, अल्ला का प्रेम। इसी 'सदैव की याद' से दूरी हटती है, जब दूरी हट गई तो भेंट, मिलाप हो गया।

यारवली–फिर कैसे हो? क्या इसी पर समाप्ति है कि मैं हूजूरी में हूँ? पर श्रीमान! यह याद नहीं रहता, भूल भूल जाता है।

गुरू जी–यदि ख्याल करने पर प्रभु स्मृति में निरंतर निवास न करे तो जिह्वा पर उसका नाम बसाया जाता है। इस तरह नाम का जपना ख्याल को गुंथता रहता है, ध्यान को स्मृति की ओर प्रेरता रहता है। यदि कोई मन लगाकर इस खेल को सच्चा मार्ग समझकर लगा रहे और प्रयत्न करता रहे तो नाम याद में निवास कर जाता है। याद में अल्ला के नाम का निवास हो जाता है, क्योंकि वह अन्दर निवास कर रहा है, केवल हमारी भूल में ही परदा था, अत: वह याद से दूर हो गया। यों हुजूरी में आ सकते हैं। हुजूरी में आने से आपा अपने आपको प्रतीत करने लग पड़ता है। हाँ, जब प्रभु स्मृति में से नहीं भूलता, जब आपा चलता-फिरता हुजूरी में रहता है, तो प्रभु के मिलाप में ही रहता है। अत: मनुष्य इस एक विचार में इसी एक प्रयत्न में ही लगा रहे। अन्य किस्से, कहानी, साधन तथा परमार्थ के ख्यालों के बाल की खाल उतारना और नित्य नए सत्संग, नए फकीर के साथ की खोज करना, यह बातें दृष्टि को उसके लक्ष्य से परे हटा देती हैं। रात को तनिक

१. लख ठगीआं पहिनामीआ राति दिनसु जीऊ नालि।। [वार आसा म० १]

सा अन्दर जो हरेक नवीन संगति के कारण अंदर में आते हैं, वे मन को उस एक 'नाम की सीध' से उखेड़ कर फेंक देते हैं। जगत की माया, संसार के दृश्य, मन के लोभ और पदार्थों को लेने के प्रयत्न, जीव को भटकने में लगाए रखते हैं। यदि कोई तनिक से परमार्थ की ओर लगते हैं तो उन्हें कोई-न-कोई बहाना लगाकर माया भटकाती है। माया–अपने मन की लुभाय-मानता, लोभ। इस तरह मनुष्य आप ही अपने मन के हाथों मुक्त नहीं होता।

यारवली–तो मैं क्या करूँ; अब मुझसे कुछ नहीं हो सकता। कराइए जो कुछ आपको करवाना है।

गुरू जी एक आश्चर्यजनक रंग में बैठे हुए अनुग्रह द्वारा सीधी सुखैन पर ठिकाने की बातें कह रहे थे, जिन बातों को न जानने के कारण हजारों साधकों ने ठोकरें खाईं। कहते-कहते अदेशी दाता जी एक अन्य रंग में चले गए और एक मीठी-मीठी रस भरी संगीतक लहर वाली आवाज़ में कहने लगेः–

'अल्ला के यार! कह वाहिगुरू!'

'हाँ कह, और कहता रह, यह प्यारा नाम कभी मत भूले।'

वरदान मिल गया, आशीर्वाद मिल गया।

यारवली के अंदर एक तंरग उठी, रसना चल पड़ी, 'वाहिगुरू' में उसकी भाषा का यह अक्षर नहीं था, पर वह जिह्वा को अपरिचित नहीं लगा। उसकी जिह्वा इसका जप करती है और अंदर रस भरता है और रोमों में झरर-झरर होकर यों प्रतीत होने लग गया कि रोम कूप बंद हो गये थे; अब खुल गए हैं, शरीर हल्का हो गया है और 'वाहिगुरू' स्वयं अन्दर हो रहा है। यही नाम है, यही अनुग्रह है, नामी का नाम कभी न भूले और नामी सदैव अन्दर में निवास करे और हम सदैव हुज़ूरी में निवास करें।

अनुग्रह के स्वामी ने चिरकाल से अटके खड़े परिश्रमी को किस तरह साधारण बातों से निहाल कर दिया, जिस तरह छोटी-सी सूई की सूक्ष्म नोक से छोटी-सी फाँस निकाल लेने से ठण्ड पड़ जाती है वैसे ही यारवली के मन में से द्वैत का काँटा दाता ने निकालकर फेंक दिया और उसके ऊपर नाम का ठण्डा-ठण्डा मरहम लगा दिया।

यारवली सुखी हो गया। नाम का प्रवाह चल पड़ा। शुकर तथा धन्यवाद का अन्त नहीं आता, न्योछावर होता है। गुरू जी अब चलने लगते हैं तो वह करबद्ध उन्हें जाने से रोकता है। एक दिन यारवली ने गुरू जी को अपने पास रखा उसके प्रेम के कारण एक दिन उसके घर में रहे। इस मोरचे को जीतकर श्री गुरू जी उसके घर से आ गए।

: ३ :

तड़के ही श्री गुरू जी यारवली के घर से बाहर चले गए। एक जोहड़ के किनारे पर जाकर बैठ गए। जोहड़ का जल स्वच्छ था, पर उसके ऊपर मोटी-मोटी बर्फ जमी हुई थी। थोड़ी देर के पश्चात् एक खत्रिय आया, उसने से महान शीत के समय वस्त्र उतार दिए और जोहड़ के ऊपर जमी हुई बर्फ की तह को तोड़ने लगा और अपने स्नान के लिए स्थान बनाकर उसमें घुस गया और डुबकी लगाकर बाहर आया और शीत से काँपता हुआ 'सीताराम सीताराम' करता हुआ वस्त्र पहनने लगा। तब सतगुरू जी उसकी तितिक्षा देखकर

अनुग्रह के घर में आये और अपने आपसे कहने लगे:– प्रभु की आज्ञा इस जैसों के उद्धार के लिए हमें यहाँ लायी है? कितना हठ है, कितना उत्साह है, कितना शौक है, पर फल नहीं लगा और परिश्रम स्वीकार नहीं हुआ। फिर आपने उसकी ओर देखकर उसे अपने पास बुलाया और कहा–हे सज्जन! तू क्यों इतना कष्ट सहन कर रहा है?

खत्रिय–हे प्रभु के सौभाग्यवान तथा मधुर लगने वाले। मृत्यु से भय लगता है, परलोक का भय खाए जा रहा है। सवेरे स्नान करता हूँ, क्योंकि कंठी डालने वाला वैरागी बाबा कह गया था कि स्नान करने से पुण्य प्राप्त होता है। फिर सीता राम कहते-कहते घर को चला जाता हूँ और घर के किसी कोने में छिपकर ठाकुर की पूजा करता हूँ, फिर अपना काम-काज करता हूँ। प्रयत्न तो बड़े कर रहा हूँ, पर बनता कुछ नहीं। यह सुनकर दाता जी संगीत के घर में आ गए और अपनी उच्चारण की हुई पउरी का मलार राग में आश्चर्यजनक कलेजा को बिंधने वाले स्वर में गायन किया :–

इकि वणखंडि बैसहि जाइ सदु न देवही॥
इकि पाला ककरु भंनि सीतलु जलु हेंवही॥
इकि भसम चड़ावहि अंगि मैलु न धोवही॥
इकि जटा बिकट बिकराल कुलु घरु खोवही॥
इकि नगन फिरहि दिन राति नींद न सोवही॥
इकि अगनि जलावहि अंगु आपु विगोवही॥
विणु नावै तनु छारू किआ कहि रोवही॥
सोहनि खसम दुआरि जि सतिगुरू सेवही॥१५॥

यह आश्चर्य से भरा हुआ तपस्वियों का दुख का चित्र खत्रिय के नैनों के आगे फिर गया। सोचने लगा सारे तप, हठ व्यर्थ हैं? ... हैं? यह कौन हैं इन बातों से ऊँचा इतने प्रभाव वाला दाता? ... यों चकित होता और जी में कुछ खींच-सी खाता हुआ वह खत्रिय आगे बढ़ा, तब दया से पसीजे हुए साहब जी ने पूछा: तू कौन है? तो आगे से काँपकर कहने लगा: मैं इस गंधर्व नगर कंधार का खत्रिय हूँ। व्यापार करता हूँ बणिक का और प्रभु के मिलाप का इच्छुक हूँ।

गुरू जी–चलते रहना ही एक प्रकार से पहुँच जाने के तुल्य है, पर यदि सीधे रास्ते पर चले तो ही बात है। रास्ता जब पड़ाव में जा निकलता है तो मार्ग का वह सिरा ही उसी प्रभाव के नाम पर प्रसिद्ध हो जाता है।

खत्रिय–चलाओ न हे प्रभु के प्यारे! ठीक रास्ते पर। मैं पूर्ण पुरुष से भेंट की इच्छा रखता हूँ, आप पर श्रद्धा हो आई है, कोई रेख में मेख मारिए न!

गुरू जी–स्नान करने से तन शुद्ध होता है, शुद्ध तन का प्रभाव मन पर पड़ता है, पर केवल स्नान का कष्ट सहन करना कोई आत्मसुख की बात नहीं। नाम का स्मरण कर उसके स्मरण में ही चल, इस तरह चलना ही पहुँचना है।

खत्रिय–स्मरण तो करता हूँ पर न जाने क्या होता है?

गुरू जी–तैने तप हठ का परिश्रम किया है, व्रत भी किए हैं और अपनी ओर से स्मरण भी किया है, पर अंहकार काटी नहीं गई। तू आपा निरंकार के आगे डाल दे, उसका

आश्रय ले, केवल नाम का आधार ले और सभी तपों, हठों का त्याग कर दे। कह 'वाहिगुरू'। उसने 'वाहिगुरू' कहा। तब दाता ने कहा, केवल इस नाम का आँचल पकड़ ले। उठते-बैठते, चलते तथा फिरते समय इसका स्मरण जारी रख। जब दृष्टि एक स्थान पर केन्द्रित होती है तो बाण ठीक निशाने पर लगता है। यह रसना से अपने आप मन में जायेगा, यह अपने आप प्राणों में निवास करेगा, यह तुझे अपने आप ही नामी के रंग में रंगेगा, यह एक ही कण, कणिका–जो तेरे अंदर गया है बड़ा भारी भण्डार बन जायेगा, तेरा पहला परिश्रम भी आज सफल हुआ। तू जीवित हो उठा है, 'सो जीविआ, जिस मनि बसिआ सोए।। नानक अवरु न जीवै कोए।' अब इसे भली भाँति पल्ले बाँध ले।

खत्रिय के अन्दर सच्चे नाम का प्रवाह चल पड़ा। पर दाता जी से बिछुड़ने को चित नहीं करता था, अतः करबद्ध प्रार्थना की: हे ईश्वर के प्यारे! दास के घर में चलो। अनुग्रह के स्वामी उस पर तुष्ट हो गए और चल पड़े। तीन दिन वहाँ रहे। खत्रिय बड़े प्रेम सहित सेवा करता रहा और नाम की पूँजी लेकर धनवान हो गया। श्री गुरू जी फिर चौथे दिन इसके घर से चलकर बाहर जाकर बैठ गए।

: ४ :

कंधार में एक और आत्मा पर विजय प्राप्त करनी थी; इसका नाम शाहशरफ था।

यह शरफ कौन था? जाति का तो पठान था, पर यह दक्षिणी भारत के विदर देश का निवासी था। यह चिरकाल से कंधार में आकर बसा था, यह भी ईश्वर के मार्ग का फकीर था। यारवली तथा शरफ दोनों मित्र थे, इकट्ठे होकर परमार्थ के वचन विनोद किया करते थे। शरफ एक दिन अपने मित्र से मिलने के लिए आया। यारवली इससे कई दिन पहले श्री गुरू नानक देव जी के दर्शन कर चुका था। जब शरफ पहले सलाम-अलैक करके बैठ गया, तो क्या देखता है कि यारवली का चेहरा किसी टिकाव में है। नैन अपनी कालिमा को तनिक ऊपर की ओर ले गए हुए रस भरे से हैं और चेहरे पर स्वाद वाली आभा है। आज घर में आते ही कुछ इस तरह प्रतीत हुआ था कि जैसे चिरकाल के पश्चात् अपने घर लौटने पर प्रतीत होता है। शरफ ने कहा, 'मित्र! तेरा रंग और तरह का है, तुझे अवश्य ही कुछ मिला है? हमे तो बता कि क्या बात है?

यारवली (मुस्कराकर)–क्या बताऊँ? हम शीतल वायु की खोज करते फिरे और वायु आप चलकर हमें आकर मिली। हाँ यार! हम बादलों को आवाज़ें लगाते फिरे पर अबरे नीसां[१] अपने आप उमड़कर हमारे झोपड़ों पर आता है।

शाहशरफ–तो मेरी खोज ही ठीक है, क्या तैने कुछ पाया है, क्या तेरे माथे पर नीसां का बादल बरसा है, तेरे नैन बता रह हैं कि इन्होंने कोई बूँद पी है।

यारवली–हमारे अधर सूख-सूखकर, शुष्क हो-होकर पीने के आसंग से भी रह चुके थे, हमको क्या प्राप्त करना था, अपने आप ही कोई प्रवाह चल पड़ा, अनुग्रह की बूँद प्राप्त

१. बहार ऋतु का बादल, जिसकी बूंदों से सीप में मोती बनने का संकेत कवियों ने किया है। नीसा सीरिया के लोगों का सातवां मास है, फारसी का फरवरदीन और भारत के चेत व्यशाख।

हो गई, शुष्क पर खुले अधरों में प्राण आ गए, जिन पर प्राण समाप्त होने को आए हुए थे। हाँ, कोई आ गया दाता, मन में से मन का भुलावा निकाल गया और वहाँ कोई अल्ला के नाम का दान प्रदान कर गया। मैंने खोजकर कुछ प्राप्त नहीं किया। हमारी खोज तो सारी आयु की ठोकरें ही थी।

शरफ–फिर अकेले-अकेले? मित्रों को भी याद करना था।

यारवली–सत्य कहा है, पर सत्य यह है कि मैं उस समय इतना 'अज' खुद रफतह (आपे से बाहर) हो गया कि मुझे तो कुछ याद ही न रहा।

शरफ–शाबाश मित्र! इस सत्य कहने पर शाबाश! अब फिर दया कर, पता बता कि 'बादे शुरत' (बेड़ों को चलाने वाली अनुकूल हवा) किधर को गई है?

यारवली–खोज करने से हवा नहीं मिलती, पीछे भागने से भी पकड़ी नहीं जाती। मन की लौ लगा, सम्भव है कि इधर को लौट पड़ें।

शरफ–तैने सच कहा है, सच कहा है। यों कहता हुआ मित्र की ओर देखता-देखता चुप हो गया और वहाँ पर ही बैठ गया, जहाँ पर बैठा था और चार दिन वहाँ पर ही बैठा रहा।

जब ही दिवस बितीते चार।
आए श्री प्रभु करुणा धार।। [गुरू नानक प्रकाश]

आकर्षण में गुँथा हुआ प्रतीक्षा से व्याकुल शरफ चार दिन तक बैठा रहा। आकर्षण को पहेचानने वाले चार दिनों के पश्चात् आ गए, आए और शरफ ने दाता के दर्शन किये। हाँ, जब दर्शन किया तो पहले तो आँखों में स्वाद आया, फिर शक्ल-सूरत से मुसलमान दिखाई न पड़े, एक रेखा, एक सूक्ष्म-सी रेखा, मुसलमानी मत के दिल में निवास कर रहे पक्ष के हृदय में से गुजर गई। चित में प्रभाव तो माना, पर उस सूक्ष्म भाव ने रसलीन हो जाने के स्थान पर कुछ परख की ओर लगा दिया और सिर झुकाकर, प्रणाम करके, सत्कार बैठाकर आप दोज़ानू (दोनों घुटने टेककर) बैठ गया और रस पीने के स्थान पर पहले यह देखने लगा कि रस कौन से गन्ने का है।

शरफ–हुजूर! बे-अदवी के लिए क्षमा करना! जिज्ञासु दो प्रकार के होते हैं, एक तो देखते ही जल में नमक की भाँति शरणागत हो जाते हैं, दूसरे कोई ऐसे होते हैं जो इस दुष्ट मन की सांत्वना करके मरते हैं।

गुरू जी–मन को प्रभु के रंग में रंगना है। जिस ढंग से अच्छा रंग चढ़े, चढ़ा लो! हे प्रभु के प्यारे! जो तेरी इच्छा है पूछ!

शरफ–आपने कफनी पहन रखी है, इसका क्या भाव है?[१]

---

१. उस समय प्राय: एक फकीर जब दूसरे फकीर से मिलता था तो उससे कफनी, गुदड़ी, टोपी आदि फकीरी चिन्हों के अर्थ पूछे जाते थे और इसी से परख होती थी। जैसे 'सिद्ध गोष्ठ' नामक वाणी में योगी गुरू नानक देव जी से पूछते हैं और अब भी फकीरों की मण्डिलयों में इन बातों पर विचार प्रचलित हैं, जो एक दूसरे से मिलते समय मात्राएँ तथा भेष आदि का ब्योरा पूछा करते हैं। साथ शरफ गुरू जी को हिन्दू समझता है शक्ल सूरत से, फिर गले में कफनी देखकर हैरान होकर पूछता है कि हिन्दू होकर कफनी का क्या अर्थ?

गुरू जी–मृतक को कफन पहनाया जाता है और कफनी उन्हें पहनाई जाती है जो लोगों के लिए मर चुके हैं (मुसकरा दिये)।

शरफ–लोगों के लिए, और आप जीवित ही रहें?

गुरू जी–जीवित न रहे, पर जीवित हो उठे।

शरफ–(दुहराकर और सिर हिलाकर) जीवित न रहे और जीवित हो उठे। (स्वगत) क्या अन्तर हुआ? (ऊँचे) श्रीमान! बात समझ में नहीं आई।

गुरू जी–जब प्रभु की ओर लग पड़े तब परिवार तथा संसार के लिए तो मर गए। जब अन्दर से आपे में से 'द्वैत' मर गई तब 'द्वैत' की मृत्यु के पश्चात् अपना वास्तविक आपा ऊपर को आ गया और प्रभु के अंग जा लगे तो जीवित हो उठे।

शरफ–सुबहान अल्ला! वाह वाह! चित प्रसन्न कर दिया। बलिहारी! भला जी! मृत्यु क्यों जीवित करती है?

गुरू जी–जो डूबकर फिर तर गए, वे कभी नहीं डूबते।

शरफ–गुदड़ी का क्या अर्थ है?

गुरू जी–गुदड़ी का अर्थ है:–फटना, सूई, धागा, सीना, पहनना।

शरफ–इनके क्या अर्थ हैं?

गुरू जी–फटना, आपे को फाड़ना, हाँ खोज कर-करके देखना। सहनशीलता की सुई, सत्संग का धागा, प्रभु की आज्ञा को मानने का सीना, और झूठे मान की हानि करना ही पहनना है।

शरफ–पहनने का क्या लाभ?

गुरू जी–मृत्यु की ठण्ड फिर नहीं लगती, अर्थात् काल व्याकुल नहीं करता।

शरफ–तारक उद्दुनिया (वैरागी) कौन है?

गुरू जी–जिसने सर्व पूर्ण एक प्रभु को लख लिया है और उसके प्रेम में रंगा है, वह वैरागी है।

शरफ–चाहे उसमें सभी दोष हों, चाहे वह पत्नी, सन्तान के मोह में भी फँसा हो?

गुरू जी–जो प्रभु के प्रेम में रांता है; जिसे प्रभु के दर्शन की इच्छा ने मोहित कर लिया है, वह स्वभाविक ही दोषों के स्तर से ऊँचा उठ गया। प्रभु के साथ प्रेम में संसार से वैराग्य सम्मिलित है। जो प्रभु का प्रेमी है, वह संसार तथा दोषों से वैरागी है।

विवाही जाने वाली कन्या के 'पति के साथ संयोग' में 'माता-पिता का वियोग' सम्मिलित है।

फिर त्याग है मन का। जिससे मन की पकड़ छूट गई, उससे वैराग हो गया। शरीर की पकड़ जरूरी नहीं कि छूट जाये। शरीर की पकड़ तो 'पकड़ रहित' है, उस दशा में जब मन की पकड़ नहीं रही। इसकी पहचान यह है कि मन की 'पकड़ रहित' वाला शरीर दोषों की ओर से भी 'पकड़ रहित' हो जाता है।

यह नुक़ता शरफ की समझ में आ गया। वह दोषों से–पकड़ों से–लड़-लड़कर व्याकुल हो रहा था। हठ से, जोर से अपने मन पर भरोसा रखकर त्याग करता था, पर मन का स्वभाविक ही स्वभाव है ग्रहण करना। वह फिर से जोर मारकर पकड़ में जा पड़ता

था। हाँ, वह शरीर के साथ त्याग करता था–उपवास, तप–पर मन रूपी साँप चाहे जाड़ा लगकर मरा हुआ दिखाई दे, पर ताव लगते ही फिर से जीवित हो जाता है। उस परिश्रमी को मन की पकड़ छूटने का संकेत घाव लगा गया। चेहरे की ओर देखा और सौन्दर्य भरे रस रंग देखकर चरणों पर गिर पड़ा और[१]

गुर निज कर सों सीस उठावा।
कह्यो 'रिदे' ते तजीए दावा।।
'सतिनाम सिमरह, लिवलाए।
'देखहि करुणा दृष्टि खुदाए।। [गुरू नानक प्रकाश]

यह कहकर अपने सुन्दर कर-कमलों से सिर उठाया, स्पर्श करते ही उसके शरीर में प्रवाह चल पड़ा। रोम खुल गए, मन खुल गया, बोझ निकल गया, नाम की लौ अन्दर समा गई :–

छुयो गुरू कर सो सिर जबही।
जगी नाम लिव मनमहि तबही। [गुरू नानक प्रकाश]

शरफ निहाल हो गया।[२]

गुरू जी–शरफ! देख, यह जो नाम की लौ लगी रहती है, यह वाहिगुरू रूपी सिंह के निकट रहना अथवा उसके साथ लगे रहना है। सिंह के पास रहने से फिर और पशु आक्रमण नहीं करते। अत: ईश्वर के प्यार में आओ। प्यार का प्रयत्न नाम है; प्यार में गुंथे हुए विषयों की पकड़ से ऊँचे रहते हैं। केवल भलाई के प्रयत्न करने शुभ हैं, पर आपे में प्रभु के साथ लगे रहने से अन्दर बल भरता है। हाँ, आपे में से आपे की काई नाम द्वारा दूर होती है।[३] सभी औषधियों की औषधि एक नाम है, नाम की पक्की गाँठ बाँध लो। खाली ख्यालों द्वारा यह समझने लग पड़ते हैं कि पूर्ण हो गए हैं, पर वह तो अहं ही अहं रह जाता है। जो कुछ भी बनता है, वह नाम की लौ से बनता है। अत: लगे रहो। यह लौ सभी दोष निकालेगी, प्रभु से मिलाएगी, चित को सुखी तथा स्वाद में रखेगी। यही आठ पहर की समाधि है।

शरफ का गुरू जी के साथ इतना प्यार धन्यवाद भरा प्यार हो गया कि वह अपने घर ही न जाता और साथ रहने के लिए विनती करने लगा। पर गुरू जी ने उसे प्यार ढारस देकर घर भेजा और कहा कि यहाँ तेरे पास यारवली का सत्संग है, यदि बहुत चित करे तो खुरम में एक सिक्ख है उससे मिल आया करना। आज्ञा को सिर पर रखकर नाम तथा स्वाद से सुखी होकर शरफ, पर आकर्षण में गुँथा हुआ शरफ, अपने घर आ गया।

१. 'परसत चरन गति निरमल रीति।' [गउड़ी सुखमनी म: ५]

२. रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार।।
पारस मानों ताबो छुए कनक होत नहीं बार।।५।।
परम परस गुरू भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट।।
उनमन मन मनही मिलै छुटकत बजर कपाट।।६।। [गऊड़ी रविदास जी]

३. नामु निधानु धिआइ मन अटल।।
ता छूटहि माइआ के पटल।। [रामकली म: ५]

जब सतगुरू जी कन्धार शहर से चलने लगे तो यारवली ने विह्वल होकर पूछा, "पातशाह! फिर कब दर्शन होंगे? या अपने साथ ही ले चलिए, विरह रहे ही मत।" बड़े प्यार भरे वाक्य सुनकर असह्य वस्तु को सहन करने वाले धनी सतगुरू जी कहने लगे: शरीरों के मेल नित्य नहीं कायम रह सकते, चाहे वे शरीर ही हैं जिनमें नाम का स्मरण करके परमगति प्राप्त होती है, पर शरीर नित्य नहीं। स्मरण में रहे जिससे नाम का रंग लगा रहे। कोई झूठा अधिकार मत जमाना कि मैं कुछ हूँ। वह सब कुछ है, हम उसके चरणों की शरण में हैं। उसके चरण-शरण को प्राप्त करके हम उच्च हैं, स्वच्छ हैं, धनी हैं, सुखी हैं। जो लोग तुम्हारे पास आते हैं, उन्हें सत्य का उपदेश देना, इस बात का मान नहीं करना कि मैं पीर हूँ और मुक्त हूँ। सच का उपदेश देना, बेलाग होकर, इससे दूसरे का भला हो जायेगा और तुम्हें मैल नहीं लगेगा। यदि दाबा अथवा अधिकार जमाओगे तो 'पकड़' होगी, पकड़ होगी तो मन अपने स्वभाव के कई रंग दिखाएगा। यदि प्रभु की आज्ञा की पहचान करो तो अधिकार जमाने की भावना दूर रहेगी। अधिकार जमाने की इच्छा प्रभु के आगे परदा है। आज्ञा है, नाम जपो[१], हम नाम जपते हैं, प्रभु की आज्ञा है, यदि नाम जपोगे तो मुझे मिलोगे[२], हम मिलकर सुखी रहते हैं[३], यदि आज्ञा है कि सुमति दो तो सुमति प्रदान करो[४], पर आपा बचाकर। निश्चय जानो कि आपा बचेगा 'आज्ञा' समझकर। आज्ञा है तो आज्ञा को मानो।[५] यदि आज्ञा पर टिकोगे, आज्ञा को पहचानोगे तो पवित्र रहोगे, तरोगे और मिलने वाले तरेंगे, पर हे अल्ला के यार। अन्दर विषयों का निवास है, इन पर सदैव पहरा रहे। ऊँचा उठने से पहरा रहेगा, ऊँचा उठने से आत्म जागृति आती है, यदि जागता रहे तो ठगा नहीं जाता। नाम में बुद्धि जागे, आज्ञा की पहचान में मन जागे, यह जागृति ठगने नहीं देती।

: ५ :

हाँ, जी! प्रभु का योद्धा तीन मनुष्यों को जीतकर कन्धार पर विजई होकर चला है। हाँ तीनों को जीतने से कन्धार पर विजय प्राप्त कर ली। कैसे? दो तो फकीर थे, लोग दोनों के पास आते थे। दोनों परिश्रमी थे, पर अटक में फँसे हुए भटक रहे थे; अच्छे थे पर इस देश में नहीं पहुँचे थे। इनकी त्रुटियों को निकालकर प्रभु के साथ भेंट करवा आए। जिन दोनों की कृपा से वहाँ की सारी खोज करने वाली प्रजा को अब सीधे मार्ग का पता चलेगा। दोनों की त्रुटियाँ दूर करने से हजारों की त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी। तीसरा परिश्रमी था, इसके भी कुछ साथी थे, उनकी त्रुटि दूर होने से अपने आप सबका उद्धार होगा। यों गुरू बाबा के कौतुकों का पता विचार करने से चलता है। तीनों सूझ के स्तम्भों पर, जिनकी सूझ के

१. एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीऊ।।५।। [सिरी राग म: १]
२. नानकु नामु न छोडै साधन नामि सहजि समाणीआ।।२।। [गऊ: पू: छ: म: १]
नाम=निरंकार का नाम। [नामि=नामी में, निरंकार में]
३. गुरमिलि हुकमु पछाणिआ तबही ते सुखीआ।।३।। [आसा म: ५]
४. ता मै कहिआ कहणु जा तुझै कहाइआ।। [बड़: महला १]
५. मन, चित्, श्वास।

दीपक को अग्नि के स्पर्श की आवश्यकता थी। सूझ की अग्नि का स्पर्श लगाकर गुरू जी आप चल दिए, अब तीनों से मिलकर संसार का उद्धार होगा।

आप अब आगे चल पड़े। शहर से आगे एक गाँव के बाहर एक उद्यान में जा बैठे। गाँव का निवासी एक पठान गुज़रा, था तो यह एक साधारण आदमी पर यह था भला पुरुष। चेहरा देखकर चित को भला लगा तो सर्व देशों के स्वामी से कहने लगा–"आप परदेशी प्रतीत होते हैं, किधर से आए हैं और किधर को जा रहे हैं? गाँव में यदि किसी का पता ठिकाना पूछना हो तो मैं बताऊँ, यदि आपकी जान पहचान वाला क़ोई नहीं तो मैं कोई सेवा करूँ?"

सतगुरू जी मुसकराये और कहने लगे;– "भले पुरुष! प्रभु तेरा भला करे, हम प्रभु के दास हैं। यहाँ इसलिए बैठे हैं कि हमने एक सज्जन से गाँव में मिलना है, हमारा उससे कुछ काम है।"

पठान–यदि आप उसका नाम बताएँ तो मैं उसका पता बता सकता हूँ कि वह यहीं पर है अथवा कहीं बाहर गया हुआ है?

गुरू जी–वह खत्रिय है, पठान अथवा अफगान नहीं, उसका नाम मानचन्द है, उसके पिता का नाम खानचन्द है।

पठान–फिर हे प्रभु के सँवारे हुए, आप गाँव में चलिए और मैं आपको साथ ले चलता हूँ। गाँव में खानचन्द का पुत्र मानचन्द है, बड़ा भला पुरुष है, सब में उसका सम्मान है।

गुरू जी–हे खुदा के मनुष्य! तू बहुत अच्छा है, सुखी रह। हमारा संकल्प गाँव में जाने का नहीं, वह आप हमें आकर मिलेगा।

खान ने झुककर प्रणाम की और कहा, बहुत अच्छा श्रीमान्! वह ही आपसे आकर मिलेगा। बड़े लोग अपने ठिकाने पर ही सुशोभित होते हैं। आपका बे-परदा ही वाला स्थान ही आपका सिंहासन है। सौभाग्यवान मानचन्द यदि आप चलकर आये तो ही अच्छा है। वाह-वाह खुदा के रंग।

प्रणाम करके वह भला पुरुष गाँव को चल दिया और मानचन्द से जा मिला। कहने लगा: भले पुरुष जी! गाँव के बाहर फकीर बैठे हैं, कोई दृष्टि वाले तथा आँखों वाले दिखाई देते हैं। एक तो दर्शन करने से ही शीतलता प्रदान करता है, हम जैसे रूखे लोगों को भी स्वाद आता है।

मानचन्द–फिर क्या तुम वार्तालाप कर आए हो?

पठान–जी हाँ, इतना ही वार्तालाप हुआ है कि वे तुम्हें मिलने के लिए आए हैं। पर कहते थे कि वह हमें अपने आप आकर मिलेगा।

मानचन्द ने जब उनका पता ठिकाना पूछा तो पठान इतना कुछ ही बता सका कि पहरावा कुछ मुसलमानी फकीर का तथा कुछ हिन्दू फकीर का है। नाम का तो पता नहीं, पर शक्ल-सूरत से हिन्दु दिखाई पड़ते हैं। तब मानचन्द ने कुछ विचार किया और कहा, "खान जी! इस प्रकार के कोई साधु मेरे जानकार नहीं है।"

पठान–मानचन्द! जान-पहचान न सही; साधु से मिलने का तो कोई दोष नहीं, भला ही तो है, भले का दर्शन कहाँ? मैं तो दर्शन करके ही प्रसन्न होकर आया हूँ।

तब मानचन्द उठा, कुछ पल भेंट के लिए लिया और पता पूछकर उस ठिकाने पर आया, फल आगे रखकर सीस झुकाया और सामने बैठकर देखने लगा। देख देखकर यही समझता कि पहले दर्शन नहीं हुए और न ही कोई जान पहचान ही है, पर फिर भी अपरिचित नहीं भासते। जो बात पठान ने कही थी, कि दर्शन करके जी प्रसन्न होता है, मानचन्द ने भी यही बात लख ली, पर उसके मन पर वह हैरानी ज्यादा छा रही थी जिसे मैं नहीं जानता कि वह मुझे कैसे पहचानता है? इस आश्चर्य में, पर फिर दर्शन सुन्दर लग रहे भाव में बैठा था कि गुरू जी ने पूछा, "मानचन्द! हर तरह कुशलता है न?"

मानचन्द–श्रीमान जी! कुशलता तो आप इस तरह पूछ रहे हैं, जैसे पहले से ही परिचित हैं? आप किधर से आए हैं, क्या वेश है, मेरे लिए कोई सेवा?

गुरू जी–लगे हुए और कुछ कर रहे, प्रभु के मार्ग पर चलने वाले किसी तार में पिरोए हुए होते हैं, उनकी पहचान स्वतत्त्व के कारण होती है, हमारा देश निरंकार है, तुम से ही काम है, कुछ संदेश पता है।

मानचन्द–मैं तो वेष देखकर चकित हो रहा हूँ, अब बातें सुनकर चकित हो रहा हूँ।

गुरू जी–आश्चर्य तो यह है कि इस जगत में सदैव नहीं रहना, फिर हरेक व्यक्ति जगत के सामान तैयार करने में लगा हुआ है। अपितु जगत झूठ छल करके भी इसमें लग रहा है, मानो रहना ही यहाँ होता है। फिर यह हैरानी हमें हो रही है कि जो रंग सदैव रहने वाला है उसकी किसी को कोई चिन्ता ही नहीं।

मानचन्द–आपने ठीक कहा है, पर सदैव रहने वाले का पता नहीं चलता, कि कहाँ है और कैसे हैं? मैं तो बहुत यत्न प्रयत्न करके यहाँ टिक रहा हूँ कि भलाई करते चलो, और कुछ पता नहीं चलता।

गुरू जी–इसीलिए तेरे दिन अच्छे व्यतीत होते हैं, लोग सत्कार करते हैं, पर कोई और धन भी है, जिसे एकत्र करना है।

मानचंद (स्वास लेकर)–कुछ पता नहीं चलता।

गुरू जी–रात को निद्रा में मरने के तुल्य हो जाते हैं सवेरे फिर से जीवित हो जाते हैं, बता क्या पता चलता है?

मानचंद–ठीक है।

गुरू जी–पता किसी वस्तु के देखने को चलता है, रची हुई को रचियता का क्या पता चले?

[१]जिसकी यह रचना है, वह इसे जानता है तथा देखता है। हम रचित जीव क्या कहें, हे भाई! वह जो बाड़ी को लगाने वाला है, वह आप जानता है। अर्थात करने वाला ही जानता है, 'रचित' रचियता को जानने वाला नहीं हो सकता।१।

मानचंद–पता नहीं चलता कि मन को क्या स्वभाव पड़ गया है कि जानने का बड़ा चाहवान है, बिना जाने विश्वास नहीं लाता।

१. यहाँ से उस शब्द का अर्थ चला है जो इसके लिए उच्चारण हुआ था। यह पहली पउरी का अर्थ भाव है, शब्द आगे है।

गुरू जी—इस शरीर को संसार में अपना पोषण निर्वाह तो करना है। मन शरीर का रथ वाहक है, उसमें जानने की चाह स्वभाविक बात है। यदि जान ले तब ही तो निर्वाह चलाए और सुख तथा सुरक्षा के प्रबन्ध करे। अपने वातावरण में बसना इस तरह के निवास के लिए जानना सुखद और आवश्यक है। पर कठिनाई तो इस बात की है कि जो वस्तु कभी सामने दिखाई देने का रूप नहीं धारण करती—दृष्टमान नहीं होती—वह हमारे ज्ञान का विषय अर्थात् जानने का दृश्य किस तरह बने? मन तथा बुद्धि दृष्टमान को जानने वाले हैं, यह उसे जो दृष्टा है को कैसे जाने, जो दृष्टमान है ही नहीं। जो दृष्टमान है वह सीमा बद्ध है, गणना वाला है। जो असीम है, अगणित है, वह सीमा वाले मनों का दृष्टमान कैसे बने? इसलिए दृष्टा को दृष्टमान रूप में जानने की इच्छा करनी ही अनुचित है। हाँ, यदि हम उस मार्ग पर चलें जो दृष्टमान के उल्ट है तो जानने अथवा प्रतीत करने का कोई और ढंग है। जिसे अनुभव कहा जाता है, उस मार्ग पर चलने से वह जाग उठता है। हाँ, एक और बुद्धि उत्पन्न होती उसे 'सुद्ध, सिद्ध' कह लेते हैं,[१] उसे सूझ हो जाती है, फिर पीतजने वाली भूख तृप्त होती है।

मानचन्द—फिर क्या भरोसा धारण करके चले? क्या किया जाता है? नेकी करता चले अथवा कुछ और भी?

गुरू जी—या यों कह लो कि बुद्धि द्वारा अथवा मन में सोच ले कि मरना सत्य है, फिर चार दिनों का जीवन है। इस जीवन में कुकर्म क्यों करे? पीड़ा अपने-आपको बुरी लगती है, दूसरे को भी उसी तरह बुरी लगती है, अत: फिर पीड़ा क्यों दे, यदि सुख दे सके तो देवे।[२]

मानचन्द—बस मैं यहाँ तक चलता हूँ। आगे?

गुरू जी—भाई, यहाँ पर ही तो समाप्ति नहीं। वाहिगुरू जी ने अपने ऊँचे प्रेमियों को अपना अनुभव दिया है। वे बताते हैं कि जगत का स्वामी 'है', उसकी प्रीत सच्चे सुखों का मूल है। संसार की प्रीत में संसार के वियोग के समय पीड़ा है, उसकी प्रीत में सदैव सुख है,[३] क्योंकि वह सदैव जो रहता है,[४] उसकी प्रीत वाले सूक्ष्म सुख के भोगने वाले हो चुके होंगे। इसलिए मृत्यु के पश्चात् वे सूक्ष्म सुखों में सुख प्राप्त करेंगे, पर संसार की प्रीत वाले शरीर विनस जाने और शारीरिक भोगों के समाप्त हो जाने के कारण अपने में शारीरिक भोगों की इच्छा देखकर दुखी होंगे, क्योंकि उस समय भोगने वाला शरीर तो नहीं होगा, पर भोग भी भूख अतृप्त रहती है। इस प्रकार किये हुए कुकर्मों के पश्चात्ताप जलाते हैं और कई प्रकार के कष्ट आ जाते हैं। अत: हमने संसार का ध्यान 'सांसारिक सुखों में अतृप्त तृष्णा वाला' हटाना है और उसे सदैव सुख की ओर लगाना है। जीवित समय सुखी और मरकर सुहावना बनाना है।

---

१. तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि।।
   पुन: बुधि बदली सिधि पाई।।
२. दूखु न देई किसै जीऊ पति सिऊ घरि जावऊ।
३. प्रभु की प्रीति सदा सुखु होइ।
४. यह रहाऊ की तुक का अर्थ भाव है।

मैं तो इस रंग में हूँ कि आप प्यारे प्रभु का स्मरण करूँगा और जगत को उसका नाम जपाऊँगा, जिससे सदैव सुख प्राप्त हो ।। रहाऊ।। (क्योंकि जिसने शरीर के होते हुए निरंकार रूपी) स्वामी का प्यार प्राप्त नहीं किया, (वह) पश्चाताप करता है, जब रात समाप्त हो जाती है (और दिन चढ़ता है तो वह) हाथ मलता है और सिर पीटता है[१] ।।२।।

मानचन्द–इतना पश्चाताप क्यों?

गुरू जी–तब पता चलता है कि मनुष्य का जन्म ही आत्म उन्नति का कोई अवसर था, वह हाथ से चला गया है और अब दोबारा जन्म प्राप्त होना कोई आसान खेल नहीं। जैसे कोई चौसर खेलता हो तो उसकी नर्द (बिना जीते ही अपने) घर से उठा ली जाये (तो पश्चाताप होता है, उसी तरह परमेश्वर जी से) न मिलने का (जो अवसर व्यर्थ चला गया उसका) पश्चाताप ही रह जाता है, (क्योंकि मरकट स्पष्ट दीख पड़ता है कि जब फिर मनुष्य जन्म की) बारी (आयेगी तब) प्यारे से प्रेम करने का (अवसर) फिर प्राप्त होगा ।।३।।[२]

मानचन्द (ठण्डा श्वास भरकर)–यदि हमें दिखाई न पड़े और फल इतना लम्बा तथा भयदायक हो, फिर बेचारा जीव क्या करे?

गुरू जी–मार्ग तो सुखैन है, यदि मन माया के मद तथा ऐश्वर्य के मान में बेसुध न हो तो विचार करे कि क्या कोई कंत (परमेश्वर) के प्यारे हैं जो मुझसे (लौ अथवा स्मरण, भरोसा, प्रेम आदि गुणों में ज्यादा हैं) वह गुण उनमें हैं (जो) मुझमें नहीं आए, (तो फिर सोच लीजिए, सूझ आ जायेगी कि मैं) किसी पर क्या दोष लगाऊँ? (मेरा आपा ही गुणहीन है, अतः मैं ही दोषी हूँ[३]) ।।४।।

मानचन्द (निःश्वास लेकर)–फिर यदि मार्ग यहाँ से प्राप्त न हुआ तो पश्चाताप ही पास रह गया न?

गुरू जी–क्यों पश्चाताप में जाये, जिज्ञासु को सदैव सावधान रहना चाहिए। सावधान रहने से विचार फुरते हैं और विचार दूर तक मार्ग दिखाते हैं।

मानचन्द–भला श्रीमान! अब यहाँ से विचार कौन-सा मार्ग निकालेगा, सिवाए सिर पीटने के?

गुरू जी (विचार कहेगा कि) जिन सखियों ने (वाहिगुरू रूपी) पति से भेंट कर ली है (उन्हें) चलकर पूछूँ, उनके चरणों पर झुकूँ, विनती करूँ, जैसे कैसे हो सके पति प्राप्ति का मार्ग उनसे पूछ लूँ ।।५।।[४]

मानचन्द (हँसकर)–फिर दाता जी, आप सुन्दर लग रहे हैं, मेरा मन हल्का होता जा रहा है। आप बताइए तो सही कि आप मैं पति परमेश्वर की और सुहागनियों की कहाँ से खोज करूँ? आप सामने बैठे हैं, मैं मिन्नत प्रार्थना करके, आपके चरणों की धूलि बनकर आपसे ही मार्ग पूछता हूँ, मुझे इस अटक रहे को सुमार्ग पर चला दीजिए।

---

१. दूसरी पउरी का अर्थ भाव है। रात से भाव शारीरिक आयुर है और दिन से भाव शरीर तथा आत्मा का वियोग होकर जो दशा होती है।
२. यह तीसरी पउरी का अर्थ भाव है।
३. यह चौथी पउरी का अर्थ भाव है।
४. यह पाँचवी पउरी का अर्थ भाव है।

गुरू जी–भाई, हम तो उस परमेश्वर की आज्ञा में चल रहे हैं, आप तो हम हैं ही कुछ नहीं। प्रभु की आज्ञा पाकर तुझ अटक रहे को आगे चलाने के लिए आये हैं, तुझे बता ही चुके हैं कि प्यार के नाम को जपना अथवा जपाना यही हमारा व्यवसाय है। हरेक ऐसा करने वाले को सुख प्राप्त होता है।[१]

मानचन्द–अपने प्यारे को तुष्ट करने का क्या कोई हार श्रृंगार है?

गुरू जी–गुणों का जादू[२], यदि जिज्ञासु रूपी पत्नी डाले तो प्यारे को (स्मरण द्वारा) प्राप्त कर लेगी। (मुख्य गुण तो दो ही हैं १. उस प्यारे की) आज्ञा को पहचाने (और आज्ञा को पहचानकर २ उसके) निर्मल भय को चन्दन समझकर (श्रृंगार की भाँति) लगाए।।६।।[३]

मानचन्द–कैसे?

गुरू जी–अन्तर आत्मा में वाहिगुरू जी को अपने तथा प्यार के लिए प्रसन्न करने की इच्छा धारण करके उसके स्मरण मे रहे और जो कुछ हो उसे उसकी आज्ञा समझे और उसके भय में अपने सभी काम कर्म रखे। सार तो तीन ही बातें हैं, नाम जपे, जिससे लौ लगी रहे, तब पहुँच जाये। जो संसार में से इधर-उधर से कोई बात अथवा घटना आ घटे तो उसे ईश्वर की आज्ञा ही समझे। जो कर्म करे, वह उसके भय में करे। इस तरह इन गुणों के धारण करने से प्यारा मिलता है।

मानचन्द–साहब जी! मैंने कभी कुछ वेदान्त सुना था, तब ख्याल आया था कि मेल काहे का, मिले ही हुए हैं, हम वह हैं और वह हम हैं! मैंने मन में शक्ति लगाई और संकल्प किए कि मैं वह हूँ, पर मैं जो मानचन्द था, वही रहा। कभी-कभी हिलोर आये। बाद में वही मुझे अपना ही अहंकार दिखाई पड़ता, यह भुलावा था अथवा क्या था?

गुरू जी–हे (भाई!) बातों से (प्रभु से) भेंट नहीं होती, चाहे कितनी चाह क्यों न करते रहें, जो (अपने) मन को (प्रत्येक समय भेंट में रखकर) मिला है, उसे मिला हुआ कहा जाता है ।।७।।[४]

भाई मानचन्द! सुन, जो वस्तु हमारे मन में से हमारे चित्त में जाकर नहीं बसी, वह हमें किस तरह प्राप्त हुई? सभी विद्या, सारे ज्ञान इसी तरह ही अन्दर जाकर समाते हैं। मनुष्य की प्राप्ति यही है कि जो वस्तु स्मृति में, चेते में, याद में तथा उसके नीचे की तह में चली गई, वह उसकी अपनी वस्तु बन गई है, वैसे ही बातों से किसी शास्त्र का, किसी मत का सिद्धान्त सुन लिया, कथन कर लिया, वह घड़ी तो व्यतीत हो गई, हमारे पास क्या रहा? मन वैसा ही हो गया, फिर जो उसमें पहले से ही सींचा हुआ था। यदि तुम अपने

१. "राइसा पिआरे का राइसा जितु सदा सुखु होई"।
इस रहाऊ की तुक का अर्थ भाव फिर आया है।
२. विणु गुण कीते भगति न होइ।।
३. पऊरी ६ का अर्थ भाव है।
४. पऊरी ७ का अर्थ भाव है।

अन्दर, वृत्ति में, स्मृति में, याद में 'वाहिगुरू है' का भाव बसा लो और वह चित्त में सींच जाये[१] तो तुम्हारा चित्त हर समय वाहिगुरू के साथ मिला रहे; क्योंकि उसे भूल जाना ही तो परदा था, दूरी थी। जब मन भूल को दूर करके याद में आ गया और याद निरन्तर हो गई तो फिर 'मिला हुआ' कहना उचित होता है। इसलिए स्मरण ही मिलाप का मार्ग है।

मानचन्द–स्मरण द्वारा परमात्मा वृत्ति में, चित्त में अथवा निवास कर गया, फिर?

गुरू जी–फिर कार्य हो गया। मिलाप हो गया, क्योंकि वाहिगुरू आत्मा है; रूह है और हम हैं शरीर, पर शरीर में हमारा आपा जो है वही आत्मा है, रूह है। जब हमने अपनी आत्मा को उस परमात्मा की लौ में लगाए रखा तो लौ धारण करने वाला लौ के केन्द्र से जा मिला, आत्मा आत्मा से जा मिली।

मानचन्द–तनिक फिर उच्चारण करना।

गुरू जी–रूह (आत्मा सजातीय होने के कारण परमात्मा) आत्मा से मिलेगी। लौ लगाने वाला (अन्तस), जिसमें लौ लगाई जाती है, उसकी ओर भागकर जायेगा (उसे प्राप्त करेगा) (यह) पहचान गुरू की कृपा द्वारा होती है (और यह जानना मनोज्ञान नहीं) यह वास्तविक अनुभव है।।८।।[२]

मानचन्द–क्यों?

गुरू जी–सजातीय का सजातीय से मिलाप होता है, इस नियम से।

मानचन्द–ठीक है। (तनिक सोचकर) श्रीमान! यह अनुभव क्या हुआ?

गुरू जी–भाई! जो तुझे पहले बता चुके हैं, कि जो भूल संसार कर रहा है, लोग निरंकार को मन, बुद्धि और ज्ञान का विषय बनाना चाहते हैं, वह निरंकार इनका विषय नहीं है। जब नाम के स्मरण से अन्दर में आठों पहर लौ लग जाती है, तो बुद्धि से ऊपर एक और 'सुधि' उत्पन्न होती है, वह दृष्टमान से ऊँची होकर अदृष्ट से, हाँ, अज्ञात (दृष्टा) को लख लेती है, प्रतीत करती है, उसकी इस लखता को अनुभव कहा जाता है। इस दृष्टमान जगत के देखने वाले (दृष्टा का भाव हमारे अन्तस का) अपने देखने वाले (परम दृष्टा–वाहिगुरू) को अन्दर आत्मा में लख लेना, यही अनुभव है।

मानचन्द–अब पता चला। हम चाहते हैं कि अभी इस मन से निरंकार को जान लें, नैनों से अथवा मन से देख लें और वास्तविक बात यह है कि अब जपें, लौ लगाएं रखें तो एक और बुद्धि–कोई और बुद्धि–जिसे अनुभव कहा जाता है, वह निरंकार को निरंकार से भेंट प्राप्त करके लख लेगी। (काँपकर) देखो जी, हम कितने मूर्ख हैं, मन को मन में लय जाकर लखे जाने वाले निरंकार को मूली-गाजर की-सी साधारण वस्तु दिखाई पड़ने की भाँति अपने इन्द्रियों का विषय बनाकर देखना चाहते हैं। हाँ, शोक हमारी बुद्धि पर।

गुरू जी–मानचन्द! चाहे घर में पानों की बाड़ी लगी हुई हो, पर गधा उसकी सार

१. हरि सिंचै सुधा संजोर।। [जैतसिरी मः ५]

२. पऊरी ८ का अर्थ भाव है।

नहीं जानता, (इसी तरह जो) सुगन्धि का रसिक हो, वही फूलों की पहचान कर सकता है ।।९।।[१]

मानचन्द–हाँ जी ठीक है, जो पान के गुण वैद्यों को पता होते हैं, वे आम लोगों को पता नहीं होते और गधे को पान तथा घास में क्या अन्तर हो सकता है। आपने बताया है कि हमारी बुद्धि दृष्टमान तक ही जाती है और वह प्रभु हुआ उस दृष्टिमान से आगे और उल्टी ओर हुआ देखने वाला। आपकी यह बात मेरे मन को बहुत अच्छी लगी कि पहले हमें उस दृष्टा की ओर का ज्ञान हो और तब पता चले तो उसे लख लें। ठीक है श्रीमान?

गुरू जी–तैने ठीक समझा है। खेल यह है कि पहले अमृत पीए (तब बुद्धि को जो भ्रम) संशय शक उठते रहते हैं, वे भ्रम (हो) भासते हैं और (अपने आप ही) समा जाते हैं। (भ्रम जो हमें भटकाता था और उस समय अकलमन्दी भासती थी वह अपने आप ही हमें दीखने लग जाता है कि भ्रम था) फिर सुखैन ही (आप उस) निरंकार में समाया हुआ रहने लग जाता है, (और शरीर का त्याग करके) अमर पद की प्राप्ति करता है ।।१०।।[२]

मानचन्द–अब हे दाता! दया करो, जिससे इस सारे खेल को आरम्भ कर दूँ और जितने अन्त पर्यन्त निभना है–नाम स्मरण–वह देन प्रदान कीजिए कि यों चले और कभी मत भूले।

सतगुरू जी उस समय किसी आश्चर्यजनक रंग में चकित हो रहे थे, मानचन्द की विनय जो अन्दर से निकली थी, उसे सुनकर आप किसी उछाल में आए, अपने हाथ का डण्डा आगे करके कहने लगे, ले मानचन्द! विस्मरण का भूत स्मृति के डण्डे से निकलेगा। मानचन्द ने सम्मान सहित डण्डा ले लिया और सिर पर रख लिया, डण्डे को माथे के साथ छूते ही कुछ थर-सा टूटा, जैसे पोस्त की कली को चटक पड़ते ही बाहर का हरे रंग का छिलका टूटकर नीचे जा पड़ता है और बीच में से लाल गुलाल 'गुले लाला' निकल आता है, वैसे ही किसी चटक से थर के टूटने से मानचन्द के अन्दर नाम का प्रवाह चल पड़ा। हाँ, अटक रहे मानचन्द को, जिसका प्रयत्न सच्चा था और यत्न अन्दर से था, पर अटक रहा था और उसी बुद्धि का अटकाया हुआ खड़ा था जो बुद्धि भलाई को जाँचकर अच्छा बता रही थी, पर प्रभु के देश में जाने से वर्जना कर रही थी कि जो मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने उधर को नहीं जाने देना–हाँ, आज अटका हुआ मानचन्द दयालु की दया से, अटक से निकलकर रस के देश को चल पड़ा। भलाई से आगे प्रेम है, लौ है, आपा उन्नति है और प्रेम आपे के साथ आपे का अपृथक् रसमय स्वरूप मेल है। मानचन्द को यह सच्चा धन प्राप्त हो गया और उपकारी दाता जी उसे निहाल करके और जगत का उद्धार करने के लिए कंधार के परगने से आगे चल पड़े। जै हो, जै हो, इस भयभंजन, पर दुख निवारण, महान दाता श्री गुरू नानक देव जी की जै हो।

सूचना–जो उपदेश मानचन्द को हुआ, सतगुरू जी ने वह एक शब्द में उच्चारण

१. पऊरी ९ का अर्थ।
२. पऊरी १० का अर्थ भाव है।

किया है, उसका टीका पिछली वार्तालाप में आ गया है, शब्द का पाठ यों है:—

तिलंग महला १ धरू २

१ ओअंकार सतिगुर प्रसादि॥

जिनि कीआ तिनि देखिआ किआ कहीऐ रे भाई॥
आपे जाणै करे आपि जिनि वाड़ी है लाई॥१॥
राइसा पिआरे का राइसा जितु सदा सुखु होई॥ रहाऊ॥
जिनि रंगि कंतु न राविआ सा पछो रे ताणी॥
हाथ पछोड़ै सिरु धुणै जब रैणि विहाणी॥२॥
पछोतावा ना मिलै जब चूकैगी सारी॥
ता फिरि पिआरा रावीऐ जब आवैगी वारी॥३॥
कंतु लीआ सोहागणी मै ते वधवी इह॥
से गुण मुझे न आवनी कै जी दोसु धरेह॥४॥
जिनी सखी सहु, राविआ तिन पूछऊगी जाऐ॥
पाइ लगऊ बेनती करऊ लेऊगी पंथु बताऐ॥५॥
हुकमु पछाणै नानका भऊ चन्दनु लावै॥
गुण कामण कामणि करै तऊ पिआरे कऊ पावै॥६॥
जो दिलि मिलिआ सु मिलि रहिआ मिलिआ कहीऐ रे सोई॥
जे बहुतेरा लोचीऐ बाती मेलु न होई॥७॥
धातु मिलै फुनि धातु कऊ लिव लिवै कऊ धावै॥
गुर परसादी जाणीऐ तऊ अनुभऊ पावै॥८॥
पानावाड़ी होइ घरि खरु सार न जाणै॥
रसीआ होवै मुसक का तब फूलु पछाणै॥९॥
अपिओ पीवै जो नानका भ्रम भ्रमि समावै॥
सहजे सहजे मिलि रहै अमरा पदु पावै॥१०॥१॥

१. गीत[१]

बाबा नानक! तेरा कमाल है, तैने सोई हुई आत्माओं को जगाया है। जो आत्माएँ माया के जाल में फँस रही थीं, तैने उन रोती हुई आत्माओं को हँसा दिया है।

तैने देशों विदेशों में चक्कर लगाए,
और द्वार द्वार पर जाकर ईश्वरीय नाद बजाए।
तैने सो रहे हृदयों को पकड़कर उठा दिया,
और उनमें नए प्राण भर दिए।

बाबा नानक! तेरा कमाल है! तैने सोई हुई आत्माओं को जगाया है। जो आत्माएँ माया के जाल में फँस रही थीं, तैने उन रोती हुई आत्माओं को हँसा दिया है।

---

१. यहाँ पर लेखक के पंजाबी गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

तैने लोगों के हृदय में से भ्रम के थर काट दिए और उन पर नाम के खुले छींटे मारे। तैने बिछड़े हुओं को प्रभु के साथ मिला दिया और लौ की डोरी लगा दी।

बाबा नानक! तेरा कमाल है! तैने सोई हुई आत्माओं को जगाया। जो आत्माएँ माया के जाल में फँस रही थीं, तैने उन रोती हुई आत्माओं को हँसा दिया।

आज सारी सिक्ख सभा को पुकार है कि हमें भी आकर नाम की भिक्षा दे। अपने चरणों के साथ लगा ले और हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा कर दे।

बाबा नानक! तेरा कमाल है! तैने सोई हुई आत्माओं को जगाया। जो आत्माएँ माया के जाल में फँस रही थीं, तैने उन रोती हुई आत्माओं को हँसा दिया।

❑ ❑

७७ पठान सरदार

: १ :

मरदाना—मेरे मीठे-मीठे दाता जी! सूर्यास्त होता जा रहा है, अभी उजाड़ समाप्त नहीं हुई। सिर छिपाने के लिए अभी कोई स्थान ठिकाना नहीं आया, पठानों का देश है, ऊपर से जाड़ा है, रात कहाँ काटेंगे, कैसे व्यतीत होगी?

सुन्दर श्री गुरू नानक देव जी कहने लगे—मरदाना! देख कर्तार के रंग, अभी कोई आश्रय सहारा आ जायेगा।

इस तरह की बातें करते-करते कुछ मार्ग निकल गाया, तब उसी उजाड़ में एक कोठरी आ गई, तब मीठे श्री गुरू नानक जी कहने लगे ले मरदाना! अब सिर छिपांने के लिए स्थान आ गया है।

मरदाना—मेरे दाता जी! इस उजाड़ में किसने यह कोठरी बनाई है? ना तो कोई यहाँ पर ईश्वर का मनुष्य ही दीखता है, न खाट न मूँढ़ा।

श्री गुरू जी—देख, यह उजाड़ अभी बसने लगेगी।

मरदाना—क्या कुशलता से कोई आबादी आकर बसेगी अथवा आपका कोई कौतुक घटेगा?

गुरू नानक जी मुसकराए और कहने लगे—देख कर्तार के रंग, जो भूले हुओं को सुमार्ग पर चला देता है।

मरदाना (निःश्वास लेकर आकाश की ओर देखकर)—ले मरदाना! आया है कोई और रंग खेड़ा, देख कौडे का कड़ाहा आता है अथवा सज्जन के रस्से?

गुरू जी—जो आयेगा वह दाता की देन है, हमें ले आया है प्रजा के दुखों को दूर करने के लिए। दुख को दूर करने वाला आप दुख दूर करेगा, हमें बीच में कारण बना लेगा, उसकी कान्ति प्रकट होगी, हम देखेंगे और सौभाग्यवान होंगे।

मरदाना—आपने सच कहा है; आप पूर्ण हैं। मैं थक गया हूँ, मैं अपूर्ण हूँ, भूख भी लगी है, जाड़ा भी है। अब खायें, पीएँ, सोयें अथवा जगत के कांटे सम्भालें?

गुरू जी—जो उस वाहिगुरू की आज्ञा हो, वही करें। "साई कार कमावणी धुरि छोडी तिनै पाइ।" हम कौन हैं? मरदाना! कर्तार बजंत्री वह आप हैं, जैसे बजायेगा, उस तरह बजेंगे, कभी तेरा रबाब तेरे बजाने पर नहीं बोलता?

मरदाना—बलिहारी आपकी भक्ति को। आओ अब बैठें, थोड़ा दम लें। जब कोई बला उजाड़ में आ प्रकट हुई तब जो आप करेंगे वही होगा।

गुरू जी यह सुनकर कोठरी के चबूतरे पर बैठ गए और मरदाना भी पास बैठ गया। पहले उसने सतगुरू के चरणों की धूल झाड़ी और फिर परे जाकर अपनी गर्द झाड़ी।

अब सूर्यास्त हो गया था। वन में पहले ही चुपचाप शन्ति थी, पर अब ज्यादा हो गई। श्री गुरू जी ने मरदाना की ओर देखा और कहा, भाई रबाब बजा और सुना कर्तार का कीर्तन। मरदाने ने रबाब खोला, उसे स्वर किया और बजाने लगा। आसा का स्वर छेड़ दिया और सोदर नामक वाणी बड़े मधुर तथा बारीक स्वर में गाई। वाहिगुरू की हूजुरी की चित्र बंध गया। प्यारे सतगुरू जी के सुन्दर नैन मुँद गए, हां जी प्रभु के द्वार के दर्शन के प्रेमी दर्शन झांकी में लौलीन हो गए। सोदर तथा आरती नामक वाणियों के कीर्तन की समाप्ति हुई[१], नैन खुले। अब कुदरत ने भी नीले-नीले गगन पर अपने हज़ारों नैन खोल दिए। जैसे कर्तार के शारीरिक नेत्रों के होते हुए हज़ारों नैन हैं अरूप रूप वाले, वैसे ही प्रकृति के भी मानो यह आकाश पर हज़ारों नैन हैं, जो तारे नक्षत्र, उपग्रह तथा आकाश गंगा के दूधिया धुँध की चमक। इस प्रकृति के खेड़े में देखने वाले कर्तार की प्रकृति, उसकी सदैव हो रही आरती और उससे कहीं अधिक चढ़ जाने वाले पातशाहों के पातशाह[२] श्री गुरू नानक देव जी भीने-भीने रस में मग्न हो रहे हैं और मरदाना उनके दर्शन में रसमय हो रहा है कि इतने में मर्द के पैर की आवाज़ आई। एक दो मनुष्य आ गए, शरअ वालों सलवारों वाले, आकर दोनों विदेशियों को देखा, सलाम अलेक कहकर बैठ गए। फिर और आ गए। पुस्तकें भी साथ आ गईं। कोई दिया बती भी ले आया और कोठरी में चटाईयाँ बिछ गईं। इन चटाईयों पर बहस करने वाले बैठ गए और वार्तालाप छिड़ पड़ा। इतने में एक और रोअब वाला पठान आ गया। सूरत-शक्ल रोअब वाली थी, जिस तरह कोई सरदार होता है, पर झुकता हुआ, ऊँचे-ऊँचे खुदा-खुदा, अथवा खुदा करता हुआ, आया और सबको सलाम किया। आज उसे नमाज़ में देर भी हो गई थी, पर यहाँ आकर नामज़ पढ़ी और झुक-झुककर सजदे करने लगा। जब नमाज़ हो चुकी तो बीच में बैठ गया और विद्वानों की बातें सुनने लगा। शरअ धर्म की तथा सत्संग की बातें। जब कोई नेकी अथवा प्रभु की स्तुति की बात आती तो बड़ी श्रद्धा तथा प्रेम सहित सिर हिलाता और वाह-वाह कहता। इस कौतुक को देखकर श्री गुरू जी मुसकरा देते और किसी समय हँस भी देते। यह देखकर पठान को क्रोध आता, पर वह उसे सहन कर जाता। अंत में उससे सहन न किया गया तो बड़े कोमल तथा मीठे स्वर से कहने लगा हे प्रभु के प्यारे! हम अपने पालक का नाम लेते और सुनते हैं। तुम हँसी उड़ा देते हो। यह प्रभु के सत्कार की बात नहीं; या यह आपकी नाराजगी की बात है। हे अल्ला वाले! यह विद्वानों की सभा है, ऐसे वैसों की नहीं।

यह सुनकर श्री गुरू जी के चेहरे पर एक रोअब तथा कान्ति का रंग आया और नैनों ने ज़ोरदार दृष्टि डाली, फिर कहने लगे-सुन भाई! यह तो ठीक है कि सभा विद्वानों की है, पर तुम विद्वान किसे कहते हो? जो अक्षर पढ़ ले अथवा पोथी पढ़ ले अथवा पढ़ सुनकर अपने अपढ़ भाईयों की अपेक्षा ज्यादा चतुर हो जाए और उन्हें अपनी चतुराई में फँसा-फँसाकर अपना लाभ ज्यादा निकालने लग पड़े? यदि इस तरह पढ़े हुओं का नाम विद्वान है, पण्डित है, अथवा पढ़ा हुआ है तो भाई वे मृग, वे ज़ंतु तथा बाज आदि पक्षी भी पढ़े हुए

---

१. सोदर आरती गावीऐ।। [भाई गुरुदास]

२. जिसनो बखसे सिफति सालाह।।
नानक पातिसाही पातिसाहु।। [जपुजी]

स्वीकार करने पड़ेंगे, जो शिकारियों से विद्या प्राप्त करके इतने चतुर हो जाते हैं कि अपनी जाति के अपढ़ जीवों में जाकर उन्हें साथ लेकर फँदा डालने वाले के बाड़े में ले जाते हैं। तनिक विचार करके देखो, तुम इन मृगों तथा पक्षियों को पढ़े लिखे, अथवा पण्डित, विद्वान कहोगे?

पठान–यह काहे के पढ़े हुए हैं, यह तो बुरे लोग हुए।

पास से ही एक चापलूस ने कहा–हे अल्ला के बंदे! ये साहब सरदार है और फिर शासक। शासक होकर खुदा की कृपा से इस समय सत्संग करने के लिये आते हैं, शरअ, फिका[१], हदीस[२], तफसीर[३] प्रत्येक विद्या में रुचि रखते हैं।

श्री गुरू जी यदि सरदार भी मृगों तथा बाजों की भाँति पढ़े तो शरअ तथा शरीयत अन्य विद्वानों के लेखे; पर आप क्या सीखे? अपनी मनुष्य जाति को अपने बढ़े हुए, मंजे हुए, पढ़े हुए मस्तिष्कों के जंजाल में फँसा लेना उन्हें लूटना और चालाकी से लूटना, पता न लगने देना कि उनका शोषण हो रहा है तो क्या इस तरह का सरदार सिखाए हुए मृगों तथा बाजों की अपेक्षा भी व्यर्थ होगा? निश्चय जानिए कि अपने भुजाबल के रोअब के आधीन तथा अपने सीखे हुए मस्तिष्क के बल से यदि वे दूसरों को, मानवता को, या यों कहो कि अपनी मानव ज़ाति के भाईयों का शोषण करता रहा है, तो यहाँ भले ही अपने जैसे विद्वानों, पण्डितों में बैठकर शोभा प्राप्त करे, भला बन जाये, पर आगे प्रभु के दरबार में उसका कोई ठिकाना नहीं होगा।[४]

सरदार (मन में आ रहे क्रोध को दबाकर तथा बीच-बीच में उठ रहे लज्जा के ख्याल को दबाकर)–हे अल्ला वाले! खुदा तेरा भला करे, तू विद्वान, पण्डित अथवा बुद्धिमान, सुजान किसे कहता है? सिखाए हुए शिकार के पक्षी क्या पुस्तकें पढ़ते हैं? उनका मनुष्य 'अशरफ-उल-मखलूकात (सर्वश्रेष्ठ) से क्या वासता?

गुरू जी– हे प्रभु के बन्दे! खुदा तुझे शुभ मत प्रदान करे। पण्डित, अथवा चतुर अथवा सुजान[५] भी हो, वह नहीं जो पुस्तकें पढ़ लेता है और उनके अर्थ कर लेता है। विद्वान वह है, जिसने परमेश्वर के नाम की कमाई की है। विद्या का सुख उसने प्राप्त किया है, जिसके अंदर प्रभु का नाम बस गया है। परमेश्वर का नाम यदि अंदर निवास कर जाये तो परमेश्वर का भय उसके अन्दर आकर निवास करता है। हाँ, जिसके अन्दर नाम का निवास हो जाता है फिर उसके अन्दर प्रभु का प्यार आ निवास करता है। फिर वह अपनी जाति अर्थात् मानव जाति को प्रभु के बच्चे समझता है और अपना भाई समझता है। वह फिर फंधे लगाकर जाति के भाईयों को अपनी दिमागी उलझनों में नहीं फंसाता, वह सबका भला चाहता है और आवश्यकतानुसार भला करता है। इस तरह का पुरुष जो पढ़ लिख जाता है,

---

१. शरअ की विद्या।
२. हरज़त मुहम्मद जी के हुकम।
३. कुरान की व्याख्या।
४. हरणा बाजाँ तै सिकदारां एना पड़िआ नाऊ।।
फाँधी लगी जाति फहाइनि अगे नाही थाऊ।।
५. पढ़ा लिखा–विद्वान।

तो उसे दूसरों का भला करने की जाँच ज्यादा आ जाती है। उसका पढ़ना सफल है, जो तुम्हें पढ़कर नेकी करता है। अतः भाई! यदि तुम्हें किसी धूप वाले स्थान पर ठण्डी-ठण्डी छाया की आवश्यकता हो तो वृक्ष बोवो, फिर देखो कि पहले भूमि के अन्दर उसकी जड़ पैदा होगी, फिर बाहर पत्ते निकालेगा, फिर वृक्ष बनेगा तब छाया देगा, जगत को शीतलता प्रदान करेगा। वैसे ही जिसके अन्दर परमेश्वर के नाम का निवास होगा, उससे जगत को शीतल छाया प्राप्त होगी।[१] अतः हे विद्या की स्तुति करने वाले! विद्या का निचोड़ 'नाम' है, नाम यदि अन्दर बसेगा तो बाहर उसका निवास करना सुख देगा।

सरदार—हे प्रभु के संवारे हुए! राजा तथा शासक, हाकम तथा चौधरी प्रजा का प्रबन्ध करते हैं, उन्हें रोअब से काम लेना पड़ता है। बिना भय के लोग प्रबन्ध में नहीं रहते, अतः उन्हें दण्ड देना और ज़ोर धक्का करना ही पड़ता है। फिर वे यदि हुजरे में आ बैठे, अल्ला की चर्चा करें, विचार करें, कथा वार्ता करें तो क्या दोष? क्या ऐसा करना उनके लिए उनकी अज्ञात भूलों की औषधि नहीं।

श्री गुरू जी के नैनों में फिर से लाली आ गई, पर सहज की ध्वनि में कहने लगे— प्रभु तुझे प्रकाश दे। सोच, जो कुछ तैने कहा है, क्या ऐसा हो रहा है? क्या शासक खुदा के भय अथवा सृष्टि के प्यार में प्रबन्ध कर रहे हैं और फिर अज्ञात भूलों के लिए क्षमा के याचक रहे हैं?

नहीं, शासक सिंघ की भाँति फाड़कर खाने वाले दरिंदे बन रहे हैं, मन्त्री, महतो चौधरी कुत्तों की भाँति हो रहे हैं। सभी प्रजा को जिसका पोषण करना था, फाड़-फाड़कर खा रहे हैं।[२] जिस तरह सिंघ आराम से किसी समय बैठा अथवा सो रहा होता है, पर कुत्ते, जिन्हें सिंघ का झूठा, रहा सहा रक्त माँस आदि चाटने का स्वभाव पड़ा होता है, वे जब किसी पशु को शिकार के योग्य देखते हैं तो भौंकते हैं। सिंघ सुनकर अनुमान लगा लेता है कि शिकार इधर है, वह शिकार पर टूट पड़ता है। रक्त पी जाता है माँस खा जाता है, शेष रहा सहा रक्त, माँस मीझ आदि कुत्ते आकर चाटते हैं। वैसे ही चौधरी आकर, राजे को पता देते हैं कि अमकी असामी मोटी है, अमकी प्रजा के पास धन है, अतः राजे अपने चाकरों, अहलकारों, सिपाहियों आदि से सिंघ के पंजों का काम लेते हैं, वे जो शिकार को घायल करते हैं, बढ़िया माल तो राजा ले जाता है और रहा सहा मन्त्री, चौधरी आदि चाट जाते हैं। क्या इस तरह के शासक अथवा सरदार दिखावे की नमाज़ पढ़कर स्वच्छ हो सकते हैं? जहाँ पर कर्तार का सच्चा दरबार है वहाँ सब जीवों का पता लिया जायेगा। जहाँ प्रभु सब की सम्भाल करेगा, वहाँ इन सरदारों की नमाज़ें पढ़ने तथा उपवास रखने का कोई मूल नहीं पड़ेगा, तो यह बेप्रतीत नाक कटों की भाँति सख्त लज्जित होंगे।[३]

---

१. सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिन्ही कमाणा नाऊ।।
पहिलो दे जड़ अन्दर जंमै ता ऊपरि होवै छांऊ।।

२. उलटी वाड़ खेत कऊ खाई।। [भाई गुरुदास]

३. राजे सींह मुकदम कुते।।
जाइ जगाइनि बैठे सुते।।
चाकर नहदा पाइनि घाऊ।।

: २ :

शासक को क्रोध भी आता था, पर लज्जा भी आती थी। मनुष्य के मन में अपने 'किए हुए कुकर्मों की लज्जा' इसे सबसे अधिक दुर्बल करने वाली वस्तु है और यह कभी-न-कभी अन्दर बैठी हुई अपना प्रभाव डाल ही देती है। अतः पठान को गुरू जी के वाक्य उसी लज्जा में लिए जा रहे थे। साथ ही पाप वृत्ति आश्रय सहारा ढूँढ़ती थी कि किसी तरह गुरू जी स्पष्ट रूप से उसे न कह दें और इन लोगों में लज्जित करें, जो चाहे जानते तो थे, वे आप भी उसके साझी थे, खाते-पीते और उसका यश भी करते थे। अतः पठान सोच-सोचकर कहने लगा—हे प्रभु के फकीर! जिसके वचनों के आगे अपने-आप मन झुक रहा है—हम लोगों की कठिनाई को सुन—हम जो रात-दिन चोरों तथा झूठों को कैद करते और फाँसी लगाते हैं, तो हम यदि अपने-आपको स्वच्छ करने के लिए नमाज़ तथा सत्संग न करें तो क्या करें? मैं तो इस समय चार घड़ी खुदा के मार्ग पर व्यय करता हूँ जिससे मेरा भला हो। क्या यह शुभ काम भी परलोक में स्वीकार नहीं? क्या खुदा ग़रीबों-कंगालों पर ही प्रसन्न है और खुदा की पूजा करने वाले शासकों से नाराज़ है? चाहिए तो यह कि बड़ों के बड़े दुख देखकर उन पर ज्यादा प्रसन्न हो।

गुरू जी—भाई! फैसला तो अहंकार पर होता है। चाहे कोई राजा है, प्रजा में बड़ा है, जो अहंकारी है, व्यर्थ ही अहंकार में है। देखो! हाथी कितना बड़ा होता है और उसकी खुराक कितनी ज्यादा है। सौ मन घी तथा गुड़ आदि खा जाता है, दाना पाँच सौ खा जाता है। इतना खाकर मस्ती में आकर डकार लेता है, फुँकार मारता है और राख उड़ाता है, अर्थात् अहंकार में अपने तुल्य किसी को नहीं समझता, पर इसके श्वासों का भी अन्त हो जाता है। उसकी बड़े आकार वाली देह मरी हुई, पश्चाताप का एक जीवित चित्र होता है कि क्या तू हे हाथी! अपने इसी अन्त पर डकारता, फुँकारता और राख उड़ाया करता था?[1]

एक मुल्ला—हे फकीर! शोक का चित्र खींचने वाले! क्या मनुष्य हाथी-सा पशु बन गया? मनुष्य सारी रचना में से कुलीन है।

गुरू जी—भाई! नैन खोलकर चारों ओर देख लो, यह जनता जो मनुष्य बनकर कुलीन बनती है, क्या कर रही है, उसी तरह हाथी की भाँति अहंकार कर-करके हउमैं में ऐंठ-ऐंठकर मर रही है। जब प्रभु ने देही को तोड़ डाला तब फिर यह मिट्टी-की-मिट्टी हो रह गई।[2]

रतु पितु कुतिहो चटि जाहु।।
जिथै जीआं होसी सार।।
नकीं वढीं लाइतबार।। [वार मलार मः १]

उपरोक्त वार्तालाप 'सलोक महला १ बार मलार २२ का खुला अनुवाद है, जो श्री गुरू जी ने इस समय भी उच्चारण किया और जन्मसाखी में इसके सम्बन्ध में लिखा है, जिसका आरम्भ "हरणां बाजा" है।

१. सऊ मणु हसती घिऊ गुडु खावै पंजि सै दाणा खाइ।
डकै फूकै खेह उडावै साहि गइऔ पछुताइ।।

२. अन्धी फूकि मुई देवानी।।
खसम मिटी फिर भानी।।

मुल्ला—अब तो आपने सारी जनता को तुच्छ समझा, क्या सारी-की-सारी अंधी है?

गुरू जी—अन्धकार तो अहंकार का है। अहंकार अज्ञान में होता है, अतः अहंकार ही वास्तविक अज्ञान है। जो अज्ञान में है, वह अन्धा है और वह जनता अन्धी है, जो अज्ञान में है; वह अन्धी नहीं, जो अज्ञान के वश में नहीं, जो अहंकार में नहीं, जिसे अपनी वास्तविकता का पता चला है, वह चाहे चिड़िया की भाँति छोटी है, जिसकी खुराक बहुत थोड़ी है, पर वह आकाश में उड़ती है और गाती है और खुदा-खुदा कर रही है। वह भली है, वही खुदा को अच्छी लग रही है, इसी तरह वह ग़रीब, हाथी जैसे फुँकार मारने वाले अहंकारी पुरुष से अच्छा है, जो बड़ी कठिनाई से उदर पूर्ण करता है, पर जिसकी दृष्टि आकाश में ऊँची उठती है, जो परमेश्वर का नाम लेता है, वह खुदा को प्यारा लगता है। अतः हे बुद्धिमान! भला वह है जो खुदा को अच्छा लगता है, चाहे वह बड़ा है अथवा छोटा[१]।

एक और काज़ी कहने लगा—फिर हे प्रभु वाले! संसार का प्रबन्ध किस तरह चले? यह जो शासक लोग हैं, इन्हें तो क्षमा होनी चाहिए, इनका काम जो कठिन हुआ। यदि बड़े न बनें, अहंकार न करें तो काम नहीं चलता।

गुरू जी—काम तो बुद्धि से चलते हैं, ईश्वर की दया से चलते हैं, अहंकार से बिगड़ते हैं। जैसे सिंघ को बन का राजा कहा जाता है, वह बलवान होने के कारण सैकड़ों मृगों का संहार करके खा जाता है और उसका रहा सहा खाकर अनेक जंतु पलते हैं और वह जब इस अहंकार में आकर गर्जता है तो अपनी कंद्रा में भी नहीं समाता, अर्थात् अपने जामे से बाहर हो जाता है। पर अंत में जब उसके श्वास भी निकल जाते हैं मानो पीछे पश्चाताप ही रह जाता है कि हाय आयु वैसे व्यर्थ ही खो ली। वैसे ही मनुष्यों के राजे बलवान होकर मार मारते हैं और उनके सेवक अमीर मन्त्री हाकम भी पलते हैं और राजा भी अहंकार में आकर ऐंठता है कि जगत् में उस जैसा कोई है ही नहीं। पर वह अहंकार में अंधा है, उसे कुछ भी नहीं सूझता, उसे पता नहीं रहता कि वह गर्ज-गर्जकर (अहंकार में आकर) किसे सुना रहा है। संसार के लोग उसके अहंकार के कारण व्याकुल हैं। वे अपनी गर्जन पर प्रसन्न नहीं हो सकते और उस ओर खुदा, जो सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है, उसे तो अहंकार में गर्जने वाला बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता[२]। खुदा को तो वह गरीब अच्छा लगता है जो आक पर बैठने वाली टिड्डी की भाँति हो, जो आक के साथ प्रेम करती है और आक की डालियों पर बैठती है और आक के पत्ते खाकर ही पेट भरता है, पर प्रभु का नाम जपती है। सदैव 'हे खुदा, हे खुदा'[३] करती है। इस तरह का मनुष्य किसी को कष्ट नहीं देता,

---

१. अधु गुहला चिड़ी का चुगणु गैणि चड़ी बिललाइ।
खसमै भावै ओहा चंगी जि करे खुदाइ खुदाइ।

२. सकता सीहु मारे से मिरिआ सभ पिछै पै खाइ।
होइ सताणा घुरै न मावै साहि गइऐ पछुताइ।।
अन्धा किसनो बुकि सुणावै।।
खसमै मूलि न भावै।।

३. अक सिऊ प्रीति करे अक तिडा अकडाली बहि खाई।।
खसमै भावै ओहो चंगा जि करे खुदाइ खुदाइ।।

सामर्थ्य अनुसार सुख देता है, हउमें अहंकार से रिक्त होता है और अपने पालक के संयोग में होता है।

काज़ी–खुदा के प्यारे! तैने ठीक कहा है–प्रभु की याद तथा ग़रीबी अच्छी वस्तुएँ हैं, पर जब हम खुदा की बात करने के लिए, उसके चमत्कारों का वर्णन करने अथवा सुनने के लिए और प्रभु नेकी प्रदान करने की प्रार्थना के लिए आ इकट्ठे होते हैं तो आशीर्वाद दे, जिससे हमारा उद्धार हो, हमारे इसी कर्म को, जिसे आप अच्छा कह रहे हैं, संकेतों से क्यों बुरा कह रहे हैं?

पठान–ठीक तो है, हे अल्ला वाले! यदि खुदा का नाम लेने अथवा सुनने से मुक्ति नहीं होगी तो किस तरह होगी?

गुरू जी–भाई! इस तरह की बातों से क्या बनता है? खुदा बातों से प्रसन्न नहीं होता, कर्मों से प्रसन्न होता है। यदि तुम उसका नाम लेते हो तो उसके साथ एक चित होवो, नाम तो प्रभु की प्रीत है, तुम तो बहस और झगड़े करते हो। तुम जगत को पढ़कर सुनाते हो कि तुम अल्ला वाले हो, पर वास्तव में तुम बातों वाले हो, उन रसों का त्याग नहीं कर सकते, जिनके बारे में तुम पढ़ते हो कि बुरे हैं, उन्हें फिर भोगते जा रहे हो। यह जो शरीर के भोगों के रस हैं, जिनमें अन्धे लोग सिर से पैरों तक डूब जाते हैं, यह चार दिनों के लिए हैं। शरीर विनाशी है, इन को नहीं रहना। जैसे मक्खी मधु पर जाकर बैठती है, वह मधु को भोगती हुई उसी में फँसती जाती है। वह मधु ही उसकी मृत्य का कारण बनता है। वैसे ही लोभ तथा मोह में जीव फँसता-फँसता बीच में ही मरता है और पढ़ते सुनते यही बातें कहते जाते हैं, पर उसका त्याग नहीं कर सकते। हाँ, जिन्होंने प्रभु के नाम की लौ अन्दर लगाई है, उन पर प्रभु की अनुग्रह होती है, उन्हें प्रभ बचा लेता है, उन्हें जगत के सुखों में ग़रक होने से बचा, निकाल लेता है वे फिर भौजल संसार से तर जाते हैं[१]। अत: खुदा के भय में आओ, उसके आगे प्रार्थना करो, शुभ कर्म करो और उसे याद रखो फिर इस संसार से लाभ प्राप्त करके जाओगे; चाहे छोटे होवो अथवा बड़े।

: ३ :

अब गुरू जी चुप हो गए, पर एक आश्चर्यभरी दृष्टि से देखा जो चीरवीं गति से उसकी आँखों में से गुज़रती हुई कलेजे को हिला गई। मन का थर जो बुरे कर्मों के कारण मन पर जम रहा था, वह टूट पड़ा। अपने ही किए हुए कर्म शरीरधारी होकर उस टूटे हुए थर के नीचे से गुजर गए। दे रखे दुखों के चित्र आखों के सामने आ खड़े हुए, शरीर ने एक कँपकँपी

१. नानक दुनीआ चारि दिहाड़े सुखि कीतै दुखु होई।।
गला वाले हैनि घणेरे छडि न सकै कोई।।
मखीं मिठे मरणा।।
जिन तू रखहि तिन नेड़ि न आवै तिन भऊ सागरु तरणा।।२।। [वार मलार म: १]

यह वार्तालाप मलार म: १ के १९ श्लोक का खुला अनुवाद है, जो श्लोक जन्मसाखी में इसके सम्बन्ध में दिया है। पर यह श्लोक पहले का उच्चारण किया हुआ तथा कहा हुआ है–जब गुरू जी अब्दुल रहमान के हुजरे (शाह मुकीम के स्थान पर) गए थे।

खायी। नैन गुरू जी के नैनों को देखते-देखते नीचे को झुक गए और चरणों पर जा ठहरे। सरदार पठान को फिर कम्पन सा आया और शरीर झुका और बेबस ही झुककर प्रणाम करने लगा।

गुरू जी–भाई आपा संभाल! अभी समय है, यदि होश करे तो। हाँ, प्रजा क्रन्दन कर रही है और क्रन्दन तुझ पर पड़ रहा है और पड़ेगा, वह सारा बच सकता है।

पठान–हे अल्ला वाले! हमने तो समझा था कि राज्य स्वर्ग है, पर आपने कुछ और करके दिखा दिया है। हम एक ओर राज करते थे दूसरी ओर विद्वानों की संगत करते तथा नमाज़ पढ़ते हुए समझते थे कि कुकर्म समाप्त होते जा रहे हैं। तुम कहते हो कि कुकर्म तो कुकर्म ही हैं और परलोक में जाकर धक्के ही पड़ेंगे।

गुरू जी–कुकर्मों से इहलोक तथा परलोक, हरेक स्थान पर धक्के ही धक्के हैं। उसी तरह जैसे विष के बीज से विष का पौधा ही उत्पन्न होता है। हे भाई यदि तू यहाँ विचार करता, पढ़ता, सुनता है और शहर में जाकर लोगों के साथ छल-कपट करता है और उन्हें पीड़ा देता है, तो पीड़ा बीजकर तेरे लिए पीड़ा ही उत्पन्न होगी। यहाँ लोगों के मनों में जलन इकट्ठी हो होकर किसी दिन तुझे राज से गिरा देगी और आगे चलकर तेरी आत्मा के आगे किये हुए कर्म पीड़ा लायेंगे[१]।

पठान–राज तो फिर बहुत बुरा काम है।

गुरू जी–हाँ भाई! राज, माल, रूप, जाति तथा यौवन यह पाँच ठग हैं। राजे को राज का 'मद' होश में नहीं आने देता, इसके बल पर वह ऐंठता है और अत्याचार करता है, पाप करता है। उसका धर्म तो था न्याय करना, प्रजा का पालन करना, प्रजा को सुखी करना, प्रजा की रक्षा का दुख अपने सिर पर लेना, पर वह राज को विलासता का साधन बनाता है, और विलासता के लिए फालतू धन की आवश्यकता होती है, धन प्राप्त करने के लिए जोर अत्याचार करता है, यों राज एक ठग बन जाता है, जिसके हाथों राजे अपना आप ठगाकर ठगे चले जाते हैं। इस तरह जिनके पास राज्य नहीं पर माल धन बहुत है, वे इसके अहंकार में ऐंठने लगते हैं। माल धन का मद भी बुरा होता है, क्योंकि माल धन भी एक प्रकार की शक्ति है, जिससे जगत के सुखों तथा लोगों को खरीद लेता है। जिसके पास फालतू धन था, उसे चाहिए तो यह था कि युक्ति चलाता, बहुत होने का बड़ा उत्तरदायित्व प्रतीत करता और उसे मनुष्यों की पीड़ा को दूर करने में व्यय करता, तब कहीं उसकी होश ठिकाने में रहती और जैसे-जैसे भला करता, उसकी बुद्धि उज्जवल होती और वह प्रभु के नाम में ऊँचा होता है। पर उसे ज्यादा धन का मद चढ़ता है, कच्चे चापलूस आकर उसके मद को बढ़ाते हैं और उसके धन का लाभ स्वयं लेने के लिए उसे कुकर्मों की ओर प्रेरते हैं। यों वह रसों भोगों में लगकर पाप कर्मों तक पहुँचकर आपा ठगा बैठता है और इहलोक तथा परलोक में बदनामी के दुख भोगता है। इसी तरह कई मनुष्य जाति के उच्चे होते हैं, जैसे हिन्दुओं में ब्राह्मण और मुसलमानों में सैय्यद हैं। ये लोग इस जाति अभिमान में अकड़कर चलते हैं। यह अभिमान इन्हें हउमैं पर विजय प्राप्त नहीं करने देता।

१. बीजे बिखु मंगै अंमृतु वेखहु ऐहु निआऊ।।

अपने-अपने शास्त्र पढ़ते सुनते अपनी बड़ाई में दूसरों पर धक्का तथा अन्याय कर बैठते हैं। फिर रूप और यौवन हैं, रूप का भी अभिमान होता है। इसमें आकर जीव हऊमें पर विजय प्राप्त करने से रह जाता है। प्रभु स्वामी ने यह देन दी थी, कि सूझ आये कि 'जिस तरह शरीर सुन्दर है, उसी जैसा मन सुन्दर हो', पर उसके उल्ट पुरुष तथा स्त्रियाँ इसके मद में आकर अनेकों पापों के भागी होते हैं और यों इस सुन्दर वस्तु के हाथों मनुष्य जन्म को ठगा लेते हैं।

पठान—हे दाता! भला रूप सुन्दरता का कोई और गुण भी है, यह तो होता ही भोगों के लिए है।

गुरू जी—सुन्दरता गुण प्रभु का है, वह सुन्दर है, सभी सुन्दरों से ज्यादा सुन्दर। उसने सुन्दरता बनाई है, जो जगत के मनुष्यों, स्त्रियों, जन्तुओं, पक्षियों, फूलों, फलों, पौधों, नदियों, तालाबों, समुद्रों, पर्वतों, बरफ़ों, झरनों में से छलांगें लगा-लगाकर हमारे मनों को मोहित करती रहती है। चन्द्र, सूर्य, तारे, नक्षत्र, आकाश, पवन, जल सब में से सुन्दरता वर्षा की भाँति झड़ी लगा रही है। मनुष्य ने इस सुन्दरता को समझने से मन को विकारों की ओर फेर लिया है और प्राप्त सुन्दरता को विकारों के प्रयोग में, जुटा लिया है। सुन्दरता तो हमारे मन को सुन्दरता के भाव में मोहित करती है और हमें हमारे अपने आप में लीन करती है, पर हम सुन्दरता देखकर सुन्दर वस्तुओं को गले लगाते हैं। जब सुन्दरों के लिए हमारे में तृष्णा उठे और हम उसे लेने के प्रयत्न में पड़ जायें तो वह तृष्णा से नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। अतः सुन्दरता का दूसरा व्यवहार यह है कि जब वह अपना मोहक प्रभाव हमारे मन पर डाले तो उसमें लीन हो जायें। मोहे जाने का जो प्रभाव अथवा आपस में विमोहित हो जाने का प्रभाव हमारे मन पर पड़ा है, वह हमें अंदर हमारे आपे में डाल रहा है, अतः उस समय आपे में एकाग्र हो जायें। इस तरह सुन्दरता का प्रभाव हमें आपे में एकाग्र करता है। यदि यह उस कर्तार ने प्रकृति में अपने चमत्कार की एक झलक दिखाई है। अतः यह उससे आती है। इस तरह की सुबुद्धि के नीचे जो सुन्दरता झलक के समय अपने आप में एकाग्र होते हैं, वे प्रभु में टिकाव प्राप्त करते हैं। इसे हे खान! हम विस्मय कहते हैं। प्रकृति में रखी हुई कर्तार की सुन्दरता का काम है हमें सोच के मण्डल अथवा संकल्प के मण्डल में से निकालकर हमारे आपे में डालना, अंदर प्रभु की स्तुति का रंग चढ़ा देना और प्रभु का स्पर्श लगा देना। हे खान! यह विस्मय है, विस्मय! प्रकृति की हरेक वस्तु विस्मय लाती है, पर मनुष्य तृष्णालु तथा स्थूल रसों का भोगी हो रहा है। इसलिए विस्मय के रस से वन्चित जा रहा है। मनुष्य अब विषय रसों में आपा लुटा रहा है। विस्मय रस में आकर आपे को इकट्ठा तथा बलवान नहीं बना रहा। प्रकृति के साथ भेंट करके कर्तार के साथ साझी नहीं हो रहा, पर सुन्दरों को ले लेने की तृष्णा को गले लगाता है, दृष्टमान से लिपट रहा है और दृष्टा से टूट रहा है।

पठान—सुन्दरता का यह प्रभाव अद्भूत है। हैं? ...हाँ, ठीक है, है ठीक! हैं? ...पर हे दाता! क्या प्रकृति की हरेक वस्तु में यह सुन्दरता तथा हरेक सुन्दरता में यह प्रभाव है?

गुरू जी 'विसमाद विसमाद' कहते हुए स्वर में धीमे होते जाते थे, नैन मुंदे जा रहे थे, यों आप मग्न हो गए, अचल चुप हो गए। मरदाना मर्मी मित्र था। गुरू के रंगों तथा मनोवेगों का ज्ञाता था। उसके स्वभाविक ही पहचान वाले हो चुके हाथ रबाब पर जा पहुँचे और टुंकार बजने लगी। गुरू के प्यारे राग आसा का स्वर बँध गया, मीठे प्यारे तथा सुन्दरता वाले कण्ठ–मरदाने के रसीले कण्ठ ने उच्चारण किया:–

विसमादु नाद विसमादु वेद॥
विसमादु जीअ विसमादु भेद॥
विसमादु रूप विसमादु रंग॥
विसमादु नागे फिरहि जंत॥
विसमादु पऊणु विसमादु पाणी॥
विसमादु अगनी खेडहि विडाणी॥
विसमादु धरती विसमादु खाणी॥
विसमादु सादि लगहि पराणी॥
विसमादु संजोग विसमाद विजोगु॥
विसमादु भुख विसमादु भोगु॥
विसमादु सिफति विसमादु सालाह॥
विसमादु उझड़ विसमादु राह॥
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु॥
नानक बुझणु पूरै भागि॥१॥ [वार आसा म: १]

मरदाने ने अब श्लोक गाकर चुप की, पर उसके राग का प्रभाव उसके कण्ठ में से निकली संगीतक सुन्दरता सबको आपे में एकाग्र कर गई। जब सब के नैन खुले तो गुरू नानक देव जी की सुन्दरता रसना उच्चारण कर रही थी–वाह, वाह, वाह और सुनने वाले भी बेबसे कह उठे–वाह, वाह!

मुफ्ती? (कुछ समय ठहरकर)–किसी ने सच कहा है: तृण के पीछे लाख है। अल्ला वाले ने कितनी सुन्दर बात समझाई है। वही सुन्दरता है, जिसे हम क्षण भर के लिए मन को प्रसन्न करने वाली समझा था, उसी को हम भोगों में पलटा कर अपना आप दुर्बल कर लिया पर उसी सुन्दरता के प्रभाव को यदि हम अपने अन्दर उसका समावेश करते तो आपे में रस आ जाता–विस्मय। कितना रस आया है–विस्मय। इस सुन्दर गायक के राग का कितना स्वाद है, वाह वाह। सचमुच हमें राज, माल, जाति तथा रूप सभी ठग रहे हैं। हम ठगे हुए समझते हैं कि हम प्रसन्नता, सुख भोग रहे हैं।

गुरू जी–भाई खान! पाँचवाँ ठग यौवन है। सुन्दरता तो हमारे मन पर बाहर से प्रभाव डालती है और हम उससे ठगे जाकर रसों भोगों में पड़ते हैं, पर यौवन हमारे शरीर की युवावस्था आने पर हमारे अन्दर से हमें ठगता है। सुन्दरता तो किसी किसी के भाग्यों में होती है, पर यौवन हरेक पर आता है। यौवन की मस्ती में सुन्दर हो अथवा कुरूप सब

कोई अपने आपको सुन्दर समझता है और उस मद में मनुष्य न केवल विकारों में ठगा जाता है, बल्कि धक्का अत्याचार भी कर बैठता है। यौवन के बल में दुर्बलों तथा कमजोरों पर अत्याचार करने से नहीं चूकता; यों भाई मनुष्य पाँचों के हाथों ठगा जाता है और आपा ठगा बैठता है और जब इनके प्रभाव के अधीन ज्यादा स्वतन्त्रता लेने लगता है तो फिर बुरे कर्मों की लज्जा खो बैठता है। करता जाता है और समझता है कि लोग नहीं जानते थे कि जैसे तू है। यदि किसी समय जान भी ले, तो तब तक लोक लज्जा की परवाह नहीं रही होती और मन उन कुकर्मों में कठोर हो गया होता है।[१]

पठान—हे सूझ के स्वामी! मैंने तो समझा था कि राज ही सभी सुखों का दाता है। सभी सुख पदार्थ राज से प्राप्त होते हैं और राज से असीम पदार्थ आ जाता है। पर आपने दिखा दिया है कि सारे दुख ही राज तथा धन माल से उत्पन्न होते हैं और सभी सामान जो हम सुखों के दाता समझते हैं, वे दुखों के दाता हैं। फिर हे दाता! क्या भिक्षा माँगकर खाना और वनों में जाकर सोना ही अच्छा हुआ?

गुरू जी—यह ख्याल भी पहले ख्यालों की भाँति ग़लत है। जहाँ-जहाँ पर कोई है, वहाँ ही कोई सुखी हो सकता है। सुख विचार में है, समझ में है। पाँचों के मद में से दुख उत्पन्न हुआ, पाँचों के क्रोध अथवा निराशा से किए हुए त्याग में से भी दुख उत्पन्न होता है। विचार होना चाहिए कि पाँचों से सुख किस तरह प्राप्त हो।

पठान (और नम्र होकर)—हे दाता! आपने कहा था कि पाँचों से यदि सुख लें तो मन थकता है और भूल करता है। इस बात की समझ नहीं पड़ी, फिर सुख कैसे लें?

गुरू जी—भाई हरेक वस्तु अज्ञानता से प्रयुक्त की गई दुख देती है, बुद्धि से यदि उसका प्रयोग करें तो सुख देती है। अज्ञानता से आग के प्रयोग से घर को जलाया जा सकता है, पर यदि उसे बुद्धि द्वारा प्रयोग में लायें तो उससे भोजन तैयार होता है और जाड़ा दूर होता है। इसी तरह इन पाँचों का अज्ञानता से प्रयोग करने पर इसके हाथों ठगे जाते हैं, पर समझ सहित प्रयोग करने से इन्हें ठग लिया जाता है। वह बात हम अभी बता चुके हैं, दोबारा समझ लो। राज प्राप्त करके राज करे, पर राज के सुखों के साथ-साथ अपने कर्त्तव्यों को भी समझे, इसका कर्त्तव्य है कि प्रजा को सुखी रखे। राजा चरवैहा की भाँति अपनी प्रजा का पालक तथा रक्षक है। करों से प्राप्त हुआ धन तथा पदार्थ राजा के विलास के लिए नहीं है, पर प्रजा के पोषण, रक्षा तथा सुख के लिए है। जब राजा यह समझकर राज करे तो उसे अपने पालन के लिए फिर हल चलाने की आवश्यकता नहीं, वह अपने उचित सुख के लिए उसी धन में से व्यय कर सकता है और उसे कोई दोष नहीं लगता। यदि राजा नहीं, धन पात्र है तो धन जो फालतू है, उन्हें भोगों तथा विलासों पर व्यय न करे, क्योंकि भोगों विलासता का फल मन का एकाग्र न होना और अन्त में दुर्बल होना है और शरीर रोगी हो जाता है। जो शरीर को निरोग रखे, स्वस्थता की सीमा के अन्दर

१. राजु मालु रूपु जाति जोबनु पंजे ठग।
एनी ठगी जगु ठगिआ किनै न रखी लज।। [मलार वार मः १]
उपरोक्त वार्तालाप इस गुरू वाक्य का खुला अनुवाद है।

विहत सुखों को सुखदाई समझे। फालतू धन को जगत की पीड़ा को हरने के लिए सामर्थ्य अनुसार लगाए। इसी तरह रूप का व्यवहार बता चुके हैं। यदि अपने पर रूप और यौवन आये तो मद में न जाए और प्रभु की देन समझकर उस बल तथा शक्ति को भलाई में लगाये और भजन करे। अपने रूप तथा यौवन के अनुभव से भी मन विस्मय में जा सकता है। यदि दूसरे स्थान पर यौवन दिखाई दे तो तृष्णा के हाथों बिक न जायें, उसे अंगों से लगाकर खींचा तानी की ओर न लगे, बल्कि उससे आपे में एकाग्र होने का प्रभाव ग्रहण करे, एकाग्र होकर मन की शक्ति को बलवान करे और विस्मय का रस भोगे। अतः जो सत्संग करके गुरूमुख बनने के इच्छुक हैं, वे विचार सहित प्रत्येक वस्तु का उचित प्रयोग करते हैं और किसी प्रभाव से आपा नहीं ठगाते, बल्कि प्रत्येक वस्तु से ऊँचे होने का प्रभाव लेते हैं, यों वे इन पाँचों को ठग लेते हैं। इन पाँचों के प्रभाव से तृष्णा के हाथों बिकना, विकारों में पड़ जाना और यों आपा खो बैठना, इनसे ठगे जाना है, पर इनसे प्रभु स्तुति का प्रभाव लेना, विस्मय में चढ़ जाना, विस्मय का रस भोगना और इनके द्वारा जगत का भला करना, यह इनको ठग लेना है। पर यह ढंग तो उच्च विचार से आता है और इस विचार का दाता आप गुरू है। अतः गुरू की शरण लेकर उपदेश प्राप्त करके उस पर चलने से इन्हें ठग लिया जाता है, अन्यथा सृष्टि इस प्रकार के कर्म से रहित होकर ठगी जा रही है।[१]

यह सुनकर पठान का मन द्रव गया, नैन भर आये और अश्रुओं की गिर रही बूँदों में मन ने कहा—यह दाता कोई प्रभु का प्यारा और कल्याण करने के लिए आया है, अब अवसर है, लाभ प्राप्त कर ले। सो रहे की निद्रा खुली है, सावधान हो, ऐसा न हो कि तू फिर सो जाये। तब वह सरदार उठा और श्री बाबा जी के चरणों पर आ झुका और कहने लगा हे दीन दयालु! मेरी भूल की क्षमा प्रदान कीजिए।

गुरू जी (उसका सिर संभालकर और सिर पर हाथ फेरकर)—देख भाई! सच यह है कि किए हुए कर्मों का फल भोगना पड़ता है, क्षमा भी हो सकती है, पर यदि फिर करने से हट जायें और रुके रहने की चिंता में तथा प्रयत्न में लग जायें। जा तुझे क्षमा किया, पर अब से सुमार्ग पर चल पड़। प्रभु को याद कर, उसकी रचना में उसकी कान्ति देख।[२] अपने आपको उसकी हुजूरी में चला। जनता को उसकी समझ और उसकी सेवा ही अपना धर्म समझ, फिर तुझ पर क्षमा होगी और तेरे परिश्रम को फल लगेगा।

पठान—हे दाता! मैं चिरकाल से कुकर्मों में लगा हुआ हूँ। तू धन्य है, तेरी दया धन्य है, जो घर में आकर उद्धार किया है। पर हे दाता! शुरू से बिगड़े हुए शीघ्रता से नहीं संवरते। यहाँ जो रात को विचार चर्चा होती है, उससे मुझे इतना ज्ञान तो है कि सचमुच भले बन जाना, सचमुच भलाई करनी और सचमुच प्रभु का होकर रहना कठिन बातें हैं।

---

१. (शेष श्लोक) एना ठगनि ठग से जि गुर की पैरी पाहि।
नानक करमा बाहरे होरि केते मुठे जाहि॥२॥ [मलार वार मः १]
उपरोक्त वार्तालाप इस सारे श्लोक का खुला अनुवाद है।

२. कुदरति करिकै वसिआ सोइ। [वार सिरी राग मः १]

हे दाता जी! यदि कुछ दिन आप मेरे पास ठहर जायें और मैं आपके विस्मय भरे नैनों की अगुवानी में चलूँ, आपके कहे अनुसार चलूँ, यदि भूल हो तो आप सुमार्ग पर चला दें, तो बात बन पड़ेगी, अन्यथा मुझे अपने बिगड़े हुए मन पर भरोसा नहीं। जगत की मिठास बड़ी तीव्र है और पके हुए स्वभाव बड़े कसे हुए संगल हैं और साथ ही दाता! मुझे अपना चेला बना ले और आप मेरे गुरू बनो[1]। मेरे सत्संग के पहले सम्बन्ध दिखाने वाले हैं, आप पर भरोसा धारण किया है, आपने भरोसा बंधवाया है, अब आप ही मेरी सहायता करो। अपने चरणों से लगाकर चरणों का स्पर्श प्रदान करके मेरा उद्धार करो।

तब वह पठान इस प्रकार की प्रार्थनाएँ करके गुरू जी को अपने घर में ले गया, जहाँ आप कुछ समय ठहरे। उसके निकटवर्ती तथा और लोग भी शिष्य बने। वहाँ की प्रजा दुखी थी, सरदार आप विकारों में लग रहा था, गुरू बाबे की अनुग्रह द्वारा एक सरदार संवरा तो उसका भला हो गया, उस एक के उद्धार से प्रजा सुखी हो गई, अनेकों का उद्धार हुआ। यों श्री गुरू नानक देव जी सज्जनता फैलाते थे और जलते हुए जगत को शीतलता प्रदान करते थे।

ऐतिहासिक पक्ष

जन्मसाखी में बाबा जी का यहाँ पर नौ महीने रहना और कड़ाह प्रसाद बनाकर 'पंजा' लगाना लिखा है, पर ठिकाने का पता नहीं दिया। तवारीख खालसा ने पठानों के देश में पता दिया है कि काबुल से नौ कोस की दूरी पार लुँडा नदी के पर असकरा नामक पर्वत है, वहाँ गुरू का कोठा और चशमा है, जहाँ नव-चन्द्र के रविवार को कड़ाह प्रसाद होता है, कहा जाता है कि पंजा लगता है। संभव है कि यही ठिकाना इस साखी के घटने का हो, पर ठिकाने की खोज करने की विशेष आवश्यकता है, क्योंकि तवारीख खालसा ने हज़ारे में भी पंजा लगने का समाचार दिया है। पृष्ट ४६२ तथा ४६६ देखिए। ईरान, रूम, रूस से होकर आंए एक सज्जन ने बताया था कि यह स्थान ईरान में अथवा उसके कहीं समीप है और वह उसे देखकर आया है।

१. ब्रह्म अग्नि[2]

जिज्ञासुः—पण्डित, पाण्डेय, काज़ी तथा मुल्ला ने कान खा लिए हैं, पाँचवाँ उसमें ज़ाहिद[3] आकर मिला, जिसने भी आ प्राणों को निचोड़ा है। कहता है कि तू शीघ्रता से इसे भट्ठी पर चढ़ा दे और इस्तिरी कर दे। अरी मूढ़! तू इस दीवार को शीघ्रता से धो दे। मैं रो-रोकर कहती हूँ कि मैं तो धो-धोकर थक गई हूँ, पानी के कुओं के कुए समाप्त कर दिए हैं, साबुन के ढेरों के ढेर लगा चुकी हूँ और कूट-कूटकर बाहें थक गई हैं। कच्ची दीवार को धोते-धोते यह दिन आ गए हैं, अनेकों वर्ष तथा युग व्यतीत हो गए हैं। यदि

१. तब वह पठान श्री गुरू नानक देव जी का शिष्य बना और गुरू जी को पीर (गुरू) समझा। [जन्मसाखी बाले वाली]

२. यहाँ पर लेखक के गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

३. जो एक प्रभु के बिना और किसी से कोई सम्बन्ध न रखता हो (संन्यासी–त्यागी)।

राज ने कच्ची दीवार बनाई है तो मेरा क्या वश चल सकता है। यह धोने से मुझसे धोई तो जाती नहीं और तुझसे भी धोई नहीं जायेगी।

गगन की पुकार:– हे ज़ाहिद[१] 'ब्रह्म अग्नि' यदि जल उठे, अगंम की लपटें लगा दे, जो अन्दर कच्चापन है वह पक्का हो जाये तो कच्ची का मैल चला जायेगा।

हे संन्यासी! जिस अग्नि की तुझे कोई सूझ नहीं, जो अग्नि ऊँचा उठाकर ले जाती है। धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक है, जो यह अग्नि जलाकर पक्का कर देता है।

२. गीत[२]

पवन के हाथ सन्देश

हे पवन! तू चलकर प्यारे के देश में मेरा सन्देश ले जा।

उसे कहना कि "हे प्यारे! मैं सन्देश लेकर आई हूँ। यह सन्देश उस विरहिणी ने दिया है, जिसे तेरा ही आधार है। उसमें प्राण नहीं है, फिर भी वह जी रही है, हे दाता! निरंतर तेरी ही आशा है, उसी से वह जीवित हो रही है। हे गोसाई! यदि आप नहीं आते और अपने पास भी नहीं बुलाते तो आपकी इच्छा है। यदि आप सन्देश नहीं भेजते, कोई दूत नहीं भेजते, हे दाता फिर भी यह आपकी आज्ञा है, आपकी प्रसन्नता है। पर हे दाता जो मेरे अन्दर तुझे मिलने का तार चल रहा है, यह तार मकड़ी के जाले का सा बारीक तार मेरे प्राणों में चल रहा है, हे दाता! इसे सुरक्षा का बल प्रदान करना। हे दाता! मैं इसी के आश्रय जीवित हो रही हूँ, यही मेरा मान है। हे प्यारे गुरू नानक! आपसे मिलने की आशा पर जी रही हूँ, इसी के सहारे चल रही हूँ। इस तार के साथ मेरे जीवन के तार को बाँधे रखना। यही मेरा आश्रय है, यही मेरा मान है।

❑ ❑

१. जो एक प्रभु के बिना और किसी से कोई सम्बन्ध न रखता हो (संन्यासी–त्यागी)।

२. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

७८ सैदपुर–बंदीछोर

: १ :

खुरासान खसमाना कीआ, हिन्दुसतान डराइआ।। [आसा म: १]

श्री गुरू नानक देव जी एमनाबाद आए। इस स्थान का नाम उस समय सैदपुर संडियाली था। यहाँ के शासक तथा मालिक पठान थे। उनकी आबादी भी काफी थी। यह स्थान बड़ी चहल पहल वाला था और मंडी भी थी। एक कोट भी था, जो खूब पक्का था। यहाँ के शासक दिल्ली पतियों, लोधी पातशाहों के अधीन थे। शहर में सय्यद तथा अन्य मुसलमानों के पीर फकीर निवास करते थे। हिन्दुओं की आबादी भी थी। कई सरकारी पद हिन्दुओं को भी मिले हुए थे। मलिक भागो यहाँ के दरबार का ही सरदार था, जिसके ब्रह्मभोज में श्री गुरू जी नहीं गए थे और जब बल डालकर आपको बुलवाया गया तो भाई लालो का पक्का हुआ कोदों एक मुट्ठी में लेकर और मलिक भागो के पकवान दूसरी मुट्ठी में लेकर दूध तथा रक्त निकालकर दिखाया था कि वह (लालो वाला) कृत्य कमाई का अन्न है और यह (भागों का) ज़ोर अत्याचार तथा घूस का अन्न है। उसके पश्चात जगत गुरू जी जलते हुए जगत की रक्षा के लिए दूर-दूर चक्कर आए थे और अब भी उसी प्रभु के रंग में रांते प्यारे लालो के ही पास आए थे। वे अत्याचार–जिनका चित्र खींचकर आप तब सच्चे मार्ग का उपदेश कर गए थे–वह कम नहीं हुआ था। दिल्ली के लोधी शासक इतने शक्तिशाली नहीं थे कि सारे हिन्द पर ज़बरदस्त सिक्का जमाये रखते, अत: जगह-जगह के शासक तथा सूबेदार अपने आप में स्वतन्त्र थे और उनकी अधीनता नाम मात्र की थी, बल्कि उनके साथ पातशाह के कई युद्ध भी हुए, इसीलिए उनका प्रजा के साथ जो व्यवहार था, वह दुखदाई था। उनके उच्च पद वाले कर्मचारी अत्याचार करते, घूस लेते और प्रजा को दुखाते थे। यही कारण था कि हिन्द में घर-घर में रोना और चर्चा थी और इसी दशा के कारण अड़ोस-पड़ोस के पश्चिमी देशों को पता चल रहा था और देश के कई लोग गरीब अथवा अमीर तंग आकर दूसरे शासकों के पास अपनी फरियाद भेज रहे थे।

अब जब श्री गुरू जी एमनाबाद (अथवा सैदपुर) पहुँचे तो एक दिन भाई लालो से हिन्दुस्तान की दुखभरी कथा चलाई कि हे सच्चे पातशाह! बहुत अत्याचार हो रहा है, इस सैदपुर में भी बड़े अत्याचार होते हैं। तब सतगुरू जी ने अपने देश के लोगों के धर्मभाव के पतन, अज्ञान में बह जाना अथवा मनों के निम्न हो जाने की व्यथा कही और यह भी बताया कि अति की गर्मी पड़ने पर आँधी आती है, वह भी वृक्षों पौधों को तोड़ती है, फिर कभी वर्षा भी होती है।

जब सायंकाल हुआ, लालो कामकाज से मुक्त होकर आया, कुछ और सत्संगी पुरुष भी कीर्तन सुनने के लिए आए, जो सतगुरू जी विस्मय में लीन बैठे थे। कमल से भी सुन्दर

चेहरा एकाग्र हुआ निमगन था, पर माथे पर आज तनिक अदृश्य से बल थे और कुछ दया का रंग दमकता था। सारे सज्जन सीस झुकाकर बैठ गए कि इतने में आपके नैन खुले। आप मुस्कराये और फिर आपने यह वाणी कही :–

तिलंग महला १॥

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआन वे लालो॥
पाप की जज लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो॥
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ फिरै परधानु वे लालो॥
काजीआ बामणा की गल थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो॥
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाहि वे लालो॥
जाति सनाती होरि हिंदवाणीआ इहि भी लेखै लाइ वे लालो॥
खून के सोहिले गावीअहि नानक रतु का कुंगू पाइ वे लालो॥१॥
साहिब के गुण नानकु गावै मास पुरी विचि आखु मसोला॥
जिनि उपाई रंगि रवाई बैठा वेखै वखि इकेला॥
सचा सो साहिब सचु तपावसु सचड़ा निआऊ करेगु मसोला॥
काइआ कपड़ु टुकु टुकु होसी हिंदुसतान समलासी बोला॥
आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला॥
सच की वाणी नानकु आखै सचु सुणाइसी सच की बेला॥२॥३॥५॥

यह शब्द सुनकर सारे कांप उठे। लालो का हृदय भी थरराया। पर सतगुरू जी ने, जो कुछ आगे घटने वाला था और जिसे आपने अंगम से जाना था, उसे निर्भय होकर कह दिया और स्पष्ट शब्दों में बताया कि मुझे यह धुर से ही सन्देश मिला है,[१] हे लालो! मैंने वह कहकर सुनाया है। उस आने वाली घटना का सन्देश यह है कि बाबर काबुल से पापों की बरात अर्थात् ज़ोर अत्याचार करने वाली सेना लेकर चलेगा और हिन्दुस्तान से सबल दान माँगेगा। दान से तात्पर्य है कन्यादान और सबल माँगेगा और कन्यादान से तात्पर्य है धन दौलत। जिसके लोभ के पीछे इस धन उत्पन्न करने वाले देश पर सदैव विदेशी अत्याचारी आक्रमण करते रहे हैं। बाहरी आक्रमण से देश में जो राजगर्दी होगी उस समय क्या होगा?

१. मलिक भागों की साखी के समय भविष्य के बारे में वाक्य कहे गए, यही प्रायः ख्याल किया जाता है। तवारीख खालसा वाले लिखते हैं कि यह शब्द घटना से कई बरस पहले उच्चारण किया गया था। कई लिखते हैं कि बाबर के आने से थोड़ा समय पहले उच्चारण किया था। शब्द की लिखित से सभी किरियाएँ भविष्य की होने के कारण यह प्रत्यक्ष है कि यह बाबर के आने से पहले के वाक्य हैं और सतगुरू जी ने अगम्य का अनुमान लगाकर भविष्य में होने वाली घटना का उल्लेख बताया है, चाहे यह चार दस वर्ष पहले उच्चारण किए चाहे दो-तीन वर्ष पहले उच्चारण किए, पर काफी समय पहले उच्चारण किए और "जैसी मैं आवै खमम की बाणी" वाले कथन से स्पष्ट है कि यह अगम का कथन किया है और बाबर के पहले आक्रमण से भी पहले का वाक्य है। बाबर ने पाँच आक्रमण किए हैं। सैदपुर वाला संवत् १५७८ में तीसरा आक्रमण है। पहले दो छोटे-छोटे और परे-परे से ही वापिस लौट गए थे, संवत् १५८३-८४ में हिंद का पूर्ण रूप से बादशाह बन गया था।

लज्जा तथा धर्म छिप जायेंगे। बाहर की सेनाओं के सिपाही तथा गुण्डे, बदमाश लज्जा तथा धर्म का त्याग करके पाप करेंगे। स्त्री–पुरुष का विवाह जो ब्राह्मण तथा काज़ी अपने–अपने धर्मानुसार पढ़ते हैं, वह बात भी नहीं रहेगी, शैतान विवाह पढ़ेगा, अर्थात स्त्री जाति का बहुत अपमान होगा। अब प्रश्न उठता है कि बाबर मुसलमान है और यहाँ के नवाब, अमीरों की बहुत–सी संख्या मुसलमानों की है, इसलिए इनकी स्त्रियों का तो सत्कार रहेगा? गुरू जी बताते हैं–नहीं, वे मुसलमान स्त्रियाँ जो परदों में बैठकर कुरान आदि पुस्तकों का पाठ करती हैं, उन पर भी इतना कष्ट टूट पड़ेगा कि वे हाय खुदा! रक्षा करना हे खुदा!! कहकर तड़पेंगी, पर कोई नहीं सुनेगा। यदि कहें कि मुगलों ने पठानों से देश छीनना है, इसलिए वे अत्याचार तो करेंगे पर हिन्दू प्रजा तो उन्होंने भी बनानी होगी, उन्हें अपने पक्ष में कर लेंगे और गरीब जातियों को, जिन्होंने सबकी दासता ही करनी है, तो कुछ नहीं कहेंगे? तो गुरू जी बताते हैं कि नहीं, उच्च जाति वालों तथा निम्न जाति वालों तथा अन्य हिन्दू स्त्रियों को भी उसी हिसाब में गिना जायेगा, अर्थात् जो दशा पठान स्त्रियों की होगी वह सब की। रक्त के गीत गाये जायेंगे और रक्त का केशर डाला जायेगा अर्थात् विवाह में गीत गाये जाते हैं और केशर छिड़का जाता है पर इस पाप की बरात के आने पर शैतान विवाह पढ़ेगा, सब पर कष्ट आयेगा, कत्लाम होगा, रक्त की नदियाँ चलेंगी और घर–घर में विलाप होगा।

[१]नानक परमेश्वर के गुण गा रहा है, इस (मांसपुरी) शरीर में बैठा यह समस्या बता रहा है। पर वह वाहिगुरू जिसने सृष्टि को उत्पन्न करके अपने–अपने रंगों में लगा दिया है, वह सबसे पृथक तथा अलग बैठा हुआ देख रहा है, अर्थात् दृष्टा हो रहा है। वह परमेश्वर सच्चा है, उसका न्याय भी सच्चा है, हरेक के कर्मों के अनुसार वह सच्चा न्याय करेगा और सच्चा विचार करेगा। शरीर वस्त्र की भाँति टुकड़े–टुकड़े हो जायेंगे। यह वाक्य जो मैंने कहे हैं, इन्हें हिन्दुस्तान संभालेगा। (देखेगा कि बिल्कुल सत्य होंगे)।

यह पाप के बराती अठहत्तर संवत में आयेंगे और सतानवें[२] में चले जायेंगे। मर्द का

१. माँसपुरी से भाव सैदपुर है, क्योंकि वहाँ मांस का व्यवहार अति का था।

२. पन्द्रह सौ अठइत्तर संवत् (१५२० अथवा २१ ई०) में बाबर ने हिंद पर आक्रमण किया, पर घर के मामलों के कारण सैदपुर आदि स्थानों पर विजय प्राप्त करके वापिस लौट गया। कुछ समय के पश्चात् वह फिर आया और राज्य स्थापित किया। १५९७ में उसका पुत्र हिमायू अपने पिता के साथ आई मुगलों की पाप की बरात लेकर ईरान को भाग गया। शेरशाह पठान को जो बड़ा योग्य शासक था, निकालकर फिर अच्छा राज्य स्थापित किया।

इस अठइत्तर तथा सतानवें की टीका में मतभेद है।

(क) शताब्दी ने कहने पर अठहत्तर तथा सतानवें के साथ बड़ी शताब्दी लगेगी कि जिसमें पवित्र वक्ता जी वाक्य कह रहे हैं और वही सबसे ठीक अर्थ है। देखिये श्री गुरू ग्रन्थ कोश खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी वाला।

(ख) अठहत्तर से भाव १५७८ लेते हैं, जब बाबर हिंद का बादशाह बना, और सतानवें से १७९७ मुराद लेते हैं जब मुगल राज्य समाप्त हुआ। १७९७ में बघेल सिंघ ने दिल्ली पर विजय प्राप्त की थी मरद का चेला बघेल सिंघ ही है।

(ग) मर्द से तात्पर्य गुरू तेग बहादुर साहब और चेला से गुरू गोबिंद सिंघ जी भी लेते हैं।

चेला और उठेगा। यह सच्च (वाहिगुरू) की वाणी नानक कह रहा है और सच्ची बात सच्च के घटते समय अपने आप ही सच्च सुना देगा।

गुरू जी के यह वाक्य सिक्खों में तो उसी समय प्रसिद्ध हो गए, पर और लोगों में भी धीरे-धीरे चल पड़े, इससे बहुत हैरानी और चिंता छा गई। एक ब्राह्मण कुछ फलों की टोकरी लेकर आया और आगे रखकर कहने लगा—हे प्रभु रूप गुरू नानक! जो वाक्य आपने उच्चारण किए हैं, वे किसी तरह देश पर न पड़ें। सतगुरू जी ने कहा—मैंने तो कुछ नहीं कहा, जो प्रभु के दरबार में हुआ है, वही तुम्हें बताया है कि देश में जो पाप फैल रहा है, उस पाप का डंडा अपने दण्ड के लिए बाबर के रूप में लिए आ रहा है, पाप ही आकर पाप से टक्कर लेगा और साथ ग़रीब भी कष्ट सहेंगे। अतः यह जीवों के कर्म तथा कर्तार की आज्ञा है, यह अचूक[१] है। यदि तू अपनी रक्षा चाहता है तो यहाँ से कुछ कोस दूर एक तालाब है, परिवार सहित वहाँ जाकर निवास कर, तब तेरी रक्षा होगी।

: २ :

उतना सारा समय जो उपरोक्त वाक्य तथा इसके घटित होने में था, व्यतीत हो गया। बाबर पाप की बरात लेकर आ गया। दिल्ली का लोधी पातशाह पठान उसे रोकने के लिए जमरोद, पेशावर, अट्टक, रोहतास अथवा जेहलम के किनारे पर कहीं भी आगे होकर टक्कर न ली, वह मुँह उठाये चला आया। देश में प्रजा अविद्या में तथा शताब्दियों के अत्याचार से मुरदा हो रही थी। शासक स्थान-स्थान पर विलासता में तथा प्रजा का रक्त पीने पर तुले हुए थे। जत्थेबंदी नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, पठान अहंकार में और हिन्दू दासता में बढ़ रहे थे, रोकता कौन? बाबर के मार्ग में आने वाले नगरों तथा गाँवों के बड़े दुर्भाग्य थे। यदि वे अधीनता स्वीकार कर लेते, घास दाना दे देते, ते वह घबड़ाते थे कि जब तैमूर की भांति देश को लूटकर यह बाबर भी चला गया, तो बाद में दिल्ली पति उन्हें मार देंगे। यदि नहीं देते तो बाबर कतलाम करता है, पर तब भी प्रायः राजाओं कंवरों ने तो गर्दन झुकाई और जिन्होंने अकड़ दिखाई उन्होंने चोट खाई।

(घ) मर्द से भाव गुरू गोबिंद सिंघ जी और चेला खालसा।

(ङ) अब कई और भाव भी निकालते हैं, पर सबसे पहला अर्थ युक्ति सिद्ध है।

१. वह उपरोक्त शब्द 'उठसी सुणइिसी, होसी, समालसी' प्रत्यक्ष रूप से भविष्यकाल के वाचक हैं। इस लिए सारे शब्द में जो क्रिया पद हैं, सारे ही भविष्य के वाचक हैं। गुरू जी भविष्य को अपनी समाधि में घट रहा देखकर कहते हैं—'धाइिआ मगेदड़ा, फिरे पड़े' आदि।

दूसरे यह शब्द केवल एमनाबाद की कत्लाम की ही भविष्यवाणी नहीं प्रतीत होता। यह सारे हिन्दुस्तान के दुखों की ओर संकेत है, "हिन्दुस्तान समालसी बोला"। लाहौर का कत्लाम तथा पानीपत का युद्ध आदि सभी घटनाएँ इसके अन्दर प्रतीत होती हैं।

यह अब से पहले भविष्य में जो कुछ घटित होना है, उसे बताया जा रहा है, जो इस तुक से बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाता है। "आऊन अठतरे जान सतानवे"। सतानवे से चले जाना कहकर गुरू जी भविष्य बता रहे हैं। ७८ में आप सदेह थे और ९७ में आप शरीर का त्याग कर चुके थे अतः यह वाक्य कहे अर्थात् भविष्यवाणी की। फिर यदि उस समय के बारे में कह रहे हो तो "जैसी मै आवै खसम की वाणी तैसड़ा करी गिआन् वे लालो" कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

सैदपुर भी इसी दुबधा में था, लाहौर तथा अट्टक के बीच यह एक भरी कोट और पठानों का सारी अड्डा था। इस शहर के लोगों तथा कर्मचारियों में यह चर्चा रहती थी कि बाबर की अंधेरी के आगे सिर झुकाकर उसे आगे जाने दिया जाये अथवा उससे युद्ध किया जाये। हिन्दू तो कहते थे कि सिर झुकाओ और बला टालो पर सय्यद तथा पीर फकीर जिनका यह एक भारी अड्डा था, वे कहते थे कि हम बाबर को अपने जादू मन्त्र द्वारा फूँक मार कर उड़ा देंगे और पठान शूरवीर कहते थे कि बाणों से सबको सदा की नींद सुला दिया जायेगा। इस तरह के झगड़ों में ही बाबर की पाप की बारात आ गई। शहर के शासक को भय था कि लोधी पातशाह बाबर के जाने के पश्चात् उन्हें मार देगा; अत: उनका टक्कर ले लेना ही अन्त में विजई होने वाली बात थी; पर उन्हें पता नहीं था कि बाबर एक नई बला लेकर आ रहा था। पश्चिम के देशों में बंदूक, जिसे तब तुपक[१] कहते थे, का अभी आविष्कार नहीं हुआ था, बाबर यह नया जंगी हथियार लेकर आ रहा था। हिन्द के पठानों के पास या तो बाण थे या युद्ध करने वाले सवार, नेज़ेबाज़ अथवा हाथी या रथ थे। अत: सैदपुर के पठानों ने दुर्ग तथा शहर के द्वार बन्द कर लिए और बाबर को रसद पानी देने से इन्कार कर दिया। सिपाही धनुष बाण लेकर सफीलों पर चढ़ बए, काज़ी मुल्ला तथा पीर मस्जिदों में जाकर प्रार्थनाएँ करने लगे और अभिशाप देने के लिए बैठ गए और हिन्दू पण्डित तन्त्रों-मन्त्रों पर लगा दिये गए। सभी पठानों का निश्चय हो गया कि उनके पीर कलमा पढ़कर बाबर की बन्दूकों तथा 'तोपों' को ठण्डा कर देंगे।

बाबर ने 'अवाण' नामक गाँव में डेरा डाला और अपने सिपाही खड़े करके सैदपुर पर गोलियों की वर्षा की। फिर उसकी चतुरता से दुर्ग में छेद हो गया, वह आगे बढ़ा, जो शूरवीर आगे बढ़कर लड़े, वे मारे गए। न तो तीरों ने कोई सहायता की और न ही नेज़े काम आये। अब मुग़लों की सेना धावा बोलकर दुर्ग में जा घुसी। सिपाहीओं के साथ तो सिपाहीओं ने युद्ध करना ही था, बाबर की पाप की बरात सफील तोड़कर शहर में भी चली गई और इतना कतलाम किया कि अपनी असभ्यता अत्याचार तथा कहर का आतंक जमा दिया। आसपास के गाँव भी लूटे और बरबाद किए, हिन्दू और पठान, मुसलमान नीच ऊँच सभी के साथ एक-सा व्यवहार हुआ। हिन्दू मुसलमान स्त्रियों के परदे फाड़ दिये, उन्हें बालों से पकड़कर बाज़ारों में घसीटा और उनके मुँह में राख भर-भरकर और मार पीटकर घरों में रखा और धरती में गाढ़े हुए आभूषण रुपये आदि निकलवा लिए; किसी की मान प्रतिष्ठा की रक्षा न हुई। कत्ल करने में, मारने में न बालक, न वृद्ध, न स्त्री किसी पर भी दया न की गई। अमीर तथा कुँवर, नवाबों के पुत्र तथा रईस, सभी को उजाड़ा गया। मुसलमानों का अपने धर्म का भी कोई ध्यान न रखा गया। कोई गुप्त स्थलों पर, कोई भूसों के कोठों में छिप जाने पर कोई-कोई बच सका।

अब बाबर के बरातियों ने भोजन, घास चारे के स्थान पर हज़ारों, लाखों रुपयों के मूल्य के आभूषण, जवाहर, वस्त्र, सोना, चाँदी उड़ाया और महलाओं को बाँधकर ले चले। लूटमार का सामान उठाने के लिए उन लोगों को कैदी बनाकर लगाया जो कत्ल होने से

१. पश्तो में अब भी तुपक बन्दूक को कहते हैं।

बच रहे थे। खानों की बेटियां तथा स्त्रियों के वस्त्र फटे हुए थे, घाव लगे हुए थे, वे धूल तथा राख से भरी हुई, अपमानित हुई-हुई, रस्सों से बांधकर साथ ली जा रही थीं। इस आक्रमण के समय गुरू जी फिर एमनाबाद आए हुए थे। इस समय गुरू बाबा और मरदाना भी बन्दी में पड़ गए। मरदाने के सपुर्द मीर खान नामक एक सरदार का घोड़ा कर दिया गया कि वह उसे लेकर चले। लिखा है कि गुरू जी ने मरदाने से कहा—घोड़े को छोड़ दे और तू कीर्तन करता चल और आप भी गुरू जी किसी कौतुक के लिए दासता में पड़कर प्रभु के रंग में मग्न चले जा रहे थे। लिखा है कि एक बोझा गुरू बाबे को भी मिला और अपने आप ही उठाया हुआ आपके साथ-साथ आ रहा था। सतगुरू जी यह दुख भरी दशा देखते जा रहे थे। दासता में भटकती हुई स्त्रियाँ बांधकर साथ ली जा रही थीं। बरबादी, लूट, हत्याएँ और शहर का पतन चारों ओर छा रहा था, अतः अपनी आँखों देखा उस समय का हाल बड़े वैराग के रंग में उच्चारण हुआः—

रागु आसा महला १ असटपदीआ घरु ३
१ ओअंकार सतिगुर प्रसादि॥
जिन सिरि सोहनि पटीआ माँगी पाइ संधूरु॥
से सिर काती मुंनीअनि गलि विच आवै धूड़ि॥
महला अन्दरि होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि॥१॥
आदेसु बाबा आदेसु॥
आदि पुरख तेरा अन्तु न पाइया करि करि देखहि वेस॥१॥रहाऊ॥
जदहु सीआ वीआहीआ लाड़े सोहनि पासि॥
हीडोली चड़ि आईया दंद खंड कीते रासि॥
उपरहु पाणी वारीअै झले झिमकनि पासि॥२॥
इकु लखु लहनि बहिठीआ लखु लहनि खड़ीआ॥
गरी छुहारे खांदीआ माणनि सेजड़ीआ॥
तिन गलि सिलका पाईआ तुटनि मोतसरीआ॥३॥
धनु जोबनु दुइ वैरी होए जिनी रखे रंगु लाइ॥
दूता नो फुरमाइआ लै चले पति गवाइ॥
जे तिस भावै दे वडिआई जे भावै देंहि सजाइ॥४॥
अगो दे जे चेतीअै तां काइतु मिलै सजाइ॥
साहां सुरति गवाईआ रंगि तमासै चाइ॥
बाबर वाणी फिरि गई कुइरू न रोटी खाइ॥५॥
इकना वखत खुआईअहि इकना पूजा जाइ॥
चऊके विणु हिंदवाणीआ किऊ टिके कढहि नाइ॥
रामु न कबहूँ चेतिओ हुणि कहणि न मिलै खुदाइ॥६॥
इकि घरि आवहि आपणै इकि मिलि मिलि पुछहि सुख॥
इकना एहो लिखिआ बहि बहि रोवहि दुख॥
जो तिसु भावै सो थीअै नानक किआ मानुख ॥७॥११॥

इस समय मीरखान प्रबन्ध के सम्बन्ध में वहाँ आ निकला जहाँ गुरू बाबा जी जा रहे थे। जब उसकी दृष्टि पड़ी तो क्या देखता है कि बंदी में पड़े दो हिन्दीयों की अद्‌भुत सी दशा है। एक का बोझा उसके सिर से कोई हाथ भर की ऊँचाई पर अपने आप उठाया चला जा रहा है, दूसरा रबाब बजाता जा रहा है सौर उसके अधिकार में जो घोड़ा था, वह बग़ैर पकड़े पीछे-पीछे जा रहा है और एक आश्चर्यजनक मधुर राग गायन किया जा रहा है।

इधर बंदी में आए हुए सारे हिन्दुस्तानी जिनमें जगत की शिरोमणि ज्योति भी जा रही थी, बंदी बनाने वालों के डेरे की ओर चले जा रहे वहाँ पहुँचे। वहाँ पर अलग-अलग कामों पर बंदीवानों को नियुक्त किया गया था। गुरू बाबे के आगे तथा मरदाने के आगे भी चक्कियाँ रखी गईं कि अन्न पीस दें। उधर मीरखान बाबर के पास पहुँचा और बताया कि दो फकीर बंदी में आए हैं पर वे प्रसन्न तथा शान्त चेहरे से जा रहे हैं, बोझा उनसे दूरी पर चलता है और घोड़ा अपने आप पीछे जाता है और वे कोई ईश्वरीय नाद गाते हुए जा रहे हैं। बाबर ने कहा–"शोक की बात है, यदि कोई ऐसा फकीर इस नगर में था तो हमने इस नगर पर क्यों आक्रमण किया?" यह कहकर बाबर स्वयं चलकर उन बंदीवानों के डेरे पर आया। आकर देखा कि हिन्दू मुसलमान पठान स्त्रियाँ सभी चक्की पीस रहीं हैं और बड़े-बड़े धनी परिश्रम कर रहे हैं। आगे जाकर क्या देखा कि वे दोनों फकीर बैठे हैं, पर उनकी चक्कियाँ अपने आप चल रही हैं।

बाबर यह देखकर स्तब्ध रह गया। गुरू जी को बुलाया तो वे विस्मय की दशा में समाधिस्थित थे। थोड़े समय के पश्चात् नैन खुले और 'वाहिगुरू' की स्तुति का एक शब्द उस ईश्वरीय कंठ से गायन हुआ। इस शब्द की आवाज़ तथा स्वर से वैराग का ऐसा प्रभाव छाया कि बाबर तथा अमीर खान तथा अन्य मुगलों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। समाप्ति होने पर बाबर ने कहा कि इस फकीर के माथे पर खुदा है और यह भी लिखा है कि बाबर ने आपके चरण चूमे और सभी मुगल अधिकारियों ने सीस झुकाया। बाबर ने कहा–हे प्रभु के प्यारे! क्षमा करो और मेरी ओर से कुछ उपहार स्वीकार करो। तब दया के सागर ने कहा–हे बाबर! हमें किसी वस्तु की कोई आवश्यकता नहीं यदि तैने उपहार देना ही है तो इन बंदीवानों को मुक्त कर दे, इनका माल धन लौटा दे। बाबर ने उस समय सारी बंदी मुक्त कर दिये और उनका माल धन भी लौटा दिया, पर सभी बंदीवानों ने कहा कि हमारा बंदीछोर भी हमारे साथ चले। तब बाबर ने बड़े आदर सहित गुरू जी को सैदपुर के बंदीवानों सहित चले जाने की आज्ञा दे दी। शहर में से पहरे उठा लिये गए और सारी सेना को आज्ञा दे दी कि अब कोई भी किसी का न छेड़े, हमने सबको रक्षा का वचन दे दिया है।

स्वतन्त्रता के दाते श्री गुरू जी आप बंदी में पड़कर बंदीवानों को मुक्त कराकर उन्हें साथ लेकर सैदपुर शहर में आए तों क्या देखते हैं कि आगे सब कत्लाम हुआ पड़ा है, उस समय दर्दभरी दशा देखकर गुरू जी ने शब्द उच्चारण किया :–

आसा महला १ असटपदीआ घरु ३॥
कहा सु खेल तबेला घोड़े कहा भेरी सहनाई॥
कहा सु तेगबंद गाडेरड़ि कहा सु लाल कवाई॥
कहा सु आरसीआ मुह बंके ऐथै दिसहि नाही॥१॥

इहु जगु तेरा तू गोसाई॥
एक घड़ी महि थापि उथापे जरू वंडि देवै भाई॥१॥रहाऊ॥
कहां सु घर दर मंडप महला कहा सु बंक सराई॥
कहाँ सु सेज सुखाली कामणि जिसु वेखि नीद न पाई॥
कहाँ सु पान तंबोली हरमा होईआ छाई माई॥२॥
इसु जरि कारणि घणी विगुती इनि जर घणी खुआई॥
पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई॥
जिसनो आपि खुआए करता खुसि लए चंगिआई॥३॥
कोटी हू पीर वरजि रहाए जा मीर[1] सुणिआ धाइआ॥
थान मुकाम जले बिजमंदर मुछि-मुछि कुइर रूलाइआ॥
कोई मुगलु न होआ अन्धा किनै न परचा लाइआ॥४॥
मुगल पठाना भई लड़ाई रण महि तेग वगाई॥
ओनी तुपक ताणि चलाई ओनी हसति चिड़ाई॥
जिन की चीरी दरगाह फाटी तिना मरणा भाई॥५॥
इक हिंदवाणी अवर तुरकाणी भटिआणी ठकुराणी॥
इकना पेरण सिर खुर पाटे इकना वासु मसाणी॥
जिनके बंके घरी न आइआ तिन किऊ रैणि विहाणी॥६॥
आपे करे कराए करता किसनो आखि सुणाईअै॥
दुखु सुखु तेरै भाणै होवै किसथै जाइ रूआईअै॥
हुकमी हुकमि चलाए विगसै नानक लिखिआ पाईअै॥७॥१२॥

"सैदपुर की बंदी तथा दरबंदी गुरू बाबे नानक ने मुक्त कराई है", यह बात क्षणों में फैल गई। सैदपुर के लोग जो भाग गए थे, वापिस लौट आये। शहर में मरे हुओं के दुख पर विलाप, लूटे जाने का संताप, घर मकान गिरने के कष्टों पर विलाप होने लगा। जो अपमानित होकर अथवा कैद काटकर वापिस लोटे, वे बिछड़-बिछड़कर मिले। उस कलेजा चीर देने वाले समय गुरू बाबे ने 'जैसे गोइल गोइली तैसे संसारा'' का शब्द गाया। लोग अपने-अपने मर चुके सम्बन्धियों का दाहसंस्कार अथवा दबाने लगे और अपनी आजीवका के बारे में सोचने लगे।

अब गुरू बाबे को पता चला कि बाबर की बंदी में अभी बहुत लोग बाकी हैं। मार्ग में जिस किसी पर संदेह हुआ, उसी को पकड़कर साथ ले लिया। सिपाहियों ने सुन्दर स्त्रियों को कैद कर रखा था। सैदपुर के गाँवों के बहुत से लोग अभी कैद में थे और इस कैद का डेरा कुछ दूरी पर लगा था। कई लोग जिन्हें घरवालों ने मर गया, कत्ल हो गया समझ रखा था, वे अभी बंदी में थे और उनसे सख्त परिश्रम करवाया जा रहा था। करुणमय यह सुनकर बाबर के डेरे की ओर फिर जा निकले और यह शब्द गाया :-

---

१. बाबर के लिए आया है।

आसा महला १

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुस्तान डराइआ॥
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ॥
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ॥१॥
करता तू सभना का सोई॥
जे सकता सकते कऊ मारे ता मनि रोसु न होई॥१॥रहाऊ॥
सकता सीहु मारे पै वगै खसमै सा पुरसाई॥[1]
रतन विगाड़ि विगोए कुतीं मुइआ सार न काई॥
आपे जोड़ि विछोड़े आपे वेखु तेरी वडिआई॥२॥
जे को नाऊ धराए वडा साद करे मनि भाणे॥
खसमैं नदरी कीड़ा आवै जेते जुगै दाणे॥
मरि मरि जीवै ता किछु पाए नानक नामु बखाणे॥३॥५॥३९॥

इस शब्द की दर्दभरी ध्वनि जब शमियाने के नीचे बैठे हुए बाबर के कानों में पड़ी तब कहा जाता है कि उसने गुरू जी को लिवा भेजा और बड़े सतकार सहित पूछा कि आप क्या गायन कर रहे थे? उस शब्द का भाव जब बाबर ने समझा तो उसे लज्जा आई और मन नम्र हुआ और गुरू को भाँग देने लगा। गुरू जी ने इनकार कर दिया और :–

"भऊ तेरा भाँग खलड़ी मेरा चीतु।"

यह शब्द सुनाया। इस पर प्रसन्न होकर बाबर ने कहा कि आप हमारे साथ रहो। बहुत हठ करने पर आप तीन दिन रहे, पर तीनों दिन बन्दीवानों को देख देखकर दया के रंग में जाते रहे। तीसरे दिन गुरू जी कीर्तन करते हुए विस्मय के घर मग्न हो गए। बाबर ने समझा कि कहीं शरीर का त्याग कर रहे हैं, पर कुछ समय के पश्चात् महाराज जी सावधान हो गए। उनके चेहरे पर अदेश का सौन्दर्य दमका और ऐसा जलाल आया कि बाबर ने आपसे अनुग्रह माँगी। तब गुरू जी ने कहा–यदि तू अनुग्रह चाहता है तो सभी बन्दीवानों को मुक्त कर दे। बाबर ने कहा–जो आपकी आज्ञा हो मैं वही करने के लिए तैयार हूँ, पर आप प्रार्थना कीजिए कि मेरा राज मत हिले। गुरू जी कहने लगे, "तेरा राज तब रहेगा, यदि तू हिन्द में हिन्दी (भारतीय) हो जायेगा। हिन्दू मुसलमानों को अपने दो नैन समझेगा, निःपक्ष न्याय करेगा, मदिरा जुआ का पक्ष मत लेगा, सन्तों फकीरों का सत्कार करेगा, पराजित पर दया करेगा। तब तो राज रहेगा अन्यथा राज्य सदैव रहेगा नहीं। न्याय सूर्य तथा राज्य प्रश्छाई है, यदि न्याय गया तो राज्य गया। बाबर ने इस पर सभी बन्दीवान मुक्त कर दिए और अब गुरू जी को इसलाम स्वीकार करने के लिए कहा पर इस विचार में कोई मुसलमान विद्वान उनके साथ पार न उतर सका। कहा जाता है कि "जित दर लख मुहंमदा" वाला शब्द, यहाँ

१. अर्थात् सैनिक यदि सैनिकों से लड़ें तो अलग बात है, पर सैनिकों का शहरों की न लड़ने वाली आबादी को मारना तथा लूटना महान पाप है। यह व्यंग्य बाबर के मन को चुभ गया। क्योंकि शस्त्रहीन पर शस्त्रधारी सेना का आक्रमण करना बड़ी कायरता है।

पर उच्चारण किया। बाबर से विदा लेकर और शेष बंदीवान उससे मुक्त करवाकर गुरू जी पसरूर की ओर चल दिए। बाबर भी उस समय यहाँ से ही वापिस लौट गया लिखा है।

लिखा है कि उपरोक्त समाचार कार्तिक संवत् १५७८ के आरम्भ में हुए[१]। सच्चे पातशाह ने अपने ईश्वरीय रंग में हम पर कितने उपकार किए हैं? सैदपुर, जहाँ अब एमनाबाद नगर आबाद है, किस आपत्ति में आया? अत्याचारी बाबर के अत्याचार ने वहाँ पर कितना अत्याचार किया? पर गुरू बाबे ने अपनी दैवी शक्ति से अपने आप पर कष्ट सहन करके किस तरह अनुग्रह की और दुखियों के कष्ट मिटाए? आपने कितना कष्ट सहन किया? कितने बड़े निर्दय पातशाह के साथ जा टक्कर ली और किस तरह उससे दुखियों को मुक्त कराया। यहाँ ही बस नहीं, गुरू बाबे ने फिर सैदपुर[२] के लोगों को नाम का दान प्रदान किया। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है :–'तब सैदपुर के बहुत से लोगों ने गुरू जी से प्रभु का नाम धारण किया। वहाँ पर गुरू जी के उच्चारण किए हुए शब्द झाड़ू कलाल नामक एक व्यक्ति ने लिखे जो बन्दीवानों में से था।'

सतगुरू के यह प्यार, अनुग्रह, हमारी आत्मा को सतगुरू जी के व्यक्तिगत प्यार में बाँधते हैं। हमें उनके प्रेम के कृतज्ञ बनाते हैं और यह कितना प्यार, धन्यवाद और उनके नाम से बलिहारी होने का भाव हमारे अन्दर भरता है।

❑ ❑

---

१. बाबर का यह आक्रमण संवत् १५७८ अथवा १५२१ ई० में हुआ। दूसरा १५२४ ई० में जब लाहौर को जलाया गया और तीसरा १५२६ ई० में था जब पानीपत का युद्ध जीतकर दिल्ली का राज्य सँभाल लिया।

२. सैदपुर का पहला नाम पुरातन जन्मसाखी में 'सैदपुर संडियाली' लिखा है। बाबर के कत्लाम के पश्चात् यही नाम रहा। संवत् १५९७ में हुमायूँ भाग गया और शेरशाह आया। इसने भी इस नगर को बसाया और नए ढंग का बनाकर इसका नाम शेर गढ़ रखा। अकबर के समय एक शासक ने इसका नाम एमनाबाद रखा, पर आम प्रचलित बात यह है कि बाबर से मुक्ति दिलवाने के कारण गुरू बाबे के समय से एमनाबाद हो गया, और शेरशाह के नाम बदलने पर भी नाम एमनाबाद ही रहा। यह स्थान अब तक है, जिला गुजरांवाला (पश्चिमी पाकिस्तान) है। यहाँ रोड़ी साहब, भाई लालो का कुआ तथा अन्य कई गुरू जी के स्थान हैं।

७९ भाई तारा का प्रसंग

[१]लाहौर शहर के पास एक गाँव था, उसकी आबादी बहुत ज्यादा थी। वहाँ गुरू नानक देव जी का एक सिक्ख रहता था, जिसकी तपस्या की आशा अब पूरण हो रही थी। उस समय लोधी वंश का राज्य हिल रहा था और बाबर पातशाह अपना राज्य जमा रहा था। लाहौर शहर बारह कोसों में बसता था, वहाँ चारों युगों की चहल-पहल इकट्ठी हो रही थी। बाबर काबुल से दलों को लेकर चला था और मार-मार करता चला आ रहा था। किसी ने भी उसका मुँह नहीं तोड़ा था और वह सिंघ की भाँति गर्जता हुआ आ रहा था। वह लाहौर में आ पहुँचा और वहाँ युद्ध किया। युद्ध को जीतकर आग लगा दी। शहर आग मे बुरी तरह भड़ककर जल रहा था और बड़ा भयंकर दृश्य था। गुरू जी की अगम की कही हुई बात सच्ची हुई जिन्होंने 'ज़हिर कहिर लाहौर'[२] कहा था। सवा पहर में ही तूफान मच गया और जो कुछ गुरू जी ने कहा था, वह सत्य हुआ। जब भाई तारा को इस बात का पता चला, तो जगत के दुख हटाने के लिए चला। प्रलय सुनकर उसका कलेजा काँप गया और परोपकार करने के लिए जी उछला। जब घर से जाने लगा तो बहन ने रोका, कहने लगी "हे भैया! मत जाओ! हे वीर। ईश्वर के लिये जलती हुई भट्टी में छलाँग मत लगाओ।" लाहौर पर बाबर की दुहाई फिर गई है और वह विपत्ति किसी तरह भी हटाई नहीं जा सकती थी। ज्वालामुखी पर छींटे मारकर उसके अग्नि के स्त्रोत को कैसे कोई शान्त कर सकता है?

तारा कहने लगा, बहन जी, तुम छोड़ दो! ईश्वर के मनुष्यों पर कष्ट बना है। प्रभु आप ही रक्षा करता है और आप ही मारता है, हम मनुष्यों के हाथ में क्या है? पर मैं घर में कैसे बैठ सकता हूँ जब जगत पर दुख की आँधी चल रही है। गुरू जी की आज्ञा भलाई करने की है, इसलिए मैंने अपने प्राण न्योछावर करने की ठानी है।"

बहन कहती है "हे वीर! ईश्वर के लिए मत जा, क्योंकि तू जीवित कभी वापिस नहीं लौटेगा। मैं बड़ी मिन्नतें करती हूँ, मैं तुझे कभी भी घर से नहीं जाने दूँगी। तेरे जाने से पिता के वंश का बाग़ उजड़ता है, क्योंकि वंश में और कोई पुत्र नहीं। तू अकेला ही इस वंश का दीपक है।" "बहन कहती है कि तू इस तरह अपने जीवन को जुए पर मत लगा।"

भाई ने कहा, "हे बहन! मुझे जाने दे, सेवा का समय जा रहा है। हे मेरी बहन! अन्त में सब को मरना है और शरीर को सफल करने का समय व्यतीत हो रहा है। मुझे तो तब आनन्द आएगा जब मैं दो चार की रक्षा कर लूँगा। मैं सदैव गुरू नानक का सिक्ख कहलाता हूँ, दुख देखकर मुझ से रहा नहीं जा सकता।"

---

१. यहाँ पर लेखक की कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

२. लाहौर सहरु जहरु कहरु सवा पहरु।। [वारा ते वधीक महला १]

बहन ने कहा, "हे भैया! तेरे बिना संसार मेरे लिए अन्धकार है। हे साहसी संत भाई! तू रोती हुई माँ तथा बहन को छोड़कर मत जा। संसार में सब कुछ प्राप्त हो सकता है पर सहोदर, भाई एक बार ही मिलता है। माता तथा बहन की आशा को मत तोड़, उनके दिनों का पासा मत पलट।"

तारा–हे बहन! कई ईश्वर के मार्ग पर जाने वाले आग में फंसकर दुख सहन कर रहे हैं। वे शरीर का त्याग कर देंगे, यदि मैं ही एक प्राणी के निकल रहे प्राण को बचा सकूँ तो बहन तेरा भी पुण्य होगा और माँ का भी भला होगा और साथ-साथ मेरा कल्याण भी हो जायेगा। अरी बहन! जिन श्वासों को संभालकर रखा जाता है, अन्त में वे देह में से तो निकल ही जाते हैं।

बहन, माँ तथा रोते हुए मित्रों का त्याग करके सिक्ख भागकर निकल गया। भागता-भागता लाहौर जाकर पहुँचा और जलते हुए घरों में जा घुसा। वहाँ अत्यन्त अत्याचार हो रहे थे। हाहाकार और धुधँकार मचा हुआ था जिन्हें देखकर पत्थर चित्त भी द्रवित हो रहे थे। मानो आग की वर्षा हो रही थी। भाई तारे ने उठकर अपना बल लगाया, कई घरों के अन्दर गया। कई स्थानों पर बालक, बच्चे, वृद्ध आग में घिरे हुए थे, उन्हें कन्धे पर उठाकर बाहर लाने लगा। कई स्त्रियों को जलते हुए घरों में से कन्धे पर उठाकर बाहर ले आया। कई भूले भटकों को भी खींचकर लाया और उन्हें बाँहों से पकड़कर सुरक्षा के मार्ग पर चलाया। कई अत्याचारियों को ताने दिये। हाथ जोड़कर उपदेश दिया। उन्हें साहस देकर अपने साथ लगाया, इस तरह सेवादार बढ़ाता जा रहा था। जहाँ वह कहता था, वहीं वे लगकर सेवा करते थे, इस तरह उसने बहुत से ईश्वर के मनुष्यों को बचाया। इसकी बड़ी भारी सेवा को देखकर और बहुत से लोगों में सेवा का चाव आ गया। इसे साहसी नेता देखकर इसके अनुयायीओं की संख्या बढ़ रही थी। कोई घरों के नीचे दबे हुए मनुष्यों को निकालकर बाहर ला रहा था। जहाँ भी आग का भारी ज़ोर देखता था, वहीं पर भागकर जाता था। बालकों, वृद्धों, युवकों स्त्रियों को आग से बाहर निकालकर लाता था। कई स्थानों पर यह आज्ञा करता था और जल डालकर आग बुझाता था। मुख्य रूप से प्राणों की रक्षा करता था और साथ-साथ माल धन भी बचाता था।

हे मित्रो! यह एक सिक्ख का साहस था जिसने सैकड़ों को सुख दिया। जिनके पास साहस नहीं रहा था, वह उनमें साहस भरता था और अकड़ वाले लोगों को सेवा में लगा लेता था। यद्यपि शहर तो एक मिट्टी का ढेर बन गया, तथापि उसने बहुत से लोगों के प्राण बचाए। उधर शत्रुओं को यह देखकर बहुत क्रोध आया और उन्होंने बाबर के पास जाकर चुगली की। इस पर मार-मार करते हुए मुग़ल आ पहुँचे और उस सेवा करने वाले को बाँध लिया। इसके सारे साथी भी पकड़ लिए गए, इस शीतलता प्रदान करने वाले को आगे लगा लिया। उन्हें कैदियों की तरह बाबर के पास ले जाया गया और कहा "हम इस शाही आज्ञा के विपरीत चलने वाले को पकड़कर लाए हैं।" बाबर ने उस से पूछा "बता! तुझे क्या दण्ड दिया जाये, तुझे आते को ही जलाकर राख न कर दूँ?"

तारे ने इस पर सावधान होकर कहा, "हे बाबर पातशाह! तुझे प्रभु ने भेजा है, तुझे प्रजा के पाप बुलाकर लाए हैं, यह सारी आंधी प्रभु की आज्ञा में ही चली है। जिस प्रभु ने तुझे भेजा है, उसी ने मुझे अग्नि बुझाने के लिए भेजा है। हे बाबर! मैंने उसी की आज्ञा मानकर जल डालने का काम लिया है।" इस पर बाबर ने कड़ककर कहा, "अरे तू झूठ क्यों कहता है, बता तुझे किसने भेजा है?"

तारा—हे पातशाह! तू सुन, मैं गुरू नानक का शिष्य हूँ, जिस गुरू नानक को प्रभु ने कहकर भेजा है। उसी ने भला करने की सुमति प्रदान की है, उसी ने मुझे प्रभु को चेते करना बताया है। उस प्रभु ने मुझे प्रेरणा की है और उसी ने सेवा करने के लिए बुलाया है।

पातशाह गुरू का नाम सुनकर चौंका और बार-बार "नानक-नानक" मुँह से उच्चारण किया। उसे सैदपुर की घटना याद आई और गुरू की आज्ञा भी ध्यान में आई। उस गुरू ने न्याय करने की आज्ञा दी थी, यह सोचकर बाबर के हृदय में सत्कार भर आया। उसका क्रोध टल गया और अन्दर दया आ गई और मन में तारे का सत्कार भी आ गया। उसने तारे के बन्धन खोलने के लिए आज्ञा की और सारे शहर का कत्लाम भी बन्द हो गया। उसके साथी भी मुक्त कर दिये गये और उन्हें सेवा करने के लिए आज्ञा दे दी और यह भी कहा कि कोई भी मुग़ल इन्हें ऐसा करने से न रोके। उसने शहर को लूटने के लिए सेना को मनाही कर दी और घरों को जलाना भी बन्द करवा दिया। तारा अपने साथियों सहित मुक्त हो गया और बन्दियों को भी मुक्त करा दिया।

सिक्ख में शहर की रक्षा करने का बल नहीं था। उसमें अत्याचार को टालने का सामर्थ्य भी नहीं था। बाबर के अत्याचार को झेलने का सामर्थ्य एक मनुष्य में कहाँ हो सकता था। परन्तु उसका साहस देख लीजिए, उसमें प्रभु ने क्या शक्ति भर दी। शेष शहर भी बच गया और सबको क्षमा कर दिया गया और कत्ल के स्थान पर प्राणों की रक्षा हो गई। अत्याचार होने बन्द हो गए, लूट बन्द हो गई, आग बन्द हो गई। इसने सच्चे हृदय से थोड़ा-सा परिश्रम किया और उसे चार चाँद लग गए। कई प्राणों की रक्षा हुई, लोगों के हृदय प्रसन्न हुए और कई मृत्यु की फाँसी में से बचकर निकल आए। चारों ओर उसकी धाक जम गई, कि भाई तारे ने कष्टों का बोझा उतार दिया है।

हे प्यारे! सिक्ख का जीवन इस तरह का होना चाहिए कि वह सेवा करे और अहंकर रहित हो। वह पुण्य की कोई कामना न रखे उपकार को गुरू की सेवा समझकर करे। राज्य योग कमाकर धर्म का पालन करे, प्रभु का नाम जपे और सदैव लौधारी हो। उसका काम सच्चा उपदेश करना हो और उसका ज्ञान भला काम करने का हो।

❑ ❑

८० भक्तों के साथ गोष्ठी

धन्य श्री गुरू नानक देव जी! चार-पाँच यात्राएँ करके सतगुरू जी आप जगत में फिरे और घरों में जा जाकर 'सतनाम' का उपदेश दिया। पहली यात्रा के पश्चात् आप घर आए और यहां से उठकर एक चक्कर अपने देश में लगाया और स्थान-स्थान के फकीरों, संतों तथा महापुरुषों की त्रुटियाँ निकालकर उन्हें सुमार्ग पर चलाया। देश का चक्कर लगाकर फिर घर आए और कई दिन घर रहे। फिर घर से चलकर कर्तारपुर स्थापित किया और कुछ समय वहाँ ठहरे। फिर दूसरी यात्रा सिंहलद्वीप–दक्षिण–की हुई और तीसरी उत्तरखण्ड की। जब यात्रा से वापिस लौटते थे तो कर्तारपुर आकर ठहरते थे। उन समयों में जब यात्रा समाप्त करके टिककर बैठ जाते थे तब जिज्ञासु, खोजी, साधु, संत विचार करने वाले, समस्याओं का समाधान करने वाले, भेषों के बड़े तथा मण्डलियों वाले अनेकों पुरुष आते और लाभ उठाते थे। एक बार एक भक्तों की मण्डली, जोकि ठाकुर के उपासक थे, आपसे मिलने के लिए आई। यह लोग ठाकुर की मूर्ति बनाकर पूजते थे और उनके आगे तरह-तरह के नृत्य राग रंग करते थे और अनेक प्रकार की रीत-रिवाज करके तथा और बातों में लगकर भक्ति करते थे। यह मण्डली कुछ शौक वाली थी और इसे कुछ बातों के निर्णय की इच्छा थी। यह कुछ दिन आकर सतगुरू जी के पास ठहरे और अपने मार्ग पर चलते रहे। इनका विचार था कि गुरू जी भी उनकी भांति साकार मूर्ति रचकर उसकी उपासना करते हैं, पर उन्होंने देखा कि गुरू तो निराकार–निरंकार–का उपासक है। फिर जब देखा कि परम अतीत है और परम प्रसन्न है तो चकित हुए कि रूप रेख से रहत की भक्ति किस तरह सिरे चढ़ाई है और प्रतीत होता है कि पूर्ण पुरुष है अतः शंका निवृत करनी चाहिए। अतः आकर बैठे और कहने लगे–हे प्रभु के भक्त ऋषि जी! यह जीव जो कुछ करता है, पाप अथवा पुण्य, यह स्वयं करता है अथवा कोई दूसरा करवाता है? इसका प्रेरक कौन है? यह तो प्रत्यक्ष है कि माया के पीछे लगे रहते हैं, चाहे प्रेरक कोई ही हो। इस अतृप्त को तृप्ति कैसे आए? फिर यह जीवित अतृप्त रहने वाला मरकर भी भटकता है, इस भटकन से इसकी मुक्ति कैसे हो?

गुरू जी–देखो भाई भक्तजनो! धन-दौलत, स्त्री आदि पदार्थ देखकर शरीर की सुन्दरता तथा यौवन देखकर जीवन के अन्दर अभिमान उत्पन्न होता है[१]। अभिमान के दो रूप हैं[२]। १. जो वस्तु प्राप्त है उसका मान और साथ ही यह इच्छा कि यह बने रहें और २. जिन्हें यह पता नहीं, उन्हें अंदर टोटा और साथ यह भी इच्छा कि किसी तरह यह प्राप्त हों (यह अभिमान का ही उलट है।)।

---

१. तन धनु कलतु सभु देखु अभिमाना।। [बिलावल महला १]

२. अभिमान पद के कोश अर्थ अहंकार तथा इच्छा दोनों हैं। (अभ+मन+घञ)

यह इच्छा इस शरीर में बैठे हुए मन को होती है। मन का मूल है हऊमैं, मन देखता है और लोभ में पड़ता है, मन में इच्छा उत्पन्न होती है, मानो मन इच्छा को प्राप्ति के लिए कहता है। कैसे कहता है? पाप तथा पुण्य दो बोलियों में। 'किसी तरह ले लूँ' यह तो इच्छा होती है। पाप द्वारा अथवा पुण्य द्वारा ले, इच्छा तो यह मार्ग मन बताता है। कोई मन पाप का मार्ग बताता है, मार-पीट, छल दग़ा करके ले ले, कोई मन पुण्य का मार्ग बताता है कि कृत्य कर, पुण्य दान कर कि यह वस्तुएँ शुभ कर्मों के बदले में प्राप्त हों।

अत: पाप पुण्य की प्रेरक (मनसा=) इच्दा है और इच्छा का मूल है अहं[1]। इस हऊमैं मूलक इच्छा को शरीर धन स्त्री आदि पदार्थ पाप पुण्य में वास्तविक तौर पर लगा लेते हैं। जीव जैसे-जैसे पाप पुण्य के कर्मों में लगता है और प्राप्ति अप्राप्ति के समय आते हैं तो प्राप्ति होने पर मद चढ़ता है और और लेने का भाव बढ़ता है, लेकर भी तृप्ति नहीं आती और अप्राप्ति के समय टोट पड़ती है और और लेने की इच्छा तीव्र होती है वह भी अतृप्ति को बढ़ाती है। यों प्राप्त होने वाले पदार्थों से, या यों कहो कि माया से मद चढ़ता उतरता अतृप्ति में रखता है, वही 'हऊमैं', 'इच्छा', बनकर तथा 'वास्तविक तौर पर प्राप्ति के लिए किए कर्म' जीव को इसी चक्कर में डाल देते हैं, फिर दुख-सुख का चक्कर बाँध देते हैं और जन्म-मरन का चक्कर लगा देते हैं। इन चक्करों से मुक्ति कहिए अथवा छुटकारा कहिए, कुछ भी प्राप्त नहीं होता[2]। जीव अतृप्त तथा बँधा हुआ बन्धन वाली दशा में रहता है। इस अतृप्त तथा बन्धन की औषधि है निरंकार का नाम। उस सदैव स्थिर सच्चे कर्तार का मन को प्यारा लगना तथा सदैव प्यारा लगना, यह है उसके नाम के आराधन का फल, अर्थात् निरंकार के नाम के स्मरण से उसका प्यार अन्दर चुभ जाता है। वह सदैव स्थिर है, अत: यों वह सदैव साथ रहता है। जिन पदार्थों में खिचित होते हैं वे तो साथ नहीं जाते। जब शरीर ही परलोक में साथ नहीं जाता तब पदार्थ क्या जायेंगे। जिन पदार्थों को प्राप्त करके भोग विलास में लगते हैं और रस प्राप्त करते हैं और मान लिया जाता है कि यह प्रसन्नता के दाता हैं, वे भोगने वाले शरीर सहित यहाँ ही रह जाते हैं। मृत्यु के पश्चात् इसके धन को तो लोग सँभाल लेते हैं और शरीर, जिसमें अपना होने का भाव माना हुआ होता है, राख तथा मिट्टी की ढेरी हो जाता है। मानो इसका सारा विस्तार ही मिट्टी में मिल जाता है। मित्र, परिवार आदि सब अन्त में मिट्टी में मिल जाते हैं, पर इन पदार्थों के संचयन में तथा इनसे प्राप्त किए भोगों में जो मैल जीव को लग जाता है, वह उतरता नहीं,

---

१. हऊ विचि पाप पुन्न वीचारु।। [आसा दी वार महला १]

२. प्रस्तुत वार्तालाप सतगुरू जी के उच्चारण किए हुए इस शब्द का खुला अनुवाद है जो इन भक्तों के प्रति उच्चारण किया लिखा है—बिलावल महला १ :–

मन का कहिआ मनसा करै।।
इहु मनु पुंन पापु ऊचरै।।
माइआ मदि माते तृिपति न आवै।।
तृिपति मुकति मनि साचा भावै।।१।।
तनु धनु कलतु सभु देखु अभिमाना।।
बिन नावै किछु संगि न जाना।।रहाऊ।।

जैसे जल में यदि मैल प्रवेश कर जाये तो जिधर जल बहकर जाता है, मैल साथ-साथ जाता है। यह मैल जीव को सुखी नहीं होने देता, यह मैल किसी अन्य उपाय से नहीं उतरता, इसको उतारने का एक ही उपाय शब्द (नाम) का अभ्यास है, इससे निर्मलता आती है, क्योंकि इससे जीव परम पवित्र परमात्मा की संगति में सदैव निवास करने लग जाता है।[१]

भक्तजन यह सुनकर कि शब्द (नाम) द्वारा मैल उतरता है, प्रसन्न हुए। उनके अन्दर जब उन्होंने अपने प्रश्न किए थे, कोई 'प्रश्न' था अथवा 'सतगुरू' जी की परीक्षा लेनी थी इस बात को वे ही जानें, क्योंकि ऐसे प्रश्न उन्होंने अपने ग्रन्थों में पढ़ सुन रखे थे, पर जो उत्तर मिला, वह बहुत ऊँचा था, जिसमें समझ के पक्ष से उनका घर पूरा हो गया। पर 'नाम अतृप्ति तथा बन्धन की औषधि' है, यह बात सुनकर उन्हें अपने नृत्य राग की विशेष विधि दीख पड़ी जो उनमें एक खेल मात्र ही रह गया था। अत: उन्होंने नि:शंसय होने के लिए प्रश्न किया, हे गुरू जी! आपका वाक्य सत्य है। आपने इच्छा को जो हऊमैं से उत्पन्न होने वाली बताया है और इसे कारक बताया है, यह बहुत ही ऊँचा विचार है। आपने जो शब्द (नाम) औषधि बताई है, वह तो हमारे में गीत नाद तथा नृत्य के रूप में प्रचलित है। इसके इलावा कोई और कर्म कृत्य तो आपके मत में स्वीकार नहीं है?

यह सुनकर रसिक वैरागी गुरू नानक जी कहने लगे :-

सुनो भाई भक्तजन! जिन कर्मों से तीन गुणों की उत्पत्ति हो, वे कर्म निरंकार कर्तार से दूर ले जाते हैं, अत: तीन गुण करके जीव उत्पन्न होते, विनसते रहते हैं। जिन गीतों को गायन करने से, जिन अलाप आदि नादों के अलाप का, जिन ताल संयुक्त नृत्य का तुम संकेत-शब्द करके-कर रहे हो, वह यदि तीन गुणों में प्रवृत्त कराते हैं तो वे भी झूठे हैं, क्योंकि वे द्वैत में हैं। निरंकार के साथ द्वेष, जो जीव के अन्दर न्चल रहा है, वह खोटी बुद्धि है, वह अज्ञान है। जहाँ अज्ञान है, वहाँ पीड़ा है। सभी दुखों का, पीड़ाओं का मूल अज्ञान है, जो प्रभु के साथ द्वैत में डाले रखता है। द्वैत नृत्य मात्र से गीत गायन मात्र से, नाद मात्र से, दूर नहीं होता, वह ज्ञान से दूर होता है और ज्ञान तथा सफल ज्ञान मन को जानने मात्र से नहीं, पर कर्तार के गुण गायन करने से उसके साथ सचमुच जाकर मिलने से प्राप्त होता है। अत: मूल औषधि इस कुबुद्धि रूपी रोग का गुण गायन करना है, पर वह गुरूमुख द्वारा है, जो सदैव इस बात का ज्ञान कराए रखे कि 'गायन तथा नृत्य करना' औषधि नहीं, पर 'निरंकार का गुण गान करना' औषधि है। जब जीव के मन में निरंकार का लक्ष्य हो, उसमें श्रद्धा हो, प्राप्ति की भूख हो, उससे भेंट करने की लालसा हो और उसके गुण गायन करे, तो मन का मैल उतरता[२] है, कुबुद्धि का खोट दूर होता है, वही फिर शुद्ध होकर पति परमेश्वर को लखा देने वाली शुद्ध

१. कीचहि रस भोग खुसीआ मन केरी।।
धनु लोका तनु भसमै ढेरी।।
खाकू खाकु रलै सभु फैलु।।
बिन सबदै नहीं उतरै मैलु।।२।। (वही शब्द चल रहा है)

२. गुरू अर्जुन जी का वाक्य है :-गुन गावत तेरी उतरसि मैल [सुखमनी]

बुद्धि बनती है, वही ज्ञान–सफल ज्ञान–बनती है। हे भक्तजन! विचार की बात है कि जिस तरह जगत के मायावी जीव केवल भोगों की प्रवृत्ति में हैं और माया के मद में है, उसी तरह जो कुबुद्धि को उज्जवल नहीं करते, पर परमार्थ की ओर लगे हैं, वे भी माया में ही हैं, क्योंकि वे तीन गुणों में खेल रहे हैं। तीन गुणों से ऊपर तुरीयावस्था में वे भी नहीं जाते, इसलिए वे पीड़ा में हैं[१]।

यह सुनकर भक्तों के मन में टोट पड़ी, क्योंकि धोती, तिलक, नृत्य राग आदि कर्तव्य वैसे ही भेख मात्र करते-करते वे अभी कोई हृदय पीड़ा रखते थे, जो दाता गुरू जी के पास पूछने के लिए आए थे। गुरू जी भी रसिया वैरागी तथा कौतुकी थे। अपने वाक्यों की पंक्ति को लिए चलते गए और उनके जीवन कण से खाली गीत राग का अलाप बताते हुए उनके वेष की ओर आकृष्ट हो गए और कहने लगे–भाई भक्तजन! यदि बुद्धि उज्जवल हो तो पीड़ा कट जाती है। खुमी की भाँति सफेद, उज्जवल धोती पहनी हुई उज्जवल बुद्धि का काम नहीं दे सकती। मन में यदि नाम का कण हो तो माथे पर उज्जवलता का तिलक निकलता है।

तिन मुखि टिके निकलहि जिन मनि सचा नाऊ॥ [सिरी राग महला १]

यह तिलक बाहर से नहीं लगाया जाता, अन्दर से निकलता है। माथे पर अपने आप लगाया हुआ चन्दन अथवा केशर का टीका वह काम नहीं संवार सकता। अतः मूल है नाम, वही स्मृणी है, वही माला है। तुम्हारे कण्ठ में डाली हुई तुलसी अथवा रुद्राक्ष की माला, स्मरण रूपी माला नहीं है, क्योंकि देखा जाता है कि जिन्होंने नाम रहित होकर इन्हें धारण कर रखा है, उनके अन्दर क्रोध चांडाल का निवास है, बताइए बाहर की स्वच्छता उनका क्या संवारेगी? यदि कहो कि वह रामायण अथवा सहस्रनामा पढ़ रहे हैं और साधुओं के डेरों में जाकर विद्या प्राप्त कर रहे हैं[२] ते इस तरह के पढ़ने तथा सीखने का मूल क्या है? वही जो नाट्यशालाओं में जाकर नाट्यविद्या सीखने का मूल्य है। नाट्यविद्या प्राप्त करके माया के लिए खेल करते हैं। वे भी एक प्रकार की नाट्यविद्या माया की प्राप्ति के लिए प्राप्त कर रहे हैं, क्योंकि जब माया प्राप्त करेंगे तो माया का मद चढ़ेगा। विष के न चढ़ने का गारुड़ी मन्त्र जो गुरू के द्वारा प्राप्त होता है, भगवंत का नाम है, वह उनके पास नहीं है। तो अब उन्हें आत्म सुख कहाँ से प्राप्त होगा? अतः भक्तजन! परमेश्वर द्वारा स्थापित किए हुए पूरण गुरू की भक्ति बिना सुख नहीं हो सकता, क्योंकि पूरण गुरू जिज्ञासु को

१. गीत राग घन ताल सि कूरे॥
त्रिहु गुण उपजै बिनसै दूरे॥
दूजी दुरमति दरदु न जाइ॥
छूटै गुरमुखि दारू गुण गाइ॥३॥ (वही शब्द जारी है।)

२. रासधारी नृत्यकारी शालाओं में सीखते हैं। 'नाट्यशाला' पद का संकेत ऊपर भी आया है।
धोंती ऊजल तिलकु गलि माला॥
अंतरि क्रोधु पड़हि नाट साला॥
नामु विसारि माइआ मदु पीआ॥
बिन गुर भगति नाही सुखु थीआ॥४॥

नट नहीं बनने देता। वह स्वाँग उतारने का तथा नाचने टापने का ढंग नहीं बताता, वह वास्तविक आत्मिक जीवन में ले जाता है, क्योंकि वह मन से तथा प्रेम सहित कर्तार के यश गाने का ढंग बताता है और प्रभु के लक्ष्य से चुकने नहीं देता।

भक्तों के जो बाहरी चिन्ह तथा आत्म भाव से 'बिना कर्तार का मन में लक्ष्य बाधे', केवल दिखावे मात्र वेष तथा साधन हो रहे थे, उन पर सतगुरू जी ने प्रकाश डालकर उनका वास्तविक मूल्य असत्य दिखा दिया, तो उनके मन में आया कि आप सत्य कह रहे हैं। सारे सिद्धान्त की बात, जिसकी उन्हें आवश्यकता थी, उसको सुनकर उनकी वृत्ति वाद विवाद की ओर न पड़ी क्योंकि वे उस रहस्य के इच्छुक थे, जिसके खुले बिना उनके साधन उनके मनों की पीड़ा दूर करने का उन पर प्रभाव नहीं डाल रहे थे। इसलिए उन्होंने सनम्र कहा कि पढ़ते सुनते, गीत राग नृत्य करते, वेष धारण करते घर-बार के सुखों कों न्योछावर करते हुए हम अन्दर से सुखी नहीं हैं, इसका मूल कारण क्या है? यह सुनकर श्री गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे–भाई सज्जनो! गुरू के बिना संसार डूब गया। आश्रम में, तीर्थों अथवा घरों में, अथवा मण्डलियों में परमेश्वर को जानने वाला, सुमार्ग बताने वाला नहीं है। गुरू तो हैं, न जाने चेलों की अपेक्षा ज्यादा हैं, पर वह गीत राग नृत्य पढ़न मात्र, बुद्धि को सान पर चढ़ाकर ग्रहण वृत्ति में चतुर कर देने की ओर, वेष की ओर जैसे वे आप लग रहे हैं–वैसे ही चेलों को भी लगा रहे हैं। यों जगत कच्चे गुरूओं में फँस रहा है। सच्चे गुरू के बिना सच्च का ज्ञान नहीं होता। सच्चे गुरू की ओर से मुँह फेरने से बन्धन नहीं टूटते, बन्धन न टूटने से आवागमन समाप्त नहीं होता। सूअर, कुत्ते, गधे, बिल्ले पशुओं, म्लेच्छों, निम्न वर्ग के लोगों तथा चाण्डालों के जन्म में भटकन होता है।[१] जैसे सूर्य से छिपकर बैठने से ठोकरें खानी पड़ती हैं, पर सूर्य के से प्रकाश वाले शूरवीर गुरू के निकट होकर उसकी संगती तथा सेवा से नाम पदार्थ प्राप्त होता है, जो हृदय में नाम निवास कर लेता है और धारण करने वाले को सदैव सुखी रखता है, जीवन में सुखी रखकर जब वह जीव परलोक को जाता है तो सच्चे दरबार में उससे पूछा नहीं जाता, उसे आदर मिलता है, क्योंकि वह गुरू की आज्ञा को मानकर कमाई करके जाता है। अत: परलोक में जाकर इस तरह के लोग पूर्णता, सफलता तथा कल्याण प्राप्त करते हैं।[२] हे भाई भक्तो! जो सतगुरू से भेंट करता है, वह उस परमेश्वर को जान लेता है। सतगुरू जी के नेतृत्व में वह उसकी आज्ञा की पहचान सीखता है। अत: आज्ञा में सदैव स्थिर रहकर उसे चलने का ढंग पता चलता है। आज्ञा को पहचान लेने से और उसकी आज्ञा में चलने से

---

१. सूकर सुआन गरधभ मंजारा।।
पसू मलेछ नीच चंडाला।।
गुर ते मुहु फेरे तिन जोनि भवाईऐ।।
बंधनि बाधिआ आईऐ जाईऐ।।५।।

२. गुर सेवा ते लहै पदारथ।।
हिरदै नाम सदा किरतारथु।।
साची दरगह पूछ न होइ।।
मानै हुकमु सीझै दरि सोइ।।६।।

उसका जीते जी ही प्रभु के दरबार में निवास हो जाता है, अर्थात् उसका हुजूरी में निवास हो जाता है। जो जीते जी ही हुजूरी में निवास का ढंग सीख लेता है वह शरीर का त्याग करके भी हुजूरी में निवास करता है। यों जब प्रभु के दरबार में निवास हो जाता है तो जन्म-मरण समाप्त हो जाता है। जो हमने शब्द के बिना मन के मैल न उतरने की बात कही थी, वह मैल यों शब्द की कमाई से उतरता है और जन्म-मरण समाप्त हो जाते हैं[१]।

तब उन भक्तों में से एक ने, जो कि गृहस्थी था, पूछा—गुरू जी! आपने सत्य कहा है और हमारी तसल्ली हुई है। आप सच्चे गुरू हैं, आपका आश्रय सहायक है, पर हे दाता गुरू! यह जीवन तो वैरागी का हुआ न कि जो वेषधारी है, अत: गुरू के शब्द द्वारा निरंकार का आराधन करे। उसने पदार्थों का तो त्याग किया हुआ है, उनके मोह का त्याग करना है। अत: उसका काम तनिक सहल है, पर जो गृहस्थ में है, यदि वह भक्ति करे तो पदार्थों को कैसे फेंके। गृहस्थ तो पदार्थ के बिना चल ही नहीं सकता और पदार्थ बाधा डालते हैं। आपका मार्ग गृहस्थ का मार्ग है अत: कृपया बताइए कि गृहस्थी परमेश्वर की चाह वाला पदार्थों के साथ त्याग ग्रहण कैसे करे?

गुरू जी—भाई! मार्ग तो एक ही है, दो नहीं। शब्द की कमाई करनी होती है, कुबुद्धि को काटना है, आज्ञा की पहचान करनी है, आज्ञा के अनुसार चलना है। यह सीधा मार्ग है, न बताने वाला भूले और न उस पर चलने वाला। कर्तार का लक्ष्य बाँधकर उसमें भाव धारण करके नाम की सीध में चलता चले। गृहस्थी तथा अतीत जो भी करे उसी का उद्धार हो। तुमने गृहस्थी के लिए विशेष रूप से पूछा है अत: उसका उत्तर यह है कि गृहस्थ में रहे। गृहस्थ में रहकर माया तथा मोह के साथ टक्कर लगती है। पाप-पुण्य के समय विशेष रूप से गृहस्थी ही को आते हैं। गृहस्थ एक अखाड़ा है, जिसमें बुद्धि को मल्ययुद्ध का ढंग सीखना है और अन्त में मायावी अन्धकार को जीतकर आत्मिक सुख तथा आत्मिक प्रकाश में आना है। इसलिए हमने गृहस्थ में उदास का मार्ग चलाया है। गृहस्थी पदार्थों की आवश्यकता के बिना चल ही नहीं सकता। पदार्थ इकट्ठे करे, पर धर्म कृत्य करके, उचित अनुचित की पहचान सीखे। जो प्राप्त करे उससे निर्वाह करे और उसमें से भी बाँटकर खाये।[२] गृहस्थी होकर इस तरह अतीत रहेगा कि स्त्री, पुत्र, पदार्थ, परिवार, मित्र जो कुछ उसका है, उसे निरंकार का समझे। जिस वस्तु को वह अपनी समझता है, उसे अपनी न समझे, कर्तार की समझे। फिर यहाँ तक विश्वास बढ़ाये कि यह शरीर, मन ही प्रभु की देन है, शरीर तथा मन के सम्बन्ध वाले सभी सज्जनों तथा पदार्थों में मेरा क्या है और मैं कौन हूँ, अत: उसका उसी को समर्पण है। इस तरह समझ कर गृहस्थ में रहने वाला अतीत अर्थात् निर्लेप रहता हुआ जन्म को जीत लेता है। वह ऐसा पुरुष पूर्ण पद को पहुँचता है कि सदैव सच्च में—सच्चे वाहिगुरू के सत्य स्वरूप—में समाया

१. सतिगुरू मिलै त तिस कऊ जाणै।।
रहै रजाई हुकमु पछाणै।।
हुकमु पछाणि सचै दरि वासु।।
काल बिकाल सबदि भए नासु।।७।। (वही शब्द)

२. घालि खाइ किछु हथहु देइ।।
नानक राहु पछाणइ सेइ।।१।। [सारंग वार म: १]

रहता है, उसका आवागमन समाप्त हो जाता है[१]। यह जो सब कुछ प्रभु का करके समझना है, यह गृहस्थी का त्याग है। पदार्थों का त्याग अतीत लोग हठ से करते हैं, पर सुखी नहीं होते। मन से त्याग करे अतीत बना जाता है, चाहे अतीत हो चाहे गृहस्थी।

भक्त जी–यह जो पदार्थों तथा सम्बन्धियों को अपना करके नहीं समझने वाली बात है, इसकी कोई उदाहरण हो तो समझने के लिए बता दीजिए।

श्री गुरू जी–तुम सत्संग करने वाले हो, अतीत लोगों के साथ फिरते हो, तुम्हें कई बार आप बीती हुई होगी। यदि कोई अतीत साधु किसी नए नगर में जाए तो वह पहले दिन उस नगर में अपरिचित सा होता है। उसे कुछ भी अपना नहीं भासता। यदि वहाँ पर ठहर जाये तो चाहे वह अतीत है, शनै: शनै: अन्दर कोई निजत्व पैदा हो जाता है। इसी तरह जब अपने पदार्थों अथवा पुरुषों को प्रभु के जान लिया तो उनमें एक अज्ञात अपरिचय प्रतीत हो आता है। वह अपरिचय जब हम उनको प्रभु का सभझते हैं तो वह व्याकुलता के रंग वाला नहीं होता, मैल वाली पकड़ से रहित होने करके सुखदाई लगता है और व्यवहार में यों आती है कि उनसे सुख लेने की याचना कम हो होकर हट जाती है और सुख देने का मन्द चाव अन्दर प्रवेश कर जाता है। उनमें से कोई विनस जाये अथवा कोई वस्तु छिन जाये तो पीड़ा की झन्नाहट नहीं पड़ती अथवा मन्द-सी रौ गुज़रकर हट जाती है। हे साधु जन! 'सब कुछ प्रभु का जानने से' हमारा तात्पर्य व्याकुलता, उदासी नहीं, पर वैराग भरा चाव है, जैसे प्रत्येक जीव लेकर प्रसन्न होता है, पर पुत्र-पुत्री को देखकर प्रसन्न होता है अथवा पुत्र पिता को समर्पण करके सुखी होता है। इस तरह परम उच्च तथा स्वच्छ भाव में जब सब कुछ वाहिगुरू का जानकर मन में उसका ही समझा जाता है अथवा उसे अर्पण किया जाता है तो मन में देने का चाव अपने आपे में एक निर्मल चाव होता है। साथ ही अन्दर एक नाम होता है, नाम का प्रभाव प्रभु के साथ निरन्तर मेल होता है। प्रभु का रूप आनन्द है, अत: आनन्द स्वरूप से मिले रहने पर उसे सब कुछ समर्पण के भाव में रहने से जीव आनन्द में रहता है।

पूर्ण तथा शूरवीर गुरू नानक देव जी का यह उपदेश सुनकर वे सारे भक्त गुरू जी के सिक्ख बने। जन्मसाखी में लिखा है–

> "तब यह सुनकर वे सारे भक्त जन श्री गुरू जी के चरणों में आय लगे और कहा हे गुरू जी! आप धन्य हैं और आपका दर्शन भी धन्य है। हे भगवान! हमें भी अपने चरणों के साथ लगा लीजिए। कृपा करके नाम प्रदान कीजिए। तब श्री गुरू जी ने कहा, हे परमेश्वर के प्यारो! तुम भी श्री वाहिगुरू जी का स्मरण करो तो तुम्हारा भला होगा। तब वे भक्त श्री गुरू जी के शिष्य बने और सतनाम का जाप करने लगे। अन्त को परमपद को प्राप्त हुए। श्री गुरू बाबा जी वहाँ से चलते रहे।" [पृष्ठ ४४३]

---

१. रहै अतीतु जाणै सभु तिसका।। तन मनु अरपै है इहु जिसका।।
ना ओहु आवैं ना ओहु जाइ।। नानक साचे साचि समाइ।।८।।२।।

यह सारी वार्तालाप उस शब्द का खुला अनुवाद है, जा पीछे वार्तालाप में नीचे टिप्पणियों में साथ-साथ आता रहा है। यह शब्द राग बिलावल में गुरू नानक जी ने भक्तों के साथ वार्तालाप के समय उच्चारण किया, जन्मसाखी में लिखा है, और श्री गुरू ग्रंथ साहिब जी में भी है। जिसकी पहली तुक है:–

"मन का कहिआ मनसा करै।"

अदेशी दाता की पाँचवीं उदासी

सूचना–पुरातन जन्मसाखी में पाँचवी यात्रा के शीर्षक में यह नहीं बताया कि यह कौन-सी दिशा की है। फिर इसमें बाबे का केवल गोरख हट्टड़ी में जाना बताया गया है और कहीं जाना नहीं बताया गया। गोरख हट्टड़ी में सिद्धों के साथ बहस तथा रामकली राग में आई 'सिद्ध गोष्ट' कही गई है। पर भाई गुरुदास जी कर्तारपुर से चलकर अचल बटाले को जाना बताते हैं और अचल में रामकली वाली सिद्ध गोष्ट हुई बताते हैं। भाई साहब जी इस जन्मसाखी के लेखक से पहले के लेखक हैं और गुरू जी द्वारा बख्शे हुए सिक्ख तथा वरदान प्राप्ति वाले हैं, इसलिये उनका लिखा हुआ प्रामाणित है। अचल की साखी इस प्रकार है–

❑ ❑

८१ गुरू बाबा अचल बटाले में

: १ :

हे लोगो, हे सोने वालो उठो, चाँद आकाश पर चढ़ा है। सुन्दरता का जलवा ले लो और पृथ्वी पर खड़े हो जाओ। सोने पर गाफिल को सौन्दर्य का जलवा नहीं मिलता। खबर-दारों ने चाँद की टुकड़ी पर दृष्टि लगाकर ले लिया है। सौन्दर्य की अंगम वर्षा ऊपर से झड़ी लगा रही है, इसलिए तुम अपने नैन रूपी कटोरे ऊँचे करके सौन्दर्य के दर्शन की ओर लगा दो, कैसे हुआ था? कैसे हुआ है? कैसे होगा? मैं नहीं जानता। वर्षों की खोज करने पर भी किसी भी चतुर को इसका पता नहीं लगा। परन्तु अनभिज्ञों ने ऐसे सारे झगड़े त्यागकर प्रेम रस की ओर दृष्टि लगा ली है। जिनका भरोसा उसकी दया पर है, वे पी पीकर मस्त हो गए हैं।[१]

अमृत वेला है, वही पखोकी रंधावा नामक गाँव है। (पहली कथा पीछे आ चुकी है। 'अजिता रंधावा' का प्रसंग देखिए।) वही गली है, वही पिछली रात का चन्द्र शीतल चाँदनी दे रहा है, वही नाथ है, जो पहले अनाथ था और अब सनाथ है, उसी कण्ठ से अत्यन्त मधुर स्वर में गा रहा है, सुनने वाले सुन रहे हैं। अजिता आज जाग रहा है, आवाज़ आने से पहले से ही जाग रहा है और अपने आपको रस रंग की ओर लगा रहा है। आपे में मग्न बैठा है और आपे के स्वामी का रस ले रहा है, प्रभु की ओर रुख करके सारे आपे का, कि एकाएक नाथ जी की आवाज़ सुनाई दी। मीठा प्यारा-प्यारा स्वर कानों में पड़ा, सुखी हो गया। पर आज चौधरन सोई पड़ी है। नाथ की आवाज़ कानों में पड़ी तो उठी : "धन्य गुरू नानक" मुँह से निकला-'धन्य कर्तार!' मैं सोई रही। मैं अचेत। नाथ! तेरा भला हो, तू इस समय अपना स्वाद बाँटता फिर रहा है, धन्य तेरा जन्म...। उपकार यह है...। स्वामी जी! क्या आप जागते हैं?'

अजिता-हाँ चौधरन जागता हूँ, गुरू की कृपा से।

चौधरन-भला स्वामी जी! क्यों नाथ इस समय कहीं समाधि लगाकर नहीं बैठता? उपकार तो बड़ा है, पर यों उसका आपा भी तो व्यय होता है न।

अजिता-मैंने पूछा था। कहता था इस गाँव का अन्न जल लिया है, इसका भला करना है, सबसे बड़ा भला यह है कि लोग इस अमृत वेला को व्यर्थ न खोयें। हाँ कहता था : यदि धर्मस्थान की स्थापना हो जाये और अमृत वेला में कीर्तन आरम्भ हो जाये और कीर्तन के समय धौंसा बज जाये और सब लोग जो अचेत नहीं रहना चाहते जाग उठें, हाँ, गुरू के सावधान प्यारे, आ एकत्र हों तो चाहे फिर मैं न फिरूँ। अभी तो कहता है, सभी प्रेमियों को जगाकर, प्रेम रस के अमृत वेले का ढँढोरा देकर फिर आप जाकर रस प्राप्त

---

१. यहां लेखक के गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

करना है। आप भी करना है और दूसरों से भी करवाना है।

चौधरन–बहुत भला है। पहले जब योगी था, तब कोई प्यार कि दया तथा उपकार नहीं था नाक में से बिच्छू गिरते थे। 'धन्य गुरू नानक'। कितना प्यार डाल देता है कि साधना वाले भी उपकार करते रहते हैं[१], 'धन्य गुरू नानक'। इस तरह कहती हुई चौधरन उठी, स्नान किया और आपे के देश में एकाग्र होने के लिए बैठ गई।

अमृत वेला व्यतीत हो गया, दिन चढ़ आया, अजिता कुए पर गया। आगे नाथ जी बैठे थे, सत्संग की वार्तालाप चल पड़ी, जिनमें से अजिते को पता चला कि गुरू बाबा जी बाहर होकर थोड़े दिनों के लिए फिर कर्तारपुर आ गये हैं, यह सुनकर चित में लालसा हो गई, घर में आकर विचार किया और अजिता कर्तारपुर आ पहुँचा[२]। दर्शन करके मन तृप्त हुआ, सेवा करके शीतलता मिली और अन्दर के रंग ने हिलोर खाया। साध संगत में अब अजिता बड़ा प्रेमी तथा तपस्या वाला सिक्ख प्रसिद्ध था, सारे उसका सम्मान करते थे, पर अजिता साधु-संगत से प्यार करके तथा सेवा करके प्रसन्न होता था।

: २ :

कर्तारपुर में सत्संग का बाग़ लहलहा रहा था। सतगुरू जी अब जब चौथी चात्रा समाप्त करके कर्तारपुर पहुँचे थे, तब बड़ी प्रसन्नता हुई थी। लोग दूर-दूर से चलकर आये थे। श्री गुरू जी ने, जो फकीरों वाला बाना धारण करके पश्चिम की ओर गए थे, अब उसे उतार दिया था। हिन्दुओं, मुसलमानों को सुमार्ग पर चलाने के लिए आश्चर्यजनक कौतुकों वाला जो पहरावा धारण किया करते थे। इसके पश्चात् फिर कोई पहरावा धारण नहीं किया। अब सतगुरू जी ने साधारण गृहस्थियों वाले वस्त्र पहने थे। इस कौतुक का अर्थ यह था कि फकीरी भेष धारण करके उसे उतार देने का भ्रम भी टूट जाये। स्वतन्त्र पुरुष कैद में नहीं कि फकीरी वाला पहनकर उतार नहीं सकता। भाई गुरुदास जी इस तरह लिखते हैं–

बाबा आया करतारपुरि भेख उदासी सगल उतारा॥
पहिर संसारी कपड़े मंजी बैठि कीआ अवतारा॥
उलटी गंग बहाइओन गुर अंगद सिर ऊपरधारा॥
पुत्री कौल न पालिआ मन खोटे आकी नसिआरा॥
बाणी मुखहु उचारीऐ हुइ रूशनाई मिटै अंधारा॥
ज्ञान गोष्ट चरचा सदा अनहद शब्द उठे धुनिकारा॥
सोदर आरती गावीऐ अमृत वेले जाप उचारा॥
गुरूमुखि भार अथरबण तारा॥३८॥

कवि सन्तोख सिंघ जी लिखते हैं–

सवा जाम निस रहे सदाई॥

---

१. आपि तरै संगति कुल तारै॥ [आसा महला १]

२. निज पुर सुनि झट आत भा, नाम अजिता जासु॥ (गुरू नानक प्रकाश)

होत कीरतन सभ सुखदाई।।
संतिनाम को सिमरन करना।।
इह उपदेश सरब प्रति बरना।।
नीच कै ऊच राइ कै रंका।।
सिमरन ते जम जाइ अतंका।।
सुध असुध जपै जे कोई।।
मन विकार ते निर्मल होई।।
प्राप्त ज्ञान बंध सभ खोइ।।
इह सम नहि सुखैन कलि कोई।। [गुरू नानक प्रकाश]

कर्तारपुर में अब खेती आरम्भ करवा दी। सिक्ख संगत काम करने के लिए आने लगी। उस कृत्य से उत्पन्न हुआ अन्न लंगर में प्रयोग कियां जाता। इस प्रकार लोगों में 'हाथ काम में, चित नाम में', गृहस्थ में निर्णण तथा ऊँचे होने का प्रचार किया।

इन्ही दिनों में पता चला कि अचल बटाले में शिवरात्रि का मेला आया है। जहाँ बहुत से सिद्ध इकट्ठे होते हैं और पूजा होती है, परन्तु इकट्ठे हुए यात्रुओं को प्रबुद्ध करने का तथा आत्म रस दान का कोई प्रयत्न नहीं होता। मेला एक खेल तमाशा ही रह गया है। गुरू बाबे का एक विशेष ढंग यह भी था कि धर्म के नेताओं तथा पूजे जाने वाले लोगों को सुमार्ग पर चला देना, जिससे उनके अनुयायों का स्वाभाविक ही उद्धार हो जाये और यदि उनका सुधार न हो तो मेले में आये हुए लोगों को सच्च का पता चल जाये और उनका सुधार हो जाये। इसी तरह के अनेकों कारणों करके गुरू बाबा जी ने अचल मे जाकर 'सतनाम' का छत्र झुलाने की ठान ली और कर्तारपुर से चल दिये। तब अजिता भी आपके साथ गया।

: ३ :

जब अचल पहुँचे तो सायंकाल हो गया था, बड़ी आँधी चली और ओलों की वर्षा हुई जिससे अनेकों पक्षी मर गए। श्री गुरू जी ने कुछ पूरब की ओर ऊपर को एक ऊँचे स्थान पर डेरा डाला[1]। दूसरे दिन मेला भरकर लगा। सिद्धों के आने पर भी बहुत लोग आये हुए थे। श्री गुरू नानक देव जी की भी बहुत प्रसिद्धि हो रही थी। जब यह बात फैल गई कि गुरू जी मेले में आये हुए हैं तो सारी जनता दर्शनों के लिए टूटकर उनकी ओर आ गई। आगे कीर्तन हो रहा था। सतगुरू जी का दिव्य दर्शन होता था, सतनाम की देन दी जा रही थी। घर में बैठकर परमपद को पहुँचने का उपदेश हो रहा था। 'गृहस्थ में उदास' केये न मार्ग की मर्यादा चलाई जा रही थी[2]।

अतिशै भीर भई प्रभु पासू।।

---

१. यहाँ पर गुरुद्वारा है।

२. इकि गिरही सेवक साधिका गुरमती लागे।।
नामु दानु इसनानु दृढ़ु हरि भगति सु जागे।।७।। (आसा म: १ काफी)

फल को बंछ करहिं अरदासू॥
खरे होन को थाइ न पावहिं॥
बदन बिलोकहिं उर हरखावहिं॥
दरसन करत न तृपतहिं कैसे॥
ब्रिन्द चकोर चद्रमा जैसे॥ [गुरू नानक प्रकाश]

यों सारी भीड़ वहाँ ही इकट्ठी हो गई और उधर सिद्धों की ओर सुनसान हो गई। सिद्धों ने अपनी मानता का यह ढंग रखा हुआ था कि लोगों के हृदयों पर अपनी करामातों का आतंक जमाया हुआ था और प्रत्येक हृदय पर यह भय बैठा रखा था कि यदि सिद्ध गुस्से हो जाये और अभिशाप दे बैठे तो घर बार तबाह हो जाते हैं। अतः लोगों के मनों पर सिद्धों का भय बैठ रहा था। किसी को किसी सिद्ध से प्रेम तथा उल्लास भरी भावना नहीं होती थी। 'डरता हरि हरि करता' वाली बात बनी हुई थी। सभी भय के कारण मानते थे। श्री गुरू नानक देव जी प्रेम का यश सुना रहे थे, वे वाहिगुरू जी को प्यार का रूप बताते थे, आप प्रसन्न चित लोगों से मिलते थे, वरदान तथा अभिशाप का लालच तथा भय दूर करते थे और कहते थे : नाम जपो, प्रभु में एकाग्र होवो, रात दिन जगत के काम धन्धों में भी आत्मा में प्रभु के साथ रहो। न डरो और न ही किसी को डराओ। हाँ, अपने स्वामी का निर्मल भय रखो। यह भय मन को खा जाने वाला सहम नहीं होता, यह पापों से परे रखने वाला, सौन्दर्य के समीप ले जाने वाला, प्यार से सराबोर भय होता है। प्रेम तो प्यार की ओर खींचता है और निर्मल भय बुराई की ओर से वर्जना करता है और प्रभु की ओर ढकेलता है[१]। यों 'भय तथा भाव' मिला देते हैं। सिद्धों का भय प्राणों को दबाए रखने वाला सहम था, जो उनकी सिद्धियों में निश्चय होने के कारण जीव को डोलने वाली किश्ती पर चढ़ा देता था। इस तरह लोग डरते तो थे, पर अनजाने ही वे व्याकुल हो रहे थे। कुछ इसी तरह का व्यवहार पीरों ने भी जारी कर रखा था। पर गुरू के द्वार पर आये हुए पुरुष को जगत की आवश्यकताओं से ऊँचे उठने का उपदेश मिलता था, जीवन का उच्च ख्याल तथा जीवन का उच्च व्यवहार सिखाया जाता था और जिज्ञासु को अन्दर आत्मा में किसी लौ में एकाग्र होने के मार्ग पर चलाया जाता था। यह मार्ग निर्भय के देश में पहुँचने का था। वाहिगुरू को निर्भय बताकर उसकी लग्न प्यार में डालकर निर्भय पद पर पहुँचने का आदर्श आँखों के आगे रखा जाता था,[२] नाम जपने से मन एकाग्र होता है, एकाग्र मन में शक्ति आती है। साथ-साथ यह भी सिखाया जाता था कि पाँचों को वश में लाना है, बुरा करने के लिए शरीर की शक्ति का प्रयोग भी नहीं करना, पर मन की शक्ति का प्रयोग

१. कहतु नानकु भै भाव का करे सीगारू॥
सद ही सेजै रवै भतार॥४॥१७॥ (आसा म: १)
पुनः गुरू रामदास का वाक्य है–
"निरमलु भऊ पाइआ हरि गुण गाइआ..."

२. परन्तु निर्भय तथा निर्वाण होने की भी गुरू जी वर्जना करते थे, जैसे कि गुरू अमरदास ने बताया है–"नानक भै विणु जे मरै मुहि कालै उठि जाइ॥२॥" (वार माझ म: ३)

तो बहुत ही बुरा[१] है। शक्ति का प्रयोग सदैव भले के लिए किया जाता है, भलाई के लिए उसका प्रयोग करने और बुराई के लिए प्रयोग न करना पाँच शूरवीरों (काम, क्रोध आदि) पर वशीकार आवश्यक है। यह वशीकार प्रभु के भय तथा श्रद्धा से प्राप्त होता है, इस वशीकार के साथ जगत की ओर क्षमा की दृष्टि चाहिए। प्रत्येक जीव दुखी है, किसी न किसी प्रकार का दुख घर-घर में है। जीवों पर दया करनी चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिये, सभी भूलने वाले हैं, सभी दया के व्यवहार के इच्छुक हैं। गुरू का सिक्ख गुरुमुख कभी अभिशाप न दे, क्षमा के घर में निवास करे, अपनी मानसिक शक्ति को नाम जपने में लगाये, आप जपे औरों को जपाये, यह मार्ग लोगों को प्यारा लग रहा था। इस तरह ही मन की दुर्बल दशा दासता से मुक्ति होकर आप उच्च तथा स्वच्छ तथा प्रभु के नाम के प्रेमी बनने का शब्द यश कानों में पड़ रहा था, अतः प्रेमी बड़े उत्साह के साथ गुरू बाबे की शरण में आए।

: ४ :

सिद्धों ने अब गुरू जी के साथ टक्कर लेने की बात सोची। इन्होंने मन को एकाग्र करके नाटक चेटक तो सीखे थे, पर मन का मैल धोकर उसे क्रोध आदि महाबलियों से शुद्ध नहीं कर रखा था[२]। सभी एक से नहीं होते, इनमें भी मंगल नाथ आदि कोई-कोई भले पुरुष थे जो सतगुरू जी की बड़ाई को समझते थे। वे सिद्धों को वर्जने लगे कि वह गुरू अवतार है, उसके साथ ईर्ष्या न करो, यह कोई शहर का गृहस्थी नहीं कि भय खाकर झुक जायेगा। पर उनकी शिक्षा की ओर किसी ने ध्यान न दिया। अपनी एकाग्रता से प्राप्त किये बल को मनोवासना की प्राप्ति के लिए प्रयोग करने का उनका स्वभाव हो रहा था। जबकि मन का एकाग्र किया जाता है, वासना के नष्ट करने के लिए बुरे संकल्पों को दूर करने के लिए और उसे निर्मल करने तथा शुद्ध उच्चता में ले जाने के लिए यह इतना उच्च हो जाये कि सर्व व्यापक अकाल पुरुष के साथ संगम हो जाये। अतः पहला काम सिद्धों ने यह किया कि किसी तरह औरों को, गुरू के गले डालकर हँसी उड़ाकर मान कम कर दें। एक स्थान पर भगतिये गाने बजाने का कार्य कर रहे थे, लोग देख रहे थे, बीच में एक बड़ा-सा लोटा रखा था, जो कोई प्रसन्न होकर धन देता वे भगतिये इसमें डालते जाते थे। सिद्धों ने यहाँ आकर अपने किसी बल से लोटा छिपा दिया। भगतियों को अब गाने बजाने की अपेक्षा लोटे की चिन्ता लग गई, उनका रस फीका पड़ गया। लोग भी उदास हो गए, तब सिद्धों ने कहा कि यदि गुरू नानक जी में कोई शक्ति है तो वह लोटा खोजकर निकाल दें। भाई गुरुदास, जो गुरू नानक देव जी के समय से थोड़ा समय ही बाद में हुए हैं, लिखते

१. मन्दा मूलि न कीचई दे लम्मी नदरि निहालीऐ।। (वार आसा म: १)

२. करहि बिभूति लगावहि भसमै।।
अंतरि क्रोध चंडाल सु हउमै।।
पाखंड कीने जोग न पाइऐ।।
बिनु सतिगुर अलखु न पाइआ।।१।। (मारू सोलहा म: १)

हैं–

"बाबा जाणी जाण पुरख कढिआ लोटा
जहाँ लुकाई। वेख चलित जोगी खुणसाई।"

अर्थात् गुरू जी ने योगियों द्वारा छिपाया हुआ लोटा निकाल दिया। जब योगियों की यह करामात फीकी पड़ गई तो उन्हें क्रोध आ गया। फिर भाई साहब जी लिखते हैं, 'खाधी खुणस जुगीसरां गोसट करन सभे उठि आई'। जहाँ तक गुरू जी बैठे थे, सिद्ध योगी खुनस खाकर चर्चा करने के लिए वहाँ चलकर आये। अब उन्होंने गुरू जी को आक्षेप भरे वाक्यों से लोगों में लज्जित करने का ढंग सोचा। पहले आते ही जब आसन लगाकर बैठ गये तो प्रश्न किया, 'अतीत अवस्था धारण करके फिर सांसारिक रीति क्यों चलाई'? गुरू बाबे जी ने उत्तर दिया कि तुम गृहस्थियों के घरों में उत्पन्न होकर अथवा उनके घरों में तुम्हारा पोषण होने पर फिर उस गृहस्थ का त्याग करके आटे की भिक्षा माँगने के लिए उन्हीं के घरों में क्यों जाते हो[1]? सिद्धि तथा पीरी का भय देकर उनसे क्यों मानता करवाते हो? अर्थात् तुम अतीत होकर भी गृहस्थियों से अतीत नहीं हुए। क्योंकि जो किसान न तो हल चलाये, न बीज डाले, न ही अनाज निकाले और यदि चक्की वाला उसे पीसे नहीं, तो अतीत भरपेट आटा कहाँ से ले? सभी अतीत गृहस्थ मार्ग के समाज के ही आश्रय में हैं। फिर गृहस्थियों से घृणा करना, उन्हें नीच समझना, फिर उन्हें वरदान तथा अभिशाप के भय देकर लूटना, उनसे खाना, यह कहाँ की अतीताई है?

गुरू बाबे ने तो कभी वेष, वेष धारण करने वालों की भाँति धारण नहीं किया था। कभी कोई वेष, कभी कोई, कभी हिन्दुओं, संन्यासियों आदि का, कभी मुसलमानों कलंदरों फकीरों का और कभी दोनों मिलेजुले। जिसके अर्थ यह थे कि आप किसी भी फकीर वेष में बँधे हुए नहीं थे, स्वतन्त्र अगंमी मौज में थे। सभी वेष धारण करने, उन्हें मिलाना, यह वेष रहित होने के तुल्य है। आप स्वतन्त्र थे, जो इच्छा हुई, कर लिया। जब योगी इस बात से निरुत्तर हो गये तो योगी गुस्से में आकर अब तीसरा ढंग चलाने लगे, अर्थात् नाटक चेटक से गुरू जी को तथा लोगों को डराने लगे। भाई गुरुदास जी लिखते हैं–

इह सुण बचन जुगीशरां मार किलक बहु रूअ उठाई॥
खट दरशन कऊ खेदिआ कलजुग बेदी नानक आई॥
सिध बोलन सभ औखधीआं तन्त्र मन्त्र की धुनो चड़ाई॥
रूप वटाया जोगीआ सिंध बाघ बहु चलित दिखाई॥
इक पर करके उडरन पंखी जिवें रहे लीलाई॥
इक नाग होइ पवन छोड़ इकना वरखा अगनि वसाई॥
तारे तोड़े भंग्रनाथ इक उड़ मिरगानी जल तर जाई॥ [वार १ पौड़ी ४१]

सिद्धों के इस समय के कौतुकों के सविस्तार समाचार श्री गुरू नानक प्रकाश तथा अन्य ग्रन्थों में दिये हैं।[2] जिस समय इस तरह के भयभीत करने वाले कौतुक सिद्धों ने करने

१. देखो भाई गुरुदास वार १, पउड़ी ४०
पुनः घरि घरि मांगत लाज न लागै॥ [रामकली मः १]
२. देखो उत्तरार्ध अध्याय ४० पृष्ठ १०९८-९९।

आरम्भ कर दिये तो गुरू जी ने तो क्या भयांतुर होना था[१], पर लोग डर से काँपने लग गए। उस समय निर्भय सतगुरू जी ने गरजकर कहा कि हें प्यारे! तनिक भी मत डरो, धैर्य धारण करो, यह सब माया जाल है। फिर गुरू जी ने कहा–'अजिता! उठकर सब लोगों के इर्द-गिर्द रेखा निकाल दे, एक लकीर लगा दे, इस लकीर के अन्दर सिद्धों के सिंध, बाध, साँप, टूटने वाले तारे कुछ भी नहीं आयेगा। उठो बेटा! मुँह से वाहिगुरू का उच्चारण करता चल और लकीर खींचता चल'। यथा :–

'उठके कर देह कार तू वाहिगुरू मुख टेर'। [श्री गुरू नानक प्रकाश]

अजिते में सतगुरू ने पहले ही कण डाल दिया हुआ था और उस समय सतगुरू ने अपनी अनुकंपा द्वारा उसमें और शक्ति भर दी थी। अजिता उठा, वाहिगुरू कहकर लकीर खींची। वे सभी निर्भय हो गए, पर अब जो शक्ति भरी गई थी, वह अजिता के लिये करामाती होने के अतिरिक्त भी असह्य थी। वह उछल रहा था और साथ ही अपने गुरू की ओर जा सिद्ध गुस्ताखी कर रहे थे, उसके लिए क्रोध आया और सोचा कि यदि उसने करामात दिखाई तो लोगों की प्रतीत सतगुरू जी से नहीं हटेगी। अत: तालाब में जा घुसा, चद्दर को पानी पर बिछाकर आप ऊपर बैठ गया, जैसे कोई तख्ते पर बैठता है। पहले दिन के ओलों से मरे पक्षी जो तालाब में उलटे तैर रहे थे, अजिता ने उन्हें पकड़ पकड़कर उड़ाना शुरू कर दिया। लोग यह करामात देखकर चकित हो गये कि गुरू के सिक्खों में इतनी शक्ति है। उधर लिखा है कि गुरू जी तत्वों में एक स्वर हो रहे थे। सिद्धों ने बड़ा ज़ोर लगाया, न ही गुरू जी डरे और न ही जनता भयभीत हुई। सिद्ध सारा बल लगा चुके थे। अब हारकर थक गुए, बहुत लज्जा आई, उन्होंने विचार किया कि सभी प्रयत्न व्यर्थ गए हैं। देखिए पहले सिद्धों ने लोटा छिपाकर लोगों को गुरू के गले डालकर अपनी विजय प्राप्त करनी चाही थी, पर उसमें वे पराजित हुए। फिर आकर ताने देकर लज्जित करके विजई होने की ठान ली थी पर सतगुरू जी के उत्तर के आगे आप ही लज्जित हो गये। तीसरा खेल नाटक चेटक दिखाकर गुरू जी तथा लोगों को डराकर विजय प्राप्त करनी चाही थी, उसमें भी हार हुई, अब दो बातें लेकर आ बैठे : एक तो यह कि करामात मांगेंगे, दूसरे यह कि शास्त्र चर्चा करेंगे, अत: कहने लगे :–

सिद्ध बोले,

'सुण नानका तुहि जग नूं क्या करामात दिखलाई॥

---

१. यह पुस्तक (Night side of Nature) जो कैथोरन कोरवे की लिखित है, उसके पृष्ठ २६८ पर इस घटना बारे इस तरह लिखा है :–

At one period of his (Guru Nanak's) career when he visited Watalah the Jogiswaras who were recluses that by means of carporeal mortifications were supposed to have acquired a command over the powers of nature were so enraged against him that they strove to terrify him by their enchantments assuming the shapes of tigers and serpents, but they could not succeed, for Nanak appears to have been a real philosopher who taught a pure theism and inculcated universal peace and toleration.

कुझ दिखाइ असां नू भि तू किऊँ ढिल अजेही लाई॥'

बाबा बोले **'नाथ जी, असां वेखे जोगी वस्तु न काई॥**
गुरू संगत बाणी बिना दूजी ओट नहीं है राई॥
शिवरूपी करता पुरख चले नाहीं धरत चलाई॥

यह कहकर गुरू जी ने योगियों की ओर देखा, उनकी सारी शक्ति छिन गई, जो शक्ति थी, वह भी चली गई, जैसा कि भाई गुरुदास जी ने लिखा है :–

'सिद्ध तंत्र मन्त्र कर झर पए शब्द गुरू के कला छपाई॥'

कवि संतोख सिंघ जी लिखते हैं :–

जिऊँ को निंबू लेहि निचोरी॥
जैसे ऊख देइ कर खोरी॥
आतुर हार गए जिस काला॥
बैठे हुइकै दीन बिसाला॥
लज्जत भए न बोलियो जाई॥
बाँधे जिऊँ शत्रु किस राई॥ [श्री गुरु नानक प्रकाश]

गुरू जी से करामात मांगते थे, अपनी शक्ति भी खो बैठे। पर समझ न आई कि सच्चे गुरू ने, जीवित गुरू ने, हास रस वाले गुरू ने यह कितनी बड़ी करामात दिखाई है कि उनकी शक्ति छीन ली है। इस समय सतगुरू जी ने तालाब की ओर देखा और उड़ते हुए पक्षी देखे तो आप कहने लगे :–

को है इह मृतक जीवारे?
नौका समसर चीर डसायो॥
तिह पर बैठ न नीर छुवायो॥
करामात करिकै दिखलावै॥
लोकन महिं निज मान बधावै॥ [गुरू नानक प्रकाश]

सिद्ध कहने लगे–बाबा! यह तेरा ही चेला है, और करामात भी अब तेरे ही घर में है। यह सुनकर श्री गुरू जी ने नैन बदले और एक सिक्ख भेजकर अजिता को लिवा भेजा और नेत्र भरकर उसकी ओर देखा। यह दृष्टि ऐसी थी कि अजिते को आपा रिक्त लगने लग पड़ा और रिक्त होकर बैठ गया।

: ५ :

श्री गुरू नानक प्रकाश में यहाँ एक और कथा दी है, जो एक दो नियमों पर भली भांति प्रकाश डालती है। वह है यह कि एक माता-पिता अपने बारह वर्ष के बेटे को गुरू के अर्पण करने के लिए ले आए और विनती की हे गुरू जी! हमारे यहां सन्तान नहीं ठहरती थी, हमने कई सिद्ध पीर मनाए, पर कोई वश न चला, अन्त में आपकी आराध ना की तो यह बालक जीवित रहा है। अतः हमारी मन्नत के अनुसार यह आपका है, हम इसे आपके हुजूर में भेंट करने के लिए आये हैं, आप इसे सेवा में लगा लीजिए। कौतुकी

सतगुरू जी ने परख करने के लिए एक कौतुक रचा, यह देखने के लिए कि माता-पिता सचमुच अर्पण करते हैं अथवा जगत की रीति की ही बातें करते हैं और बालक ताव कसौटी सहन करके दिखाता है? जानते तो थे कि बालक पूर्ण सन्त है और आपकी ही अनुकम्मा द्वारा माता-पिता के घर में आया है और जीवित हुआ है, पर जगत का सुधार करने के लिए कौतुक रचते हैं; जिससे जगत दोनों की परीक्षा को देखे और सिद्धों को आपा और ज्यादा हलका दिखाई पड़े कि नाटक चेटक कल्याण मार्ग में कुछ मूल्य नहीं रखते। आपने आज्ञा देकर अग्नि प्रजवलित करवाई और बच्चे से कहा कि उस अग्नि में घुस जा। न तो बच्चे ने उसके बीच में जाने से झिजक खाई और न ही माता-पिता के माथे पर बल पड़ा कि यह क्या करने लगे हैं। बच्चे ने समझा कि गुरू जी की आज्ञा है वह ठीक है, माता-पिता ने समझा देने वाला अथवा लेने वाला यह आप है, यह अभूल[१] है और जो कुछ करता है उसमें भी कोई रहस्य है जिसका हमें पता नहीं। सिद्ध घबड़ाये कि हैं यदि हमें कोई आकर चेला अर्पण करे तो वरदान से उसे निहाल कर दें और गुरू जी इतनी अमूल्य भेंट को जला देने लगे हैं। साथ ही अजिता भी देखता था कि उसे लकीर खींच देने की आज्ञा मिली थी और वह शक्तिवान हो गया था, वह तो बहुत सहल कार्य था, पर वह शक्ति को सहन न कर सका और यह धन्य है जिसे चलने की आज्ञा देता है और यह तैयार होकर चल पड़ा है। लोग देख रहे थे कि गुरू जी में कितना त्याग तथा निर्मोहिता है, पर कौतुक बड़ा महान है और भय लगता है। हाँ, गुरू दया का स्वरूप है, प्यार का पुञ्ज है, बालक मरेगा नहीं, कोई कौतुक होगा। तब भी बहुत से लोगों का निश्चय हिल गया कि यह तो शरण में आये हुए सिक्खों को जलाता है, न जाने गुरू है कि नहीं, न जाने सिद्ध ही अच्छे हों। जब गुरू की आज्ञा में लोगों ने बच्चे को आग में जाते हुए देखा तो कलेजों पर हाथ रख रखकर आंखें फाड़ फाड़कर, खुले मुँह, रुके हुए स्वाँसों से देख रहे थे तो बच्चा बीच में न जलता हुआ और न ही झिजकता हुआ दिखाई पड़ा; यों बच्चे को अचल देखकर सभी चकित रह गए, तब श्री गुरू जी ने उच्चारण किया :-

"जनम मरन ते रहित भा टूट गए जम जाल॥
निकसहु आवहु वहिर को अब ते सदा निहाल॥"

[श्री गुरू नानक प्रकाश]

गुरू जी का वरदान सुनकर जैसे बच्चा निर्भय होकर गया था वैसे ही बाहर आ गया और बच्चे के कपाट खुल गए और दिव्य दृष्टि हो गई। तब गुरू जी ने कहा-माँग, जो तेरी इच्छा हो वह ले। बच्चे ने कहा, हे दाताजी! जो आपने दिया है उससे ऊपर और कोई माँग मेरे अपने लिए नहीं है। हाँ, बाबा अजिता तथा सिद्ध अपनी शक्तियाँ खोकर दुखी बैठे हैं, दया कीजिए और फिर से इनमें शक्ति भर दीजिए और इनके परदे हटा दीजिए :-

'श्री गुरू कह्यो : शक्ति दिखरावति।
दम्भ करे निज मान बधावति।
देनी उचित अहै नहिं इनको।

१. भुलण अंदरि सभु को अभुलु गुरू करतारु॥

मान बिखै मन बूडयो जिनको।
तेरो कह्यो न मोरै कैसे।
हुते अगारी ह्वै अब तैसे। [श्री गुरू नानक प्रकाश]

यह कौतुक दिखाकर सतगुरू जी ने कह दिया कि 'आज्ञा मानना' ही सबसे बड़ी वस्तु है, जिसने उसकी आज्ञा को माना, वह स्वीकार हो गया, उसी ने वाहिगुरू को प्राप्त किया है। उस प्रभु की आज्ञा में जीव को बड़े-बड़े दुख आते हैं, उसे उन सबको आज्ञा समझकर चलना चाहिए।[१] जिन्होंने वाहिगुरू को प्राप्त किया है वे करामातों के पीछे नहीं लगते, आप रंग में रहते हैं और दूसरों का भला करते हैं, जिस तरह बच्चे ने किया। फिर करामात का रहस्य यह खुला कि दम्भ तथा अपना मान बढ़ाने के लिए इस प्रयोग करना बुरी बात है और यह बात जो गुरू जी ने सिद्धों में पसन्द न की, अपने प्यारे सिक्ख अजिते ने भी उसे पसन्द न किया। दोनों के साथ एक सा व्यवहार किया। अब प्रश्न उठता है कि जब अजिते की आज्ञा हुई थी कि लकीर खींच दे, जो उसके अन्दर रहेगा, उसे कोई भय नहीं होगा, यह भी तो करामात ही थी और आप अजिता से करवाई थी। रहस्य यह था कि यह काम न अपने मान को बढ़ाने के लिए था और न ही दम्भ के लिए था, न स्वार्थता थी, यह तो सृष्टि को सिद्धों के मानसिक अत्याचारों से रक्षा करने के लिए था और अजिते को इतनी ही आज्ञा थी। उसका जल के ऊपर चलने लगना और पक्षियों को जीवित करना, इसको गुरू जी ने अजिते के अन्दर मान की लालसा के लिए होना देखा। इसलिए उसे सोधा। गुरू के मत में जहाँ तक सम्भव हो करामात कभी नहीं दिखाई गई। यह नहीं कि शक्ति नहीं रखते थे; शक्ति तो महान प्रबल थी और वह गुरू अवतार होने के नाते स्वाभाविक ही प्राप्त थी, पर वह मान के लिए, स्वार्थ के लिए, दिखावे के लिए प्रयोग में नहीं लाई गई। वाहिगुरू की आज्ञा में तथा उपकार के लिए कई बार सतगुरू द्वारा प्रयोग में आई के प्रसंग मिलते हैं।

जब सिद्धों ने प्रतीत किया कि गुरू के वचन मात्र से उनकी शक्ति वापिस लौट आई है तो प्रत्यक्ष देखा कि गुरू जी ने एक अनोखा कौतुक दिखाकर उन्हें शिक्षा तथा सुमति प्रदान की कि वास्तविकता के आगे करामात कोई सत्य नहीं रखती; जो है उस प्रभु की आज्ञा के साथ एक स्वर हो जाना है;[२] तब उनके मन का मैल कम हुआ और विचार आया कि यह यत्नों द्वारा सिद्धियों को प्राप्त हुआ सिद्ध पुरुष नहीं है यह धुर से किसी अगंमी स्रोत का स्वामी है और किसी उच्च दृष्टि से खेलता है; अब करामातों तथा शक्तियों का त्याग करके इसके साथ कुछ विचार करें और लाभ प्राप्त करें। पर स्वभाव मनुष्य को बहुत तंग करता है। शक्तियों की ओर इनके विशेष रुख ने फिर यही कराया कि विचार भी करें तो ऐसा कि गुरू जी की आत्मविद्या की परीक्षा भी हो जाए, यदि उनका दाव हवाँ ही लगे।

---

१. जैसे गुरू अर्जुन जी ने कहा है :–
आगिआ महि भूख सोई करि सूखा सोग हरख नही जानिओ।।
जो जो हुकमु भइओ साहिब का सो माथै लै मानिओ।। [मारू महला ५]

२. हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।।१।। [जपुजी]

अत: पूछने लगे कि हे गुरू जी! इतनी बात तो बताइए कि आप में कितनी शक्ति है?

अपर न तुमरे समसर देखा।
सभ ते तुम हो पुरख विशेखा।

तब गुरू जी ने कहा :–

पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा भोजनु सारु कराई॥
सगले दूख पाणी करि पीवा धरती हाक चलाई॥
धरि ताराजी अंबरु तोली पिछै टंकु चढ़ाई॥
एवडु वधा मावा नाही सभसै नथि चलाई॥
एता ताणु होवै मन अन्दरि करी भि आखि कराई॥
जेवडु साहिबु तेवडु दाती दे दे करे रजाई॥
नानकु नदरि करे जिसु ऊपरि सचि नामि वडिआई॥१॥

[वार माझ म॰ १]

इस श्लोक में सतगुरू जी ने बताया कि इतनी असम्भव बातों को कर लेने की करामात यदि प्राप्त हो जाये तो भी कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि वह माया जाल में फँसाये रखती है। वास्तविक करामात यह है कि वाहिगुरू दया करे और सच्चे नाम की देन प्राप्त हो, इस तरह के सौभग्यवान पुरुष को हम करामाती समझते हैं।[1]

इस समय लिखा है कि गुरू जी ने :–

सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल॥
बीऊ बीजि पति लै गए अब किऊ उगवै दालि॥
जे इकु होइ त उगवै रूती हू रूति होई॥
नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ॥
भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ॥
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ॥१॥ [आसा दी वार म: १]

यह श्लोक उच्चारण करके सिद्धों को यह दशा दिखाई जो राज्य कर्मचारियों तथा धर्म के नेताओं के बुरी ओर चले जाने के कारण प्रजा की हो रही थी। अब सिद्ध हर ओर से रुककर अपने अन्तिम शस्त्रगोष्ठी करने पर आ गए और प्रश्नोत्तर शुरू हो गए। अत: सतगुरू जी ने अपनी सिद्ध गोष्ट के अन्त में बताया है कि सिद्धों को गुरू के उपदेश पर भरोसा आ गया और उन्होंने नाम की महिमा को स्वीकार किया। भाई गुरुदास जी ने लिखा है :–

बाबे कीती सिद्ध गोसट शब्द शांति सिद्धां विचि आई॥
जिण मेला शिवरात दा खट दरशन आदेस कराई॥
सिद्ध बोलन शुभ बचन धन्य नानक तेरी बड़ी कमाई॥

---

१. भाई गुरुदास जी लिखते हैं, 'सतिनाम बिनु बादर छाई'॥ सच्चे वाहिगुरू तथा उसके नाम के बिना जो कुछ है, वह सब कुछ बादल की छाया की तरह बिनस जाता है और क्षण भंगुर है। उसकी प्राप्ति तो कुछ प्राप्ति नहीं, सदैव स्थिर वस्तु की प्राप्ति ही सच्ची करामात है।

वडा पुरख प्रगटिया कलिजुग अन्दरि जोति जगाई॥ [वारां भाई गुरुदास]

मेला समाप्त हो गया। उस बच्चे को सतगुरू जी ने माता-पिता को दे दिया कि घर में उनके पास रहेगा, भजन करेगा और सतनाम का प्रचार करेगा। इस सुयोग्य सिक्ख बच्चे का नाम 'संगतीआ' लिखा है।

❑ ❑

८२ सिद्ध गोष्टी[१]

अचल में सिद्धों के साथ हुई गोष्टी श्री गुरू जी ने आप लिखी है, प्रश्न उत्तर दोनों लिखे हैं। इस वाणी सम्बन्धी खोज इस प्रकार है:–

१. सिद्ध गोष्ट होने का स्थान

यह गोष्ट कहाँ पर हुई? विद्वानों में प्राय: असहमति है, कोई तो सुमेरू पर हुई कहते हैं, कोई अचल बटाले कहते हैं, पर इस असहमति का फैसला बहुत सरल है, जो भाई गुरुदास जी ने आप ही कर दिया है। सबसे पुरानी साक्षी और सबसे ऊँचे तथा स्वच्छ विद्वान तथा समीपी सिक्ख की साक्षी सबसे ज़ोरदार साक्षी है। आपने यह सिद्ध गोष्टी[२] अचल बटाले में हुई बताई है, जहाँ फाल्गुन बदि १४ को मेला लगा करता था। यहाँ पर शिव स्थान है। सिद्ध शिव उपासक थे।

भाई गुरुदास जी ने सुमेरू पर्वत और अचल बटाले दोनों स्थानों पर गुरू जी की सिद्धों से भेंट हुई बताई है। दोनों स्थानों पर गुरू जी की विजय बताई है। हम किस तरह यह निर्णय कर सकते हैं कि रामकली राग में दी हुई 'सिद्ध गोष्टी' अचट बटाले में हुई। इसका उत्तर यह है कि अचल बटाले के मेले में भाई गुरुदास जी बताते हैं कि सिद्धों ने एक करामात दिखाई, जिसमें गुरू जी ने सिद्धों को हराया, फिर सिद्ध लोग उनसे गोष्टी करने के लिए आ गये। यथा:–

'खाधी खुणस जुगीसरां 'गोसट' करन सभे उठि आई'।

फिर अन्त में भाई गुरुदास जी बताते हैं:–

'बाबे कीती 'सिद्ध गोष्ट' शब्द शान्त सिद्धां विचि आई'॥

यहाँ से स्पष्ट हो गया कि सिद्ध गोष्टी अचल बटाले में हुई है।

सुमेरू वाली सिद्धों से भेंट में गोष्टी का उल्लेख नहीं, वहाँ शब्द के साथ सिद्ध मण्डली को जीत लिया–इतने ही वाक्य हैं। वास्तव में सुमेरू के सिद्ध वे योगी हैं जो प्राय: संसार के साथ नाता तोड़कर पर्वतों में छिपे बैठे थे और मैदानों में कम आते थे। अचल में वे सिद्ध थे, जो मैदानों में भी चलते फिरते थे। पर यह बटवारा पक्का नहीं, क्योंकि

---

१. यह समाचार स्वैकृत्य सिद्ध गोष्ट टीका में से लिए गए हैं।

२. 'गोष्ट' भी संस्कृत का शब्द है, इसके अर्थ हैं:–एकत्र होने का स्थान और इससे आगे अर्थ बनते हैं एकत्रता, समागम, बातचीत, वार्तालाप, चर्चा तथा विचार।

श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी में यह पद सच्च के निर्णय के लिए जो चर्चा हो उस अर्थ को बताने के लिए भी प्रयोग किया है। अत: सिद्ध गोष्ट का अर्थ हुआ सच्च के निर्णय के लिए वह चर्चा जो सिद्धों के साथ हुई, उस चर्चा की विजय की पुस्तक।

मेलों पर पर्वतों वाले तथा सारे ही इकट्ठे होकर जाते थे। गढ़टोक से मानसरोवर की ओर उस समय सिद्धों के अनुयायिओं का बहुत जोर था।

२. सिद्ध गोष्टी होने का समय

सिद्ध गोष्ट फल्गुण वदि १४ के लगभग हुई, यह तो सीधी बात है, पर सम्वत् क्या था? यह खोज करना कठिन है, पर हाँ, यह पता हम लगा सकते हैं कि उस समय गुरू जी की आयु ज्यादा थी, आप सारे संसार की पूरब, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर की यात्रा कर आये थे, कर्तारपुर बसा लिया था, उदासी साधुओं वाला बाना उतार दिया था, अपना 'गृहस्थ उदास' का मत चला दिया था। कर्तारपुर में सवेरे जपुजी नामक वाणी का उच्चारण, सायंकाल को सोदर वाणी का कीर्तन, रात को आरती सोहला वाणी आदि की मर्याद चलाई थी। प्रेमी लोग आते थे और सतगुरू जी उनका उद्धार करते थे, देश-देश में प्रसिद्ध थे, पंजाब के घर-घर में आपका नाम था। अत: यह समय आपकी वृद्धावस्था के लगभग का हो सकता है। आश्चर्य नहीं कि उस समय आपकी आयु ५० तथा ६५ के बीच पहुँच चुकी हो, क्योंकि अचल बटाले के पश्चात सतगुरू जी मुलतान गए हैं। अचल में हिन्दू फकीरों पर विजय प्राप्त की, उन्हें नाम के अभ्यास पर श्रद्धा जमाई और उन्हें शब्द शान्ति प्रदान की और मुलतान मुसलमान फकीरों का घर था, उन्हे जीता। फिर भाई गुरुदास जी ने आपकी दूसरी यात्राओं का वर्णन नहीं किया; चाहे हरिद्वार जाना और फिर अफगानिस्तान हरात तक जाना और वापिस लौटना—पंजा साहिब आदि जाने का कौतुक भी कईयों के विचार में बाद की यात्रा है, तब भी हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सिद्ध गोष्टी के उच्चारण का समय गुरू नानक संवत ५० के पश्चात और संवत ७१ से पहले का है।

सिद्धों के साथ चर्चा ज़बानी हुई। जिस रूप में यह वाणी हमें श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी में मिलती है, यह अवश्य ही उसके पश्चात लिखी हुई है। चाहे तो गुरू जी ने उस समय वहाँ पर ही यह वाणी रची और चाहे कर्तारपुर में आकर रची, और चाहे मुलतान जाते समय मार्ग में रची। हमारे पास अब तक निर्णय के लिए कोई साक्षी नहीं, पर सम्भव यही है कि गुरू जी मेले के पश्चात जब मुलतान गये, तब मार्ग में रची यह रचना है। उस समय यात्रा पैदल, घोड़ों तथा रथों पर की जाती थी, मार्ग में एकान्त तथा अवकाश काफी मिलता था, इस यात्रा में वे सभी ख्याल—जो परस्पर सिद्धों के साथ गोष्ट में हुए—सतगुरू जी ने कविता में गुंथ दिये। शायद इसकी आवश्यकता यह थी कि आप सारे सिक्खों को, सारे देश को योगियों के हठों, तपों तथा नाटकों चेटकों से निकालना चाहते थे और सब में अपने विचार प्रवृत्त कराना चाहते थे। 'कीती' (की गई) का अर्थ यदि रची हुई हो, तो यह वाणी अचल के स्थान पर ही रची गई मानी जा सकती है, पर 'कीती' का भाव विशेष रूप से गोष्ट करने की ओर हो जाता है।

३. सिद्ध गोष्ट कैसी रचना है?

रसिक कवि कई बार अपने मन के रस भरे उछाल में आकर रचना किया करते हैं, परमेश्वर के प्यारे प्रभु के आवेश के समय उसके प्यार तथा उसकी स्तुति के छन्द रचा

करते हैं, कभी उनके हृदय में ज्ञान प्रभु की ओर से स्फुरण होता है और वह लिखा जाता है। सिद्ध गोष्ट इस तरह से रची गई वाणी नहीं है, यह तो परस्पर चर्चा हुई और उस पर किसी रस आरूढ़ अवस्था में लिखी गई वाणी है, जिसमें गुरू नानक देव जी ने वह ज्ञान, जो उन्हें 'पारब्रह्म' में अगंम की गमता होने के कारण प्राप्त था, सिद्धों के प्रश्नोत्तर के समय प्रकाशित किया था, लिखा है।

यह सिद्ध लोग गोरख मत के योगी थे, क्योंकि भाई गुरुदास ने इस साखी का वर्णन करते हुए इन सिद्धों के लिये 'योगीश्वर' शब्द का प्रयोग किया है और सारे छन्त में बताते हैं कि सिद्धों ने तन्त्र मन्त्र करके कई चेटक दिखाये, जिससे स्पष्ट हो गया है कि यह सिद्ध योगी थे और योगी भी गोरख के मत वाले थे। अत: इन लोगों को, जिनका आदर्श अब प्रभु प्राप्ति का नहीं था, पर ऋद्धियों सिद्धियों की प्राप्ति का आदर्श था और जो धर्म को केवल तन्त्र मन्त्र की शक्तियों तथा चेटकों की सफलता से प्राप्त होते थे, चर्चा करते समय सतगुरू जी ने उन्हें अपना तत्त्व ज्ञान दिया।

वह ज्ञान जो सतगुरू जी ने दिया, सारे पंजाब के योग मत के उपासकों के कल्याण के लिए आवश्यक था, इसलिए यह चर्चा लिख ली गई। सतगुरू जी ने स्वयं लिखी अथवा आप बोलते गए और 'अजिते' नामक सिक्ख ने–जो आपके साथ था–लिख ली अथवा किसी अन्य ने लिखी, इसका पता नहीं, पर गुरू अर्जुन देव जी ने यह गोष्ट श्री गुरू ग्रन्थ जी में रामकली राग में सम्मिलित की और ऊपर 'महला १' लिखा है, जिससे नि:सन्देह यह रचना श्री गुरू नानक देव जी की अपनी है।

४. गोष्टी कैसे आरम्भ हुई

टीकाकार तथा व्याख्या करने वाले एक ही बात कहते हैं कि सिद्धों की सभा लगी हुई थी और गुरू नानक जी जब गये तो उन्होंने आदेश कही तब आगे से उन्होंने प्रश्न किया और चर्चा आरम्भ हो गई, पर यहाँ एक विचार की आवश्यकता है:–

जबरदस्ती चर्चा करने तथा धक्के से भाषण सुनाने की बात गुरू नानक देव जी के स्वभाव के विरुद्ध है। गुरू नानक देव जी का ढंग यह था कि ऐसा चमत्कार दिखा देना जिससे दूसरे ने कुछ पूछना और आपने एक ऐसा साधारण तथा सच्चा उत्तर देना कि दूसरे को तत्काल ही आपे की भूल का अनुभव हो जाए। आप अपना व्यवहार साधारण, भोला, हार खाने वाला रखते, धक्के तथा ज़ोर से गले नहीं पड़ते थे, 'हार चले गुरमुख जग जीता' की रीति पर चलना और दिखाई देने वाली हार में जीत का प्रकट हो जाना। दूसरे भाई गुरुदास जी की साक्षी स्पष्ट मिलती है कि गुरू नानक देव जी चर्चा करने के लिए नहीं गए थे। आप लिखते हैं:–

"खाधी खुणस जोगीसराँ गोसटि करन सभै उठि आई॥"

योगियों के ईश्वर अर्थात् जो आचार्य योगियों के थे उन्होंने खुनस खाई और गोष्ट करने के लिए आ गए।

भाई गुरुदास जी ने लिखा है कि गुरू नानक देव जी अचल बटाले आये, वहाँ शिवरात्रि का मेला था। 'गुरू नानक आया' सुनकर मेले की जनता दर्शनों के लिए इधर

उलट पड़ी, योगियों के मण्डप खाली रह गए। यह देखकर योगी क्रोधित होकर सिद्धियों द्वारा लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करने लगे।

रासधारी रास कर रहे थे और जो रुपये पैसे लोग उन्हें देते थे, वे उन्हें एक लोटे में रखते जाते थे। योगियों ने योगकला द्वारा यह लोटा छिपा दिया। रासधारियों को रास भूल गई और रास फीकी पड़ गई। देखने वाले चिल्लाने लगे। तब सिद्धों ने कहा कि तुम सभी हमें त्यागकर नानक तपे की ओर चले गए हो, अब नानक के पास जाओ, तुम्हें लोटा देगा, फिर पता लग जायेगा कि हम पूज्य है अथवा नानक। बात क्या रासधारिए तथा जनता सभी गुरू नानक देव जी के पास चले और सबने कहा कि योगियों ने इनका लोटा कला द्वारा छिपा लिया है। गुरू जी ने बताया कि यह लोटा छिपाना तथा उसकी खोज करना तो खेल है, यह ईश्वरीय प्रेम का चिन्ह नहीं, यह तो थोड़ी सी एकाग्रता से हो सकता है, पर वाहिगुरू प्रेम कठिन बात है। अब क्योंकि तुम दुखी हो, जाओ! योगियों ने अमके स्थान पर लोटा छिपाया है, वहाँ से खोज कर लो। जब लोटा वहाँ से ही मिल गया तो सारे मेले में यह बात फैल गई कि गुरू नानक न केवल वाहिगुरू प्रेम तथा शब्द यश का मंगल सुना रहा है, पर उसने तो सिद्धों को करामात में भी जीत लिया है, अत: सिद्धों की बची-खुची प्रभुता भी गई।

यह देखकर योगियों को क्रोध चढ़ा और गुरू नानक के साथ बहस करने के लिए उठकर आ गए।

"खाधी खुणस जोगीसराँ गोष्टि करन सभै उठि आई॥"

अब तीसरी साक्षी सिद्ध गोष्ट की अपनी ही लीजिए। पहली तुक है, "सिद्ध सभा करि आसिण बैठे संत सभा जैकारो।" इस तुक में 'करि' शब्द 'देहुरी दीपक' है और इसका अर्थ है–करके, रचकर, बनाकर। अर्थात् सिद्ध आसन लगाकर, सभा लगाकर बैठ गए। सिद्ध सभा लगाकर बैठे हुए थे, यह वाक्य नहीं है, बल्कि यह वाक्य है कि 'सिद्ध सभा बनाकर बैठे'। जिससे स्पष्ट है कि गुरू नानक देव जी पहले ही बैठे थे, सिद्ध आये और सभा लगाकर बैठे।

तुक का व्याकरणक अर्थ यों बनेगा:

'सिद्ध आसन लगाकर सभा बनाकर बैठे'। इसके साथ भाई गुरुदास की साक्षी को मिलाइए:–'गोसटि करन सभे उठि आई' सारे उठकर गोष्ट करने के लिए आये।

पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि 'गुरू नानक को सिद्धों ने देखा' और 'सिद्धों ने पूछा' 'तब चौरासी सिद्ध आसन कर बैठे'।

बाले वाली जन्मसाखी में लिखा है:–

गुरू जी अचल में आ बैठे, 'सिद्ध बाद में आये'। 'क्या देखते हैं कि श्री गुरू नानक जी आगे बैठे थे'। तब गोरख ने कहा, 'आदेश' तब गुरू नानक जी ने कहा, 'आदि पुरुष को आदेश'। तब फिर सिद्ध बैठ गए और चर्चा चल पड़ी।

गुरू नानक प्रकाश में लिखा है:

पिख अज़मत पुन सिद्ध रिसाये।
चर्चा हेत सकल चलि आये।

अब इन साक्षियों से स्पष्ट होता है कि गुरू नानक देव जी अपने प्यारे सिक्खों सहित बैठे थे, सत्संग लग रहा था कि सिद्ध चलकर आये, हरेक ने अपने पदानुसार आसन किये और बैठने की योजना अनुसार बैठे और सभा लगा ली। एक ओर तो गुरू नानक देव जी सत्संग सहित बैठे थे और सामने सिद्ध आकर बैठ गए, सिद्ध सभा लग गई।

एक ओर 'सिद्ध सभा' आकर बैठी है और दूसरी ओर गुरू नानक की 'सन्त सभा' बैठी है।

पहले नमस्कार वह करता है जो बाहर से आता है, अत: सिद्ध सभा ने आकर आसन जमाए और गुरू नानक तथा उनके सत्संग से कहा, "हे सन्त सभा! हमारा तुम्हें जैकार हो।"

अब इस नमस्कार का उत्तर गुरू नानक देव जी देते हैं, 'तिसु आगै रहरासि हमारी'। अर्थात् हम दिखावे का सीस नहीं झुकाते, हमारी जैकार नमस्कार नहीं, हमारी 'रहिरास' है। 'रहरास' नमस्कार को कहते हैं, पर इसका पहला अर्थ है सच्चा मार्ग। अर्थात् हम नमस्कार करते हैं, सीस झुकाते हैं; पर सीस उस 'साचा अपर अपारो' को झुकाते हैं, अर्थात् वाहिगुरू को हमारी (मन से) नमस्कार हो। जहाँ-जहाँ पर सिद्धों से भेंट हुई है, तो प्राय: आपस में मिलने का बोल यही रहा है; सिद्ध आदेश कहते थे और आगे से गुरू जी 'एकंकार को आदेश' कह देते थे। जैसे कि श्री जेपुजी में आया है–'आदेसु तिसै आदेसु'।

फिर कहा:

'मसतकु काटि धरी तिसु आगै तनु मनु आगै देऊ॥
नानक संत मिलै सचु पाईऐ सहज भाइ जसु लेऊ॥

दूसरे सीस झुकाना तो क्या, मैं सीस काटकर उसके आगे रख दूँ, तन मन भी साथ ही दूँ, जो सन्त हो। सन्त का लक्षण यह है कि उससे मिलने से सच्च प्राप्त हो जाता है। जिसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, स्वभाविक ही प्राप्त हो जाता है[१]। तात्पर्य यह है कि वाहिगुरू और उस सन्त को जो, 'सच्च' प्रदान कर सकता है, उसे मेरी नमस्कार है।

इसमें गुरू जी नमस्कार कर रहे हैं, पर बहुत अधीनता से कह रहे हैं कि तुमने नाटक चेटक के यत्न धारण किए हैं, सच्च के स्थान पर पलाल में पड़ गए हो। यदि तुममें कोई सच्च का दाता अथवा वास्तविक प्रेमी है, तो हमारी उसे नमस्कार है, क्योंकि अगली तुक में स्पष्ट रूप से बताया है कि केवल सीस झुकाने के लिए फिरने का क्या लाभ है, मुक्त तो 'सच्चे शब्द' के बिना हो ही नहीं सकती।

अत: इस उपरोक्त साक्षियों तथा अन्दर के उल्लेखों से भाई गुरुदास जी तथा सिद्ध गोष्टी की अपनी शब्द वृत्ति को लेकर विचारने से अब तक बताई जा रही, 'गोष्ट आरम्भ' की व्याख्या ठीक प्रतीत नहीं होती,[२] ठीक बात यों लगती है कि गुरू नानक देव जी सत्संग

१. अर्थात्, वाहिगुरू की स्तुति में स्वभाविक ही लग जाते हैं।

२. वह यह था कि गुरू नानक देव जी सिद्धों के पास चर्चा करने के लिए गए। अर्थ करते समय सभी विद्वान यही व्याख्यान किया करते थे।

लगाकर बैठे थे, मेले के लोग इधर झुककर आ गए, योगी ईर्ष्या कर रहे थे, उन्होंने करामात की बड़ाई बताने के लिए रासधारियों का लोटा छिपाया। सतगुरू ने दिव्य दृष्टि से पता बता दिया। खुनस खाकर योगी चर्चा करने के लिए आ गए और सतगुरू जी के सामने सभा में आसन लगाकर सभा की भाँति एकत्र होकर बैठ गए। गुरू नानक तथा उनके सत्संग को 'सन्त सभा' कहकर नमस्कार की, उन्होंने आगे से उसका उत्तर दिया और गोष्ट आरम्भ हो गई।

पहली बात जो योगियों ने की, वह गुरू नानक देव जी के सांसारी होने का ताना था। इसका उत्तर तथा सिद्धों के नाटक चेटक करने यह बातें सतगुरू जी ने सिद्ध गोष्ट में नहीं लिखीं। भाई गुरुदास जी ने यह बातें लिखीं और जहाँ यह समाप्त होती हैं वहाँ भाई साहब लिखते हैं, "बाबे कीती सिध गोष्ट" और वहाँ से ही सतगुरू जी ने यह गोष्ट आरम्भ की है और इसमें निरोल 'सिद्धान्त' सम्बन्धी चर्चा दी है, अन्य बातें नहीं दी।

भाई गुरुदास ने इस पहली वार्तालाप को जिस तरह दिया है, उसी तरह उनकी 'पहली वार' (वाणी) में आ चुका है।

५. गोष्ट का अंत

क्या यह बहस आजकल के झगड़ों की भाँति पानी बिलोने वाली चर्चा थी और उसका फल कुछ नहीं था? यह एक प्रश्न उठता है। इसका उत्तर भाई गुरुदास जी से प्राप्त होता है, कि सिद्धों ने 'शब्द नाम के अभ्यास' को मुक्तिदाता स्वीकार किया, न केवल सिद्धों ने बल्कि छ: दर्शनों के पण्डित जो आये थे, नानक की प्रबलता को सबने स्वीकार किया और सीस झुकाया और गुरू नानक को 'ज्योति प्रकट हुई' और कलियुग का 'महापुरुष' माना। जैसे भाई गुरुदास जी कहते हैं–

बाबे कीती सिध गोष्ट 'शब्द शान्ति' सिधा विच आई।।
'जिण मेला शिवरात दा' खट दर्शन आदेश कराई।।
सिध बोलन शुभ बचन धन्य नानक तेरी वडी कमाई।।
वडा पुरुख प्रगटिआ कलियुग अन्दर जोति जगाई।।

दूसरे, गुरू नानक जी द्वारा रचित सिद्ध गोष्ट जहाँ समाप्त होती है, अन्तिम पउरी में सतगुरू जी ने अपने नम्र ढंग में सिद्धों के 'नाम' को स्वीकार कर लेने की घटना का वर्णन यों किया जाता है:–

'तेरी गति मिति तूहै जाणहि किआ को आखि वखाणै।।
तू आपे गुपता आपे परगटु आपे सभि रंग माणै।।
साधिक सिद्ध गुरू बहु चेले खोजत फिरहि फुरमाणै।।
मागहि नामु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कऊ कुरबाणै।।
अबिनासी प्रभि खेलु रचाइआ गुरमुखि सोझी होई।।
नानक सभि जुग आपे वरतै दूजा अवरु न कोई।।

इसमें गुरू जी पहले वाहिगुरू जी का धन्यवाद करते हैं, फिर बताते हैं, धारणा धारण करने वाले सिद्ध, गुरू-चेले आदि कहलाने वाले अनेकों तेरी आज्ञा की खोज करते फिरे, अब

तेरा 'नाम' माँगते हैं और कहते हैं कि उन्हें किसी तरह यह भिक्षा प्राप्त हो। हे वाहिगुरू! तेरे दर्शन (मत, फिलौसफी अथवा आत्मिक आदर्श) से अब यह न्योछावर हो रहे हैं।

फिर बताते हैं कि अविनाशी प्रभु ने खेल रचाया है, (अर्थात् इसमें मेरा कुछ नहीं) इन साधकों, सिद्धों, गुरूओं तथा चेलों को सूझ हो गई है और गुरुमुख बने हैं, फिर उस ईश्वर को कर्ता कहकर अपनी नम्रता प्रकट करते हैं।

अत: सिद्ध हुआ कि सिद्ध गोष्टी से 'शब्द का यश' अर्थात् 'नेताओं' तथा चेलों तथा साधना करने वालों, अर्थात् अनुयायियों–सभी ने स्वीकार किया।

ऐतिहासिक खोज में पहली साक्षी मिलती है कि इस दिन के पश्चात् देश में हठयोग का प्रभाव डूबते हुए सूर्य की भाँति अस्त हो गया और शब्द यश का मंगल प्यार बड़े ज़ोर से बढ़ता गया; मानो यह घटना एक ऐतिहासिक तथा अति आवश्यक नुक्ता है कि सिक्ख धर्म का प्रचार पहले प्रवृत्ति विचारों पर विजय प्राप्त करके अपने 'नम्रता भरे राज' के सिक्के को चलाकर सफल हुआ।

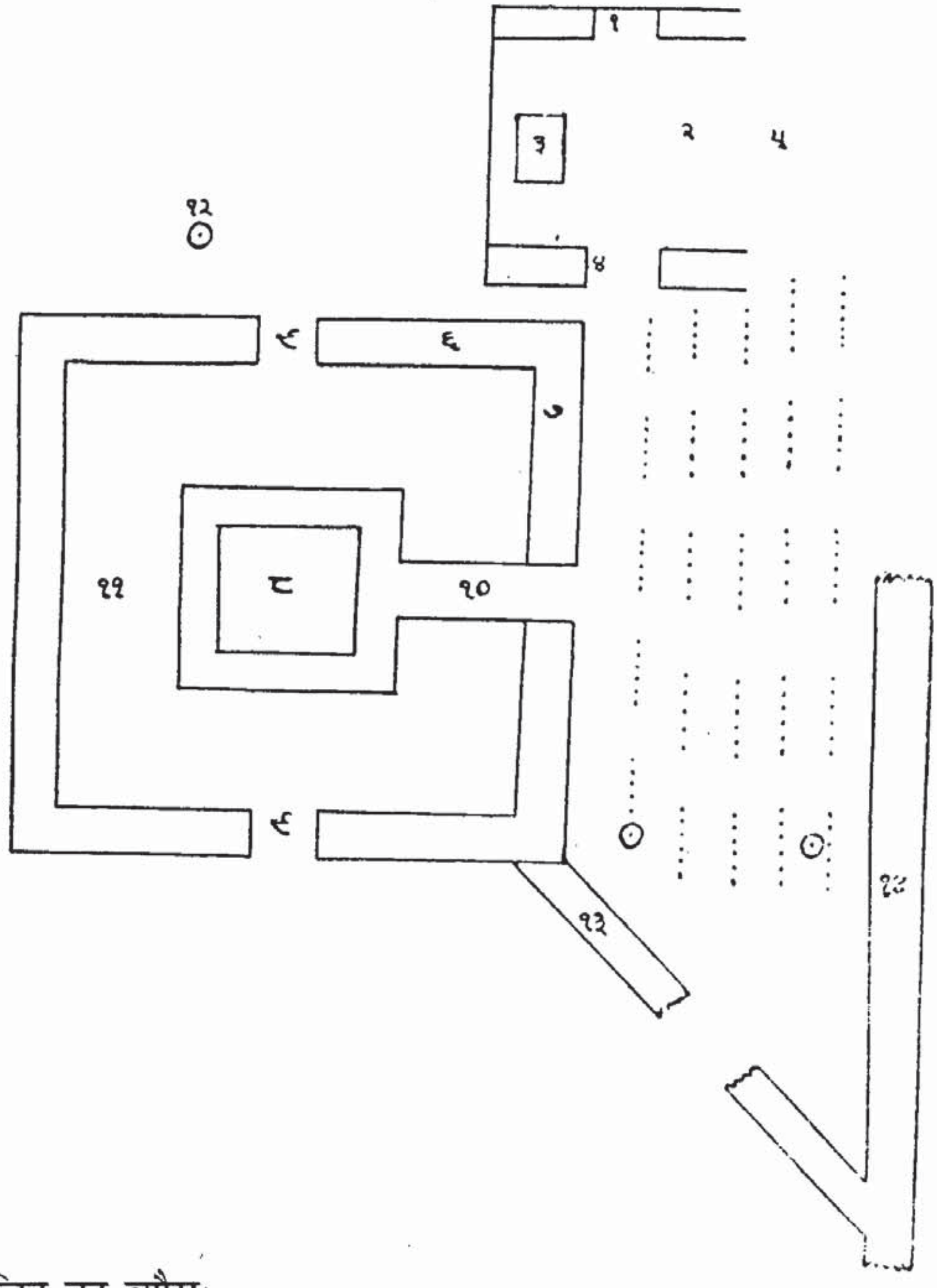
शिवरात्रि का मेला फाल्गुण वदि १४ को लगता है। प्रत्येक स्थान पर पुरातन समय से योगियों के टीले ज़िला जेहलम (पश्चिमी पंजाब) पर भी इसी तिथि को लगता है। महन्त शंकरनाथ जी झूलमामहल, गुरदासपुर वालों ने हमारी पूछताछ ने उत्तर में लिखा था कि किसी फारसी की लिखित डायरी में, जो उनके पास है, गुरू जी का शिवरात्रि के मेले के समय अचल जाना लिखा है और भाई गुरुदास जी भी शिवरात्रि के मेले पर ही जाना लिखते हैं। आइन अकबरी में भी लिखा है कि अकबर भी इस मेले में सम्मिलित हुआ करता था। अत: यह मेला फाल्गुण वदि १४ को ही लगा करता था, पर अब अचल पर शिवरात्रि का मेला फाल्गुण वदि १४ को नहीं लगता, जिससे स्पष्ट है कि सिद्धों को उस मेले पर जिसमें उन्होंने शब्द के यश के आगे सीस झुकाया–इतनी हार हुई कि मेला टूट गया, जो पूर्ण रूप से हार का चिन्ह था। जो मेला अब अचल में होता है यह शिवरात्रि को नहीं होता, यह कार्तिक सुदी नौवी-दशमी को होता है।

६. अचल यात्रा से क्या पता चलता है?

बटाले[१] स्टेशन के पास से जो सड़क कादियाँ की ओर गिर्जा के पास से होकर जाती है, वह दो मील तक पक्की है, आगे से कच्ची है और अन्त तक यह घाट तक जा समाप्त होती है। पक्की सड़क के अन्त से कोई सवा मील की दूरी पर जाकर बाईं ओर एक चक्कर आता है, जो कुछ अन्दर की ओर जाकर तिरछा होकर आधे मील तक जाता है। दूर से ही सफेद मन्दिर दिखाई पड़ता है, इसके पास ही एक पुराना खण्डहर है। खण्डहर दाईं ओर आता है, यह खण्डहर उस नगर का है, जो यहाँ पर 'बटुआ बानारस' के नाम से बसाया गया था। बाईं ओर तालाब है, खण्डहर तथा तालाब के बीच में मार्ग है। खण्डहर के आरम्भ तथा अन्त में एक पुराना कुआ है। इधर तालाब के बीच में शिवाला है, पर अचलेश्वर महाराज का

१. बटाला रामदेव भटी राजपूत ने १४६५ ई० के लगभग तातार खाँ, गवर्नर लाहौर से प्राप्त करके बसाया था।

मन्दिर तालाब के किनारे पर है, जिससे अचल नाम पड़ा है। एक परम्परा चली आ रही है कि अचल नामक स्थान स्वामी कार्तिक, शिव के पुत्र का है, जो पृथ्वी की परिक्रमा करके ठहरा था। दूसरे यह कि अचलेश्वर महाराज (शिव) का मन्दिर है, कुछ कच्चा सा चित्र उस ठिकाने का इस प्रकार हो सकता है:–



चित्र का ब्यौरा:–

स्थानों को समझने के लिए चित्र में जो अंक दिये गए हैं उनका ब्यौरा इस प्रकार है:–

१. गुरुद्वारे की ड्योढ़ी।
२. गुरुद्वारा श्री गुरू नानक देव जी।

३. चबूतरा तथा बेर का वृक्ष जहाँ बैठकर सिद्ध गोष्टी हुई।
४. दालान, जिसमें श्री गुरू ग्रन्थ जी का प्रकाश होता है।
५. लंगर तथा निवास स्थान–पुजारी गुरुद्वारा।
६. शिवाल्य।
७. अचलेश्वर का सनातन मन्दिर।
८. रामदयाल का १०१ शिवाल्य।
९. दो गऊ घाट।
१०. ड्योढ़ी तथा रास्ता।
११. तालाब।
१२. बापी तथा कुएँ।
१३. रास्ता।
१४. बटाला कादियाँ सड़क।
..... खण्डहर।

(१) तालाब तथा इसके बीच वाले मन्दिर को देखकर यह ख्याल आता है कि शायद अचलेश्वर का सनातन स्थान यही हो, पर यह मन्दिर नया है, जिसका निर्माण पुराने मन्दिर की नींव पर नहीं किया गया, पर सारा नया ही निर्माण हुआ है, जिसे बने को ६४ वर्ष हुए हैं।[१] इस पर इस समय तक एक शिला लगी हुई है, जिस पर लिखा है कि यह शिवाला तालाब तथा बाग़ रामदयाल भण्डारी ने संवत् १९११ में बनवाया। तालाब की सीढ़ियाँ इसके पश्चात् गिरकर दोबारा बनी हैं, जो आसपास के देहातों के चन्दे से बनाई गई हैं। गऊघाट अभी पक्के नहीं बने।

इस तालाब के अन्दर १०१ शिवलिंग रखे हुए हैं और दीवारों के साथ कुछ संगमरमर की मूर्तियाँ रखी हैं और कुछ चूने की मूर्तियाँ हैं। परिक्रमा में दीवारों पर कई रंगों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिनमें से एक गुरू नानक देव जी की है। पक्के तालाब की पश्चिम उत्तर की ओर दूर तक ढलान है, जिससे ज्ञात होता है कि तालाब १९११ से भी पुराना है और आसपास के पानी के बहकर इकट्ठे होने का स्थान है। तालाब के किनारे पर छोटा-सा अचलेश्वर का मन्दिर है, जिसमें शिवलिंग धरे हैं और पत्थर की कुछ छोटी बड़ी मूर्तियाँ रखी हैं। इस मन्दिर के पीछे दो और मठ हैं, इन तीनों की इमारत का रंग पुरातन प्रतीत नहीं होता, पर ढंग पुरातन है। परम्परा चली आ रही है कि पुराना मन्दिर औरंगज़ेब ने गिरवा दिया था और शिवलिंग कुल्हाड़े के साथ तुड़वा दिया था। अब के यह गुम्बज बाद में सिख मिसलों के समय में बने लगते हैं। यहाँ से आगे तालाब के किनारे से थोड़े से कदमों पर कुछ ऊँचाई पर गुरुद्वारा है, जिसकी ड्योढ़ी से गुज़रकर अन्दर आँगन में पक्का चबूतरा है, जिसकी पूरवोतर दिशा की ओर दीवार के साथ बेर का वृक्ष है; जो पुजारियों द्वारा गुरू नानक देव जी का लगाया हुआ बताया जाता है। आगे एक दालान है और श्री गुरू ग्रन्थ जी का प्रकाश होता है। दक्षिण पश्चिम के किनारे की ओर पुजारियों के

१. यह खोज संवत १९७५ में की गई थी।

निवास स्थान हैं, जहाँ गुरुद्वारे का लंगर स्थान भी है, जो उस समय गिर रहा था। परे एक द्वार खुलता है, जिसके बाहर एक दोरहटा कुआँ चलता है, जो किसी समय बावड़ी थी। बावड़ी की सीढ़ियाँ तथा छत गिरकर दब चुकी है, खण्डहर कायम है और चिन्ह भी हैं कि बावड़ी किसी समय चारदीवारी के अन्दर थी और गुरुद्वारे का एक भाग थी। बावड़ी जहाँ पर जल के गड्ढे पर खुलती है, उस ओर तो सुरक्षित है और कुए से दिखाई पड़ती है। गुरू बाबे के स्थानों तथा अन्य स्थानों पर भी प्राय: बावड़ियाँ हैं और यह भी एक उसी तरह की है, जो अब बावड़ी नहीं रही, पर उद्यम करने से फिर बन सकती है।

गुरुद्वारे के अन्दर आँगन में जो चबूतरा बेर के नीचे है, यह स्थान वह स्थान है जहाँ गुरू बाबा जी बैठे थे और सिद्धों ने आकर चर्चा की थी। इस बात की साक्षी अब भी वहाँ से पूछने-ताछने पर पता चलती है। दूसरी बात--तीनों स्थानों के पुजारियों से पता करने पर यह खबर मिली है कि शिवरात्रि का मेला गुरू जी की सिद्धों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् नहीं लगा, गुरू नानक देव आप उसे बन्द कर गये थे। नौवीं तथा दशमी तिथि का मेला गुरुद्वारे का मेला है और सिक्खों ने सतगुरू जी के प्यार में चालू किया था और मन्दिर साथ होने के कारण मेला साझा हो गया। हरेक अमावस को भी छोटा सा मेला लगता है। विचार वाली एक बात यह भी है कि तालाब के अन्दर के शिवाले की परिक्रमा की दीवार पर एक रंगीन मूर्ति बनी हुई है, गुरू नानक देव जी अपने आसन पर बैठे हैं और सामने एंव आसपास सिद्ध बड़े सत्कार सहित बैठे हैं, जिससे सिद्ध होता है कि गुरू जी की विजय और सिद्धों का उनकी बड़ाई को मानना और उनकी शरण लेने की घटना का १९११ ई॰ तक लोगों के मनों पर इस तरह का चित्र बना हुआ था कि शिव उपासक रामदयाल, जो शिव मत का आदर करता है, वह अपने इष्टदेव के मन्दिर की एक दीवार पर गुरू साहब की विजय प्रकट करने वाली मूर्ति बनाता है।

बसतीराम नामक एक ब्राह्मण ने १९१७ में 'अचलेश्वर महातम' गीत छापा है, इसमें भी वह सिद्धों पर गुरू नानक देव जी की विजय प्राप्ति को इस तरह लिखता है:–

'सिद्धाँ ने अचल ब्रह्म रूप देखा।
गुरू नानक दे तईं मथा टेका'।

इस तरह वहाँ के लोग बताते हैं, जिससे स्पष्ट है कि चार सौ वर्ष पहले की घटना सिक्खों के सिवा ब्राह्मणों, योगियों तथा शिव के उपासकों को भी याद चली आ रही है कि गुरू जी के सिद्धों को यहाँ आत्मशक्ति से जीत लिया था, जो भाई गुरुदास जी की तथा सिद्ध गोष्ट की तथा जन्मसाखियां की दी हुई साक्षी की एक भारी पृष्टि है। सिद्ध गोष्टी को यह मान प्राप्त है कि जहाँ यह गोष्टी हुई वह ठिकाना अब तक अंकित है।

❑ ❑

८३ मुलतान

इस अचल बटाले के मेले में पंजाब को सिद्धों के प्रभाव से सदा के लिए मुक्त करके श्री गुरू जी मुलतान की ओर चल पड़े।

आगे मुलतान में सुनते ही सभी पीरों, फकीरों में घबराहट शुरू हो गई।

मुलतान पीरों से भरा हुआ था, गुरू जी के वहाँ जाने की सूचना सब ओर फैल गई। सभी बुद्धिमान पीरों ने मिलकर मन्त्रणा की कि गुरू नानक यहाँ पर चला आ रहा है और वह आकर हमारा साज समाज छीन लेगा। इसके लिये कोई उपाय सोचिए, जिससे हमारी पूजा बची रहे। इसलिए हे पीरो तथा फकीरो! 'सायंकाल को एक स्थान एक एकत्र होवो।'

जब सभी इकट्ठे हुए तो कई प्रकार से सोचने लगे। उनमें से 'सहजू' नामक एक चतुर भक्त था, वह सोच-सोचकर कहने लगा:—लबालब भरकर दूध का कटोरा भेजें। सुना जाता है कि गुरू नानक महान त्यागी पुरुष है। वह इसका अर्थ समझ लेगा और अपने आप चला जायेगा। यदि लालच में आकर यहाँ पर ठहर ही गया तो फिर इकट्ठे होकर उसे दुखी करेंगे।

अत: यह मन्त्रणा करके दूध का कटोरा भरकर सिरोमणि पीर फकीर गुरू जी के पास ले गये और धीरे से सतगुरू जी के आगे रख दिया।

दूध का कटोरा आया जो पीरों की भारी भेंट थी। गुरू नानक देव जी उस दूध को देखकर हँस पड़े। चंबेली का फूल लेकर धीरे से उसके ऊपर टिका दिया, वह सुन्दर फूल दूध पर टिककर और भी सुन्दर लगने लगा। इसका आशय यह था कि हमारी भेंट तो फूलों की सी है, किसी को देखकर न तो दुखी होना और न ही दुख देना। गुरू जी ने पीरों को इस तरह भाव बताया। ईश्वर निर्वैर है और सन्त का जीवन भी निर्वैर ही चाहिए और उसका प्यार प्रत्येक जीव में होना चाहिए।

चंबेली को दूध पर देखकर सभी पीर साधु गुरू जी के आगे झुक गये[१]। सबको पता चल गया कि नानक का किसी से बैर नहीं। उनके साथ पीर बहावल हक तथा शाहशरफ़ भी थे। साथ अब्दुलकादिर और पीर सुहागिण भी थे। बुद्धिमान सहजू भक्त और अमरनाथ योगेश्वर भी साथ थे, सभी चरणों पर गिरकर आज्ञा माँगने लगे। पीर, फकीर, अमीर सभी वहाँ पर फिर आ इकट्ठे हुए। सतगुरू जी धर्मवान तथा धैर्यवान थे—प्यार तथा आदर देकर

---

१. यथा— मेलियों बाबा उठिआ मुलताने दी ज़िआरत जाई।।
अगों पीर मुलतान दे दुध कटोरा भर लै आई।।
बाबे कढ करि बगलि ते चंबेली दुध विचि मिलाई।।
जिऊँ सागर विचँ गंग समाई।। [वार भाई गुरुदास १-४४]

सबसे मिले। तब सतगुरू जी ने मधुर स्वर में गया, यदि उन प्यार भरे वाक्यों को आप सुनें तो भवसागर से पार हो जायेंगे।

"जैसे जल महि कमलु निरालसु मुरगाई नैसाणे।
सुरति सबदि भवसागरु तरीअै नानक नामु वखाणे"।

सुनकर सभी पीर गुरू जी का आशय समझ गये कि गुरू दूध पर रक्खी चंबेली के फूल की भाँति ही अलेप है। फिर मरदाने का सुन्दर रबाब छिड़ा और गुरू जी के सुन्दर कण्ठ से अदेशी नाद शुरू हुआ।

"अंतरि वसै न बाहरि जाइ॥
अंमितु छोडि काहे बिखु खाइ॥१॥
अैसा गिआनु, जपहु मन मेरे॥
होवहु चाकर साचे केरे॥१॥रहाऊ॥
गिआनु धिआनु सभु कोई रवै॥
बाँधनि बाँधिआ सभु जगु भवै॥२॥
सेवा करे सु चाकर होइ॥
जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ॥३॥
हम नहीं चंगे बुरा नहीं कोइ॥
प्रणवति नानकु तारे सोइ॥४॥१॥२॥

शीतलता फैल गई, मन प्रसन्न हुए और सबको होश आ गया। सतगुरू जी ने ईश्वरीय स्मरण प्रदान करके ईश्वर को याद करा दिया। उन्होंने मन से मान निकाल दिया और सब ने जान लिया कि गुरू नानक धुर से आया गुरू है। आप सबको अमूल्य जीवनदान प्रदान करता है। इस तरह कल्याण बाटकर गुरू जी वहाँ से चल पड़े।

वास्तव में बात यह थी कि मुलतान में भी अचल बटाले की भाँति पीर फकीर एकत्र हुआ करते थे और गुरू नानक देव जी के नये चलाए हुए सत्य के आश्रय खड़े होकर ईश्वरीय प्यार वाले ढंग के आगे अपने अनुयायिओं के अपने ही हाथों निकलने से उनकी ओर से रुकावट डालने के लिये उनकी ओर से अन्तिम प्रयत्न विचारा जा रहा था, जिसमें सतगुरू के प्यार, सच्चे वाहिगुरू के प्रेम तथा ऊँचे आत्मिक प्रभाव ने सबको झुका लिया और सबने उन्हें ईश्वर की ओर से आया हुआ समझकर सीस झुकाया। क्योंकि यहाँ उच्च वाले और शेख ब्रह्म तथा वली कन्धारी और पानीपत, सरसा तथा अन्य स्थानों से वे पीर फकीर भी आये हुए थे जो गुरू जी से आत्मिक-जीवन-कण प्राप्त कर चुके थे। इसलिए गुरू नानक देव जी का सत्य तथा शब्द का आदर्श सबने स्वीकार किया। उस समय का फकीरों में गुरू नानक का जो सिक्का बैठा था, वह आज तक जारी है। उस समय से आज तक के सभी सूफी तथा अन्य भक्तिमार्गावलम्बी मुसलमान फकीर गुरू नानक को महान उच्च, शक्ति वाला, वली (अवतार) तथा शान्ति का रूप मानते चले जा रहे हैं।

इस सिक्का मारने पर भाई गुरुदास जी मुलतान की साखी के पश्चात् यह कहते हैं:

मारिआ सिक्का जगत विच नानक निरमल पंथ चलाइआ॥

१. अब ओस पड़ने का समय आया है[१]

मोर पपीहे ने शोर बन्द कर दिया है, दादुर भी चुप हो गये हैं। बादलों ने भी शोर बन्द कर दिया है और बिजली ने अपनी चमक छिपा ली है। नदियों की बाढ़ भी उतर गई है और पवन भी सहज के धर आ गई है। मीठी-मीठी भीनी रसदायक ओस पड़ रही है। भीनी रैन, चन्द्र तथा तारे सभी भीने हैं और भीनी पवन भी सुखदाई है। भीनी ठण्ड है, धरती सुहाविनी है और टेक पर टिकी हुई है। मेहर के मालिक मेहर कर दे, ओस पड़ने की ऋतु आ गई है। हे गुरू! ओस की भाँति धीरे-धीरे आकर आँखों में समाओ। चिरकाल से बिछड़ी हुई के हृदय में आकर मीठी शीतलता डालो। हे सेली वाले अदेशी दाता! सौन्दर्य ही सौन्दर्य बरसाना। चन्द्र तथा सूर्य तेरे सिंहासन हैं, आ इधर को आ।

अब तो ओस पड़ने की ऋतु आ गई है, अब तो वियोग अच्छा नहीं। हे प्रभु! अब विरह में मत रख। हे गोसाईं। अब दूरी को मिटा दे। हे प्यारे! अब परदेश में मत बस, अब तो आकर मेरे आँगन में रंग लगा। अब तो घर पर ही बसो, बाहर मत जाओ और मेरे नैनों में समाये रहो। मेरी अश्रुओं वाली आँख भीग रही है, उसे अब अपने दर्शन से भीना कर दो। रिमझिम करती हुई छमाछम बरस रही है, उसे आकर अपना सिंहासन बना लो।

अब तो ओस पड़ने की ऋतु आ गई है, यह ऋतु भेंट कराने में सहायता करती है। अब दर्शन वाली ऋतु आ गई है, चाह पूरी करने वाली ऋतु आ गई है। तारे, चन्द्र, नीला आकाश सभी भीग रहे हैं। सुखदायक ओस पड़ रही है। अब तो मिलाप की ओस नैनों में आकर पड़े और नैन रंग लगाये रखें। अब तो ओस पड़ने की ऋतु आ गई है, अब तो संयोग की ऋतु आ गई है। अब तो वह ऋतु आ गई है जो मिलने के पश्चात् कभी भी बिछड़ने वाली नहीं। आकर मिलो, आओ अब मिला लो, रंग लगाने वाली ओस पड़ रही है। अब तो ओस पड़ने वाली ऋतु आ गई है, आकाश से ओस आ गई है। वह ओस स्वाद, शीतलता ठहराव लाई है और रस से भीगी हुई छवि लाई है। हे लोगो! यह ओस पड़ती हुई दिखाई नहीं पड़ती, पर सुखदाई ओस पड़ रही है। जैसे जैसे पड़ती है अन्दर में सींचती जाती है, रस और शीतलता प्रदान करती जाती है। हे लोगों! आकाश से ओस आई है, उसे आँखों में समा लो। उसे सतगुरू नानक ने आप ही भेजा है, आकाश से चलकर आई है। अब ओस पड़ने की ऋतु आ गई है और खूब ओस पड़ रही है। प्रेम रंग से रंगी तथा भीगी हुई, ईश्वरीय ओस पड़ रही है।

सूचना:–मुलतान से चलकर गुरू जी के ठहरने का जो प्रसंग मिलता है, वह जेहलम ज़िले में बाल गुँदाई के टीले पर है। यह प्रसंग श्री गुरू नानक प्रकाश तथा बाले वाली साखी में इसी स्थान पर आया है।

❑ ❑

१. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

८४ बालगुँदाई

जेहलम से चलकर पर्वत का एक ऊँचा टीला आता है, कोई बारह, तेरह कोस की दूरी है, इसे 'बालगुँदाई का टीला' कहते हैं[१]। योगियों के सम्प्रदाय में एक सुन्दर योगी हुआ है जो इस टीले पर रहता था। इसी के नाम पर टीले का नाम पड़ा है। यह साधु योगी तो था और एकान्तवासी भी था, पर इसका झुकाव सिद्धियों करामातों की ओर कभ था। इसे परोपकार बहुत अच्छा लगता था, अपने मार्ग का ज्ञाता था पर हठ की अपेक्षा राजयोग की ओर ज़्यादा झुकाव रखता था। ततिक्षा का इच्छुक था, आप भूख, प्यास दुख-सुख सहन कर सकता था, पर दूसरे की पीड़ा के लिए एक कोमल हृदय रखता था। लोग तो सिद्ध[२] तथा करामाती समझते थे, पर वह दूसरों को सुख देने में ज्यादा प्रसन्न होता था। जब इस भले पुरुष के पहले तप हठ का समय व्यतीत हो गया और प्रसिद्धि हो गई, तो धन आने लगा। इसने उस धन को दूसरे के दुखों को दूर करने में लगाना आरम्भ कर दिया। इसकी यह प्रसिद्धि सुनकर एक दिन इस टीले पर परिश्रमों का फल लगाने वाले तथा बाधाओं को हटाने वाले सदैव जागृत श्री सतगुरू नानक देव जी आ गये। आप इस अतीत साधु के आश्रम पर नहीं गये। कुछ दूरी पर एकान्त में ही विराज रहे। हाँ विराज रहे, एकान्त में ईश्वरीय रंग में रांते अपने प्रभु के रंग में मग्न। चेहरे पर से सौन्दर्य की फुहार पड़ रही है और चारों ओर आत्म प्रभाव रसानन्द की बहार लगा रहा है और प्रभु की अनुग्रह की सुगन्धि फैला रहा है।

किसी ने जाकर बालगुँदाई को बताया कि दो अतीत बाहर उद्यान में निजानन्द में मग्न बैठे हैं, तपस्वी तथा योगी प्रतीत होते हैं, पर चेहरों पर एक आभा है, बहुत ही सुन्दर, जो कभी पहले देखने में नहीं आई। सायंकाल हो रहा है, बादल हो रहे हैं, आपने आज्ञा दे रखी है कि आपके समीप कोई भी दुखी न हो। अत: आपको सूचित कर रहा हूँ कि यदि आप उनके सुख के लिए कोई प्रयत्न करना चाहें तो अब समय है।

बालगुँदाई को क्या पता था कि आज कौन उसके परोपकार की सूझ को खोल देने वाला दाता आप आ गया है। उसने समझा कि कोई अतीत तथा त्यागी साधु हैं, अत: उसने अपने दासों को उन्हें ससत्कार आश्रय में ले आने के लिए कहा। जब उसके दास पहुँचे तो सतगुरू जी नीले-नीले आकाश तथा काली घटा की चाल को देखकर चकित हो रहे थे। दास ने करबद्ध प्रार्थना की—साधु सज्जनो! बाहर जंगल है, ठण्ड है, वर्षा का रंग है, कृपा

---

१. गुरू प्रताप सूर्य ग्रन्थ की पाँचवी ऋतु अंशु ३० तथा गुरू नानक प्रकाश में तथा बाले वाली जन्मसाखी में 'बालगुँदाई' लिखा है, आम बोलचाल में 'बालगुँदाई' भी कहते हैं।

२. गुरू प्रताप सूर्य ऋतु ५ अंशु ३० में बालगुँदाई को 'सिद्ध' लिखा है।

करके उठो और सिद्ध बालगुँदाई के स्थान पर चलो, सकुशल रात्रि को विश्राम करो, अन्न जल लो, स्थान के स्वामी सिद्ध बालगुँदाई ने आपको लिवा भेजा है, वे आपका स्वागत आदर सहित करेंगे और आपको सुख देकर सुखी होंगे।" आप बालगुँदाई के विचार में सुख देवें की इच्छा वाली बात सुनकर प्रसन्न हुए, खिले हुए चेहरे तथा सुन्दर मुखड़े से मुस्कराये:–

श्री प्रभु कह्यो न हम चल जावहिं।
जहिं बैठहिं तहिं रैन बितावहिं।
चहिए नित अतीत को अैसी।
आइ जु बनहि बितावहि तैसी। [श्री गुरू नानक प्रकाश]

सेवकों ने यही सन्देश जाकर बालगुँदाई की सुनाया, तब उसे गहरा सोच हुआ कि जब बादल गर्ज रहे हैं, शीतल पवन जल रही है, सायंकाल हो रहा है, फिर जो मन्दिर के निमन्त्रण पर भी अपने आसन से नहीं उठता, वह कोई साधारण साधु नहीं, अवश्य ही कोई शक्ति वाला है, मुझे उसका आदर करना चाहिए। यों विचारकर आप आया। सौन्दर्य वाला माथा देखकर शीतल हो गया, रसिक नैनों का 'नेत्र स्पर्श' से खिला और विनय करने लगा:–

हे अतीत! बादल चढ़ रहे हैं, वर्षा होने वाली है, ठण्ड है, इस नंगे स्थान पर सकुशल रात व्यतीत होनी कठिन है, आओ चलो अन्दर और सुख सहित मन्दिर में रात व्यतीत करो। ससत्कार विनय करने के लिए आया हूँ–आप अन्दर चलिए।

श्री गुरू जी–"साधु राम! तुम बहुत अच्छे हो, जो अतिथि का इतना आदर कर रहे हो, पर हमें, जहाँ हम बैठे हैं, वहीं पर बैठने दीजिए। ठीक कट रही है, ठीक कट जायेगी, जहाँ जिस तरह कटे वैसी काट लेना ही फकीरी धर्म है। हाँ हमारी तो बहुत-सी आयु देशों विदेशों में घूमते-फिरते कटती रही है और जैसे ही सदैव व्यतीत होती रही है आज व्यतीत हो जायेगी। हम वनों में विचरने वाले कहाँ मन्दिरों की खोज करते फिरें। हमारा तो सदैव यह मत रहा है कि जैसे जिस तरह की जहाँ पर आई वहाँ उस तरह से व्यतीत हो गई।

बालगुँदाई ने फिर टकटकी लगाकर देखा, नैनों में से तेज एक एश्वर्य का एक प्रभाव बरसता हुआ प्रतीत हुआ। उसके शरीर में से एक झुनझुनी सी गुज़री, साथ ही कुछ प्यार तथा श्रद्धा की झन्नाहट छिड़ी, करवद्ध कहने लगा:– आपने सत्य कहा है, फकीर को 'जैसी आये, वैसी गुज़ार ले', इस बात पर ही चलने से सुख प्राप्त होता है, पर हे अतीतों के शाह जी! यदि प्रभु कहीं मन्दिर, छाया छप्पर में सुख व्यतीत करने की रात्रि ले आये तो वह भी उसी की ओर से आई समझकर वैसे ही व्यतीत कर लेनी चाहिए। पदार्थ भी उसी के ही हैं, हम फकीरों का क्या है?"

गुरू जी–यदि गृहस्थ करे तो धर्म की कृत्य करे, सच्च पर चले, हाथ से देकर लेने वाले का भला मनाये। यदि अतीत हो तो जैसी बन पड़े, काट ले, पर जब सुखों की आए तो सुखों में मत घुसे। सुखों का स्पर्श अतीत को फँसा लेता है। शरीर तथा शरीर की आवश्यकताएँ प्राकृतिक होने के कारण बलवान आकर्षण मारती हैं, जिनके आगे अतीत भी

बलहार बैठते हैं। अत: यदि अतीत है (चाहे मन का चाहे शरीर तथा मन दोनों का) उसे चाहिए कि वह हर दशा में से निकल जाये, पर कहीं अटक कर खड़ा न हो। बहते हुआ जल ताजा रहता है, अपने हाल में चलते रहने वाले फकीर ताज़ा रहते हैं, जहाँ प्रभु का प्यारा अटक गया, वहाँ ताज़गी गई। अटकाने वाले यही सुख हैं जो पहले तो निर्वास प्राप्त होते हैं पर फिर सुख की वासना उत्पन्न कर देते हैं, फिर सुखों के भोगने में अटका लेते हैं। जो भोगों में अटका वह फटका। बालगुँदाई! अतीत को ततिक्षा में रहने देना पुण्य है।

बालगुँदाई ने समझ लिया कि परमार्थ वालों के लिये किसी ठिकाने पर अटक कर खड़े हो जाना पतन है और हर दशा में से गुज़रते जाना ताज़गी को कम नहीं होने देता, यह विचार साधारण नहीं है। यह जीवन का एक महान नियम बताया है जो कर्मण्य से उत्पन्न होता है। हाँ आपने ठीक कहा है कि सुख का स्पर्श, सहज, स्वभाव से ही 'सुख की वासना' उत्पन्न करने का अपना प्रभाव डाल जाता है। यह भी बड़ा सूक्ष्म विचार है। आज तो हे मन! तेरा सम्पर्क किसी विशाल बुद्धि वाले बुद्धिमान के साथ हुआ है, साधारण खेल तो नहीं लगता? फिर पूछने लगा कि आप कौन हैं, पर फिर साहस न हुआ और उन्हें वर्षा से बचाने का विचार तीव्र हो गया कि इस तरह के महात्मा को अवश्य ही सुख देना चाहिए। यों विचारकर कहने लगा–प्रभु जीवन वाले! आपने सच्च कहा है कि साधु को किसी दशा में भी अटकना नहीं चाहिये। साधु कभी भी यह न चाहे कि वह इस दशा में अटक जाये, पर मेरी विनय तो केवल आज की रात्रि के लिये है, एक रात मन्दिर के आश्रय में चले चलिये, उसी तरह जिस तरह प्रतिदिन वृक्षों की छाया में से निकल चलते हैं और सूर्य की तप्त में से एवं घनघोर घटाओं तथा छम-छम वर्षा में से। आप महान हैं, इच्छा रहित हैं, अपनी इच्छा से उच्च हैं, आपने इच्छाओं को इच्छा रहित किया है, पर मैं सेवा का इच्छुक हूँ, मेरी आवश्यकता के लिये ही आज चलकर अन्दर बसो, कल से आपकी सुन्दर मस्त नदी चलती रहेगी, अपनी मस्त गति से अपने मार्ग पर। जोहड़ अटकते हैं, पर बड़ी नदियों को कौन अटका सकता है? जिन्हें पर्वत नहीं रोक सकता और जिन्हें सागर नहीं सँभाल सकता, वे सदैव ताजे सदैव चलने वाले कब अटकते हैं? चलती हुई नदी की भाँति सींचते हुए चलो। हाँ इस पृथ्वी को जो हाथ जोड़े आपके सामने खड़ी है। भाग्यवान बनाते हुए चलो, इसका उद्धार करते हुए चलो।

इस नम्रता तथा प्यार को देखकर गुरू जी पसीज गये और घनघोर बादलों के विस्मय भरे रंग का त्याग करके अपने आत्मिक विस्मय के निरंतर स्रोत में डुबकी मारने वाले दाता जी मन्दिर के अन्दर चले गये। बालगुँदाई ने निज धर्म जानकर आने वालों के स्वागत[१] को जल मँगवाया, चरण धोये, पोंछे और आराम सहित बैठाया और आदर देकर कहने लगा कि यदि आपकी अतीत दृष्टि इस स्थान के पदार्थों पर पड़ जाये तो सारा सामान पदार्थ सुहावना हो जाये।

आप एक गम्भीर ध्वनि में, पर प्रसन्न मुख से कहने लगे–हे योगीराज! लीला के रंग हैं, दीख रहे हैं, इन्हें और क्या देवें? राजसी रंग तथा धन का प्रसार मीठा मक्खियों के

---

१. अगते स्वागतं सारं।

लिये, जो फँस गईं, वे उड़ने योग्य नहीं रहतीं, हाँ, ये वस्तुएँ मधुमक्खी के लिये साधारण हैं जो मधु एकत्र करती हैं, पर उसके छिनते समय उड़ जाती है। हाँ साधु राम! अनल पक्षी के लिए जो आकाश की नीली गहराईओं में उड़ता है, पदार्थ कोई पकड़ नहीं है।

बालगुँदाई और घबराया और सोचने लगा कि आप बात करते हैं मानो अगंम का चट्टान तोड़ते हैं। ज्यों-ज्यों वाक्य सुने, त्यों-त्यों यह चाव और बढ़ा कि अपना सारा समाज दिखाया जाय और फिर अपनी वृत्ति का टिकाव तथा त्याग भी दिखाया जाय कि वह कहाँ है और फिर यदि मिल सके तो इस तरह की त्यागमूर्ति की राय तथा आशीर्वाद लिया जाय, कहने लगा "हँस मानसरोवर पर निवास करते हैं, पर उड़ान में कई सरों, झीलों, तालाबों जोहड़ों से होकर चले जाते हैं, वैसे ही, हे संन्यास के प्रभ जी! आप उड़ान वाली दृष्टि से मेरे एकत्रित किये हुए पदार्थों के ऊपर से चले चलो।"

गुरू जी–अच्छा बालगुँदाई अच्छा! दिखा साधु के घर का राज समाज।

तब योगी ने कोष दिखाया। वस्त्रों का भण्डार खुला और गुरू दृष्टि ऊपर से ही तैर गई। फिर गुरू जी ने कहा–"हाँ योगीराज! समाज तो अच्छा देखा।"

फिर सुन्दर घोड़े दिखाये तो आपने कहा ठीक। राज तबेले ठीक हैं, देखे हैं। इस तरह के कटाक्ष करते हुए आप सब कुछ देखते गये।

इन संकेतों का गुरू जी का भाव उसे किसी ठिकाने से उठाने का था।

बालगुँदाई–यह सामान तो अपने आप ही आ गए हैं, मैंने इकट्ठे नहीं किये।

गुरू जी–ठीक है, जब आये तो प्रयोग कर लिए, पर इस तरह से प्रयुक्त करने से फिर चाह उत्पन्न होती है–कि ये आते ही रहे और काम चलता रहे। वह चाह अतीत के मन को इस तरह है, जिस तरह मानसरोवर पर हंसों में कोई मलिन सी चिड़िया।

बालगुँदाई ने यह सूक्ष्म बात समझी, अपने अन्दर झाँका, जहाँ वह सदैव इच्छा रहित तथा बेपरवाह होकर फिरता था। उसे आज दीख पड़ा कि 'निर्वाह होता रहे' यह चाह उसके अन्दर भी है। पदार्थ मुर्दा है और ज़रूरतमन्दों की आवश्यकता सामने आकर खड़ी हो जाती है, तब अन्दर चाह उठती है कि और आये तो इनका निर्वाह चल सके। मन से कहने लगा कि यह सुन्दर दाता जी कहाँ से पकड़ते हैं। इस बार के आश्चर्य में योगी के मुँह से निकल गया कि आप कृपा करके अपना शुभ नाम तो बताइए। तब आपने अपना नाम बताया, नाम सुनकर एक झन्नाहट छिड़ी। नाम तो सुन रखा था, आपके कर्त्तव्य तथा कीर्ति भी सुन रखी थी। सिद्धों, योगियों, पीरों, फकीरों पर विजय भी सुन रखी थी, चित्त में सत्कार और मिलने की इच्छा भी थी। मन में 'धन्य भाग्य समझे, अपने आपको सौभाग्यवान समझा'; चरण परसे[१] और सुख का सुख प्राप्त किया।

कुछ समय पर्यन्त यह सुख प्राप्त करके सोचने लगा कि गुरू नानक देव जी के सच्च की धाक पड़ी हुई है, एक बात पूछें, हे तनिक सी अहं की, पर तनिक परीक्षा भी हो जायेगी। तब कहने लगा, "सतगुरू जी! मेरा एक संशय है, वह यह है कि अब वर्षा शुरू हुई है, पवन चल रही है, यदि आप बाहर रहते तो सुख से व्यतीत होती अथवा अन्दर सुख से व्यतीत हो रही है। क्षमा करना मेरे इस तरह से पूछने के साहस पर।"

१. बालगुँदाई ने श्री गुरू नानक देव जी के चरणों पर सीस झुकाया। [जन्मसाखी बाले वाली]

गुरू जी—भाई, शरीर का स्वभाव सुख को सुख और दुख को दुख अनुभव करना है, बाहर कुछ दुख से कटती, अन्दर सुख से कट रही है, इसमें संशय ही क्या है? पर दुख सुख को सम करके जानना यह तो हरि के जनों का धर्म है।

"दुख सुखु सम करणा सोग बिओगी।" [रामकली म॰ १]

दुख सुख है, सम करने से दुख का सन्ताप तथा सुख की अचेतना दोनों दूर हो जाते हैं। हाँ, जो निरंकार की ओर बाँह उमड़ा रहा है उसे दुख तो औषधि हो जाते है और कई बार सुख रोग का काम कर जाते हैं। इसलिए दुख सहन करने और दुख सुख एक समान करना ही सार है।

योगी यह सुनकर और चकित हुआ कि कैसा सत्य कहते हैं और फिर रहस्य की कैसी ठिकाने की बात करते हैं कि दुख सुख को सम करना तत्त्व दृष्टि है।

तब योगी ने शाक मँगवाया और भखड़े की (एक जंगली बूटी) की रोटी हाथ में ली और आपके आगे करके कहने लगा, "दाता जी! मेरा तो यही आहार है। जो पकवान आपने लंगर में देखे हैं, वे मेरे खाने योग्य नहीं, मैं तो यह खाता हूँ। सब कुछ आने जाने वाले अतिथियों के लिए है। मेरा पहरावा यह खद्दर है, आपने जो वस्त्रों के भण्डार भरे हुए देखे हैं, वे सब ज़रूरतमन्दों के लिए हैं, जो नंगे आते हैं उन्हें देता हूँ। जो तबेले आपने देखे हैं वे पैदल चलने वाले थके टूटे पथिकों, यात्रियों के काम के लिए हैं। मैं घोड़ों पर चढ़कर सैर नहीं करता। श्रीमान! मैं कुछ भी ग्रहण नहीं करता, सब कुछ उपकार के लिए है।"

कब हौं करों न अंगीकार।
सभ राखे हित परोपकार।। [गुरू नानक प्रकाश]

तब श्री गुरू जी हँस पड़े और थपकी देकर कहने लगे, हे बालगुँदाई! तू योगियों में से उत्तम योगी है जिसने स्वार्थ को जीता है और पीड़ा को पहचाना है और दूसरे की पीड़ा दूर करने के लिए आपे को मारा है। 'पर...पर' कहकर आप चुप हो गए और योगी प्रतीक्षा में घुटने टेककर बैठ गया कि उसके कल्याण के लिए कोई उत्तम विचार उसके कानों में पड़ेगा। योगी अपना ऊँचे से ऊँचा आदर्श तथा ऊँचे से ऊँचा त्याग कह चुका था और अब इस लालसा में था कि जिन्होंने 'पर' कहा है वे आगे से कुछ और कहेंगे कि जिसके साथ उसे कोई रहस्य खोलकर समझायेंगे।

पर गुरू जी चुप ही रहे। फिर बालगुँदाई ने कहा—दया कीजिए, वह बात बता दीजिए जो मेरे कल्याण के लिए हो। तब गुरू जी ने कहा—

बालगुँदाई तू भला है, भलाई को क्या करें, पर देख चलते हुए कुँए की टिंडें पानी लाकर पनाले को देती हैं और पनाला आगे बड़े पनाले को देता है, बड़ा पनाला झट ही नाली में डाल देता है। पनाला तथा बड़ा पनाला एक बूँद भी अपने पास नहीं रखते। उनका सुझाव तथा निर्माण ही देने वाला है और त्याग वाला है, पर देख शैवाल उन्हें भी लगती है।

बालगुँदाई के अन्दर यह दृष्टान्त उतर गया कि वह जो पदार्थों को अपने पर नहीं व्यय करता, पर दूसरों को देता है, यह भी उसके अन्दर अहं का कुछ अंश छोड़ता है।

पहले बता चुके हैं कि 'दान का प्रवाह तो चलता रहे' यह इच्छा हो आती है। इस तरह यह चाह अहं का मैल लगाती हैं बात समझकर सिद्ध का हृदय टूटा और दीख पड़ा कि जगत में वासना रहित होना असम्भव है, और बड़े दुख की बात यह है कि औषधि कहीं भी नहीं। फिर आपा सँभालकर कहने लगा–है कोई ऐसा ढंग जिससे पनाला शैवाल से बच सके।

गुरू जी–मन तथा शरीर एक चक्कर की भाँति चल रहे हैं, हम इसमें पड़े इसके अधीन हो रहे हैं, शुभ तथा अशुभ कर्म हमें इसी में रखते हैं। हाँ, शुभ कर्म भी हमें इसके अधीन रखते हैं, तब तक जब तक हम चक्कर की अधीनता से निकलकर इसकी हत्थी पर अधिकार न जमा लें और वह अधिकार केवल आपे के बल से नहीं पड़ता। आपे को परम आपे के साथ लगा लें तो आपे का बल असीम हो जाता है और उस बल से इसका अधिकार उस हत्थी पर रखा रहता है। फिर कोई शैवाल नहीं लगती।[१]

बालगुँदाई–वह कैसे हो? हठ तप कर चुका हूँ। रोक-रोककर बाँधने का यत्न भी किया, निग्रह किया। व्रत एवं तप भी धारण किए, फिर बताइए मेरा कुछ सँवरा है अथवा नहीं?

गुरू जी–जो साधन किये जाते हैं और शुभ भावना से किये जाते हैं, अहंकार उन्हें खराब करता है, पर अच्छी बात को बुरा क्यों कहा जाए। नेकी तो नेकी ही है, जिस तरह बोया हुआ बीज वृक्ष बन गया, पत्ते निकल आए। वृक्ष तो है, पर हम चाहते हैं कि उसमें फूल लगें, वह सुगन्धि फैलाए, उसमें फल लगें, वह सफल हो, उसमें गोंद का रस आये, वह आपे में से अमृत दे। हाँ, यों उगे, बढ़े, सपत्र हो, सफूल हो और सुगन्धि वाला हो। हाँ, सफल हो और अमृत रस वाला हो और रस उसमें से टपक-टपक पड़े। रिक्त वृक्ष किस काम का? यह कहकर आप झूमे, और गायन किया:–

साहिबु सफलिओ रुखड़ा अंमृतु जाका नाऊ।
जिन पीआ ते तृपत भए हऊ तिन बलिहारै जाऊ।। [वडहंस म॰ १]

योगी–पर हठ बिना साधन कैसे करें? निग्रह के बिना कैसे बल भरे?

गुरू जी–हठ निग्रह करने से–हठ करके शरीर को कष्ट देने से और कष्ट देकर बाँधने से–कई बार शरीर रोगी तथा दुर्बल हो जाता है; केवल व्रत आदि से मन कठोर भी होता जाता हे।

योगी–क्या शास्त्र पुरान पढ़ने से मन पर काबू प्राप्त होता है?

गुरू जी–शास्त्र आदि विद्या पढ़कर वाद-विवाद में भी पड़ जाता है। कथा वार्ता करता है तो अपना राग बढ़ता है, चाहे उसे सुनकर जगत प्रसन्न हो जाये, पर अपने आपको लगी हुई हऊमैं–त्रिगुण माया–विष होकर लगी रहती है और जन्म मरण समाप्त नहीं होता।

---

१. कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु।।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु।।
राम नामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु।। [सिरी राग मः १]

योगी–न्योली आदि कर्मों से दशम द्वार को भेदने से, षट कर्म कमाने से, क्या निर्मल अवस्था आ जाती है?

गुरू जी–इन कर्मों द्वारा अन्दर की जो पाँच अग्नि हैं, वे दूर नहीं होतीं। मन वासना सहित दब जाता है, पर उस चोर की भाँति जो खड़ाका सुनकर सहम जाता है। जब ही इस हठ समाधि से उठे, तब ही मन बाहरमुखी हो जाता है, क्योंकि वासना को जो नहीं निकाला था। फिर वह समाधि तो कोई घड़ी पहर की थी, शेष दिन रात के स्वास से तो धौंकनी की भाँति खाली ही व्यतीत होते हैं। उस खाली समय में मन ने अपना फुरने तथा भोगों की वासना वाला प्रवाह जारी रखा।

योगी–तीरथ यात्रा?

गुरू जी–भ्रमण किया, फिरे, देखे, पर यदि मन के गले में कोई फँासी नहीं तो तीर्थों के स्नान ने (शोच) पवित्रता कोई भी नहीं लगानी, क्योंकि उधर डुबकी लग रही है इधर मन का प्रवाह बाहरमुखी हो रहा है। संकल्प विकल्प तथा तृष्णा की नदी में मन बह रहा है। यदि कहें कि तीर्थों पर जाकर उपवास करें तो उपवासों से देह कृश होगी। मन का वेग तो बाहर के सुखों तथा भोगों की ओर जाता रहेगा।

योगी–फिर कृपा करके बताइए कि क्या करें?

गुरू जी–योगी जी! मन एक जन्त्र है। बाहरी सुखों की प्राप्ति के लिये और शरीर की रक्षा के लिये। अत: मन अरूक प्रवाह में बहता रहने के कारण शरीर को सुखी रखने की आवश्यकताओं से आगे जाकर भोगों की तृष्णा में और बह रहा है। इसके आगे कोई बाधा पड़े तो यह कभी भाग दौड़ बन्द करके अन्दर में एकाग्र हो। इसकी एकाग्रता में फिर इसे बाहरी वेग के उल्ट कुछ और ऊँचाई अथवा गहराई अन्दर प्रतीत होने लग जाती है। फिर इसका प्रवाह उछलकर उलटता है, तो पिछली ओर[1] होकर निरंकार के साथ जा लगता है, तब इसमें उस निरंकार का बल भरता है। फिर यह मेल निरन्तर अन्दर आत्मा में चलता रहता है। तब फिर यह जीव अन्दर से एकाग्र हुआ बर्हिमुखी कामों में काम करता हुआ चक्कर की अधीनता से स्वतन्त्र रहता है।

योगी–मैंने सभी साधन इसी की बात के कहे हैं, क्या वे निष्फल हैं?

गुरू जी–निष्फल तो कुछ नहीं और है भी, पर जब तक मन हरि में रचता नहीं, परमानन्द प्राप्त नहीं हो सकता। जो जो कर्म तुमने कहे हैं, वे सब आपे को एकाग्र करने के लिये हैं और हठ से किये जाते हैं। यदि हठ से किये तो 'हऊँ' के कर्म हुए और 'हऊँ' आप ही बन्धन है। बन्धन के कर्म तो बन्धन ही फल देंगे और मन जिसे इन्द्रियों को शिथिल करके एकाग्र किया जाता है, उससे शरीर कृश होता है। दुर्बल शरीर में मन भी शरीर की दुर्बलता सहन करता है। स्थिर होने से हऊँ का बल दबा तो रहता है, पर बना भी रहता है। मन का दबना शरीर तथा मन के लिये रोग रूप है। हठ समाधि कुछ समय के लिये होती है और मन का प्रवाह संकल्प विकल्प का आठों पहर चलता रहता है, वासनायें दबी रहती हैं, फिर जागती हैं, इसीलिए देख लीजिये कि योगी नाटकों चेटकों औषधियों में लग

१. दृष्टा पक्ष में।

पड़े हैं, गृहस्थी, योगी, आँखें, कान मुंदते, नाद सुनाई देता बताते, घूस खाते, कम तोलते तथा विकारों में मग्न देखे जाते हैं, पर यदि समझी कि अंत्रीव सुख के लिये क्या चाहिये तो स्पष्ट है कि उठ रही वासनायें तथा मन की रुचियों पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है। वह केवल हठ से तो प्राप्त नहीं होता ओर देह सुखी होती है। हाँ, नियन्त्रण रखना है, कुछ हठ भी करना है पर किसी अनोखे ढंग से, जैसे आठों पहर मन का बाहरी प्रवाह है, तैसे ही मन को कोई आठ पहर की लग्न लगानी है, जो स्वत: ही अन्तरमुख किये रखे। अत: वह निरंकार के नाम जपने से लगती है, जो स्मरण बनकर आठ पहरी प्रवाह बनकर चल पड़ती है और चली हुई जारी रहती है। वह मन को इसके बाहरी प्रवाह की भाँति एक अन्तर में 'लौ' का प्रवाह बाँध देती है। इस लौ के प्रवाह में जीव को परामात्म तत्त्व का कभी कोई स्पर्श मिल जाता है[१]। फिर दोनों का मिलाप हो जाता है। दोनों मिलकर एक प्रकार से एक रूप हो जाते हैं, यह दशा है 'आपे' की चक्कर से ऊँचे रहकर 'चक्कर पर नियन्त्रण डाल लेने वाले रंग' की। इस रंग में रहकर जब कोई साधक सेवा तथा उपकार करता है तो कोई मैल नहीं लगता, क्यों? मन हरि में रच जाता है वह हरि में रचा मन जब बाहरी भलाई करता है तो उनके साथ बँधता नहीं।

योगी–आप हरि स्मरण की औषधि बता रहे हैं, अन्य योग आदि साधनों की अपेक्षा यह साधन क्यों विशेष है?

गुरू जी–सभी साधन काल के किसी भाग में किए जाते हैं। नाम सर्वकाल में जारी हो जाता है। इसका निरन्तर प्रवाह मन को अंतस में आपे में टिकने तथा परमात्मा के स्पर्श में रहने का निरन्तर रुख डाल देता है। परमात्मा का निरन्तर स्पर्श अंतस को ऊँचा तथा निर्लिप्त रखता है। बेसुध होकर जो मन का प्रवाह बार-बार बाहरी भोगों में जा पड़ता है और वासना के प्रवाह में बहता है, उससे उलट अंतस में निरन्तर झुकाव बन जाता है। यह प्रवाह निरंकार से निरन्तर मेल में रखता है, यह प्रवाह हऊमैं से अज्ञात दूरी दिये रखता है। यदि हऊमैं जोर मारे तो यह 'निरंतर जारी प्रवाह' पता दे देता है, हऊमैं को मार निकालता है और फिर स्वच्छता ले आता है, जैसे चलता हुआ जल किसी वस्तु को अपने आगे ठहरने नहीं देता और किसी मैल को एकत्र नहीं होने देता।

योगी–ठीक, योग साधना में भी 'स्वाध्याय' लिखा है। पहला कर्म तो यह है[२]। पर अब स्वाध्याय का अर्थ शास्त्रों का अध्ययन करना ही किया जाता है। मुझे अब आपके उच्च विचार से ख्याल आया है कि इसका अर्थ तो नाम ही होना चाहिये। अपने आप ही अध्ययन करना अथवा अपने आपको उचारकर सुनाना तो जपना हुआ। (नि:श्वास भरकर) पर हाय! अवतार के आये बिना कब पता चलता है। आप सचमुच धुर से आये हैं, कृपा कीजिये न।

गुरू जी–प्रत्येक वस्तु के लिये उसके अनुकूल सामान की भी आवश्यकता है। जैसे गेहूँ के उगते समय जाड़ा और पकते समय गर्मी; वैसे ही नाम की प्राप्ति के लिए दाता की

---

१. तंतै कऊ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी। [सोरठ म: १]

२. देखिए योग दर्शन पाद ३ श्लोक १।

संगति तथा कमाई के लिये हरि के जन का साथ खोजा जाता है। नाम के स्मरण से हरि रस प्राप्त होता है। यह परम आनन्द है, यह अमृत है, फिर माया अथवा हऊमैं की सर्पिणी का डंक नहीं चल सकता और काया का त्याग करने पर यम उसको देख नहीं सकता।

योगी–स्वाद आ गया है। आपका मत है कि नाम के तुल्य और कुछ नहीं।

गुरू जी–

राम नाम सरि अवरु न पूजै[1]॥ [रामकली असट: म: १]

कोई साधन इसके तुल्य नहीं है। धुर की सेवा निरंकार का नाम जपना ही है। इसके बिना और हठ कर्मों की आवश्यकता नहीं, सहज में रहे, शुभ कर्म करे। शुभ कर्मों का अहं न धारण करे, पर अहं की निवृत्ति भी नाम के अभ्यास से होगी।

योगी जी! तुम जो उपकार करते हो, करो, जो विशुद्ध हठ के साधन थोड़ा समय करते रहे हो, उनका त्याग कर दो। आठों पहर निरन्तर निरंकार का स्मरण अन्दर में बसाओ। उसमें मग्न हो जाओ और सदैव मग्न हुए सब कुछ करो। तुम भले पुरुष हो, आप साधु हो, पर अब प्रभु स्वामी के चरणों से लौ की डोर लगा लो। लगी हुई लौ लगी रहे और फिर वह कभी भी न टूटे, यों एकाग्र रहो और विचरो। अपने अनुयायियों को यह उपदेश करना। सभी शुभ कर्म उत्तम हैं, पर निरंकार को अन्दर बसाकर नेकी ऐसी वस्तु है जैसे एक अंक के आगे बिन्दु लगाने से उसका मूल्य दस गुना बढ़ जाता है। प्रभु कर्तार से टूटकर जो नेकी की जाती है वह बुराई की अपेक्षा बहुत उत्तम है, पर कल्याणकारी नहीं। नेकी करनी है, पर प्रभु के साथ एकाग्र होकर। क्योंकि अन्दर से प्रभु के साथ लगे बिना जो पुरुष नेकी करते हैं, उनके बारे में प्राय: देखा गया है कि वे नेकी से थक जाते हैं।

इस तरह की वार्तालाप के पश्चात् श्री गुरू जी वहाँ से विदा हो गए। जो वार्तालाप ऊपर सविस्तार आई है वह श्री गुरू जी के अपने रचित एक शब्द में अंकित है। जिसमें संक्षिप्त रूप में, पर वैसे खोलकर, सतगुरू जी ने सारी व्याख्या बताई है:–

रामकली महला १ असटपदिया

हठु निग्रहु करि काइआ छीजै॥
वरतु तपनु करि मनु नही भीजै॥
राम नाम सरि अवरु न पूजै॥१॥
गुरु सेवि मना हरि जग संगु कीजै॥
जमु जंदारु जोहि नहीं साके सरपनि डसि
न सकै हरि का रसु पीजै॥१॥रहाऊ॥
वादु पड़ै रागी जगु भीजै॥
त्रै गुन बिखिआ जनमि मरीजै॥
राम नाम बिनु दूखु सहीजै॥२॥
चाड़सि पवनु सिंधासनु भीजै॥

---

१. सिक्ख मत में नाम की देन, श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी की उपस्थिति में, अमृत का नियम सहित गुरू रूप 'पाँच प्यारे' (पाँच सिक्ख) देते हैं और हरि नाम की कमाई आप की जाती है और सहायता के लिए गुरू लिए गुरुमुख से भेंट, साधु की संगति और नाम चेते में आने वाले प्यारे से भेंट लिखी है।

निऊली करम खटु करम करीजै॥
राम नाम बिनु बिरथा सासु लीजै॥३॥
अन्तरि पंच अगनि किऊ धीरजु धीजै॥
अन्तरि चोरु किऊ साधु लहीजै॥
गुरमुखि होइ काइआ गड़ु लीजै॥४॥
अन्तरि मैलु तीरथ भरमीजै॥
मनु नहीं सूचा किआ सोच करीजै॥
किरतु पइआ दोसु का कऊ दीजै॥५॥
अंन न खाहि देही दुखु दीजै॥
बिन गुर गिआन त्रिपत नहीं थीजै॥
मनमुखि जनमै जनमि मरीजै॥६॥
सतिगुर पूछि संगति जब कीजै॥
मनु हरि राचै नहीं जनमि मरीजै॥
राम नाम बिन किआ करमु कीजै॥
ऊँदरि दूँदरि पासि धरीजै॥७॥
धुर की सेवा रामु रवीजै॥
नानक नामु मिलै किरपा प्रभ कीजै॥८॥५॥

अर्थभाव–शरीर की इन्द्रियों के वेग केवल हठ धारकर रोकने से देही दुर्बल होती है। व्रत, तपों से मन भीगता नहीं, कठोर होता है। वाहिगुरू जी के नाम के तुल्य कोई नेकी नहीं है॥१॥ हे मन! सतगुरू जी की सेवा कर और हरिनाम रस को पी और वाहिगुरू जी के प्रेमियों का सत्संग कर तो यहाँ हऊमैं तथा माया रूपी सर्पिणी नहीं डंसेगी। परलोक में डंडा पकड़कर डाँट डपट देने वाला यम तेरी ओर पैनी दृष्टि डालकर देख भी नहीं सकेगा, अर्थात् इहलोक में एवं परलोक में सुखी होगा॥१॥ रहाऊ॥

शास्त्र पढ़कर विवाद (शास्त्रार्थ) मुँह से तो करता है, पर चित में पदार्थों का स्नेह लगा रहता है। अर्थात् कथन सुनकर जगत प्रसन्न तो होता है, पर जब तक आप त्रिगुणों वाली माया में जकड़ा पड़ा है तब तक जन्म लेता तथा मरता रहता है॥२॥

वाहिगुरू जी के नाम के बिना इहलोक तथा परलोक में दुख सहन करता रहता है। यद्यपि मूल को बाँधकर प्राणायाम द्वारा प्राण दशमद्वार की ओर चढ़ाता है और न्योली, बसती, गज करना, त्राटक, धोती, नेती, यह हठयोग के छ: कर्म भी करता है, पर वाहिगुरू जी के नाम से बिना स्वास व्यर्थ ले रहा है॥३॥

मन के अन्दर पाँच (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) यह अग्नि जल रही है। इस अग्नि के शान्त हुए बिना मन में टिकाव कैसे आये?

अन्दर प्रभु स्मरण के अमृत रस को चोर लूट रहे हैं, वह अमृत का रस कैसे ले? यह उपाय है: सतगुरू के सम्मुख होकर (नाम जपे) तो इस काया के कोट पर विजय प्राप्त करके अपने अधिकार में ले लेगा॥४॥

मन के अन्दर मैल है और यह तीरथों पर भटकता है, जब तक मन स्वच्छ नहीं होता, बाहर की स्वच्छता ने क्या करना है। पर कर्मों के चक्कर बाहरी व्यर्थ कर्मों में इसे भटका रहे हैं, दोष किसे दें? ५।।

अन्न न खाया तो देही को दुख दिया, पर सतगुरू के ज्ञान के बिना तृष्णा आशा से भूखा 'मन' तो तृप्त न हुआ। अर्थात् प्राणों द्वारा नेकी रोकी हुई देही की भूख, मन की भूख उतारने का साधन नहीं है, बल्कि दुखदाई है। इस तरह मनमुखताई से किये कर्म बार-बार जन्म-मरण का कारण है।।६।।

(कल्याण का उपाय यह है) सतगुरू जी से नाम उपदेश पूछकर लग पड़ें और उसकी दृढ़ता के लिए गुरूमुख लोगों का साथ करें। जब मन 'हरिनाम' में रच गया, तो फिर जन्म मरण नहीं होता। इस नाम स्मरण के बिना और क्या कर्म करने चाहिये। यह सर्व-सिरोमणि कर्म है। उदर पूर्ण करने के लिए वेष बनाने अथवा अन्दर कोलाहल मचाने वाले राग, द्वेष, ईर्ष्या, इन बनावटी बातों को एक ओर रखो और प्रभु के द्वार की सेवा करो—नाम का जाप करो। वाहिगुरू जी से यह माँगो:—

हे प्रभु कृपा करो और अपना प्यारा नाम प्रदान करो:

'वाहिगुरू'

सूचना—टीले पर जहाँ गुरू जी बैठे थे, वह योगियों के स्थान से आधे मील की दूरी पर है और वहाँ पर स्मृति चबूतरा है। पास के स्थान पर आपकी चरण पादका है। छः सात मील पर गुरू जी का और एक स्मृति स्थान चोहा रोहतास है।

बालगुँदाई का नाम लक्ष्मण था, यति की किसी परीक्षा के समय आप एक दिव्य स्त्री के बाल गूथा करते हुए दृढ़ रहे थे। वहाँ से ही योगी का नाम बालगुँदाई पड़ा बताया जाता है, पर बाल्यकाल से फकीरी की ओर रुचि होने से बालगुँदाई (फकीरी) नाम चल पड़ना भी सम्भव है।

१. गीत[१]

बाबे नानक की दुहाई

गुरू नानक! गुरू नानक! मैं तेरी दुहाई देता हूँ। दुहाई है गुरू नानक? मैंने तेरे द्वार पर दुहाई दी है। व्याधियों से मेरी रक्षा कर, दुखों की खाई से मुक्त करा दे? तू ही दुखियों का रक्षक है, मैंने भी तेरी ही आशा देखी है। जो मित्र तेरे नाम से बिछोड़ते हैं और चिन्ताओं में खींचकर ले जाते हैं, इस प्रकार के मित्रों से मेरी रक्षा कर, मैं तेरी दुहाई देता हूँ। मेरी इच्छा है कि यह मेरा हृदय मन्दिर बन जाए और इसके अन्दर सिवाय तेरी शय्या के और कुछ भी न बसे, मुझे इस प्रकार की सफाई प्रदान कीजिए। आप इस घर के स्वामी बनो और सभी अपरिचित इससे डरते रहें, एक आप हों और एक आपके चरण हों और मैं तुम्हारे चरणों में समाया रहूँ। मेरे हृदय को ऐसा कर दीजिए कि यह आपका विश्राम स्थान बन जाए। फिर न तो मैं ही हूँ और न कोई मेरी ही रहे। हे मेरे स्वामी! मेरे हृदय में घुसते समय आप कभी भी झिझके नहीं। हे मेरे स्वामी! यह मेरा हृदय आपका मन्दिर हो, आपका ही हो, हे मेरे स्वामी!

१. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

२. कर्तारपुर में ईश्वरीय दरबार

सूचना—दाता सतगुरू, अदेशी सौन्दर्य सतगुरू अब कर्तारपुर में ज्योति चमका रहा है। अब विदेशों में नहीं जाता। दूर-दूर स्थानों पर तपस्या कर रही अभी तक लक्ष्य पर न पहुँचीं आत्माओं को उनके लक्ष्य पर पहुँचा आया है, नई पनीरी लगा आया है, कुमार्ग पर चलने वालों को सुमार्ग पर चला आया है। ईश्वर के कहलाकर पापों तथा शैतान के मार्ग पर चलने वाले बर्जुगों का सुधार कर आया है, पाप के बड़े-बड़े कुफ्र गढ़ तोड़ आया है, समय के नेताओं तथा फकीरों में अपने शान्तिवादी होने का, प्रेम अवतार होने का, सच्च का पुत्र तथा सच्च का ज्येष्ठ पुत्र होने तथा रसूल एवं ईश्वर के साथ संयोग करा देने वाला अवतार होने का अपना आतंक जमा आया है। अब पीर, फकीर, सिद्ध, साधु, बड़े छोटे जिज्ञासु तथा नाम में लग रहे सत्संगी पुरुष, सभी यहाँ आकर अमृत पान करते हैं। सिक्ख मत फैल रहा है, ३० से अधिक खाटें, अर्थात् ३० गुरुमुख नाम जपने तथा जपाने वाले स्थापित कर आया है। शोक है कि इन सब के नाम हमारे तक नहीं पहुँचे। गुरू सिक्ख मत रूपी आकाश में उच्चकोटि के चमकते हुए तारों के नाम जो भाई गुरुदास ने लिखे हैं। वे यह है:—

भाई बुड्ढ़ा, मरदाना, भागीरथ, मनसुख, तिलोका, उबारे खाँ, अब्दुल रहमान, मूलो, मूला कीड़, पृथा, खेड़ा, पृथीमल, सहगल रामा, डिड्डी, मांगो, कालू (एक अन्य खत्रिय सिक्ख था) भगता, ओहरी जापू वंशी, सीहां, सीहों सैदो, घेहो, गज्जन, फिरणा, जोध, सधारना; अजित रंधावा आदि।

इनके जीवन आदर्श थे आप नाम जपना और दूसरों से जपाना। नमूने के लिए अजिते, रंधावे का एक प्रसंग देकर फिर उबारे खाँ आदि का समाचार अगले प्रसंग में दिया जाता है, जिससे पता चलेगा कि संसार का उद्धार कैसे होता था।

❑ ❑

८५ अजिता–सांसारिक समस्या का समाधान

अचल बटाले में सिद्ध गोष्टी के समय अजिता गुरू बाबे के साथ था और मुलतान टीला आदि स्थानों की यात्रा में भी साथ रहा और साथ ही कर्तारपुर वापिस लौट गया। काफी समय बाहर रहने के कारण घर आने पर पता चला कि सिर पर शाह का कुछ ऋण हो गया है। उसके बहुत समय तक परदेश में रहने के कारण और काफी समय से सेवा में रहने के कारण खेती का काम दूसरों के हाथों में पड़ गया लगता है। इसलिए अजिता पहले तो मन में सोच विचार करता रहा कि क्या करे? उसकी वृत्ति अब ऊँचे रंग में रहती थी, परमपद की उसे पहचान थी और उसमें शक्ति भी थी। स्वार्थसिद्ध के लिए करामात दिखाना बुरी बात है, यह नियम भी वह सीख चुका था कि गुरू बाबा के घर में आचरण की शुद्धता एक बड़ी ऊँची वस्तु है। इसलिए ऋण लौटाना अपनी गुरुमुखताई का आवश्यक अंग समझता था। यदि गाँव में जाकर भूमि बेचकर ऋण चुकाता है तो स्त्री तथा परिवार के लोग बुरा मानेंगे। परिवार को भी उदास नहीं करना चाहता था। श्री दयालु सतगुरू जी ने एक दिन अजिते के चेहरे से एकाग्रता से हिलने के लक्षण पहचाने और मन की बात समझकर कहा–भाई! गिनतियों में क्यों है? तब अजिते ने कहा–पातशाह! आप अन्तरयामी हैं, जीव चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो जाए, यदि उसे ठीक मार्ग पर चलना है तो जगत के व्यवहार की कठिनाइयाँ तो आती ही रहती हैं। उसी तरह की एक कठिनाई आई हुई है, आपकी अनुकम्पा से निवृत्ति हो जायेगी। तब गुरू जी ने कहा–अजिता! जा अमुक स्थान पर मिट्टी के बड़े से ढेर के नीचे रुपये पड़े हैं, वहाँ से लेकर जितने देने हैं, उतने लेकर दे दे और उऋण हो जा। अजिते ने आकर रुपये देखे। जितना ऋण था, उतने उठा लिए, पर जब गुरू जी की उपस्थिति में जाकर गिने तो दो रुपये कम निकले। तब चकित होकर कहने लगा–पातशाह! मैंने तो कुछ अधिक लिए थे, पर यहाँ आकर कम हो गए! तब गुरू जी ने कहा–वहाँ पर ही जा। जब फिर जाकर देखा तो जितने कम थे, वहाँ पर ही पड़े थे। अतः अजिते ने जाकर उठा लिए, ऋण चुकाया और सुखी हो गया।

ऐतिहासिक पक्ष

पुरातन जन्मसाखी में भाई अजिता का प्रसंग नहीं है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि अजिता नामक सिक्ख हुआ ही नहीं। सबसे पुरातन वस्तु भाई गुरुदास जी की वाणी (वाराँ) है और सबसे अधिक प्रमाणिक भी वही हैं। गुरू नानक देव जी के मुख्य सिक्खों में भाई जी ने अजिते रंधावे का नाम दिया है, जो इस प्रकार है, "जिता रंधावा भला बूड़ा बुड्ढ़ा इक मन ध्यावै"।

भाई मनी सिंघ जी रचित 'भगत रत्नावली' में भाई अजिते का नाम आया है। हठयोग तथा भक्तयोग पर श्री गुरू नानक देव जी का उपदेश उसके प्रति हुआ है। भाई मनी सिंघ जी की जन्मसाखी में ऋण वाली साखी आई है। श्री गुरू नानक प्रकाश में श्री गुरू जी के पक्खों में आगमन की, अजिते का उद्धार करने की, सास और ससुर का उद्धार करने की तथा अचल वाली अजिते की रेखा खींचने एवं जल पर बैठने वाली साखियाँ आई हैं। बाले वाली जन्मसाखी में अजिते के पिता का नाम 'हित्ता' दिया है। और श्री गुरू जी की बरात के समय पर अजिता अतिथि सेवा में लगा दिखाया गया है। फिर इसमें अजिते को गुरू की शरण प्राप्त होने वाली साखी भी आई है। बाले वाली मुद्रित साखी में अजिते रंधावे के साथ भी श्री गुरू नानक देव जी की एक गोष्टी आई है। यह पुरातन लिखित भाई बाले के नाम वाली साखी में नहीं मिली; संवत १८२५ तथा संवत १९०५ में लिखी गई पुस्तकों में गोष्ट नहीं है। संवत १९४७ में गुरू प्रकाश प्रैस में शामदास द्वारा मुद्रित जन्मसाखी में भी गोष्ट नहीं है, पर इसी वर्ष पत्थर के एक मुद्रण में गोष्ट आई है और मुद्रक, प्रैस का प्रबन्धक एक मुसलमान लिखता है कि उसने यह गोष्ट बढ़ाई है और पिंडी भट्टीयाँ की एक पाँडुलिपि से प्राप्त की है। इसके पश्चात फिर यह कम ज़्यादा छपती ही रही है।

अत: अजिते रंधावे की गोष्ट न तो श्री गुरू ग्रन्थ साहब से है, न भाई गुरुदास की वाणी में और न ही पुरातन जन्मसाखी में। यों लगता है कि दशम गुरू जी के पश्चात किसी को ग्यारहवाँ गुरू बनने का चाव चढ़ा है, पर उसका आचरणिक जीवन दस गुरूओं की पवित्रता को पहुँचने में असमर्थ था और उसका सम्बन्ध किसी गणिका के साथ रहा है, अत: इस कर्म को विहित बताने के लिये और उसके गुरूत्व के लिये इस गोष्टी में यत्न किया गया है। यह गोष्टी गुरू की रचना किसी तरह भी नहीं है किसी ने अपने लाभ के लिये लिखवाई है। १४०४ की एक पांडुलिपि जिसमें कई वाणियाँ तथा मक्के की गोष्ट आदि हैं उनमें से पृष्ठ ४७ से ९५ पर अजिते की यह गोष्ट भी है, जिसकी इबारत आजकल की मुद्रित से कई प्रकार भिन्न है, फिर भी है यही कुछ। इस पुस्तक की नकल करने वाला लेखक लिखता है, "जैसी प्रेति तैसी लिखी हम कऊ पाप पुंन किछु नाहिं"।। अजिते की गोष्ट समाप्त करके फिर लिखता है, "जिस तरह लिखी आही असां उसे तरां उतारु कीता है" (जिस तरह लिखी थी हमने उसी तरह नकल की है)। इस इबारत से भी यही पता चलता है कि लेखक अपना व्यवसाय जानकर इबारत की नकल ही कर रहा है, वैसे उसे पुस्तक की गोष्ट ठीक होने तथा इसमें गणिका आदि के प्रसंगों का होना आचरण सम्बन्धी पतन तथा इसके सच्चे होने से डर रहा है और पाप पुण्य से हाथ धो रहा है, अन्यथा परमार्थ की पुस्तकों को लिखना, मुफ्त चाहे पैसे लेकर लेखक पुण्य कर्म ही समझते थे।

अजिते के बारे में और खोज से पता चला है कि पक्खोकी नाम गाँव की स्थापना 'पक्खो' नामक रंधावे ने की थी, इसका पुत्र 'हित्ता' था और 'हित्ते' का पुत्र अजिता था।

पता चलता है कि संवत् १९४५ में असली पक्खोकी गांव, जो डेरा बाबा नानक से उत्तर की ओर एक दो मील की दूरी पर था, नदी ने गिरा दिया था। अब पक्खोकी नामक दो तीन स्थान हैं। एक पक्खोकी (चूहड़सिंघ वाला है) जो डेरा बाबा नामक से आधा

कोस दूर पर्वत की ओर है। दूसरा पूरब की ओर (टाहली साहब की ओर है) डेरा बाबा नानक से बहुत निकट है। तीसरा पक्खोकी डेरे से दक्षिण की ओर थोड़ी दूरी पर है। डेरा बाबा नानक को भी भूमि के पत्रों में 'पक्खोके डेरा बाबा नानक' लिखा जाता है। वास्तव में 'डेरा बाबा नानक' पक्खोकी भूमि में ही बसा था। यह भी परम्परा चली आ रही है कि जहाँ पर अजिते को उपदेश दिया गया था वहाँ पर ही श्री दरबार साहब (डेरा बाबा नानक वाला गुरुद्वारा) है। कर्तारपुर डेरा बाबा नानक से अढ़ाई तीन मील की दूरी पर नदी के पार है।

किसी समय भूल पड़ी है कि श्री गुरू जी का विवाह इस उपरोक्त पक्खोके में छपा था, पर यह ठीक नहीं। विवाह बटाले में हुआ था। इसी स्थान पर विवाह का प्रसिद्ध गुरुद्वारा है और उस समय की दीवार जिसे वरदान दिया गया था, वह भी बटाले में खड़ी है। भूल शायद यहाँ से ही पड़ी है कि मूले चोणे का ज़िक्र पक्खोकी के साथ आता है। बात यह है कि मूला बटाले का रहने वाला था और पक्खोकी और आसपास के गाँवों का पटवारी था। इसलिए उसका सम्बन्ध पक्खोकी तथा बटाले—दोनों के साथ था। इसका घर बटाले में होने के कारण विवाह वहाँ पर ही हुआ था और पक्खोकी में निवास होने के कारण गुरू जी से भेंट वहीं पर हुई थी, जहाँ पर उसका उद्धार हुआ था।

❑ ❑

८६ उबारे खान

: १ :

उबारे खाँ–आओ शेख जी, जरा मन की बातें तो बताओ, चेहरे से तो तौर बदले हुए दिखाई पड़ रहे हैं मानो सूरत ही बदल गई है।

शेखमालो–हाँ खाँ जी! फिर बधाई दो, मेरे गले में हार डालो कोई मौली का सूत, कोई केशर, कोई कुमकुम, कोई शगुन डालो न मुझ सुहागिन की गोदी में।

उबारे खाँ–धन्यवाद, अहलमदुलिल्ला, हे सखि सुहागिन हो गई है; धन्यवाद अल्ला पाक (पवित्र) का, फिर बता न मन की बातें।

मालो–दिन को जिह्वा नहीं लगी तो बोल सके, जिह्वा के दिल नहीं जो समझा है बता सके।

उबारे खाँ–आखिर चखने वाले ने चखने का आनन्द भोगा, समझने वाले ने समझने का आनन्द प्राप्त किया, सभी के आनन्द लेने की तरंगें सौन्दर्य रेखा बनकर चेहरे पर आ चमकीं। धन्यवाद है कि हमने इन सुन्दर चित्रों के दर्शन ही कर लिये। अल्ला का धन्यवाद है, धन्यवाद पवित्र पालक का!

मालो–बस सज्जन! सिवाय धन्यवाद के और कोई ठिकाना ही नहीं, जिह्वा धन्यवाद करे, रोम-रोम धन्यवाद से भर जाये, मन धन्यवाद से रस जाये; बस मिसरी के टुकड़े की भाँति हो जाये सारा धन्यवाद स्वरूप।

उबारा–ठीक, सच्च, सही, पर धन्यवाद करना कौन-सा अपने वश की बात है, हीरे मृग का हरनौटा यह मन, टापता हुआ, छलाँगें लगाता हुआ, चौकड़ी भरता हुआ, हरे-हरे खेतों के पीछे आठों पहर भागा फिरता है, धन्यवाद के लिये इसे कौन सा समय मिलता है? हे मित्र! अपनी सुहागिन गोदी में से, गोदी में पड़ी देन का कोई भाग प्रदान कर न, जो अविवाहित और वर प्राप्ति की लालसा वाली युवतियाँ भी चखें और किसी के आशीर्वाद से भी सुहाग भाग्य के योग्य हो जायें।

मालो–गूँगे का गुड़, खाये तो स्वाद ले, मुस्कराये, पर बताये कैसे?

उबारा–बताओ मत, पर सुन्दर हाथों से कोई कौर, कोई कणिका दान तो दो।

मालो (निःश्वास लेकर)–भिखारी भिक्षा में से क्या दे? हाँ दाता (नैनों में अश्रु भरकर) दाता, बोलने वाला दाता, देने वाला दाता, वह दे तो दे, 'द्वार पर आँचल फैलाने वाले क्या दें?'

उबारा–न दें, पर इतना दान देने से भी कृपण क्यों हो जायें कि अपने सौभाग्यवान सुन्दर दाता के 'द्वार का पता बताने की भिक्षा देने से भी हाथ खींच लें। हाँ जिह्वा ही अच्छी हो जाये। खामोशी...' यारों, मित्रों सज्जनों के साथ भी खामोशी?

मालो–क्या कभी किसी ने चन्द्र तथा सूर्य को भी छिपाया है? क्या कभी वायु को भी किसी ने मटकों में बन्द किया है? हाँ, ठण्डी झड़ी लगाने वाले बादलों को भी क्या कभी कोई मुट्ठी में छिपा सका है? तारों की आकाश गंगा कभी किसी की गोदी में छिपकर बैठी है क्या? कौन है जो कभी ईश्वर के सौन्दर्य को, उसकी सुन्दर ज्योति की, परदों में बैठा सका है।

उबारा–फिर–

'तैने देखा है, हमें भी दिखा
और दर्शन दिखाकर निहाल कर'।

मालो–यदि कोई देखकर भी न देखे तो क्या इलाज? यदि नैनों के होते हुए भी दर्शन के आगे नयन हाजिर न करे तो क्या चारा?

उबारा–मित्रता, सज्जनता, दोस्ती, यारी, प्यार, प्रेम, हित, तृष्णा क्या बस यही है कि नैनों के होते हुए भी न देख सकने वाले 'सुजाश्मे अन्धे' मित्रों को संकेत करना और लाठी पकड़कर द्वार तक साथ-साथ लेकर न चलना।

मालो–हे भाई। प्रेम की घाटियाँ कठिन हैं, प्यार के मार्ग कठिन हैं। ये तेरे आपे की सारी भेंट माँगती हैं। सारी 'आपा न्योछावर करने वाली ताबेदारी, वृक्ष से टूटे हुए पत्ते की पवन के आगे सारी 'आपा-बिछाकर नम्रता'–अधीनता। तू पट्टेदार खाँ है, तेरी गर्दन अकड़ी हुई है, फिर तु मुसलमान है, अल्ला से अनजान पर आस्तिकता के अहंकार वाला और भाई¨, हाँ, इसी मार्ग पर, इस रास्ते पर काँटों पर चलना और सूली पर नृत्य करना पड़ता है।

उबारा–और पहेलियाँ मत बुझा, तू चला आया है, सूली पर खेलकर आया है, हमने तेरा रंग ढंग देखा है, इस तरह की सूली का मार्ग हमें भी बता? शेष रहा पठानपन, मुग़लों ने पठानों की गर्दन अब कबूतर की गर्दन की भाँति अकड़ी हुई नहीं रहने दी। वह ग़रीब तो पहले से ही हाथी की सुंड की भाँति नीचे लटक रही है, तू इसे और लटका दे, हाँ बिछा दे किसी पति के चरणों में। (सिर हिलाकर)¨हाँ सच, मित्र! तू कौन-सा कम है? तर्क करने वाला, दलीज बाज़। मैं तो पढ़ा लिखा नहीं और तूने जो विद्या की अकड़ तथा युक्ति की पट्टेबाज़ी से कई गर्दनें झुकाई हैं। किसी तरह तू भी अपना अकड़ी हुई गर्दन वाला सिर किसी के आगे झुका आया है और रूप की रत्ती के चार चाँद लगा आया है न।

माली–क्या तू मुस्लिम के बिना दूसरे के आगे झुकेगा?

उबारे खाँ (सोचकर)–हिन्दू के आगे झुकूँगा।

मालो–जो हिन्दू न हो उसके आगे भी झुकेगा?

उबारा–'न सब कुछ' के आगे भी झुकूँगा, जो कोई होगा पूर्ण पुरुष, कोई मुझे 'पति अल्ला' के साथ प्रेम लगवा देने वाला–हाँ मुझे 'अविवाहित, छूटर' को।

मालो–तो सज्जन! काम बन जाएगा। यदि दीवारें गिर पड़ें तो नदियों के उछाल भर जाते हैं।

उबारा–और हाँ नदियों के उछाल सभी दीवारों को अपने आप ही तोड़ देते हैं।

मालो–ठीक! तेरी समझ तो उस (प्रभु) के द्वार के योग्य है।

उबारा–यदि योग्य है तो ले चल, अयोग्य है तो भी ले चल, यदि वह द्वार है तो अयोग्य को योग्य करना भी उसी के योग्य है।

मालो–नैन भरकर! सच्च, उसी सच्चे द्वार के स्वामी ने मुझ से काटने बाढ़ने वाली जाति वाले, शेखपन की ऐंठ वाले, विद्या तथा तर्क के गर्व वाले को मोड़ तोड़कर उलझनों में से निकालकर अपने द्वार 'द्वार पर गिरी' को क्षमा करके सीधा कर लिया जाता है।

उबारा–सुबहान अल्ला! फिर बता न कोई बात, चला दे न सुमार्ग पर।

मालो–ले भाई सज्जन! सुन ले सीधी बातें, यदि तुझे अच्छी लग गई तो मैं समझूँगा कि तेरे भाग्य जंाग पड़े हैं, सोये हुए भाग्य, अथवा तुझे अपूर्व भाग्य लग गये हैं।

अल्ला के सौन्दर्य को अरूप के परदे उतारकर रूप में ज्योति जगाते हुए आधी शताब्दी एवं इससे भी कम अथवा अधिक समय हो गया है। हाँ वह सौन्दर्य का बुक्का, वह तेज की जलती हुई लपट तेरे और मेरे नैनों को शीतल-शीतल दीख पड़े और मिट्टी का शरीर धारण करके इस धरती पर फिरते हुए दीखकर सुखदाई ठण्डा-ठण्डा लगे। हाँ, इसी हिन्दुस्तान की पवित्र धरती पर और हाँ, इस पाँच पानी पीने वाले टुकड़े, पंजाब में। और भैया! इसी हमारी सुन्दर मीठे जल वाली रावी नदी के किनारे डेरा डालकर, सौन्दर्य प्रदान करते हुए भी कितना समय हो गया है; और हाँ, आज हमारी इस कड़ुवी मिर्चों के लिए प्रसिद्ध कड़ुवी धरती 'सऊड़ोआ' नामक गाँव के आसपास के इलाके में नाद बजाते तथा कीर्तन गाते हुए भी सप्ताह व्यतीत हो चला है, हे भाग्यशील! क्या तैने दर्शन किया है?

उबारा–उस हिन्दू फकीर का?

मालो–बस वही मेरा और प्रत्येक मुसलमान का कभी भी न उतरने वाला ज्वर।

उबारा–नहीं, मैंने तो पूछा है?

मालो–और यदि तैने केवल पूछा ही है तो गया क्यों नहीं?

उबारा–तू सच्चा है मन में मुसलमान होने का झूठा अहंकार है।

मालो–मेरे मन में भी था, पर हृदय की पीड़ा मुझे हिन्दू वैद्य के औषधालय में ले ही गई और औषधि माँगने के स्थान पर मुझ मुर्ख रोगी ने पहला प्रश्न यही पूछा–"हे प्रभु के प्यारे! बता हिन्दू बड़ा है अथवा मुसलमान?" तब वे दोनों से बड़े दाता जी कहने लगे– "इस तरह का प्रश्न करने वाला छोटे हृदय वाला है, सभी छोटों से छोटा है। शेष रहे हिन्दू तथा मुसलमान, न कोई हिन्दू है न मुसलमान"। यह सुनकर मैं जल उठा–हैं, मैं छोटा? एक मुसलमान, दूसरा शेख, तीसरा शरअ का उस्ताद, तर्क में पूरा, मैं छोटा? पर उस सौन्दर्य भरे चेहरे से कुछ प्यारा प्यारा पर गिरा देने वाला सौन्दर्य, इस तरह झरता है, कि मैं क्रोध न कर सका और दबी आवाज़ में कहने लगा:–

हिन्दू तुरक नहीं जे कोई,
किऊ खुदाइ सिरजे इह दोई? [गुरू नानक प्रकाश]

तब उस तेज ने धीरे से कहा: सभी शरीरों का निर्माण एक मिट्टी से हुआ है, एक ही ईश्वर ने यह बनाये हैं, सब में एक ही ज्योति डाली है; ज्योति तथा शरीर का नाम हिन्दू

और मुसलमान नहीं है। किसी वन में दो माताएँ—एक हिन्दू, दूसरी मुसलमान, बच्चे पैदा करके रख आई हों तो तू किसे हिन्दू और किसे मुसलमान कहेगा? जिस वस्तु का वास्तव में कोई अन्तर ही नहीं, उसका क्या बड़प्पन और क्या छुटपन। नाक, कान, मुँह, दोनों के एक से हैं। हाँ, जब माता पिता का पता चल जाएगा तो कहेगा कि यह हिन्दू है और यह मुसलमान है। तो देख! हिन्दू मुस्लिम मनौति दोनों की है, मनौति तेरी है। केवल मान लेने की क्या बड़ाई और क्या छुटाई? फिर एक मुसलमान कहलाता है, पर वह है अहंकारी पत्थर चित, अत्याचारी, दुखदाता, झूठा, अधर्मी। क्या मुसलमान नाम पड़ने वाला उसे मुसलमान कहेगा? क्या हिन्दू नाम देने वाला किसी निर्दयी, छलिया, स्वार्थी, अधर्मी को हिन्दू कहेगा? क्या तू कहेगा?

मैंने उत्तर दिया—जी नहीं? फिर कहने लगे बड़े छोटे का ब्योरा निकालने की आवश्यकता ही न रही। क्या तू कर्महीन मुसलमान की सिफारिश करने को तैयार है? मैंने उत्तर दिया, श्रीमान! नहीं। फिर कहने लगे; क्या तू शुभ कर्मों वाले हिन्दू को पापी कह सकता है? मैंने कहा, श्रीमान! कभी नहीं। तो आप कहने लगे: तैने हमसे पूछा ही क्या है?

यह उनका प्रश्न था कि मेरी आँख खुल गई। मेरे अन्दर एक चमत्कार लगा कि मैं कहाँ भूला रहा, किस मुसलमानी अहंकार ने मेरा अन्दर खा लिया। वास्तव में कोई अन्तर नहीं, न कर्मों में कोई अन्तर, न कर्मों के फल में कोई अन्तर, अन्तर केवल समझ में, बड़प्पन तथा छुटपन के अहंकार में।

मैं आपे की लज्जा से हृदय के मैल से निथरकर शुद्ध हो रहा था कि आपने एक अद्‌भूत दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझे एक झन्नाहट सी छिड़ी, एक कम्पन आया और वे मिट्टी की कफनी डाले बैठे मेरे जैसे ही प्रतीत होने वाले दाता जी सौन्दर्य का बुक्का तथा अग्नि की लपट प्रतीत होने लगे। उनकी ओर से किरणों के से सुहावने बाण आये, जो मेरी आँखों को बींध गये और मेरे हृदय में चुभ गये, मैं चरणों पर झुक गया और मुसलमान होने का घमण्ड, शेखपन, विद्या का मान तथा तर्क का अहंकार सुन्दर धूल पर बिछा दिया। देख प्यारे! क्या घटा, उन पवित्र चरणों के साथ मेरा माथा स्पर्श करते, मेरी जिह्वा हिल पड़ी; 'वाहिगुरू वाहिगुरू' का प्रवाह चल पड़ा, मेरे रोम इसी शब्द की गूँज से भर गये, मेरे आपे में एक मस्ती रस स्वाद भर गए, मेरा सिर उज्जवलता का खप्पर बन गया। मेरा अंतस मुझसे कहने लगा—यह है सुहानी जिन्दगी। मुझे प्रतीत हुआ कि मैं जीवित हो उठा हूँ। मेरा अंतस कहता था: मालो! अब तू जीवित हो उठा है!!

मैने सिर उठाया, चेहरा देखा। उस चेहरे से सौन्दर्य झरता था, मेरी आँखें उस सौन्दर्य को सह न सकीं। मैं कहता था: यह फकीर हैं, हृदय कहता था: "नहीं रे काफिर!" मैं कहता था हे मन! यह अवतार है। हृदय कहता था, 'नहीं रे मुशरिफ'। मैंने कहा, यह अल्ला का सौन्दर्य है, मन कहता था: 'क्यों तू मुल्हिद हो रहा है'? मैं कहता था यह कौन है, कौन है, कौन है?

मेरे कानों में यह ईश्वरीय नाद सुनाई दिया—मालो! यह आप है!

अत: सज्जन! मैंने 'आप' का दर्शन प्राप्त किया मैंने हुजूरी की उपस्थिति प्राप्त की, मैं जीवित हो उठा। तू मुसलमान है, मुझे तू काफिर (नास्तिक) कहेगा। सहर्ष कह, मैं सुनूँगा, प्रसन्न हूँगा।

उबारा इस समय आँखें मूँदकर सुन रहा था, मुंदे हुए नैनों में से मोतियों की भाँति दमकती हुई बूँदें किसी प्यार के स्रोतों में से निथरकर आने और फिसल फिसलकर गिरने लगी, उत्तर कौन देता?

मालो–हे अल्ला के द्वार पर स्वीकार होने वाली युवती! मेरे बिगड़कर सँवरे हुए मन में फिर एक तर्क उठा है कि प्रभु के द्वार पर कैसे मान मिलता है? मुझे वहाँ आदर कैसे मिलेगा? तब उस दाऊजी इलहान[१], नहीं नहीं, लाखों दाऊओं से सुन्दर सुरीले तथा मोहित कर लेने वाले ईश्वरीय कण्ठ से नाद हुआ–

इकु तिलु पिआरा वीसरे रोगु वडा मन माहि।
किऊ दरगह पति पाईअै जा हरि न वसै मन माहि॥
गुरि मिलिअै सुखु पाईअै अगनि मरै गुण माहि॥१॥
मन रे अहिनिसि हरि गुण सारि।
जिन खिनु पलु नाम न वीसरै ते जन विरले संसारि॥१॥ रहाऊ॥
जोती जोति मिलाईअै सुरती सुरति संजोगु॥
हिंसा हऊमैं गतु गए नाही सहसा सोगु॥
गुरमुखि जिस हरि मनि वसै तिसु मेले गुरु संजोगु॥२॥
काइआ कामणि जे करी भोगे भोगणहारु।
तिसु सिऊ नेहु न कीजई जो दीसै चलणहारु॥
गुरमुखि रवहि सोहागणी सो प्रभु सेज भतारु॥३॥
चारे अगनि निवारि मरु गुरमुखि हरि जलु पाइ।
अंतरि कमलु प्रगासिआ अंमृतु भरिआ अघाइ॥
नानक सतगुरू मीतु करि सचु पावहि दरगह जाइ॥४॥२०॥

[सिरी राग म: १]

उबारा–वाह वाह ठण्ड डाल दी है।

मालो (नैन भरकर)–वाह वाह गुरू नानक! वाहिगुरू नानक!! वाहिगुरू! वाहिगुरू! वाहिगरू!!

उबारा–इस समय कुछ कहना है तो धृष्टता, पर यदि कष्ट न हो तो जो कुछ तुमने सुनाया है उसके कुछ अर्थ भी बता दो, मैंने इसका सार नहीं समझा।

मालो ने शब्द के अर्थ करके सुनाये।

उबारा–वाह वाह सज्जन! किस (हिम खण्ड) शीतल देश के पते बता रहा है? शीतलता ही शीतलता!

मालो–'खुनक नाम खुदाइआ' प्रभु का नाम ठण्डा है, शीतलता ही शीतलता।

१. एक इबरानी अवतार का नाम है–दाऊइ, जो सुन्दर गाने के कारण प्रसिद्ध थे।

उबारा–हमें भी अब बर्फानी चोटियों के चरणों में पहुँचा दे न!

मालो–पूछने से तो मार्ग प्राप्त हो जाता है चलना तो अपने पैरों से होता है, पहुँचा भी अपने आप जाता है। अपने ही नैनों से देखने से शीतलता प्राप्त होती है, मन अपना ही तृप्त होता है, आपा ही रस में मग्न होता है। प्यार मित्रता आपे का मेल है, पर हरेक आकार इस पक्षपात वाले देश–इस संसार में–अपने अपने स्थान पर, अपने आपे में सुख दुख का भागी आप ही होता है। शुभ विचार और भली चितवन तो प्यार दान करती है और आप कष्ट सहन करके प्यारे को सुख का सामान भी कर देती है, मार्ग बता देती है, सहायता कर देती है, पर चलना तो आप ही पड़ता है। हे सज्जन! सोचकर देख, जिसे पीड़ा है, उसे है। औषधि, सेवा प्रेम सज्जन करते हैं, पर पीड़ा वाले स्थान पर, दर्द वाले स्थान पर कोई नहीं पहुँचता, वहाँ जीव आप ही अकेला दुख सहन करता है, वैसे ही सुख की प्रतीत भी अपना आपा ही करता है, केवल अपना आपा।

उबारा–(उफ़) ठीक कहा है, फिर साथ ही चल, द्वार तक पहुँचा दे, इस अहंकारी सिर को अपने महिंदी रंगे हाथों से पकड़कर उनके चरणों के साथ स्पर्श करा दे।

मालो–सुन मित्र! एक रहस्य की बात सुन! उस प्रभु के देश से जीव अकेला आया है, उस के देश को अकेला ही जायेगा, ठीक है न? अत: अल्ला वालों के देश में भी अकेले ही जाया जाता है। हाँ, अल्ला वालों से मिलते समय साथ किसी को नहीं लेकर चलना चाहिये।

उबारा–ठीक, पर मैं कुछ झिजकता हूँ।

मालो–हम हमारे अन्तस में कई कमियाँ हैं, पर हे भोले! कभी वैद्य के पास जाने में भी झिजक आती है, पीड़ा तो सभी झिजक दूर कर देती है। हाँ जाना है तो अकेले ही जाना, पर रोगी की भाँति जाना। चतुर रोगी वैद्य के पास एकान्त देखकर जाता है और सामर्थ्य अनुसार अकेला जाता है, सारा दुख सुख जो बताना हुआ न।

उबारा–अच्छा सज्जन! (ठण्डा श्वास लेकर…) अद्‌भुत सी उदासी है। सभी मिले बैठे हैं, माँ, पुत्र, बहन, भाई, पत्नी, युवक, मित्र मित्र, सभी समझते हैं कि एक हुए हैं पर हैं सभी पृथक-पृथक, अपने आप में हरेक बन्द है, जैसे अण्डा छिलके के अन्दर बन्द होता है। दस इकट्ठे पड़े हुए अण्डों की भाँति सभी इकट्ठे, पर सभी पृथक-पृथक; अलग-अलग; हाँ कोई भी किसी का नहीं है। हरेक हरेक का अपना बनता है, पर स्वतत्व के केन्द्र पर परदा फाड़कर कोई भी नहीं पहुँचता।…ओह हो, जगत क्या है? उदासी, उपरामता, निराश है इसके हरेक रंग में, पर कभी विचार नहीं उत्पन्न होता।

मालो–सच है?

: २ :

कुछ दिन व्यतीत हो गये, फिर मालो तथा उबारा एक चलते हुए कुए पर एक दूसरे से मिले, कुआ बन्द था, इसलिए वहाँ पर भीड़ नहीं थी, एकान्त थी, दोनों मित्र हौज़ के चबूतरे पर बैठ गये।

मालो–आज तो सज्जन! तेरा रंग भी बदला हुआ दिखाई पड़ रहा है, द्वार का दर्शन ले आया है क्या?

उबारा–तेरी दया।

मालो–मेरी दया तो पता बताने, साक्षी भरने तथा आशीर्वाद देने तक ही थी; वह दया जो रहस्य के अन्दर, पीड़ा तथा मर्म के स्थान तक पहुँचती है, वह वहाँ ही है, बस वहाँ ही।

उबारा–सच्च? जिसे पीड़ा लगी हो और उसे पीड़ा निवृत्त करने वाली दया मिली हो, वही समझता है।

मालो–बता गया कैसे? क्या हुआ? कैसे गुज़री?

उबारा–गया अकेला, जिस तरह तैने मार्ग पर चलाया था, चला जा रहा था और कहता जा रहा था कोई वहाँ पर जान पहचान वाला नहीं, तुझे वहाँ कौन पूछेगा? फिर मन कहता था, पूछते खोजते तो यह दिन आ गए, पर मैं पूछते-पूछते तृप्त न हुई। अब से पूछूँगा नहीं। हाय, हे मन! यह भी तेरा मैल, जाना दर्शन के लिए और इच्छा यह रखनी कि मेरी वहाँ पर जाकर भी पूछ हो, यह मैल, यह भी मैल।

फिर पापी मन ने कहा: यदि वहाँ किसी ने तेरा ध्यान ही न किया, बाहर-बाहर ही घूमता रहा, तो फिर क्या? हाय मन! मैंने कहा, यह भी तेरा मैल। तू सफल होने के लिए चला है अथवा भेंट करने चला है? अब भी अरे कुटिल! तेरे अन्दर के अहंकार समाप्त नहीं होते। भेंट न सही, भोले! यदि तुझे द्वार की दहलीज़ ही दीख पड़ीं तो भी धन्यवाद करना और दहलीज पर ही सिर को प्रणाम में डाल देना।

फिर मन ने कहा: मैं म्लेच्छ मुसलमान और वह पवित्र लोगों का स्थान। यदि किसी ने पास ही फटकने न दिया, यदि पास फटका भी तो धक्के पड़े, फिर कितना निरादर होगा?...वाह रे मन! मैंने कहा, यह भी तेरा मैल, मैल।

भैया! तू युगों पर्यन्त जिये! मैल मैल देखता मैं जा ही पहुँचा। दूर से दर्शन किए, दर्शन...(यह कहते नैन मुँद गए)।

हाँ, मैंने दर्शन किये, मिठास तथा प्यार। हाँ, मीठे लगे वे दर्शन। फिर अन्दर से इच्छा हुई कि किसी तरह पास जाकर बैठूँ और दो बातें करूँ, पर अकेले पास कोई न हो। फिर मैंने कहा: अरे मलिन मन! दर्शन हो गए, यही काफी है, यदि चार व्यक्ति पास बैठे हैं तो तेरे ही जैसे, तुझ से अच्छे, प्यार के कारण सभी बलिहारी हैं, तू बूमशूम (बुरा उल्लू) है, अकेलापन क्यों माँगता है? हाय अंहकारी, अंहकारी आ नीचे, नम्रता में खड़ा हो, नैनों को प्याला बना, दर्शन का प्याला भर भरकर पी और कह, "अलहमदुलिल्ला" (परमेश्वर का धन्यवाद है)।

यों मेरे नैन भर आए, मुँद गए, फिर पता नहीं क्या हुआ। जब मैंने नैने खोले तो मैं चरणों में बैठा था और आप अकेले थे। मैंने नैन ऊँचे किए कि तृप्त होकर दर्शन करूँ, पर नैन भर आए, रोमों में से झन्नाहट निकली और जी ने सीधा होकर कहा: भला यदि ओढ़ी हुई चद्दर में से चरण दिखाई पड़ जाएँ और मैं चिपट जाऊँ तो क्या बने? हाँ, बस 'चरण स्पर्श' काफी है। फिर मन को तुम्हारी मति याद आई कि आज्ञा में प्रसन्न रहना ही खोजक का कर्तव्य है। जैसे यह प्रसन्न हों, मैं उस प्रसन्नता में प्रसन्न रहूँ। पर मन ने न

माना और न ही रीझा, लालसा, यही चाह कि किस तरह लिपट जाऊँ, पवित्र चरणों से जैसे बत्ती दीपक के साथ लिपट जाती है, हाँ जैसे अपने कण्ठ से निकला हुआ स्वर जन्त्र के स्वर के साथ लिपट जाता है, इसी तरह मैं उस चद्दर में छिपे बैठे व्यक्ति के मीठे-मीठे चरणों से लिपट जाऊँ। पता नहीं क्या हुआ? किस समय कमलों के से सुन्दर चरण चद्दर से बाहर आए कि मेरा बेअदब सिर ही चद्दर के अन्दर चला गया, न जाने कैसे हुआ, पर जब मुझे होश आया तब मेरा सिर चरणों के साथ लग रहा था। 'झरन-झरन' इस स्पर्श के साथ, मेरे शरीर में लहर रही थी, हिलते हुए तारों की थर्राहट की भाँति मेरे कलेजे में 'थर्र-थर्र' हो रहा था और नैन फव्हारे बनकर चरणों को चूम रहे थे; यों ही मुझे होश आने के पश्चात् फिर मगनता छा गई। पता नहीं चला कितना समय व्यतीत हो गया, जब फिर आपा जाग्रत में आया तो है भाग्यशील! इस घमंडी सिर, इन पापों के विचारों से लथपथ सिर पर वह प्यार वाला हाथ रखा हुआ था। शीतलता छा रही थी और आवाज़ आ रही थी:–

'वाहिगुरू! वाहिगुरू! वाहिगुरू!'

और मेरा रोम रोम आनन्दित होकर कह रहा था–

'वाहिगुरू! वाहिगुरू! वाहिगुरू!'

मेरे कलेजे में से कोई शीतलता उठती थी, वह मेरे सिर में जाकर शीतलता बरसाती थी, मेरे नैनों को अन्दर से कोई आकर्षण होता था और आपा आपे में डूबता हुआ प्रतीत होता था। नैन खुलते नहीं थे, जिह्वा हिलती नहीं थी, दाँत जम रहे थे, अधर मुँदते जा रहे थे, पर स्वाद स्वाद, मस्ती मस्ती कुछ अन्दर को मग्न, मूर्छित किए जा रहा था।

मालो सुनता सुनता मग्न हो रहा था। यहाँ आकर उबारा भी मूक हो गया और अचल एकाग्र हो गया। काफी समय के पश्चात दोनों के नैन खुले। मालो मित्र के कण्ठ से चिपट गया। लिपटकर फिर दोनों सिर सिरों से लगे हुए अचल एकाग्र हो गये। फिर नैन खुले, सुख के लम्बे श्वास आये और मालो ने कहा: धन्यवाद है उस प्रभु का, जिसने अपना प्राण दान देने वाला स्पर्श प्रदान किया। अब बता रे सज्जन! फिर रिक्त अहंकार, मूर्ति तोड़ने तथा मुसलमानी कट्टरता के, जो हमारे मनों में डेरे डाले बैठे हैं–कितने व्यर्थ हैं। अल्ला एक है, पवित्र है, सबका है, हरेक देश को, हर समय को अपना एक अवतार प्रदान करता है। यह हमारे अपने देश का अल्ला की ओर से आया अवतार है, यह उस अल्ला की ज़ात में से है, यह पवित्र आत्मा है।

उबारा–कुछ पूछ मत, पर बताये चल, मैं तो अब उस दीपक का पतंगा हूँ और मुझे कोई ज्ञान शेष नहीं रहा।

मालो–धन्यवाद! धन्यवाद! पर बता यह मुसलमानी घमंड वहाँ जाकर समाप्त हो गया था क्या?

उबारा–एकाएक ध्यान आया था कि मैं मुसलमान हूँ, मुसलमान औरों से बड़े हैं, हिन्दू घटिया हैं, मूर्ति पूजक हैं, कि आपने मेरी ओर मुस्कराकर देखा और कहा: 'न कोई हिन्दू है न मुसलमान, यदि है तो दोनों शरारती बच्चे हैं, जो अहंकार की गोद में चढ़कर एक दूसरे को घूर रहे हैं। यदि कोई बनना चाहे तो कर्म ही स्वीकार हैं, चाहे वह हिन्दू है, चाहे

मुसलमान। प्रभु के दरबार में मान उन्हें प्राप्त होता है, जिनके मन का मान यहाँ (इहलोक) पर प्रभु स्वामी की स्मृति में बिछ गया है। स्वीकृत वह है, जिसने हिन्दू-मन, मुसलमान-मन से ऊँचा उठकर प्रभु में लौ लगाई है, अथवा जिसने प्रभु में लौ लगाकर कहा है कि यह हिन्दू-मन है, यह मुसलमान-मन है। लौ के बिना दोनों ही उस पति परमेश्वर की स्त्रियाँ हैं, पर हैं उस द्वारा अस्वीकृत। प्रभु के चरणों से लौ लगे बिना जो धर्म दीन के दावे हैं वे शैतान के जादू हैं जो मनुष्य के सिर पर वह दीन अथवा धर्म की धूड़ी में मिलाकर ऊपर डालता है।

फिर दीन अथवा धर्म प्रेम का व्यवहार है। जो लौ में है उसका व्यवहार प्रेमभरा है, जिसका व्यवहार प्रेमभरा नहीं, उसमें घृणा है, वह प्रभु का नहीं, वह शैतान का चेला है। प्रभु तो प्रेम का केन्द्र है, घृणा ठीक एक उसके उल्ट एक दूसरा केन्द्र है, इस केन्द्र का नाम शैतान रख लीजिए। जहाँ पर घृणा का व्यवहार है, ज़ोर है, अत्याचार है, वहाँ प्रभु नहीं, जहाँ प्रभु नहीं, वहाँ न दीन है न धर्म, वहाँ तो दीन एवं धर्म के नाम पर घृणा काम करती है। घृणा तो शैतानी गुण है। घृणा ही शैतान है।

होश करो, न आप तबाह होवो और न ही पड़ोसी को तबाह करो, न ही देश को उजाड़ो, लौ में जागो, प्रेम का व्यवहार करो। प्रभु के संयोग में रहो। प्रभु के मनुष्यों के साथ दया तथा प्रेम का व्यवहार करो। घृणा को प्रभु का दैवी गुण समझकर अपने आपे के साथ धोखा मत करो। प्रभु को पिता समझो, मनुष्यों को उसके बालक समझकर अपने भाई समझो।

मालो—फिर हुई तेरी तसल्ली?

उबारा—मेरी तसल्ली? मेरी तसल्ली यह हुई कि मैं समझता हूँ कि मुझे आप श्री मिले हैं, मेरा तो उस समय का रोम रोम धन्यवाद कर रहा है कि निजात वाला साईं मिल गया। भयो आज मो को मुकंद दिदारा। [गु: न: प्रकाश]

मालो—वाह! वाह!

उबारा—मुझसे एक बड़ी भूल हुई, फकीरों के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये और मैं अपने मन के बढ़े हुए उत्साह में वैसे ही खाली हाथ चला गया था, जब अनुग्रह हो गई तो आपने मुझे खाना खाने के लिये कहा। उस समय मुझे चेता आया कि मैं खाली हाथों दर्शन के लिये आया हूँ कितना अभागा हूँ, पर अन्दर के सुख की ओर देखकर मैं काँपा कि मैं अभागा क्यों हूँ, जिसको 'आप जी' ने सौभाग्यवान कर दिया है, मैं भाग्यवान हूँ। फिर मुझे घर पर पड़े हुए एक बाफते (ज़री के वस्त्र) का चेता आया, जिसे मैंने बड़े चाव से कभी बनवाया था, चित यही करता कि रेत पर प्रसन्नता से बैठने वाले इन चरणों के नीचे वह वस्त्र बिछा दूँ, देखूँ और प्रसन्न होऊँ। अत: मैं आप जी से आज्ञा लेकर आ गया था; हाँ, अब फिर जाऊँगा।

मालो—उबारे मित्र! वह वस्तु जो तैने ली है बड़ी अमूल्य है, इसे संभालकर रखना, जिस तरह कृपण हीरे मोती संभालकर रखता है। तेरा स्वाभाव हँसने खेलने तथा रास्ते में जाने वालों को छेड़ने का है, तू अब नृत्य करने वाली युवती नहीं, तू अब अल्ला से मिली, उसके नाम के संयोग में आई सुहागिन है। अब प्रभु से लौ में रहना जी तेरा सुहाग के

सम्मुख रहना है। लोगों से हंसी मज़ाक, नास्तिकों के साथ गप्पें, जो रहस्य को नहीं समझते उनके पास रत्नों के डिब्बे खोलना, यह सब कुछ लौ को आघात लगाते हैं। तगड़े रहना और मन पर अंकुश रखना, यह मन बड़ा कठोर है और उधर जगत बड़ा निर्दय है।

उबारा—जैसे तुम कहोगे, वैसे ही करूँगा। तेरी दया से लौ की कृपादृष्टि हाथ लगी है, और तेरी दया से ही वह सम्पूर्ण होगी।

: ३ :

आवाज़—उबारे खान! खान, खान होत!

उबारा (देखकर)—कौन है?

आवाज़—आ भाई दर्शन दे।

उबारा (फिरकर और आवाज़ वाले को पहचानकर)—अच्छा, पीर जी हैं। मैंने कहा, न जाने कौन है, सवेरे-सवेरे इतनी दूर से आवाज़ें मारने वाला।

पीर—सुना भाई, हमने लोगों से कुछ सुना है?

उबारा—सुनना शुभ, सुनने से ही सूझ का द्वार खुलता है।

पीर—हैं! हमने तो भाई लोगों से सुना है, तू आप सुना न!

उबारा—कहा जाता है कि जनता की आवाज़ प्रभु का नगारा होती है। खुदा के नगारे की आवाज़ सुनकर मेरी बीना की आवाज़ सुनने की क्या आवश्यकता है?

पीर—अच्छा! हाँ, पर भाई बात लोगों की जिह्वा पर चढ़ती चढ़ती आगे चलती-चलती सच्च से दूर होती जाती है।

उबारा—फिर इस तरह की सुनी हुई अनसुनी कर देनी चाहिए।

पीर—हूँ! पर सच्च जानने के लिए पहले अधरों की मुस्कराहट के पीछे बैटी जिह्वा की हिलजुल की आवश्यकता होती है।

उबारा—जिह्वा तथा अधरों को तो तब कोई कष्ट दे जब कोई सच्च को सहन कर ले और यदि मन की हैरानी को स्वाद चखाने के लिए सुनना, तो सुनने की अपेक्षा न सुनना ही अच्छा है।

पीर—अच्छा, बुझैवली! बिना सुने सच्च कैसे पता चले?

उबारा—नैनों से।

पीर—जो हो चुकी, व्यतीत हो चुकी, उसे भूत के परदे फाड़कर नैन कैसे देखें?

उबारा—जैसे भूतकाल में बोये हुए बीज को फल लगते देख लिया जाता है।

पीर (त्यौरी चढ़ाकर)—टालमटोल! सीधी तरह बतायेगा कि नहीं?

उबारा—सूर्य को घूँघट की आवश्यकता नहीं, चन्द्र ने कभी बुरके नहीं माँगे, सच्च को छिपाने से क्या प्रयोजन।

पीर—वाह, फिर बताता क्यों नहीं?

उबारा—प्रकाश, नग्न प्रकाश, तीव्र प्रकाश के लिए नैनों के आगे का ले चश्मे की आवश्यता होती है अथवा उस प्रकाश को सहन करने वाले नेत्र चाहिए। सच्च 'बिजली की चमक' की भाँति चुँधियाता है और अग्नि जलाता है।

पीर–तू बड़ा उद्दंड हो गया है!

उबारा–भूल हो गई जी, क्षमा करना, मैंने समझा था कि तुम सच्च की मंडी में आकर खड़े हुए हो।

पीर–तू सच्च सुनाए तो बात है, तू तो परदे डालता है।

उबारा–पूछो तो। मैं तो सच्च, मेरे पास सच्च। 'सच सभना दा दारू' (नैन मुँदकर) (गाकर) 'सचु–सभना होइ दारू पापु कढै धोइ।'

'कढै धोइ, कढै धोइ, कढै धोइ'।

पीर–मज़ाकिया भी कवि भी और गायक भी। अच्छा–स्पष्ट बता, सुना है कि तैने बैत (दीक्षा) ली है।

उबारा–मैंने तो कभी छड़ी भी नहीं पकड़ी, बैत मैं क्यों खरीदूँगा?

पीर–सुसरा हँसोड़! मैं कहता हूँ तैने फकीर से 'बैअत' ली है, जिसे हिन्दू मन्त्र लेना कहते हैं।

उबारा–मैंने किसी फकीर से कुछ नहीं लिया। झूठ सच्च का बहरूपिया बनकर तुम्हारे कानों के आँगन में जा खड़ा हुआ है, भला देखूँ पीर जी पहचानते हैं अथवा नहीं।

पीर–भला फकीर से न सही, किसी वली (अवतार) से (अल्ला क्षमा करे)।

उबारा–मेरा वली अवतारों से क्या काम?

पीर–अरे किसी फकीर अथवा किसी तपे से?

उबारा–शाह फकीर तपे होते होंगे, हमने तो नैनों के आँगन में कभी घुसने तक नहीं दिये।

पीर–क्या लोग झख मारते हैं?

उबारा–और तुम ही तो कहते हो कि जनता की आवाज़ खुदा का नगारा होती है।

पीर–वह दूसरी बात है। एक बात और भी है न, लोग तो पंखों के ही पक्षियों का झुण्ड बना देते हैं और यहाँ पंखों के बिना ही झुण्ड बन गया। (सोचकर) हमने उबारा! पहले ही कहा था कि उबारा धर्मात्मा है, हँसोड़ है, पर है पक्का मुसलमान, वह भला कभी किसी मूर्तिपूजक, हिन्दू नास्तिक से कैसे मन्त्र ले सकता है।

उबारा–तुम सच्चे हो। मूर्तिपूजक हिन्दू, मुसलमान ईश्वर पूजक, काफिर (नास्तिक) म्लेच्छ, उबारा किसी के चरणों को अपने नैनों से स्पर्श नहीं कर सकता, वैसे सबके चरणों की धूल है।

पीर–मुसलमान ईश्वर पूजकों से भी उबारा उपराम है?

उबारा–जैसे तुम्हें मुद्रा भेंट में मिलने पर तुम कौड़ियों की ओर से उपराम हो जाते हो।

पीर (घबड़ाकर)–पहेली क्यों बुझाता है, सीधा बता कि तैने बैअत (मन्त्र) लिया है कि नहीं?

उबारा–बैत, वह छड़ी वाला बैत मैंने नहीं लिया। मन्त्र वह मंत्रेले वाला मन्त्र मैंने नहीं लिया। वह किसी मृतक के पास बैठकर कानों में जीवित के नाम की ध्वनि मैंने अपने कानों में पड़ने ही नहीं दी।

पीर (सोचकर)–फिर जो कुछ तैने लिया है, वह बता, जिससे लिया है, उसका नाम बता, यदि नहीं लिया तो कह दे खाली है।

उबारा–खाली तो हैं कुएँ जो लोगों के मटके हुए हैं और आप अपना रिक्त मुँह फाड़ फाड़कर दिखाते हैं। खाली हैं ढोल जो कानों के परदों को थररा देते हैं। कौड़ों से झीले भरने वाले रिक्त हैं। ओस के मोतियों के जौहरी रिक्त हैं। वे झलक रिक्त हैं, जो अपरिचित प्रकाश से पड़ते हैं, जिस तरह सूर्य के प्रकाश की झलक चन्द्र देता है। अपने तेल तथा बत्ती वाला छोटा पर अपने प्रकाश वाला टिमटिमाने वाला दिया क्यों रिक्त है? उबारा क्यों रिक्त है जिसका घट रूपी दीपक 'आप जी' के प्रकाश से स्पर्श करके जल उठा है? हाँ, भाग्यशील पर नम्र उबारा क्यों रिक्त है, जिसने 'आप श्री जी' के दर्शन से गोद भर ली है...।

वह कहते-कहते उबारे के नैन मुँद गये, अधर मुँद गये, चेहरे पर एक लालिमा की प्रेम भरी कान्ति फिर गई और धन्यवाद का प्रभाव छा गया।

पीर (चकित होकर)–धन्यवाद है! तू खुला तो है, पहेलियाँ ही सही। प्राप्त किया है, इतना कुछ ही सही, कुछ तो पता चला! अब बता तो–नानक से प्राप्त किया है?

उबारा–यह शब्द जो तुमने कहा है, क्या यह उसका दूसरा नाम है, जिसे अल्ला कहते हैं?

पीर–अरे काफिर!

उबारा–तेरी रसना के बलिहारी। मैं का...फि...र; काफ: फे, रे। फकीर शब्द को भी यह का...फि...र अक्षर लगते हैं, अत: अक्षरों के ही तो आगे पीछे होने की बात है न। हैं तो वही अक्षर, बल्कि 'काफ' फकीर का बड़ा है और काफिर का 'काफ' (अक्षर) छोटा है, नम्रता वाला है। वाह पीर जी! तुम जीवित रहो पीर जी! तुम वृद्धावस्था पर्यन्त सुहागिन रहो।

पीर–गप्पी तथा हँसोड़, सीधे ढंग से क्यों नहीं बताता मरता?

उबारा–पूछो जी!

पीर–क्या तू–नानक–का सिक्ख हो गया है?

उबारा–जो शब्द तुम कह रहे हो, इसका क्या अर्थ है, अर्थ समझाकर बताओ।

पीर–एक तपा, हिन्दू, मूर्तिपूजक।

उबारा–नहीं जी।

पीर–तैने क्या प्राप्त किया है?

उबारा–दर्शन 'आप' जी का दर्शन।

पीर–उसका नाम क्या है?

उबारा–आप जी।

पीर–यह नाम नहीं, यह (ज़मीर) सर्वनाम है!

उबारा–यही नाम है जो कलेजे फाड़कर अन्दर से, घुर अन्दर से निकलता है, जिस तरह चश्मे में से निर्मल धारा निकलती है। बाहर से अन्दर को लाये हुए नामों के लेने से अपरिचितता होती है। सर्वनाम में से सर्वनाम निकलना तो स्वाभाविक ही बात है।

पीर (सोच सोचकर और झुँझलाकर)–चल जा काफिर के चेले!

यह सुनते ही उबारे का हाथ तलवार पर गया और कहने लगा—सुनो पीर जी! मैं पठान हूँ, जुलाहा नहीं, मैं आप जी का चेला हूँ, यदि अपमान किया तो देखना।

पीर—तुझे आज शरअ का फतवा[१] देकर सूली पर चढ़ा दूँगा, तू हिन्दू मूर्तिपूजक के पीछे लगे, मैं तेरे 'नानक' को भी उठा दूँगा, हाँ उठाकर दूर करूँगा, समझे!

उबारा (तलवार से हाथ उठाकर और ताली बजाकर)—तुम तो कहते थे, लोगों का कहा झूठ है और सत्य को जानने के लिए तुम से पूछता हूँ और सच्च झूठ को सुनकर सहन भी कर जाता हूँ और अभी तो मैंने अपने मुँह से कुछ कहा ही नहीं और आप ही आप धमकी से जल उठे हो। पीर जी! बराबर वाले के साथ ईर्ष्या उचित होती है, अपने से बड़ों के आगे नम्रता, अधीनगी ही अच्छी होती है।

पीर—जिस समय उठाकर दूर कर लूँगा, फिर बताऊँगा कि बड़ा मुसलमान होता है अथवा मूर्तिपूजक।

उबारा—लो फिर हम भी तलवार को म्यान में ही रहने देते हैं, पहले मुझे सूली दीजिए न, फिर 'आप जी' को उठाते देखेंगे, यह रंग भी देख लें, उठाकर दूर करते हो कि अदृष्ट दिये पर जैसे पतंगे नृत्य करते हैं, वैसे ही नृत्य करने लग जाते हो। पीर जी! जाओ क्षमा किया, उठाने के लिए जो चले हो, जाओ न चन्दन के चरणों के पास और कुल्हाड़े की भाँति जरूर लग जाओ। जब सुगन्धि का स्पर्श लगेगा, अन्त हो तो मनुष्य ही, उस समय तुम्हारे मस्ती से भर रहे, झुक रहे सिर और हिलते हुए अधरों को पवित्र चरणों को चूमते हुए देखेंगे।

किचकिच करता हुआ 'उठा दूर करेंगे' कहता हुआ अभिमानी पीर शेख अब्दुल-रहमान घोड़े की एड़ी लगाकर चला गया और अपने 'आप जी' के अपने अंतस में दर्शन करने वाला और अंदर झुक झुककर प्रणाम करने वाला उमराखान—जिसे लोग उबाराखान तथा उबारा कहकर बुलाते थे—घर चला गया। आगे उसकी पत्नी ज़बीदाखानम, जिसके सिर पर ज़मुरर्दी रंग का दुपट्टा था और गले में लम्बा सुन्दर चोला था, जोकि हल्के काले रंग का था, जिसे वक्ष के पास सुन्दर बल पड़े हुए थे और जिसका नीचे का घेर टखनों तक लम्बा था, जो सुन्दर सफेद रंग के अन्दर पहन रखे पाजामे को भी ढक रहा था। पहने द्वार पर खड़ी होकर प्रतीक्षा कर रही थी। सुन्दर सजीले किसी नई सुन्दरता की डुबकी से रंगे हुए पति को देख देखकर आप सुन्दर तथा सजी हुई युवती न्योछावर हो रही थी और आने जाने वाले से कह रही थी, मैं बलिहारी यह सौंदर्य भरा चेहरा अब मेरे नैनों के बिना अन्य आँखों की पुतलियों में मत जाने दिया करो। हे स्वामी जी! बे-समझ लोगों की आँखों की पुतलियों में जादू, टोने विषैले निवास करते हैं और बुरी नज़र खा जाती है।

उबारा—प्रभु की संवारी हुई? प्रभु की अनुकंपा को देखकर प्रसन्न हो जाने वाली भाग्यवान! इन मेरे कबूतर की भाँति उड़ने वाले नैनों पर दया दृष्टि पड़ गई है, अब इन पर बुरी दृष्टि डालने वाला कौन पैदा हुआ है?

ज़बीदा—सच्च, सच्च, मैं तो मूर्ख हूँ। बलिहारी तेरे 'नानक सौन्दर्य' से जगमगा उठे नेत्रों पर जिन्होंने मेरे अंधे नैनों को अपने स्पर्श से प्रकाशमान कर दिया है। हे स्वामी जी!

१. (इस्लाम धर्मानुसार) किसी बात के उचित अथवा अनुचित होने के सम्बन्ध में दी जाने वाली व्यवस्था।

मेरे नैनों में अपने सौंदर्य को दिखाया कीजिये, मैं स्त्री जो हुई, में ईर्ष्या करती हूँ जब तुम्हारा रूप बेकदरों के नैन आंगन में जाता है। (अर्थात जो उसकी कदर नहीं पा सकते।)

उबारा–तैने सच्च कहा है, आज पीर अब्दुल रहमान के साथ झड़प हो पड़ी। (नैन भरकर) 'आप जी' की शान में कुछ अपमान के वाक्य कहने लगा।

ज़बीदा खानम (अधीर होकर)–उसकी जिह्वा उसी समय काट क्यों न दी, क्यों न उसके टुकड़े कर दिये! दो टुकड़े हो जाती, कलम और फिर हमारे प्यारे हृदयों की मखमल में छिपा छिपाकर बैठाये 'आप जी' की कीर्ति लिखती। काली कठोर कलम काम नहीं देती, मेरे स्वामी! जब तक वह लोहे की धार का स्वाद नहीं चखती और नोक का मुँह नहीं चूमती।

उबारा–पठानपूत का हाथ तो तलवार पर गया था, पर फिर आँखों के आगे आप जी आ गये और मधुर अधरों से यह अमृत झरता हुआ प्रतीत हुआ, "उबारा! सारी आयु हमने अपने पर आक्रमण करने वालों के 'नैन रूपी बाण' और 'जिह्वा रूपी बाण' सदैव ही अपनी क्षमा की ढाल पर सहन किये हैं, ईश्वर के नाम का ममीरा लगाकर उनके बन्द नैन खोलते रहे हैं, उनके टेढ़े नैन, रोगी नैन, देखते हुए भी न देखने वाले नैन।' इसलिये हे मेरे रहस्य को जानने वाली मेरी सुन्दरी सुन! मैंने लोहे की जिह्वा पर से हाथ उठा लिया, इसलिये कि यदि वह जीवित रह गया तो मेरे 'आप जी' के चरणों के आगे बिछुने वाली, चमकते हुए तारों की फुहार, हां आकाशी तारों की चमकती हुई धूली बनेगा।

खानम–बात कैसे चली?

उबारा–उसने मार्ग में जाते हुए मोड़ पर से मुझे आवाज़ लगाकर बुलाया और अपमान से मेरे सौभाग्यवान होने के समाचार पूछने लगा, इसलिये मैंने तो पकड़ ही न दी। वह मेरे दाता जी के छोटे-छोटे नाम कहता था, कभी तपा, कभी फकीर, कभी अवतार और 'आप जी' की ओर संकेत करता था। मैंने उनके चरणों में तपे, साधु, पीर, फकीर, अवतार खड़े देखे हैं, मैं किस तरह सहन कर सकता था? फिर अंत में वह मन के मुँदे हुए नैनों वाला सीधा अपमान पर उतर पड़ा। पहले तो मुझे क्रोध आया, फिर मुझे यह दर्शन दिखाई पड़ा कि पीर मेरे 'आप जी' के चरणों पर झुक रहा है। मैंने कहा उबारा? कई पतंगे मज़ाक तथा अपमान करते हुए भी दीपक पर आते हैं, पर कैसे भी कोई आये, जो आता है अपनी चतुरता तथा बुद्धि के पंख जलाकर बलिदान का शरबत पीता है। अतः यह युवती भी कहीं वरदान प्राप्ति के योग्य न हो, जिसने पति की प्राप्ति करनी है और यही अपमान इसे चरणों के साथ जाकर टकराने वाली शक्ति का काम दे रहा हो।

खानम–हाय! बातें मत करो, मैं सहन नहीं कर सकती, 'आप जी' के बारे में कोई अपमान वाली बात, जो तिल्ले के तारों की भाँति दमकती और स्वर्ण की भाँति लसती न हो। मत कहो मत, (रोकर और अधरों पर हाथ रखकर) मत कहो। हाँ कहो न सौंदर्य भरी चेहरे की स्तुति, महमा सुनाओ, स्तुति गाओ प्यारे प्यारे दाता जी की।

उबारा–(बड़े मीठे स्वर में) धन्य गुरू नानक! धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक, धन्य गुरू नानक!

खानम (नैन मुँदकर और सुन्दर अश्रु गिराकर)–धन्य ईश्वर नानक? धन्य ईश्वर नानक!! धन्य धन्य आप, धन्य धन्य आप, आप आप···। (नैन खोलकर)–हां जी, बिछाओ जाकर 'आप जी के' सुनहरी चरणों में बाफता, हाय! स्वामी जी! कोई जुलाहा खोजो, यह काफता (नैन मुँदकर) चरणों की अपेक्षा मलिन है, हाय! और कोई ज़रबफत[१] हो न, कहीं से कोई जुलाहा पकड़कर लाओ न, तुम्हारे नैनों के तारों का ताना तने, मेरे नैनों के तारों का बाना बनाये हाय! वह जुलाहा 'धन्य धन्य' की नली के साथ 'तू तू' की ठक-ठक के साथ बाफता बुने। हे सुन्दर जी! फिर तुम उसे ले जाकर उस सुन्दर के आगे भेंट कर देना, फिर, स्वाद आ जाये। हाँ दृष्टि वाले की भेंट करो यह न्योछावर होने वाली दृष्टि का बाफता··· (यों कहती हुई बेसुध हो गई)।

उबारे खाँ ने धीरे से बैठकर सिर अपने कंधे से लगा लिया और कंधे पर हाथ का सहारा दिया और 'आप जी' के ध्यान में आप भी मग्न हो गया।

कुछ समय के पश्चात् खानम की आँख खुली, बड़ी दया भरी आवाज़ में कहने लगी "मेरे स्वामी जी! कभी भी कोई न सुनाने योग्य बात मत किया करो 'आप जी' की। चलो इस स्थान से कहीं दूर चलकर जा बसें, जहाँ शीतल जल बहते हों, उछल-उछलकर नाद करते हुए, हाँ, कानों में रिमझिम करते अमृत तथा बरसते हुए अमृत की आवाज़ पड़े। जगत के नैन क्यों मुँदे हुए हैं, क्यों नही पहचानते कि यह मिट्टी पर चलने वाले कौन हैं? सौन्दर्य क्यों सौन्दर्य होकर लोगों को नहीं दीख पड़ता?"

उबारा–प्रिय! यदि वे आप नैनों को खोलें तब कहीं जाकर खुलते हैं, मेरे मुँदे हुए थे तेरे खुले थे, मालो के खुले थे, वे भी उन्होंने ही खोले थे, मेरे भी अब उनकी अनुकम्पा द्वारा खुले हैं। उदास मत हो, सुन्दरता प्रायः पीड़ा के पेट से उत्पन्न होती है, कई बार कष्ट सुखों का पिता बना है, ईर्ष्या ने कई बार प्यार को जन्म दिया है। पीर जी जब सामने जायेंगे तो अवश्य ही पलट जायेंगे। ईर्ष्या क्या है? प्यार का उल्ट, इसे सीधा कर लेना 'आप जी' का काम है।

खानम–अच्छा प्रिय! मेरे सुन्दर सुन्दर जी! देखो तो! अब हम किस तरह अमृत में खेलते हैं? किस तरह जीवन-जल (अमृत) पी रहे हैं? हाय! कितना मीठा है! स्मृति का तार किस केशर के तालाब के साथ जा छुआ है कि उस तार पर चढ़कर टप-टप अमृत की बूँदे कभी नैनों में, कभी सिर के अन्दर, कभी छाती पर, कभी रोम-रोम में, कभी सारे अन्दर बाहर गिरते रहते हैं! आहा, कैसी फुहार पड़ रही है, वाहिगुरू!

स्वामी जी! फिर जाओ न, दर्शन करो। दर्शन प्राप्त करो, चरणों में बाफता बिछाओ न। जिस रेत पर 'आप जी' बैठे हैं, वहाँ से पवित्र धूली थोड़ी सी मेरे लिये भी लाना। हाय! मलिन सा प्राण रहित स्वर्ण तथा रेशम का बाफता सदैव प्राणों के साथ जाकर स्पर्श करेगा। स्वामी जी! जिस समय इसे चरणों में बिछाने लगो, उसे समय प्यार सहित मेरे तथा अपने नेत्रों का बुना सुन्दर बाफता चरणों मे बिछा देना, यह रेशम का बाफता तो केवल चिन्हमात्र

१. एक प्रकार का वस्त्र जिसमें सोने चाँदी के तार बुने हुए होते हैं।

ही के लिये बिछे, पर वास्तव में हमारा आपा, सुन्दर-सुन्दर 'आप' साहब के मुबारक चरणों में बिछ जाये।

: ४ :

श्री 'आप जी' हाँ, माता-पिता द्वारा रखे गये नानक नाम वाले श्री गुरू जी एक रेत के बने हुए चबूतरे पर निमग्न बैठे हैं कि उबारे खाँ आ पहुँचा और चरणों के आगे उसने बाफता लाकर रख दिया, चरण पर से, धूल माथे पर लगाई और नैनों रूपी चकोरों को चन्द्र मुख पर टिका कर बैठ गया।[१]

गुरू जी–उबारे खाँ! यह वस्त्र तुम लाये हो, तुम्हारा प्रेम प्रभु के द्वार पर स्वीकार हुआ! वाहिगुरू के नाम का दान सदैव अटूट मिले! हाँ अनुग्रह! पर भाई सज्जन! इस तरह के बहुमूल्य वस्त्र हमारे काम के नहीं, हमें शरीर को ढाँपने की आवश्यकता है, जरी बादले की आवश्यकता नहीं। हमारी सुरत स्वर्ण के तार बनकर प्रभु की स्मृति के बाफते बुनती, श्वास-श्वास सुन्दरता के रंग में रंगी रहे, फकीरों के घर में प्रतिदिन लज्जा के वस्त्र बुनते रहते हैं।

उबारा (नेत्र भरकर)–पातशाह! यह पहनने के लिए ? यह तो चरणों के नीचे बिछाने के लिए लाया हूँ। ज़बीदा रो-रोकर कहती थी: यह मलिन वस्तु है, चरण सुन्दर हैं, जिनके स्पर्श से रेत के कण भी हीरों के कण हो रहे हैं, किसी तरह हमारी दृष्टि उन चरणों के नीचे बिछ जाए। पातशाह! हम मलिन हैं, हमारा प्यार धुँधला है, दृष्टि आत्मा के–जीवन के देश तक उठकर नहीं जाती। जगत की सामग्री के साथ ही हम प्यार प्रकट करते हैं। 'वस्तुओं के लेन देने का' प्यार तो हम अवश्य ही जानते हैं–प्यार का चिन्ह समझते हैं। क्षमा कीजिए! आप अपने आपको फकीर मत कहिए, मेरे कानों के परदे यह सुनकर फटते हैं। आपको पातशाह कहकर भी मैं लज्जित होता हूँ, क्या कहूँ? क्या नाम रखूँ? नाम लेना तो अपमान है, नाम रखना तो भूल है। आप हैं जी हैं, हैं, हैं, हाँ जी, धरती आपकी है, धरती में पड़ा हुआ स्वर्ण आपका है। धरती पर चलते हुए आप स्वर्ण पर से कदम उठाते हैं, जवाहरात पर रखते हैं, बेपरवाह, इच्छा रहित, वैसे ही बेपरवाह इच्छा लालसा रहित उसी धरती में दबे हुए स्वर्ण की भाँति एक चरण इस बाफते पर भी रखकर चले जाइए; आप ऊँचे हैं, पर यह देखकर, हमारे नीच मन 'मैं मैं' के घोंसले बन रहे मन जगमग कर उठेंगे।

श्रीमान जी! क्या कहूँ? (फिर उबारा नैन भरकर नीचे को देखने लग गया)।

---

१. अहै बाफता जो बहु मोला।
गमनयों गुरढिग रिदै अमोला।
जाहि अगारी धरिकैं सोऊ।
हाथन बिखै गहे पद दोऊ।
दीन होइ कर ग्रीव निवाई।
पद की रज निज मसतक लाई।
सरब बदन पर पुन कर फेरत।
सनमुख बैठ दरस को हेरत। [गुरू नानक प्रकाश]

भाई बुड्ढ़ा जी–हे इच्छारहित, लालसारहित दाता! हे रेत का बिछौना तथा आक के भोजन पर प्रसन्न होने वाले सदैव तृप्त स्वामी! निद्रा, भूख तथा ओढ़नी से भी उपराम ऊपरी देश के निवासी जी! आपके लिए कंचन तथा मिट्टी एक समान है। आपको किसी वस्तु की, किसी सेवा की आवश्यकता नहीं और आप अकेले ही अपने रंग में खेलते हैं आप दाता हैं, लेने वाले नहीं। लेना तो हमारी गोदी को है, देने वाला आपका दाता हाथ है। यह किसी का देना और आपका लेना नहीं, यह मिट्टी के रहने वालों का एक मिट्टी का प्यार है। यह कुछ नहीं, प्यार नहीं; बच्चों का खेल है। खद्दर तथा भूने हुए दानों पर चढ़कर आया प्यार जिस द्वार पर स्वीकार है, उसी द्वार पर आज प्यार भूलकर स्वर्ण तथा रेशम के तारों पर चढ़कर आ गया है। इसलिए हमारे नीच देश तथा नीच गति के लिए क्षमा प्रदान करके स्वीकार कीजिए। प्यार रूप, प्यार के दाते, प्यार करवाने वाले, प्यार का ढंग बताने वाले जी! इस बावले ढंग के प्यार को स्वीकार कर लीजिए। उबारे का प्यार इस सेवा में ही अटक गया है। अत: आप स्वीकार करके मान प्रदान कीजिए, लौटाने से इसके प्राण व्याकुल होंगे।

उबारे का चेहरा सारा प्रार्थना विनती रूप ही हो रहा था। उबारे के पीछे ज़बीदा का हृदय ऊँचे-ऊँचे तरंगों के कोमल तारों के साथ लटक रहा था, इसलिए यह इन्कार तिल्ले के तारों का इन्कार नहीं था, पर इस तुच्छ भेंट को अस्वीकार करना इस बात का आघात करने वाला था 'कि हम बड़े निकम्मे तथा पापी हैं कि हमारी तुच्छ भेंट उन पवित्र चरणों के स्पर्श के भी योग्य नहीं है।'

प्रेम तथा आपा न्योछावर करने वाले प्रेम के ज्ञाता त्याग मूर्ति, वैरागमूर्ति के चेहरे पर एक ईश्वरीय प्यार का रंग आया। वह रसिक वैरागी स्वरूप दयालु हुआ, स्वर्ण, चांदी आदि को लुटा देने वाला आकार प्यार के आगे द्रवित हुआ, वह बाफता चरणों में बिछने के स्थान पर चद्दर बनकर सुन्दर शरीर की ओढ़नी के मान को प्राप्त हुआ।

उबारा देखकर प्रसन्न हो गया, प्यार पूर्ण हुआ देखकर हृदय में उछाल आया। प्रेम वाला हृदय छोटी सी प्रार्थना की स्वीकृति को देखकर उल्लास में आया। वाह वाह दाता तू धन्य! तू धन्य![१]

सतगुरू के इस तरह के दीनों पर दयालु होने पर सत्संगी पुरुषों में प्यार का एक आश्चर्यजनक उछाल आया। दरिद्रता तथा दरिद्रता की साम्रगी पर तो भले चंगे त्यागी तथा संन्यासी सदैव रीझे हैं और दिखावे के त्यागी सदैव बहुमूल्य वस्तुओं पर रीझे हैं, पर हर्ष शोक में एक रस, त्याग तथा ग्रहण में एक रंग, गृहस्थ में उदास होकर चलने वाले श्री गुरू नानक देव जी की यह दीनों पर दया प्यार की कदर करने वाली थी। यदि कभी अमीरी ठाठ की वस्तु प्यार में भीगकर आई है तो जगत के झूठे भय से डरकर केवल सन्यासी ने, कि लोग

१. सरब जगत पति मइत ऊदारा।
जो जड़ जंगम केर दतारा।
तां की सेव भई मुझ हाथा।
कृत्य कृत्य मैं भयो सनाथा। [गुरू नानक प्रकाश]

उसे लोभी न समझ लें, कई बार इन्कार किया है। हाँ, त्यागियों में त्याग का निवास होता है, पर गुरू नानक में त्याग का भी त्याग निवास करता है। बाफते का त्याग तो आपे में स्वभाविक ही है, वहाँ इस त्याग के अभिमान का भी त्याग है। यह हृदय के कोमल तारों से बँधा हुआ प्रेम की वस्तु को स्वीकार करना ग्रहण नहीं, यह तो बाफते के त्याग का त्याग है। ग्रहण है इसमें फँस रही आत्माओं के कोमल तारों का।

जिनकी गली की धूली के कणिकों से पातशाही उत्पन्न हो सकती हैं, वह रेत में बैठे सच्चे पातशाह प्यार के तारों से बुने हुए बाफते में कितने मीठे प्यारे लग रहे हैं। सौन्दर्य से भरा हुआ चेहरा तथा कंचन काया कैसे लस-लस कर रही है। कंचन तथा मिट्टी को एक समान मानने वाले कैसे अचल बैठे हैं। इन दासों के हृदय को एकाग्र करने वाले दर्शन के बलिहारी! यह दर्शन सदैव एकाग्र, सदैव स्थिर हो प्रेम भरे हृदयों की संगमरमर की कन्द्रा में।

कुछ समय बाद चद्दर सुशोभित होकर धीरे-धीरे ढलककर धरती पर जा लगा, दाता जी सौन्दर्य में सुशोभित टिके रहे।

: ५ :

सतगुरू नानक जी–उबारे खाँ! अब्दुल रहमान की बातें सुना, उसके साथ तेरी क्या टक्कर हुई?

उबारे खाँ घबड़ा गया कि उसकी अब्दुल रहमान से भेंट का यहाँ कैसे पता चला? पर प्रसन्न हो गया कि 'आप जी ठहरे, सब कुछ जानते हैं'। नैन झुकाकर कहने लगा–हे स्वामी जी! आप सब कुछ जानते हैं, मैं क्या कहूँ? और हे पातशाह? जो जो वाक्य उसने कहे, वे मेरी जिह्वा नहीं कह सकती।

गुरू जी–तेरा कोई दोष नहीं, कुछ तो कह?

उबारा–हिन्दू को अपनी शुचिता, दंर्शन, योग एवे ज्ञान का अहं होता है, वैसे ही उस मुसलमान को फूक चढ़ी हुई है जो हरेक मूर्ति न पूजने वाले के मन में चढ़ी रहती है कि मूर्तिपूजा बुद्धिहीनता है और मैं बुद्धिमान हूँ, बड़ा हूँ क्योंकि मूर्ति के आगे नहीं झुकता। हाय! पर वह नहीं समझता कि यह अहंकार तथा घमंड भी मूर्तिपूजा है। आश्चर्य है कि खुदापरस्ती के अहंकार वाले को धन पूजा, ईश्वर पूजा, स्त्री पूजा, मान पूजा, मन पूजा का कोई दण्ड नहीं देता, न काज़ी न मुफ्ती, जबकि यह सभी पूजा मूर्तिपूजा ही हैं, पर पत्थर की मूर्ति की 'पूजा न करने का' अहंकार सबके अन्दर है। फिर जिस प्रभु के आगे झुकते हैं, उसे किसी ने देखा नहीं, उसका अनुभव नहीं किया, उसके लिए प्यार की झन्नाहट कभी भी किसी को नहीं आई, न जाने किसके आगे झुकते हैं और मन जगत के जंजालों में उलझ रहा होता है और जिह्वा तेज़ी से नमाज़ पढ़ती जाती है। यह दूसरे की पूजा किसी को पाप नहीं प्रतीत होती। यों ही पीर अब्दुल रहमान है, उसके अन्दर बहुत ईर्ष्या है, आपके प्रताप को देखकर सह नहीं सकता, मुँह से अंट-संट निकालता जाता है, पर आपके द्वार पर सदैव दया है। यहाँ मूर्तिपूजा नहीं, मन पूजा नहीं। यहाँ तो 'मैं मेरी की पूजा' है ही नहीं, ईश्वर पूजा, ईश्वर पूजा का ही राज है।

गुरू जी–वाह वाह! उबारा! धर्म तो है ही प्रेम! प्रेम के रथवान क्यों धृणा के सारथी बन जाते हैं? पीरों साधुओं को तो प्यार में उन्नति करनी चाहिए थी। अच्छा¨। चल भाई उबारे खाँ। चलकर शेख का अहं उतारें और उसे प्रेम के दर्शन करायें, क्यों प्रभु से बिछोड़ने वाले मन के तरंगों में बह रहा है? उबारे! तू चल हम आते हैं।

उबारा तो आगे-आगे गया। कुछ समय के पश्चात श्री गुरू जी एक दो सिक्खों सहित चल पड़े। प्रभु की आज्ञा क्या हुई कि वह पीर भी किसी कार्यवश पालकी पर चढ़ा हुआ अनुयायियों की एक भीड़ में आ रहा था। दूर से देखकर उसे लोगों ने बताया कि नानक तपा आ रहा है। यह सुनकर वह पालकी से उतर गया और आदर देने के लिए आगे बढ़ा। जब पास आये तो झुककर हाथ बढ़ाया। पूछने लगे–'सुनाओ तपा जी! सब कुशलता है न?'

गुरू जी–कुशलता है, पर कुशलता नहीं।

शेख–क्यों, आपके यहाँ कुशलता तो है?

गुरू जी–कुशलता है, पर कुशलता नहीं।

शेख–कुशलता कैसे है और कैसे नहीं?

गुरू जी–कुशलता तो है, पर कुशलता नहीं।

शेख–मैं नहीं समझा, जब कुशलता है तो कुशलता क्यों नहीं है?

गुरू जी–वैसे सब कुशलता है, ईश्वर की ओर से सब कुशलता है, पर मनुष्य की ओर से कुशलता नहीं, ईश्वर के कहलाने वाले ईश्वरीय मनुष्य की ओर से कुशलता नहीं।

शेख–वह कैसे?

गुरू जी–प्रभु अन्दर बाहर रमण कर रहा है, मिल रहा है, रस रहा है, यह तो कुशलता की मूल कुशलता है, पर तुम जो उस प्रभु के पुजारी तथा प्रेमी कहलाते हो, तुमने कहा है कि इस तपे को उठाकर दूर करेंगे, वह तुम्हारा सन्देश वाला नहीं। उठाकर दूर करोगे, कहाँ? इस गाँव से एवं कर्तारपुर से, अथवा पंजाब की धरती से अथवा हिन्दुस्तान से, अथवा धरती के तख्ते से, अथवा प्रभु स्वामी की गोदी में से? यह तुम बता दो।

शेख लज्जा के कारण पसीने हो गया, फिर दुर्बल मन वाली बुद्धि से सच्च से प्रतिबिम्ब में जाकर वहाँ अपनी सुरक्षा समझी और कहने लगा :–

तुम्हें यह बात किसने कही है? मैंने तो नही कही? भला सन्तों फकीरों का अपमान मैं कर सकता हूँ? जिसने आपसे कहा है, झूठ कहा है।

उबारा भी पास खड़ा सुन रहा था, क्रोधित होकर कहने लगा :–

उबारा–वाह वाह पीर जी! सच्च के ठेकेदार तथा इस्लाम के दावेदार जी! मैंने समझा था कि तुम्हें क़ेवल कोई खेद है, पर यहाँ तो सच्च भी छिपा हुआ है। वाह वाह! पीर सलामत! आपने इस तुच्छ के सामने यह वाक्य भी कहे और इससे अधिक भी कहे। सामने आओ¨सच्च कहो¨सच्च खाता तो नहीं।

गुरू जी–उबारे खाँ।

पीर–उबारा, तू चेला है, मेरी तेरी कोई समानता नहीं, अलग रहो और चुप रहो, मैं जानूँ और मेरा तपा। हम पीर फकीर सन्त साधु हैं, अपने आप ही फैसला कर लेंगे, तू चेला है चुप रह।

उबारा–सच्च से तीन तलाक ले चुके पीर साहब! अपमान के वाक्य मत उच्चारण करो। यह आप हैं, मैं चरणों का दास हूँ, अब यहाँ ही मेरा डेरा है।

गुरू जी–उबारे खाँ! कड़वे वाक्य मुँह से नहीं निकालने चाहिए, सत्कार को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

पीर–(उबारे की ओर पीठ फेरकर और गुरू जी की ओर देखकर)–हाँ जी, गुरू जी, गुरू नानक जी! आप अपना पता तो बताइए, आप हिन्दू हैं कि मुसलमान? दोनों में से कौन बड़ा है।

गुरू जी–न कोई हिन्दू है न मुसलमान, यदि है तो दोनों छोटे हैं, दोनों में सच्च बड़ा है। जिसके पल्ले सच्च है, तो वही हिन्दू है, वही मुसलमान है। सच्च के बिना दोनों रोने वाली स्त्रियाँ हैं। (कुछ समय चुप रहकर) सच्च–सच्च बोलना है, सच्च–सच्च की धारणा है, सच्च–सच्च सुनकर प्रसन्न होना है। सच्च अन्दर आत्मा में प्रभु का निवास सच्च है। सच्च-स्मृति, निरन्तर स्मृति में बसना सच्च का मार्ग है। सच्च औषधि है जो पाप को धोकर निकाल देती है। सच्च वह अदेशी व्यक्ति है जो सारे प्रसार का मूल तथा स्वामी है। सच्च वह सच्च है जो सारे परिवर्तन में अपरिवर्तित है[१]। इस सच्च के साथ मिलाप, इसमें लौ, इसमें अन्दर का रुख तथा झुकाव धर्म है। इस्लाम धर्म तथा हिन्दू धर्म यही है। यह नहीं तो क्या है? पाज, मुलम्मा, दिखावा जगत है। हाँ, धोका अपने आपके साथ, आपा लुटाने का 'पांवों पर कुल्हाड़ा'।

पीर–(लज्जित होकर तथा सोच में पड़कर)–तेरी दृष्टि में कोई नहीं रहा? और दोनों प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, हैं दोनों–एक कच्चा धागा है और एक पक्का।

गुरू जी–हठधर्मी पुरुष के बल हैं, मन की गाँठें हैं। धर्म वह जो प्रेम की रेखा हो, दीन (धर्म) वह जो प्यार की रेखा हो। ईर्ष्या शैतानी का गुण है। शत्रुता आसुरी गुण है। दोनों ईश्वर के देश में अस्वीकार हैं, नामन्जूर हैं।

---

१. सच ता परु जाणीऐ आ रिदै सचा होइ।।
कूड़ की मलु उतरै तन करे हछा धोइ।।
सचु ता परु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु।।
नाऊ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु।।
सचु ता परु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीऊ।।
धरति काइआ साधिकै विचि देइ करता बीऊ।।
सचु ता परु जाणीऐ जा सिख सची लेइ।।
दइआ जाणै जीऊ की किछु पुंन दानु करेइ।।
सच ता परु जाणीऐ जा आतम तीरथ करे निवासु।।
सतिगुरू नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु।।
सच सभना होइ दारू पाप कढै धोइ।।
नानकु बखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ।। [वार आसा म: १]

पीर–क्या मूर्तिपूजा बुरी नहीं?

गुरू जी–है, पर नफस (मन) की पूजा बहुत ही बुरी है। यदि पुण्य की बात है तो वह सच्च की पूजा है।

पीर–फिर हिन्दू मुसलमान न रहें, यही निर्णय हुआ न, कोई न रहे?

गुरू जी–सहर्ष रहें, यदि सच्च पास हो तो। सच्च से हाथ हटाकर दोनों न रहें तो शायद धरती का बोझ कम हो जाए।

पीर–आप क्या हैं?

गुरू जी–देख लो, सामने खड़े हैं।

पीर (बात पलटकर)–भला बताओ तो मूर्तिपूजक मुश्रिक ईश्वर का सत्कार नहीं करते, क्या उनके साथ भी घृणा नहीं करनी चाहिए?

गुरू जी–किसी भी रोगी से घृणा नहीं करनी चाहिए। पीर जी! नाम के बिना जगत रोगी है, सच्च के बिना मलिन है। चिकित्सा है–प्यार, दया। जो-जो गुण वाहिगुरू से पृथक करता है, चाहे वह मूर्तिपूजा है, चाहे मन की पूजा, सभी बुरे हैं, सभी बुरे हैं। पर जो-जो भी रोगी हैं, जो-जो भी रोग उसे हैं, वह घृणा के योग्य नहीं, दया के योग्य हैं। पाप बुरा है, पर पापी दया के योग्य है। अत: पीरों, फकीरों को सब पर दया करनी चाहिए। वैद्य बनकर औषधि देनी चाहिए, रोगियों के साथ घृणा, वैद्यों, हकीमों की शोभा नहीं देती। वैद्य रोगियों से घृणा नहीं करता, रोगियों पर दया करता है। शत्रुता को प्यार द्वारा जीतो। नफस की पूजा, मूर्तिपूजा को प्रभु पूजा के उच्च आदर्श द्वारा जीतो, प्यार की सुशिक्षा द्वारा जीतो। डंडे तथा घृणा का वैद्यों के घर में क्या काम?

पीर (कोमल आवाज़ में)–तो पता चला कि आप मूर्तिपूजक नहीं, 'ईश्वरपूजक' प्रतीत होते हैं; तो मेरा आपसे कोई झगड़ा नहीं।

गुरू जी–हमारी किसी के साथ शत्रुता नहीं, उस मिलाने वाले ने हमें संयोग करा देने वाला हाथ बनाया है। आज्ञा मिली है कि संयोग करा दो, वियोग मत कराओ, संयोग कराओ; वियोग मत कराओ।

पीर (नैन खिसिआकर)–ईर्ष्या क्यों रह जाती है, ईर्ष्या की औषधि क्या है?

गुरू जी–जिज्ञासु की तपस्या में कमी रह जाए तो कच्चे अगुआ की संगति में ईश्वर का मार्ग सीखे तो ईर्ष्या का रोग अन्दर रह जाता है। जैसे कच्चा वैद्य ऊपर के घाव को तो मिला देता है, पर अन्दर खोट रह जाता है, फिर वह नासूर बनकर फटता है और सदैव बहता ही रहता है, सदैव दुख देता है। इसकी औषधि 'नाम' है, प्रभु का स्मरण एवं ध्यान है, प्रभु के प्रेम का दर्शन है, सच्च को धारण करना है। नाम जपने से माया की काई–मन का मैल दूर होता है, सच्च पर खड़े हो जाने से सभी अवगुण तथा खोट छूट जाते हैं।

पीर–सच्च को देखकर भी, समझकर भी, फिर मन क्यों हठ धारण करता है?

गुरू जी–अपने जीवन की नींव हरेक के बाल्यकाल से ही झूठ पर ही डाली है। दिखावा, दिखावा, दिखावा; दिखावे के लिए झूठ, असत्य सब कुछ उचित है। जब ही मनुष्य इस कीचड़ की दीवार से पाँव उठाने का साहस करते तो सत्य पर आकर खड़ा हो जाए, ईश्वर उसकी सहायता करता है।

यह कहकर सतगुरू जी ने एक अद्‌भूत दृष्टि से पीर की ओर देखा। जैसे ही उसके नैन झुके, कड़क क़ी आवाज़ होकर पीर के कलेजे को कुछ हुआ, पाज का परदा, झूठ के प्यार का कपाट टूटा, बेबस होकर चरणों पर गिरा :-

"हमारे पापों के लिए क्षमा कीजिए, आप तो हिन्दू नहीं हैं, मूर्तिपूजक भी नहीं, आप तपा भी नहीं, आम फकीर, नबी, वली (अवतार) नहीं, आप सचमुच उच्च, उच्च से उच्च हैं, जो उबारा ने कहा था, वे सब कुछ सच्च है। मुझे झूठे मान ने ठग लिया था, इससे 'मेरी रक्षा कीजिए' मैं आपकी शरण में हूँ।"

उबारा–धन्यवाद है, पीर जी तुम उठाकर दूर करना चाहते थे, 'लामकाँ'[1] और 'मकीं कुल' को, अब देखो, आप असत्य के मकान से उठकर दूर हो रहे हैं कि नहीं? धन्यवाद है, (गुरू जी की ओर देखकर) वाह वाह, तेरी दया।

गुरू जी (उबारे की ओर देखकर)–उबारा भैया! चुभने वाले शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। (फिर पीर की ओर देखकर) पीर जी! तगड़े होवो। देखो नाम को पक्का करके पकड़ो, नाम अनजाने ही छूट जाता है। सभी कमियों का मूल यही है। अल्ला के नाम से एक श्वास भी असावधान मत हुआ करो, श्वास-श्वास उसका नाम जपो; श्वास-श्वास की असावधानी को देखो, सदैव प्रभु के नाम से न्योछावर होवो, रोम-रोम न्योछावर करो; भूल न हो, चूक न हो। मैल तो इसी ईश्वर के नाम से घुलेगा, यही निर्मल करेगा, यही आकर सच्च की औषधि लगायेगा, यही नीरोग करेगा। अल्ला की हुजूरी में यों सदैव निवास हो जाएगा।

पीर–आपने सत्य कहा है। क्या है संसार और क्या है इसके छल। सच्च तथा सच्चे नाम के बिना सब कुछ तुच्छ है।

अब्दुल रहमान की नम्रता और गुरू जी की उस पर अनुकम्पा को देखकर उसके अनुयायी तथा चेले भी सतगुरू जी के चरणों में झुके। तब:

श्री गुरु भनयो :–खुदाइ जि प्यारे,
खौफ खुदाइ सु उर महिं धारे।
कबहिं ग़ाफली भूल न करि हैं,
निसदिन उर में डर की धरि हैं।
सिमरन प्रेम भगति मैं राते,
उचिता पाइ नीच ह्वै जाते। [गुरू नानक प्रकाश]

इस तरह प्रसन्न होकर, तरकर, फकीरी में पड़ गई कमी को दूर करके, गुरू नानक का भँवरा होकर अब्दुल रहमान अनुयायियों सहित प्रणाम करता-करता विदा हुआ।

यह पीर भी साधक था, पर मानी था। इसकी कमी सतगुरू जी ने दूर की। हरेक धर्म के मनुष्य को, जहाँ भी वह किसी कमी में था, वहाँ से उसे ठीक करके सतगुरू जी उसे प्रेम के घर में बसा देते थे।

---

१. जिसका कोई टिकाना न हो और सभी स्थानों पर निवास करता हो।

: ६ :

यह सायंकाल का समय था, उबारे खाँ ने एक हिलोर खाया, फिर आज्ञा को देखा, पर मन का उमड़ता हुआ प्रेम रह न सका, पर न ही रह सका। मन को रोकते-रोकते विनती मुँह से निकल ही गई: 'हे ला मकां के मकीं! हे सभी मकानों के स्वामी! यदि आपकी अनुकम्पा हो तो आपका घर पास ही है। हे निकट तथा दूर के मलिक! हे हृदयों के स्वामी! हे रात दिन के स्वामी! आपकी दया हो जाए, रात्रि को विश्राम इस गरीब के गृह में हो जाए।' सतगुरू जी सुनकर मुस्कराये, फिर हँसे और आकाश की ओर देखकर कहने लगे, 'धन्य कर्तार, धन्य कर्तार, धन्य तेरे रंग, वाह वाह रंग, तू साहिब, तू साहिब, मैं तेरी आज्ञानुसार स्वाँग धारण करने वाला', 'तू साहिब हऊ सांगी तेरा।' कौन फकीर, कैसा वेष, कौन पीर, कौन अवतार, एक तू, एक तू''तू साहिब हउ तेरा सांगी, तेरा प्रणवै नानकु जाति कैसी' यह कहकर एक थर्राहट भरे स्वर में गायन करने लगे।

'पिआरे सदड़ा सुणीजै
तेरा सदड़ा सुणीजै
भाई जे को बहै अलाइ॥'

धीमे स्वर में गाते-गाते चलते गये और उबारे के घर में आ गये।

ज़बीदा खानम रंग में रांती हुई-पति के प्रभु स्मरण में मस्त नैनों के रंग में रांती- मार्ग देख रही थी कि उसका, प्रभु के नाम की मस्ती मे झूमता-झूमता पति कब संदेश लेकर आता है कि 'आप' जी के चरणों का स्पर्श उसके तिल्ले तथा रेशम के बुने निर्जीव बाफते को प्राप्त है अथवा नहीं। यों प्रतीक्षा करती हुई ज़बीदा क्या देखती है कि उसके स्वामी के स्वामी, उसके सुन्दर के सुन्दर, सौंदर्य के सौंदर्य उस बिछौने की लालसा से भेजे हुए बाफते की ओढ़नी बनाकर उसके घर में आ पहुँचे हैं। चन्द्रमा का चन्द्रमा चढ़ा है, सूर्यों का सूर्य, सैकड़ों हज़ारों चन्द्र के प्रकाश को घोर अन्धकार देखकर प्रकाश प्रदान करने वाला सौंदर्य का चन्द्र। हाँ, चढ़ा है चन्द्र! हाँ उसके आँगन में आ गया है चन्द्र का चन्द्र।

वह पति के दर्शन तथा पति प्यार के स्पर्श से जीवित हो उठी नेक देवी, नाम जपने वाली देवी, जिसके अधरों पर अब स्मृति की मुस्कराहट ने डेरा डाल रखा था, जिसके हृदय में नाम का रस भर रहा था, जिसका सिर प्यारे के अस्तित्व के मान से मस्ती में रहता था, हाँ उस प्रतीक्षा करने वाली देवी के नैनों की गोदी में बिना माँगे ही दर्शन का दान आ पड़ा। चरणों पर गिरी, सलाम से आगे और कुछ न सीखे हाथ चरणों पर जा लगे। स्पर्श करते ही आत्मरस की झन्नाहट छिड़ी, आपे से निमग्नता हो गई, खो गई। हाँ रस में खो चुकी है, आपे में खो गई है, पर वैसे खोई नहीं, किसी अन्य चेतना के देश में वास्तविक अस्तित्व का दृश्य देख रही है और उस विदेश के रंग में डूब रही है। हाँ, सतगुरू जी ने सीस उठाया। बाहर दर्शन है, पर सिर में कैसी उज्जवलता है? सूर्य चन्द्र मलिन दिखाई पड़ते हैं, सचमुच अंदर की उज्जवलता सूर्य चन्द्र को मलिन दिखा रही है।[१]

१. जैसा कबीर जी का वाक्य है:-
'रवि मैला मैला है चंद।' [भैरऊ कबीर]

ज़बीदा को क्या पता था कि यह दशा बिना मांगे ही हो जायेगी; वह तो अपनी तुच्छ भेंट के संबंध में सुख संदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। यदि उसके अन्दर मन की उदासी का कोई तरंग गुज़रता था तो अब्दुल रहमान की धृष्टता की सुनी हुई बात का। वह चाहती थी कि शोक। वह कभी भी इस बात को मत सुनती, पर उसके भाग्य जाग उठे: देखो अब उसके कानों में समाचार पड़ा है कि पीर जी भी पीरी की अन्दर की कमी से मुक्त होकर सच्चे शिष्यत्व की स्थस्थता में आकर 'आप' जी की अनुकंपा के पात्र हो गये हैं और उनका उद्धार हो गया है। हाँ, पीर जी अब उनका उद्धार करेंगे जो उनके अनुयायी हैं और जिनमें अभी कमी है। खानम की प्रसन्नता की सीमा न रही, न्योछावर हो रही थी। धीरे-धीरे धरती पर पड़ रहे बर्फ के 'रुई के से गोलों' की भाँति पैर रखती है, काम-काज करती है, 'आप जी' के लिये सुख के सभी साधन करती है। सोचती है कि आज हम गरीबों के घर में 'आप' जी अतिथि बने हैं, संचार का पोषण करने वाले दाता जी आज उनके घर में आये हैं। उनको अपनी सेवा का मान प्रदान करने आए हैं। इच्छा रहित जी इस तरह आये हैं, जैसे किसी सेवा की कोई इच्छा है, नहीं, सभी सेवाओं से बेपरवाह सेवा का मान प्रदान करने आये हैं।

एक रात के लिये विश्राम करने के लिये आये थे, पर दम्पती के प्रेम ने आपको दो दिनों के लिये रख लिया। देखो जी। आज आप जन्म के मुसलमान अथवा पठान के अतिथि हैं। सतगुरू जी ने आप कहा है:-

सरब जोति तेरी पसरि रही॥
जह जह देखा तह नरहरी॥

वे कहकर फिर करके दिखाने वाले, कर्म तथा व्यवहार के शूरवीर, जाति, जन्म, कुल, मत, सब में और सबसे बाहर एक नाम के ग्राहक, एक प्रेम की लालसा रखने वाले, एक सत्य की कदर करने वाले और सभी दानों के दाता, व्यवहार करके बता रहे हैं कि नाम में जीवित हो उठों का प्रेम उनका प्रेम है और उनके हृदय में किसी के लिये कोई भिन्नता नहीं। जो गुरू नानक की गोदी में आया, नाम जपकर जीवित हुआ, वह मानो गुरू रूपी डाली के साथ पैवंद हो गया, गुरू वाहिगुरू के साथ लगा है, अत: वह यहाँ वाहिगरू रूपी वृक्ष के साथ लगकर उसकी सजीव हरी-हरी शाखा बनकर झूला।

हाँ, दाता जी इन जीवित हो उठे लोगों के घर में दो दिन रहे, नाम में रांते हुओं को सौभाग्यवान किया। मालो अपने मित्र के घर में आया जिसे मालो के स्वामी का पता बताया था, जिस मालो ने प्यारे के द्वार पर भेजा था, उस अपने मित्र उबारे के घर में प्रियतम जी के दर्शन का वह दृश्य था जो मालो को प्रफुल्लित कर गया, मालो की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा। यही आत्मिक प्यार है। प्रसन्न होना, प्रसन्न करना, प्रेमियों के सुखों से सुखी होना, प्रेमियों के रस से रस प्राप्त करना।

स्वामी जी उमरा खाँ के घर में दो दिन रहे, तिल्ले के तारों का बाफता पवित्र हुआ। अब श्री गुरू जी ने बाफता सिरोपाव के रूप में उस सौभाग्यवान दम्पती को प्रदान किया। फिर कर्तारपुर गये मीठी-मीठी पवन की भाँति:-

द्वै दिऊसन लौ रहे सदन तिह,
जागे मसतक भाग बड़े जिह,
पुन करतार पुरे चलि आये,
जिन हंकारी पैरीं पाए। [गुरू नानक प्रकाश]

सूचनाः—कर्तारपुर में हुए कुछ एक प्रसंग निम्नलिखत है:—

❑ ❑

८७ श्री सीहां उप्पल

: १ :

कीआ खेलु बड मेलु तमासा वाहिगुरू तेरी सभ रचना।।
तू जलि थलि गगनि पयालि पूर रहया अंम्रित ते मीठे जा के बचना।।
मानहि ब्रहमादिक रुद्रादिक काल का कालु निरंजन जचना।।
गुर प्रसादि पाईअै परमारथु सतसंगति सेती मनु खचना।।
कीआ खेलु बड मेलु तमासा वाहगुरू तेरी सभ रचना।।३।।१३।।४२।।

दोनों हाथ जोड़ लीजिए; नैन मूँद लीजिए एक क्षण के लिये मन में से सभी सोच विचार धकेलकर बाहर निकाल दीजिये। सतगुरू सच्चे पातशाह गुरू नानक देव जी के चरण कमलों में ध्यान लगाइए और प्यार सहित देखकर, धन्यवाद में कहिये:– "धन्य श्री गुरू नानक देव जी"। फिर कहिये, "धन्य गुरू नानक देव जी" और फिर कहिये "धन्य श्री गुरू नानक देव जी"।। जितने समय चित स्वाद सहित कहता जाये उतने समय कहते रहिये[१] और अपने सतगुरू जी के साथ अपने मन के संयोग का रस लेते रहिये। जब मन उठे तो सोचो कि तुम आज से सैकड़ों वर्ष पीछे चले गये हो। देखो धन्य श्री गुरू नानक देव जी कर्तारपुर में ज्योति जगाये बैठे हैं, आसा दी वार की वाणी के कीर्तन की समाप्ति हुई है, कड़ाह प्रसाद बट चुका है, प्रेमी सज्जन विदा हो रहे हैं और अपने-अपने स्थानों पर जा रहे हैं; जो सज्जन रात्रि को नये आये थे, वे गुरू जी के चरण कमलों में उपस्थित हो रहे हैं, अपनी कामनाएँ कर रहे हैं और उनको पूरा करवा रहे हैं। जब बहुत से लोग यों विदा हो गये तो दो सुन्दर खत्री युवक, जो चाचा ताऊ के बेटे भाई थे, आँखें झुकाये उपस्थित हुए। चरणों पर सीस रखकर उठाते ही नहीं। सुन्दर सलोने, नैनों वाला किसी अदेशी रंग में रांते हुए नैनों वाला गुरू नानक कृपादृष्टि डालता है, मीठे-मीठे वाक्यों से कहता है– (हाँ, तुम भी सुनो, प्यार सहित सुनो, गुरू बाबा कहता है) कर्तार भली करे', दोनों युवक चरणों पर सिर रखे हुए सुन रहे हैं और रस में आ रहे हैं। कुछ समय तक सिर नहीं उठाते तो कृपालु हाथ, सुन्दर कमल की भाँति कोमल हाथ, कृपा की सुगंधि से सुगंधित हाथ, दोनों के सिरों पर अपना स्पर्श लगाते हैं; हाँ उन सुखदाई हाथों ने सिर उठाकर कहा–कर्तार तुम्हारा भला करे, सावधान हो जाओ।

दोनों सिर उठ रहे हैं, दाता का दयालु दर्शन प्राप्त हो रहा है; फिर सीस झुक रहे हैं। अदेशी दया वाला, पूछता है 'कहो भाई तुम कौन हो और क्या चाहते हो?' दोनों में से बड़े ने हाथ जोड़कर कहा: 'दाता गुरू! दोनों चाचे ताऊ के पुत्र आपस में भाई हैं, आपके दर्शन

१. गुरू नानक जपि जपि सद जीवा।।४।। [भैरऊ मः ५]

की लालसा थी, आज कृपा हुई है। हे कृपालु गुरू! भिक्षा माँगने के लिये आये हैं, आपके द्वार पर खड़े हैं, भिक्षा मिल जाये। दाता जी! मेरा नाम सीहां है और इसका नाम गज्जन है, हम दोनों 'उप्पल' जाति के खत्रीय हैं, पर काहे की जाति और काहे का नाम, हम लोभी और भिखारी हैं'।

श्री गुरू जी मुस्कराये और पूछने लगे:–'अपना लोभ और अपनी माँग तो बताओ?' तब सीहां कहने लगा:–

"चतुर पदारथ देहु प्रभु जन्म मरन कट फास"। [श्री गुरू नानक प्रकाश]

धर्म भी दीजिए, पदार्थ भी दीजिए, मनोकामना भी पूर्ण कीजिए, मुक्ति भी प्रदान कीजिए।

शान्ति रस के सरोवर, पर हास्यरस के भी आश्रय श्री गुरू जी मुस्कराये और कहने लगे: 'भाई तुम लोभी तो खूब हो, एक ही माँग में चारों बातें माँग ली हैं, वाह वाह! सुनो, कर्तार तुम्हारा भला करे। जो कुछ मिलता है, वह कर्मानुसार मिलता है, जैसा किसी ने किया वैसा फल प्राप्त किया है, पर कर्म अटल नहीं, हम ही इसके कर्त्ता हैं, हम ही इसका फल भोगते हैं। जो कुछ हमने किया है उसे पलटना फेरना भी हमारे वश में है, पर है कठिन। हाथों से लगाई हुई गाँठें खुलती तो हैं, पर दाँतों द्वारा। अन्यथा कर्म तो बलवान है ही, सभी इसके अधीन हैं।

सीहां–दाता! हम तो आपकी दया के याचक हैं, रेखायें तो खिंच चुकी हैं और हमारे किये हुये कर्मों अनुसार खींची जा चुकी हैं। पण्डित बुद्धिमान सभी कहते हैं कि यह रेखायें मिटेंगी नहीं, एक, हे दाता! तू ही निराशा में आशा बाँधने वाला है, जो कहता है कि कर्मों की रेखाएँ मिट सकती हैं, पर कठिनाई से। पर दाता जी! हम दुर्बल हैं, तू ही कोई मेख मार, जिससे रेखाएं मिट जायें और मनवांछित फल मिले।

श्री गुरू जी–यद्रि मेरे मेख मारने से एक बार रेखायें मिट भी गईं तो तुम्हारे स्वभाव फिर वही रेखायें डालने लगेंगे। मनोवाँछित यदि मिल भी गया तो स्वभाव उस मिले हुए को उसी पर मन के रसों में लगायेगा। हाथी के हाथ पाँव मुक्त कर दिये जायें और उसे खुला जल मिल जाये तो स्नान करके स्वच्छ हो जायेगा, पर फिर मिट्टी ही उड़ायेगा। इस पर एक दृष्टान्त है, सुनो:–एक बार एक एकान्तवासी तपस्वी एक नगर में आया, एक दुखी कंगाल पर दया करके उसने उसे स्वस्थ किया, वरदान देकर उसे पदार्थ वाला भी कर दिया, पर देखिए, वह मनुष्य उन ही कुकर्मों में, उन ही भोगों में मग्न हो गया, जिनके कारण वह पहले रोगी कंगाल तथा दुखी हुआ था। उस तपस्वी को आश्चर्य हुआ कि उसने इस दुखी रोगी को स्वस्थ किया था, उस रोगी को चाहिये तो यह था कि वह धन्यवाद करता जिन कर्मों के बुरे फलों से वह परिचित था, जिनसे वह दुख पर रहा था, उन कर्मों में फिर न पड़ता। यह क्या हुआ कि दुख पा के भी वह फिर उन ही कुकर्मों में लग गया? सो हे सीहां! गुज्जन! भाई! तुम ही बताओ कि उस तपस्वी ने क्या भूल की थी?

दोनों बोले–दाता! आप दया कीजिये, हमारी समझ में तो उसका उपकार ही बनता है, भूल तो नहीं लगती।

श्री गुरू जी—भाई! उस दुखी का स्वभाव ही वैसा ही था, वह स्वस्थ होकर और क्या करता? वही तो करता जो कुछ उसका स्वभाव था। तपस्वी को चाहिये था कि उसके स्वभाव को ठीक करने का उपाय बताता; तब उस दुखी को उसके कर्म में स्वाभाविकता प्राप्त होती, जब स्वभाव संवरता तो फिर उस कर्म में न पड़ता[1]। तुम्हें पता है कि स्वभाव कैसे बनता है? एक ही कर्म को बार-बार करने से उस कर्म के करने का स्वभाव बन जाता है। स्वभाव फिर दुखों का दाता बन जाता है। फिर बुरे कर्मों का फल 'दुख' आता है। दुखों के बोझ के नीचे दबा हुआ जीव कुछ ठीक ढंग से चलता है। यदि दुख दूर हो जाये और स्वभाव न बदले तो फिर स्वभाव के अनुसार कुकर्म करता है। यदि स्वभाव बदल जाये तो 'देवस्वभाव' कर लेने से स्वस्थ होकर उन कर्मों से बचकर सुखी होता है। अतः हम तुम्हें वह कुछ देना चाहते हैं जिससे तुम्हारा स्वभाव भी पलट जाये और जिस के पीछे-पीछे सारे पदार्थ फिरते हों। स्वभाव बदलने पर तुम पदार्थों का उचित प्रयोग करोगे और फिर बुरे काम करके दोबारा दुखों के जाल में नहीं फँसोगे।

सीहां—पातशाह! हम दुर्बल हैं, आप ही कोई कृपा कीजिये।

श्री गुरू जी ने यह सुनकर तो उत्तर दिया वह इस प्रकार था[2]:—

वह वस्तु 'नाम' है। तुम सत्संग किया करो और 'वाहिगुरू' का नाम जपा करो। यह जाप स्मरण बन जायेगा, स्मरण तुम्हारे मन के आगे जिसका वह नाम हैं उस 'नामी' की स्मृति बनाये रखेगा। अतः पहले इससे स्वभाव बदलना आरम्भ होगा। वह यों कि अंदर से बुरे संकल्प कम होंगे, वह इस तरह कम होंगे कि जब तुम्हें हर समय परमेश्वर याद रहेगा जो बुरे संकल्प अंदर से अपने आप कम होते-होत दूर हो जायेंगे। सबसे अच्छा वाहिगुरू है, उस अच्छे की स्मृति में अच्छाई भरेगी और बुराई से हटायेगी। फिर तुम प्रतीत करोगे कि वाहिगुरू तुम्हें याद है, वह तुम्हारे साथ है, वह हमारे मन तथा कर्मों को देखता है[3], यों तुम प्रतीत करते-करते इस प्रतीत में आ जाओगे कि तुम उसकी हुजूरी में बसते हो। जैसे तुम मेरे सामने मेरी हुजूरी में बुरा कर्म नहीं करोगे, वैसे ही तुम ईश्वर की हुजूरी की प्रतीत में आकर फिर कर्म करते समय कुकर्मों में रुक जाया करोगे। तुम्हारा अन्तः करण कुकर्म करते समय आवाज़ लगायेगा कि भाई तुझे कर्तार देखता है, तू हुजूरी में निवास करता है, तुझे कुकर्म नहीं करना चाहिये। यों तुम्हारा स्वभाव सुधरता जायेगा। यह तुम जानते ही हो कि सभी गुणों का समूह कर्तार है, उसका चिंतन हमारे अन्तःकरण को उसके गुणों का स्पर्श लगाकर स्वच्छ कर देगा[4]।

सीहां गज्जन! भाई, मनुष्य जो कुछ सोचता रहे वही कुछ बन जाता है। जो कुछ तुम सोचते तथा विचारते रहोगे, उसी का रूप हो जाओगे। चोर रात दिन 'चोरी करने' का

---

१. श्री गुरू ग्रंथ साहिब में लिखा है:—
खर का पैखरु तऊ छुटै जऊ ऊपरि लादा।। [बिलावल मः १]
२. आगामी लिखित में जो भाव हैं वे गुरूवाणी का सार है और सुगम करके सविस्तार लिखे गये हैं, जिससे जिज्ञासुओं को पता चल जाये।
३. जो किछु करी सु तेरै हदूरि।। [सिरी राग मः १]
४. अनदिनु सूचे हरि गुण संगा।। [आसा मः १]

संकल्प सोचता है, वह चोर हो जाता है। इसी तरह जो सभी गुणों के स्वरूप महान स्वच्छ निर्मल प्यार पुंज कर्तार के चिंतन में रहेगा उसमें कर्तार के गुणों का निवास हो जायेगा। आठों पहर कर्तार के विचार में रहने वाला कर्तार की भाँति शुभ गुणों वाला हो जाता है। यों करते हुए, इस तरह मन पलटने से स्वभाव पलट जायेगा[१]। जब स्वभाव पलट जाता है तो कर्म अपने आप पलट जाते हैं। जब कर्तार के चिंतन[२] से स्वभाव तथा कर्म पलट गये तब धर्म अपने आप मिल गया। कुकर्मों का बदलना और बुरे स्वभाव का पलटना धर्म ही तो है; यों मुक्ति भी मिल गई; क्योंकि जो निर्भय को भजता है, वह स्वयं निर्भय हो जाता है। जो सदैव मुक्त वाहिगुरू का स्मरण करता है वह मुक्त हो जाता है[३]। फिर भाई जिसको धर्म मिल जाता और मोक्ष दीख पड़ता है उसकी तृष्णा दूर हो जाती है; जिसकी तृष्णा दूर हो गई, उसे कामनाएँ दुख नहीं देतीं और पदार्थों की आवश्यकता और इच्छाएँ व्याकुल नहीं करतीं। इस तरह के पुरुष जो कुछ भी कर्तार उन्हें देता है, उसी में सुखी रहते हैं, अर्थात् संतोष रूपी धन उन्हें कभी कोई कमी नहीं रहने देता। इस प्रकार अन्र्तात्मा में अर्थ अथवा कामना की प्राप्ति हो जाती है। अर्थात् तृष्णा रहित हो जाता है और जो कुछ धर्म की कमाई द्वारा प्राप्त होता है उसमें प्रसन्न रहता है। दूसरा व्यवहार इस ओर चलने से यह दिखाई पड़ता है कि जो तृष्णा से भागता है, धन उसके पीछे-पीछे फिरता है, अत: धन नाम वालों के पीछे-पीछे फिरता है। यह निश्चय जान लीजिए, गरीबी अमीरी अलग बात है, पर नाम जपने वाला पुरुष कभी भी धन का अभाव नहीं देखता, उसकी हानि अथवा लाभ की रक्षा करने वाला कर्तार आप ही होता है। कर्तार की इच्छा होती है तो असीम धनवान बना देता है, यदि उसकी इच्छा होती है तो सीमा में रखता है, पर कभी-कभी नहीं दिखाता, धन तो क्या ऋद्धि-सिद्धि भी नाम रस के पीछे-पीछे हैं[४]।

सीहां—पातशाह! नाम आपने आज्ञा की है "वाहिगुरू" जपना है, कुछ समझकर कि वैसे ही?

गुरू जी—जिसे यह पद दिखाता है उसका ख्याल अंदर लेकर उसके गुणों का, उसके आकार का स्वरूप भाव लेकर जपना है। एक पद होता है एक उसका अर्थ अथवा लक्ष्य होता है अत: कोई पद जिसे जतला दे, वह लक्ष्य है। उसमें ध्यान लगाकर नाम जपा जाता है। जैसे वाहिगुरू अगंम परमेश्वर का नाम है। जब हम जपेंगे तो वाहिगुरू पद का यह भाव ख्याल में आ बसेगा। क्योंकि नाम कोई निर्जीव नहीं जपता, प्राणधारी जब कोई नाम लेता है तो उसके अन्दर भाव निवास करता है, अन्दर में सुरत समझ है जो चेतना वाली है।

---

१. लागी मैलु मिटै सच नाइ।। [आसा म: १]
२. करम धरम सचु साचा नाऊ।। [आसा म: १]
३. महला ।।१।। हऊ मुआ मैं मारिआ पऊणु वहै दरीआऊ।
तृसना थकी नानका जा मनु रता नाइ।।
लोइण रते लोइणी कंनी सुरति समाइ।।
जीभ रसाइणि चूनड़ी रती लाल लवाइ।।
अन्दरु मुसकि झकोलिआ कीमति कही न जाइ।।२।।[मारू वार म: ३]
४. जिनि इहु चाखिआ राम रसाइणु तिन की संगति खोजु भइआ।।
रिधि सिधि बुधि गिआनु गुरू ते पाइआ मुकति पदारथु सरणि पइआ।। [रामकली म: १]

यह नाम तो परमेश्वर का निज नाम है[१]। अत: जपने से मन के आगे नामी का ध्यान जुड़ेगा। वाहिगुरू का वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह मन वाणी से दूर है, पर जब स्मरण से उसके समीप जायें तो स्वाद आता है और यदि कोई क्षण रस मगनता का आता है तो मानो उस क्षण मन नहीं रहता, या यों समझो कि मन उस रस में लीन होता है। जब मन फिर से काम करने लग जाता है तो उस समय मन को इस बात का पता तो कुछ नहीं होता कि क्या घटा था, क्योंकि मन तो उस रस की डुबकी में था, आगे नहीं गया था। पर उस रस में से आत्मा के परिवर्तित होने पर जो रस का प्रतिबिंब मन पर पड़ता है, मन उस समय वाह-वाह के भाव में उठता है और रसना वाह-वाह उच्चारण करती है, वह अवस्था हमारी आत्मा तथा परमात्मा से भेंट की होती है, जीव तत्व परम तत्व से मिलता है। जब उस स्पर्श का क्षण समाप्त होता है और मन दोबारा चेतनता पकड़ता है तो उसमें प्रतीति होती है, सुख की जागृति, उच्चता और लघुता की तथा किसी रस भाव की, तब बेबस की वाह-वाह! कह देते हैं, जहाँ पर हमारा मन तथा वाणी नहीं पहुँच पाये थे, वह 'वाह' थी। उस वाह से सारा जगत उत्पन्न हुआ है, वह सबको जानता है, देखता है, उसे कोई नहीं देखता तथा जानता, क्योंकि वह आश्चर्यमय है। वह फिर आश्चर्यमय हमारे मन के लिये आश्चर्यमय नहीं। वह मन के द्वन्द्वों के अधीन होने वाला आश्चर्य नहीं है, वह तो प्रकाश स्वरूप है। यह है 'वाह' का भाव, गुरू का अर्थ है जहाँ अज्ञान, जड़ता आदि सभी अन्धकार दूर हो जायें। वाहिगुरू है: शुद्ध प्रकाश स्वरूप आश्चर्यपूर्ण वाह-वाह! अत: जब कर्तार को याद करें, उसके गुणों के स्वरूप का ख्याल करें तो वह योनी रहित है और अकाल है, पर वह 'सत्य' है, साकार है उसका अस्तित्व है और फिर वह सम्पूर्ण नेकी है, निर्गुण होता हुआ भी सारे गुणों का निधान है, फिर वह सभी गुणों से ऊपर भी है; निर्गुण भी है; अत: उसका स्वरूप का है—अस्तित्वपूर्ण, प्रकाश पुंज इसलिये वाहिगुरू सबसे श्रेष्ठ नाम है और वास्तविक अगंम स्वरूप तक ले जाता है, अगंम का पता देने वाला होकर ईश्वर के द्वार पर पहुँचा देने वाला असली, पहिले से भी पहिला सच्चा नाम है—वाहिगुरू[२]। इस नाम का जाप करने से नाम आरम्भ करते ही हिलोर मिलती है, 'वाह' कहो तो चित्त उत्साह में आता है। यह उच्चारण वृत्ति को हिलोर देकर जिसका नाम है, उसमें ले जाता है। जपने वाला उल्लास में, प्रसन्नता में तथा प्रकाश के भाव में निवास करता है, फिर यह आरम्भ से ही परमेश्वर का, जो सबसे ऊपर है और रूप रेखा से पृथक है अगंम तथा अगाध है, उसकी ओर ध्रुवा बाँध देता है। अभ्यास करते-करते जहाँ मन तथा वाणी समाप्त हो जाते हैं, वहाँ जिज्ञासु को जो प्राप्ति होती है, उसके संबंध में गुरूवाणी आवाज़ देती है तो 'वाह', तथा जो उस अगंमी रस में से पलटकर

---

१. वेद कतेब अगोचरा वाहिगुरू गुरू सबद सुणाया।
पुन: भाई गुरुदास जी बताते हैं कि वाहिगुरू नाम गुरू नानक जी ने बताया है,
वाहिगुरू गुरुमन्त्र है जप हऊमै खोई। [भाई गुरुदास]

२. वाहिगुरू पद के सविस्तार अर्थ समझने के लिये श्री गुरू नानक प्रकाश पृष्ठ ९५ देखिए, जो खालसा समाचार, अमृतसर के कार्यालय से प्राप्त किया जा सकता है।

मन वाणी कुछ कर सकती है तो 'वाह'। अतः भाई यह नाम जपो; जो जपते-जपते मन ऊँचा हो जिसके अर्थ भाव में मन का ऊँचा होना, उन्नत मन होना विद्यमान है। जिसके अर्थ भाव में प्रकाश ही प्रकाश का मन पर प्रभाव पड़े और जिसे तुम समझो कि उसका नाम है जो कर्तार है, पालन पोषण करने वाला है, अनुग्रह करने वाला है और सबसे बड़ा है। अतः भाई! यदि तुम इस नाम का जाप करोगे तो जाप स्मरण हो जायेगा। स्मरण किसका होगा? अकाल पुरुष (ईश्वर) का। इस तरह के स्मरण का क्या फल होगा? कर्तार जो मन वाणी से दूर है, जो आश्चर्य से आश्चर्य है, जो प्रकाश स्वरूप है, जो फिर सभी गुणों का सागर है, तुम्हारे मन को अपने गुणों के साथ, आश्चर्य तथा प्रकाश स्वरूप निगुर्णता के भाव से भर जायेगा[१]। उसे चिंतन करने से उसके गुणों के रूप वाले हो जाओगे। किसी अन्धकार में नहीं, शुद्ध प्रकाश में। यों तुम दैवी रंग वाले होकर मुक्ति प्राप्त करोगे[२]। अब अर्थ तथा कामनाएँ इस तरह मिलेंगे कि सबका दाता तुम्हारा मित्र बनकर तुम्हें कभी कोई कमी नहीं होने देगा[३], जो प्रभु की शरण में आये हैं, जगत एवं जगत के पदार्थ उनके पीछे फिरते हैं[४]।

सीहें और गज्जन को समझ आ गई कि उनकी माँग अन्धकार वाली थी। उन्होंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष माँगने के लिये बेकार ही कहा था, पर वे इन्हें लेकर भी क्या करते? अर्थ की प्राप्ति तथा मनोकामना के पूरे हो जाने का वरदान उन्हें अपने स्वभावानुसार ऐसे कर्मों में डाल देता कि फिर न तो उनसे धर्म ही हो सकता और न ही उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकती थी। अब दाता ने ऐसे मार्ग पर चलाया है कि सभी दुखों का मूल जो उनका स्वभाव है उसे बदल दे और अपने हठ से केवल स्वभाव को बदलना ही उन्हें नहीं बताया, अपितु उस मार्ग पर चला दिया है कि उनकी पशुवृत्ति, उनका मनुष्य स्वभाव, वाहिगुरू के समीप होकर अपने आप ही देव स्वभाव हो जाये। फिर उनकी अर्थ तथा कामना की इच्छा ही समाप्त हो जाये। वे इस आवश्यकता की इच्छा से रहित होकर सच्चे शाह बन जायेंगे। फिर केवल गुरू जी ने उन्हें यहाँ ही स्थिर नहीं किया, बल्कि परमेश्वर जी के इस विरद का आँचल भी पकड़ा दिया है कि वह प्रेमियों के, नाम जपने वालों के कार्य आप सँवारता है, उन्हें कोई कमी नहीं आने देता, भक्तों का कहा मानता है और विराद का पालन करता है।

गज्जन कहने लगा:-भैया! बहुत पदार्थ प्राप्त करके मनुष्य को अपने आप ही अहंकार चढ़ता है, कौन है जो इस प्रभाव से बचता है, फिर न जाने मनुष्य उस समय क्या कर बैठे। शूरवीर गुरू ने हमें कैसे सुन्दर मार्ग पर चलाया है, हम प्रभु के समीप रहें, उसके स्मरण में आयें, स्मरण में हुजूरी में निवास ही जायेगा। हुजूरी की प्राप्ति होने का स्वाद

१. गुरू अर्जुन देव जी का कथन है:-
हलतु पलतु होहि दोवै सुहेले अचरज पुरखु धिआऊ।। [रामकली म: ५]
महा मंत्र गुर हिरदै बसिओ अचरज नाम सुणिओ री।। [आसा म: ५]
२. जीवन मुकतु मनि नामु वसाए।। [आसा म: १ असटपदीआ]
३. जब लगु साहिबु मनि वसै तब लग विघनु न होइ।। [मारू म: १]
४. कूड़ छोड़ि साचे कऊ धावहु।।
जो इछहु सोई फलु पावहु।। [मारू सो: म: १]

आयेगा। सीहें ने कहा: ठीक है भाई, यदि अग्नि के निकट जायें तो गर्मी मिलती है, यदि दूर जायें तो जाड़ा लगता है, अत: ठीक है, यदि हम प्रभु की हुजूरी में निवास करेंगे तो धर्म अपने आप हमारे पास रहेगा, क्योंकि जब हुजूरी में निवास करेंगे तब न तो बुरा सोचेंगे और न बुरा करेंगे। यों जब हुजुरी में निवास करने से धर्म हमारे पास रहा तो मुक्ति का मार्ग भी तै होता जाएगा। शेष रहा मोक्ष का सुख, अत: रात दिन जब ईश्वर की हुज़ूरी में बसेंगे तो यही मोक्ष का सुख होगा। प्रभु के साथ हर समय रहना, इससे अधिक और क्या सुख हो सकता है? जब हम हुजूरी में नाम द्वारा निवास करेंगे तो फिर वह आप ही विरद का पालन करने वाला है, हमें अपने आप खीच करके हुज़ूरी में रखेगा। जब हमारे तथा उसके बीच में दूरी नहीं पड़ेगी तो दूरी का समाप्त हो जाना ही तो मोक्ष हुई और दूरी के हटने से जो भेंट हो गई, वही मोक्ष का रस है, वही सुख है वही प्रयोजन है। ठीक है। धन्य है गुरू! धन्य है गुरू!

श्री गुरू जी तो उपदेश देकर चल पड़े हैं, पर यह देखिए, उसी स्वाद में मग्न आपे में धन्य-धन्य कर रहे हैं और न्योछावर हो रहे हैं और सिक्ख मत का पाठ आपस में पढ़ रहे हैं और प्रसन्न हो-होकर कर रहे हैं कि उन्होंने स्वर्ण माँगा था और उन्हें स्वर्ण का खान प्राप्त हो गया है, जल का कटोरा माँगा था और मिल गया जल का स्रोत। धन्य गुरू नानक, कह रहे हैं, नमस्कार कर रहे हैं। जहाँ बाबा बैठा था, वहाँ हाथ लगा-लगाकर माथे को छूते हैं और कहते हैं, 'धन्य गुरू नानक'। पाठक जी! आपने भी यह सतगुरू और सतगुरू के सिक्खों का दर्शन देखा है। पाठक जी! कहो 'धन्य गुरू नानक'। शूरवीर गुरू ने सीहां तथा गज्जन को जो स्वर्ण का खान प्रदान किया, आपको भी प्रदान करता है, आप भी उससे लिपट जाइए।

"चतुर पदारथ नाम अधीना।
सिमरन करहु होइ दुख छीना"॥ [श्री गुरू नानक प्रकाश]

: २ :

दोनों भाई कुछ दिन कर्तारपुर में रहकर नाम जप का अभ्यास करते रहे; फिर अपने ठिकाने पर चले गये। अब उन्होंने अपना नित्य कर्म यों आरम्भ किया—अमृत वेले उठकर गुरू जी की वाणी का कीर्तन करना। वाणी अभी एकत्र करके एक ग्रन्थ के रूप में नहीं लाई गई थी, पर दोनों व्यक्ति कर्तारपुर रहकर, गुरू के कुछ शब्द लिखकर साथ लाये थे, अत: चार पाँच शब्दों का कीर्तन करके फिर नाम का अभ्यास करते, दिन चढ़े फिर वाणी का पाठ करते। पहले आप कीर्तन इसलिये करते कि वहाँ उनके स्थान पर 'आसा दी वार' नामक वाणी के कीर्तन का अभी कोई पक्का प्रबंध नहीं चला था। कीर्तन द्वारा मन शीघ्रता से एकाग्र होता है, अत: वह कीर्तन किया करते। फिर जब मन का झुकाव कीर्तन द्वारा सुख वाला हो जाता तो नाम जपते, जब दिन चढ़ता तो देखते कि मन कोमल हो रहा है। फिर 'चड़े दिवस गुरवाणी' का पाठ करते, कुछ विचार भी करते कि मन दिन के धन्धों के लिये तनिक सा तगड़ा हो जाये और यों जैसे आपा ऊँचा-ऊँचा और सुन्दर-सुन्दर है। इस उच्चता के भाव में यदि अभ्यासी व्यवहार में चला जाये तो मन पर जगत का मैल कम लगता है।

इस तरह से तैयार होकर फिर कुछ खा पीकर अपने धन्धे में लग जाते। धन्धे में इस तरह लगते कि जिस समय दुकान पर कोई ग्राहक आ जाता उसे माल दे देते और रुपये ले लेते। जब वह चला जाता तो फिर नाम में लग जाते। यदि फिर ग्राहक आता तो वाणिज्य कर लेते और जब चला जाता तो नाम में लग जाते। यों करते-करते उनका बैठते, उठते, श्वास लेते नाम जपने का अभ्यास हो गया। पर सहज भाव में ही कोई हठ नहीं था, कोई ज़ोर नहीं था। अब इस अभ्यास का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया। पहले तो प्रभाव यह पड़ा कि उनका व्यवसाय शुद्ध हो गया, सौदेबाज़ी पर समय व्यर्थ व्यतीत करने की आदत कम होती-होती कम हो गई, यों लगता कि लोगों के साथ मगजपच्ची में समय व्यर्थ जा रहा है। आजीवका तो प्रभु देगा ही अपने झूठ, असत्य तथा झगड़े का क्या लाभ है? अत: धीरे-धीरे यहाँ पर पहुँच गये कि हरेक वस्तु का एक दाम निश्चित कर दिया, लाभ कम कर लिया। बस एक ही बात करनी, न अपनी मगज़पच्ची हो और न ग्राहक की। पहले तो ग्राहक कम हो गये थे, लोग नई बात को बुरा समझने लगे थे, पर फिर समझ आने लगी कि यहाँ से वस्तु उचित दामों पर सस्ती मिलती है और मगज़पच्ची भी नहीं होती। यों कठिनाई का कुछ समय पार होकर विश्वास बन गया और व्यवसाय शुद्ध हो गया। लाभ कम था, पर बिक्री बढ़ गई और इस तरह कमी भी पूरी हो गई। उधर परमार्थ का एक पड़ाव पूरा हो गया और झूठ से भी मुक्ति हो गई। अब मन और शुद्ध होने लगा तथा बुद्धि और उज्जवल होने लगी[१], मन हल्का सा रहने लगा और इस स्वाद की कदर भी होने लगी। अब जब झूठ ही न रहा तो छल कपट भी दूर हो गये[२]।

वास्तव में बात यह है कि अभ्यासी को नाम पहले सच्च में ले जाता है और सत्य के बारे में श्री गुरू जी ने बताया है:-'सच सभना होइ दारू पाप कढै धोइ' और सभी रूचियाँ जो जीव को कुकर्मों की ओर, पापों की ओर ले जाती हैं, उन्हें सच्च स्वच्छ कर देता है। जब सच्च का प्रभाव यह होता है कि वह सभी पापों को निकाल देता है तो यह सबसे बड़ा शुभ आचरण है जो उच्च जीवन के जिज्ञासु को धारण करना चाहिये। इसीलिये दाता जी ने उच्चारण किया था:-"सचहु औरै सभु को ऊपरि सचु आचारु"।। और सभी आचार सच्च से निम्न हैं, सभी आचार का सिरोमणि आचार सच्च है, पर सच्च कैसे आता है? नाम अभ्यास द्वारा, वाणी के विचार द्वारा, सत्संग द्वारा। जो लोग कहते हैं कि वे नाम जपते हैं, कण्ठ में माला भी डाल रखी है और साथ झूठ के प्रेमी भी हों तो समझ लीजिये कि या तो वे जपते ही नहीं वैसे बातें करते हैं, अथवा अभी नाम इन्हें लगा ही नहीं, अभी इनके मन पर मैल के बड़े कोट हैं।

---

१. भरीऐ मति पाप कै संगि।।
ओहु धोपै नावै कै रंगि।। [जपुजी]

२. इस प्रकरण में इन महा वाक्यों का भाव आ रहा है-
'सत संतोखि रहहु जन भाई।।
खिमा गहहु सतिगुर सरणाई।।
आतमु चीनि परातमु चीनहु गुर संगति इहु निसतारा हे।। [मारू सोलहे म: १]

कई बुद्धिमान कहते हैं कि पहले आचरण शुद्ध करो फिर नाम जपो। वे सत्य कहते हैं, पाप करते रहना, धृष्ट बनते जाना और नाम का रटन करते रहना कोई शोभा वाली बात नहीं। पर एक विचार श्री गुरू नानक देव जी ने प्रदान किया है; सच्चे जिज्ञासु के लिये उसे समझ लेना भी आवश्यक है; वह यह है कि नाम रंग भी है और साबुन भी है। इसका प्रभाव इस तरह से समझ में आता है कि एक हमारा मन है और एक हमारी बुद्धि है। यदि मन मलिन हुआ है तो बुद्धि उसे धो लेती है, पर जब हमारा मन इतना मलिन हो कि बुद्धि का रुख ही पापमय हो जाये, तो कठिनाई बढ़ जाती है, क्योंकि बुद्धि तो मन को बल देती है और सीधे मार्ग पर चलाती है, पर जब बुद्धि ही पापों से भर जाये तो क्या करे? तो दाता जी ने कहा है, जैसे साधारण मैल पानी से उतर जाता है, पर वस्त्रों की लगा कठोर मैल साबुन से ही उतरता है, वैसे ही बुद्धि में से पापों का मैल नाम द्वारा उतरता है[१]। साधारण मैल तो पानी से उतर जाता है, सख्त मैल साबुन द्वारा उतरता है। वैसे साधारण मैल मति के विचार द्वारा कुछ उतर सकता है, पर बुद्धि का मैल तो नाम ही उतारता है। मैल उतार कर नाम ही मन तथा बुद्धि को ईश्वरीय रंग चढ़ाता है[२]। जब नाम द्वारा झूठ का मैल उतरता है तो वहाँ पर सच आ जाता है। नाम द्वारा ही सत्य आता है। सत्य द्वारा निर्मल होता है, फिर नाम द्वारा ही मन प्रभु के साथ जुड़ता है, नाम द्वारा ही परमपद प्राप्त होता है, अतः नाम ही मैल उतारता है, नाम ही रंग रस प्रदान करता है।

नामे राते हउमै जाइ।।
नामि रते सचि रहे समाइ।।
नामि रते जोग जुगति बीचारु।।
नामि रते पावहि मोख दुआरु।।
नामि रते त्रिभवण सोझी होइ।।
नानक नामि रते सदा सुख होइ।।३४।। [सिद्ध गोष्ट]

अर्थात् जब मैल उतरा, भीतर 'है' का भाव टिक गया, मन एकाग्र हो गया तो प्रभु के साथ जुड़ गया और मोक्ष प्राप्त हो गई। फिर उस बुद्धि का स्वामी बन गया जो परमेश्वर को लखती है या कहिये कि दिव्य दृष्टि हो गई। इस तरह नाम सभी काम सँवारता है, पर नाम का उपासक जब पहली अवस्था में है; अर्थात् जब बुद्धि में से मैल धो रहा है तो मलिन मन से ही नाम जपता है जो मैल को काटता है। उसमें तथा पापों के कारण कठोर हुए मनुष्य मे यह अंतर है कि कठोर पुरुष पाप करता है और प्रसन्न होता है और ज्यादा करता है और कह देता है, कोई डर नहीं। नाम का अभ्यास करने वाला पुरुष वाणी के विचार तथा सत्संग के उत्तम आदर्श पर चलता है, जब वह मलिन बुद्धि की प्रेरणा द्वारा भूलकर

---

१. भरीऐ मति पापा कै संगि।।
ओहु धोपै नावै कै रंगि।।

२. श्री गुरू अर्जुन देव जी का कथन है:–'प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ।'
साथ ही बताते हैं कि जब मैल उतर गया, नाम फिर अंमृत के भाँति रसदाता हो जाता है, अतः दूसरी तुक में बताते हैं:–'अमृत नाम रिद माहि समाइ'।।

बैठता है तो उदास होता है और झट ही प्रण करता है कि फिर से ऐसा नहीं करेगा। दूसरी ओर प्रार्थना करता है कि हे वाहिगुरू! मुझ में बल भर जिससे मेरा फिर से पतन न हो। तीसरी ओर सत्संग का भय मानता है, गुरुमुख के पक्ष से डरता है कि इस तरह के काम करके मैं सत्संग में किस मुँह से जाऊँगा। चौथे जो नाम जपा जाता है वह साथ ही साथ मन से मैल को काटता जाता है[१], जिसके कारण प्रतिदिन मन की पापों वाली रुचि दुर्बल होती जाती है और वहाँ पर झूठ, असत्य, छल तथा कपट के स्थान को सच्च तथा वास्तविकता लेते जाते हैं[२]। सच्च जो नाम द्वारा अन्दर प्रवेश करता है वह पहले अपने आपको झूठ न कहने में प्रकट करता है। मन झूठ कहने के संकोच करने लग जाता है, फिर मन सच्च के कथन में आ जाता है, फिर सच्च 'कथन' से आगे भीतर में प्रवेश करता है, अभ्यासी पुरुष का हृदय सच्चा हो जाता है, 'सचु तां परु जाणीअै जा रिंदै सचा होइ।। कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ'।। जब हृदय सच्चा हो गया तो सच्च के साथ प्यार हो जाता है। "सचु ता परु जाणीअै जा सचि धरे दिआरु"।। फिर आत्मा में सच्च तजुर्बे में आता है। वह कैसे? कि नाम अंदर 'है' का भाव दृढ़ कराता है। हाँ, नाम के अभ्यास वाले को नाम का यह फल मिलता है कि एक 'है' अर्थात् अन्दर 'सत्य' की प्रतीत हो जाती है, जिसे दाता जी ने यों बताया है:–

"नाऊ सुणि मनु रहसीअै ता पाए मोख दुआरु।।
सचु ता परु जाणीअै जा जुगति जाणै जीऊ।।
धरति काइआ साधि कै विचि देइ करता बीऊ"।।

इस तरह आत्मा में जब नाम स्थिर हो जायेगा, जीव की परमात्मा के साथ संयोग की दशा उत्पन्न हो जायेगी और मन में सुख उत्पन्न होगा, फिर उसे बाहरी क्या सौभाग्य प्राप्त होगा? वह यह कि गुरू जी मति उत्तम लगेगी और उसके कर्म सच्च वाले होंगे और वे कर्म अपने आपको सुन्दर व्यवहार में प्रकट करेंगे; जिस तरह कि वाक्य है 'सचु ता परु जाणीअै जा सिख सची लेइ।। दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ'।। अर्थात् सच्च का प्रभाव मन को निर्मल करके टिकाव में रखकर उसके कर्मों में दया का निवास करा देगा। सबसे अंत में सच्च का प्रभाव आत्मा में निवास है–'सचु ता परु जाणीअै जा आतम तीरथि करे निवासु'। आत्मा रूपी तीर्थ पर निवास करना ही सच्च है। अब देखिए, 'आत्म वस्तु' की प्राप्ति का नाम सच्च हो गया। असत्य कहने की रक्षा से चलकर आत्मा रूपी तीर्थ के निवास तक सारा सच्च है। अंत में सतगुरू ने परमात्मा का स्वरूप भी सच्च ही कहा है[३]।

---

१. "मनु मेरो गजु जिहवा मेरी काती।।
मपि मपि काटऊ जम की फासी।।" [आसा श्री नामदेव जी]

२. अनदिनु सूचे हरि गुण संगा।। [आसा म: १]

३. आदि सचु जुगादि सचु।।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।। [जपुजी]
पुन: सतिगुरि मिलिअै सचु पाइआ।। [वार आसा म: १]

अत: नाम का प्रभाव है पहले बुद्धि को पापों से रहित करके उज्जवल करना और फिर उसे नामी में ले जाना और नाम के काम करने का अर्थात अंदर प्रभाव डालने का ढंग ऊपर बताया है। कई अनजान लोग नाम के बारे में कहते हैं कि बार-बार नाम को रटने का क्या लाभ? वे तो नाम को केवल रटन ही समझते हैं। 'नाम' रटन से लेकर प्रभु तक पहुँचने तक सारा अंदर आत्मा में उच्च जीवन की प्राप्ति का नाम है और बाहर के उच्च व्यवहार का कर्म में आना है, अर्थात अन्दर उच्च जीवन की प्रतीति, अनुभव और बाहर उच्च जीवन के कर्म। पहले तो रटन ही है, सभी विद्वानों ने रटन द्वारा ही विद्या प्राप्त की है। रटन द्वारा रटे जाने वाले पद्यों का मन पर प्रभाव पड़ता है और अन्त:करण को सींचता है, क्योंकि रटने वाला तो मनुष्य ही होता है, मृतक मशीन नहीं होता कि उस पर प्रभाव ही न पड़े। मन वाला, बुद्धि वाला जब रटता है तो रटन का भाव मन पर स्वत: ही पड़ता है, उसे उपदेश मिलता है, कि यह नाम किसका है और इसे क्यों जपना चाहिये? अत: वह समझकर, अंदर इस प्रयोजन को लेकर नाम जपता है, उसे सत्संग की ओर से आज्ञा होती है कि विचार को भागने से रोकना है और जिसका नाम ले रहे हैं, मन को मोड़-मोड़ कर उसकी ओर लगाना है। अत: यह रटन मन की विचार शक्ति को दूसरी ओर से रोकता है और अपने आप से जोड़ता रहता है। यों रटन कहो या जप कहो, वह 'स्मरण' हो जाता है। अर्थात् नाम स्मृति में प्रवेश कर जाता है। फिर 'प्रभु है' यह भाव हमारी स्मृति में प्रवेश कर जाता है। स्मरण का अर्थ है 'याद' पर 'स्मरण' का अर्थ प्यार वाली स्मृति है, क्योंकि इस पद के धातु 'स्मृ' के अर्थ हैं प्यार करना और याद करना। प्यार तथा स्मृति का आपस का बड़ा निकट का संबंध है। प्यारे का प्यार सदैव हमारे अंदर 'स्मृति' का रूप लेकर निवास करता है। प्यार करने वाला वह है जो अधिक से अधिक प्रियतम की स्मृति में निवास करता है। इस तरह जब सत्कार का, उच्चता का भाव लेकर गुणों के समूह का भाव अंदर रखकर उसका स्मरण किया जाता है तब वह प्यार ही तो होता है। अत: स्मरण करने से जीव प्यार में प्रवेश करता है। यों स्मरण करते समय नाम पहले नामी के 'है' भाव में ले जाता है, फिर प्रेम भाव में ले जाता है[१]। देखिए, विचार कीजिए हरेक कह देता है 'ईश्वर है', पर यह 'है' कथन मात्र ही है। पर नामी पुरुष के अंदर 'ईश्वर है' यह भाव लगातार दृढ़ हो जाता है और फिर इसमें उसे राग या प्रेम हो जाता है। राग अथवा प्रेम ही प्राणियों को मिलाता है। यों नाम नामी से मिला देता है। नाम रटन से चलकर नामी के मिलाप तक नाम ही ले जाता है[२]। फिर जगत कहता हुआ सुना जाता है कि प्रत्येक क्षण प्रभु--चिंतन की फँासी कौन गले में डाल ले। पर विचार कर देखो कि चिंतन की फँासी तो प्रतिक्षण सब के गले में पड़ी हुई है, कौन है जो प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ चिंतन नहीं कर रहा? यहाँ तक कि निद्रा में भी चिंतन से मुक्ति नहीं मिलती। इसी लिये श्री गुरू नानक देव जी ने कहा है, 'चिंतन ही दीसै सभु कोइ' अर्थात् चिंतन में तो प्रत्येक व्यक्ति है,

---

१. बिनु नामु प्रीति पिआरु नाही वसहि साचि सुहेलीआ।। [ग: पू: छंत म: १]

२. नानक नामु न छोडै सा धन नामि सहजि समाणीआ।। [गऊड़ी म: १ छंत]
पहले नामु का अर्थ वाहिगरू नाम है और दूसरे 'नामि' का अर्थ 'श्री अकाल पुरुष जी है'।

पर देखिए, हरेक दुखी है, क्योंकि प्रत्येक चिंतन में है। हरेक का चिंतन कैसा है? वह अनेक का चिंतन है और उस चिंतन से मन की रगड़ हर्ष, शोक, दुख, सुख, ईर्ष्या, वाद स्वार्थ, वैर, भय आदि भावों से होती है, अर्थात् मन निम्न एवं साधारण स्वार्थ वाले भावों से रगड़ खाता है, इसलिये सुखी नहीं होता, अत: सतगुरू जी ने कहा है "चेतहि एकु तही सुखु होइ"।। अर्थात यदि एक वाहिगुरू का चिंतन करे तो सुखी हो जायेगा, क्योंकि एक वाहिगुरू सुख रूप है, वह रस स्वरूप है, वह प्रेम स्वरूप है, वह दाता है, पालक है, सदैव स्थिर है, सदैव मुक्त है, सदैव आनन्द है। जब इस तरह के शुभ 'एक' का चिंतन करेगा तो अंदर से इन भावों से मन की रगड़ होगी। मैल के साथ रगड़ लगने से मैल लगता है, रंग के साथ रगड़ खाने से रंग चढ़ता है। अत: साधारण मन 'एक चिंतन' द्वारा शुभ गुणों, शुभ भावों, शुभ स्वरूप वाहिगुरू के साथ संयोग करके, सुख का स्पर्श ले लेकर सुख स्वरूप हो जायेगा, इसीलिए दाता जी ने कहा है–'चेतहि एकु तही सुख होइ'। यह सुख स्वरूपता फिर मुक्ति तक ले जायेगी। अत: इस तुक के आगे दाता जी ने कहा है:–'चिति वसै राचै हरि नाइ।। मुकति भइआ पति सिऊ घरि जाइ'। अर्थात् इस सौभाग्यवान 'एक' का 'एक चिंतन' कैसे अंदर निवास करे? यदि यह बात पूछिए तो बताते हैं कि हरि के नाम के जपने से। इस वाहिगुरू नाम के अंदर निवास करने से एक चिंतन प्राप्त होकर सुख स्वरूप बनकर फिर क्या होगा? मुक्ति हो जायेगी और अपने घर सम्मान सहित[१] जायेगा। अत: यह वस्तु है नाम, इसकी महमा, इसकी विद्या सभी श्री गुरू ग्रन्थ साहब में है और तुक-तुक में बताया है।

: ३ :

यह था नाम जो सीहें गज्जन ने जपा था। पहले उनका व्यवसाय शुद्ध हो गया, मन निर्मल हो गया, फिर अंदर 'है' का भाव कि "वाहिगुरू है" बँध गया, अब इस अस्तित्व में भरोसा, श्रद्धा तथा प्यार चक्कर लगाने लगा। इस रंग में रहते हैं, वाणी का पाठ, विचार तथा कीर्तन करते हैं। कभी-कभी जाकर दाता जी के दर्शन तथा सत्संग कर आते हैं। अब 'परमेश्वर के अस्तित्व तथा प्यार का भाव' जो उनके मन में बस गया था, उनके व्यवहार में प्रवेश करने लगा है। स्वभाव में क्षमा तथा दान आ गये हैं, अतिथि अभ्यागत को दान देते हैं, संक्रांति अमावस्या को कड़ाह प्रसाद तैयार करते हैं। सिक्खों का आदर सत्कार करते हैं और उन्हें भोजन कराते हैं। दान देकर प्रसन्न होते हैं। यह वास्तविक जीवन का प्यार आ गया। पर अब एक अंदर में जागृत हुई ज्योति की परीक्षा का तनिक कठिन समय आ गया। वह समय आया कि सीहें की बेटी का विवाह आ गया। बरात के लिय मट्ठरी, मिठाई,

१. इस कथन में इन तुकों का भाव अर्थ आया है–
चिंतत ही दीसै सभु कोइ।।
चेतहि एकु तही सुखु होइ।।
चिति वसै राचै हरि नाइ।।
मुकति भइआ पति सिऊ घरि जाइ।।२३।। [रामकली म: १ दखणी ओअंकार]

प्रत्येक प्रकार के भोजन तैयार किये जा रहे थे, दूसरे दिन बरात को आना था कि इतने में गुरू के सिक्खों की एक टोली आ गई। यह श्री गुरू जी के दर्शनों के लिये कर्तारपुर जा रही थी। संख्या में यह काफी थे। सिक्खों में सीहें की महमा फैली हुई थी, अत: अपना घर समझकर यह सारे सिक्ख सीहें के घर में आ पहुँचे। सीहें के मन में गुरू के सिक्खों के दर्शन करके चाव उत्पन्न हुआ, उसने समझा कि बहुत अच्छा हुआ। सत्संग का अवसर आ गया है, रात को कीर्तन होगा और सवेरे आसा दी वार का कीर्तन होगा, उसने सप्रेम उनका डेरा करवाया। सीहें ने सभी सिक्खों की जल पानी द्वारा सेवा की, रात को विश्राम का पूरा प्रबंध किया जब भोजन का समय आया तो बरात के लिये तैयार किये पकवान में से ही गुरू के सिक्खों के आगे भोजन परोस दिया। मन के मिलाप वाले, सतगुरू के प्यारे, नाम तथा वाणी के रंग में रांते गुरू के सिक्ख सीहें के घर में यदि पकवान खायें तो सीहें को इससे अधिक और क्या प्रसन्नता हो सकती थी? कल को क्या होगा? बरात के लिये इतनी शीघ्रता से मिठाई कहाँ से आयेगी? इज्ज़त रहेगी अथवा जायेगी? यह बातें सीहें के हृदय में हलचल नहीं डाल रही थीं, वह सुखी था, अंदर से किसी जागृत ज्योति सर्व व्यापक अस्तित्व से पिरोया हुआ था। 'हैं' का भाव अब जीवित शक्ति बन गया था अब उसमें कमी नहीं थी। 'वाहिगुरू है, प्यारा है, उसके प्यारे उसके बच्चे हैं', यह भाव सीहें के अंदर था। हमारा जीव संशयों से मलिन होता है[१]। सीहें ने संशयों को धोकर निकाल दिया था[२] वह विश्वास के घर में था, विश्वास तथा तत्त्व ज्ञान साथ ही साथ बसते हैं। विश्वास तत्त्व ज्ञान का डण्डा है[३], विश्वास आया तो ज्ञान आया।

सीहें ने सिक्खों को बहुत प्यार सहित भोजन कराया, संगत में गुरू को देखा[४], गुरू को भोजन कराया। चाव रंग रस बंधा रहा। जब मुक्त होकर अंदर पत्नी के पास गया तो वह कहने लगी: "स्वामी जी! बरात का पकवान सिक्खों को खिला दिया, वह तो शुभ हुआ, पर कल को बरात आ रही है, उस समय क्या करेंगे"? तब सीहें को पहली बार संशय हुआ, पर वह अपरिचित सा स्पर्श देकर चला गया और उच्च तथा प्रभु के रंग में रांते सीहें के वाहिगुरू के अस्तित्व प्यार सहित भर रहे मन में से आवाज़ निकली:–

न रिजकु दसत आ कसे॥ हमारा एकु आस वसे॥
असति एकु दिगर कुई।
एक तुई एक तुई॥ [वार माझ म: १]

---

१. सहसै जीऊ मलीन है।

२. तीसरे गुरू जी का वाक्य है:–
मंनु धोवहु सबद लागहु हरि सिऊ रहहु चितु लाइ॥
कहै नानकु गुर परसादी सहजु ऊपजै इह सहसा इव जाइ॥ [रामकली म: ३]

३. गुरू अर्जुन देव जी का वाक्य है:–
जाकै रिदै विसवास प्रभु आइआ॥
तत गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ॥ [सुखमनी]

४. गुर मूरति सतिगुर सबद 'साध संगति' समसरि परवाना॥ [वार भाई गुरुदास]

हाँ सीहें ने दो तीन बार यही तुक पढ़ी और निश्चिंत होकर सो गया और दो पहर रात्रि व्यतीत हो गई। तीन पहर बजने पर उठा। हो रहे कीर्तन में, अपने भजन में, एक चिंतन में लीन हो गया। दिन चढ़ा। सीहां उठा और विवाह कार्य में लग गया। पत्नी ने फिर चेतावनी दी: 'स्वामी जी! क्या बनेगा?' सीहां मुस्कराया और कहने लगा:–

"सतिगुर आस धरो मन माँहीं।
अपर विचार करो को नाहीं।
राखहिंगे प्रभु पैज हमारी।
दास जान है हैं हितकारी॥" [श्री गुरू नानक प्रकाश]

जब फिर पत्नी ने किसी समय संशय किया तो सीहें ने उत्तर दिया "हमारी पैज बाबा रखेगा"। [भगत रत्नावली]

जब बरात आई तो पकवान वाले कोठे के सामने जाकर सीहें ने प्रार्थना की:–'हे गुरू बाबा! तू सिक्खों का है और सिक्ख तेरे हैं, तेरा ही प्रसार सब जगह ओत-प्रोत है। बरात आई है, अपने सिक्ख की पैज रखो, सिक्खों की पैज, मेरे सुन्दर सतगुरू नानक! तेरी पैज है, अपनी पैज के आप ही रक्षक बनो। दाता! सिक्ख भूलने वाला है, तू क्षमा करने वाला है, आप ही अपने विरद को संभालो!' इस तरह से प्यार भरी प्रार्थना की, द्वार खुला, गज्जन से कहा–हे गुरू के सिक्ख! अंदर बैठ जा और गुरू के खजाने में से देता चल। बरात की पंक्ति लग गई:–परोसने वाले परोसने लगे, बाँटने वाले बाँटने लगे। बरात तृप्त हो गई। सीहें के भण्डार में टोटा न आया। उस समय की रीति अनुसार बरात पाँच दिन ठहरी। पाँचों दिन ही बरात तृप्त होती रही, दहेज भी खूब दिया, सुख सहित, प्रसन्नता सहित बिटिया को डोली में डालकर विदा किया। जिन लोगों को पता था कि सीहें ने क्या कुछ किया था, वह चकित थे, घर की पत्नी भी चकित थी, पर जब पैज रह गई सब कुछ निवृत्त होकर बैठे और सीहें को बधाई देने लगे तो सबने अपने आपसे कहा, 'सतगुरू ने, सुन्दर सतगुरू नानक ने अपने सिक्ख की पैज आप रखी है'।

'गुरू पैज निज सिखन राखी'। [श्री गुरू नानक प्रकाश]

: ४ :

सीहां अपनी कमाई में लगा रहा। यह मन कई जन्मों से भूल में पड़ा हुआ है, इसे खूब मैल लगा है, शनैः-शनैः वह मैल उतरता है। वैसे यदि इसी जन्म को ही लें तो सभी कर्म स्वार्थ के ही किए जाते हैं। अत: मन की रुचि स्वार्थ की ओर ही रहती है। इस मन का रुख बाहर की ओर रहता है। यह आपा चाहता है, इसीलिए कई बार मन को देव रूप करने में देर लगती है। यदि हठ द्वारा मन को बुराईयों से रोक-रोककर अथवा बाँध-बाँधकर शारीरिक भोगों से हटाएँ तो मन रुष्ट और जड़ सा हो जाता है और कई बार इसके साथ शरीर भी रोगी हो जाता है। यदि खुली छुट्टी दें तो हृदय उस क्षण उछलता है, शरीर भी कुछ उछलता है, पर थोड़ी ही देर के पश्चात् बुरे परिणाम निकलने लगते हैं और कई प्रकार के रोग आकर शरीर को ग्रसते हैं और उदासी पल्ले पड़ती है। शारीरिक दुर्बलता तो

शीघ्रता से ही आ जाती है[१]। फिर पदार्थ भी हार खा जाते हैं। कई बार दुष्ट मन ऐसे कर्म कर बैठते हैं कि राज दण्ड सिर पर आ चढ़ते हैं। अत: मन को खुली छूट देने से भी सुख नहीं मिलता, बल्कि दु:खों का विशेष कारण भी यही बनता है। अब हमें उस युक्ति की खोज करनी है, जिससे मन को उच्च स्वच्छ भी कर लें और प्रसन्नता में भी रखें, इसलिए सतगुरू जी का मार्ग है:–

वाणी का विचार, नाम, सेवा तथा सत्संग।

सेवा से मन स्वच्छ होता है और किसी काम में लगता है और इसे बिना खेद के सुख लेने के स्थान पर सुख देने का स्वभाव पड़ जाता है। सुख देकर भी जी प्रसन्न होता है। यों स्वार्थ जो मन की पशु वृत्ति का वेग था, मोड़ खा जाता है और मन में दूसरों को प्रसन्न करके चाव भी बढ़ता जाता है। इस प्रकार मन प्रसन्न भी रहता है और बुरी रुचियों से हटकर ऊँची ओर भी लग जाता है। रुष्टता की ओर सहम खाकर नाराजी के बन्धन की ओर भी मन नहीं जाता। जब मन प्रसन्न रहता है, तो शरीर अपने आप ही प्रसन्न हो जाता है।

इस तरह वाणी का विचार उच्च जीवन का उपदेश देता रहा। जब-जब मन निचाई की ओर गया, तब-तब ही वाणी ने पुकार-पुकारकर कहा: "मनु तनु अविगतु धिआइआ गुर परसादी पाइआ[२]।" हे पशु नहीं। पशु वृत्ति तो तुझमें इस देह ने डाल दी है। तेरी वास्तविकता तो ज्योति है, उसमें वृत्तियों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है। तुझमें जो पशु वृत्ति है, वह असली नहीं। यह तो स्वप्नकाल वाला तेरा मन है। इसके पीछे तेरा विशुद्ध आपा है। उस आप में है 'नाश रहित तत्व'। फिर जब कोई कुकर्म होने लगेगा, तो वाणी कहेगी:– "खाणा पीणा हसणा सउणा विसर गइआ है मरणा।। खसमु विसारि खुआरी कीनी ध्रिगु जीवणु नही रहणा।। प्राणी एको नामु छिआवहु।। अपनी पति सेती घरि जावहु"।।१।। तब मन को होश आयेगा कि मेरे जीवन का प्रयोजन पशु भोग नहीं था, मैं तो किसी उच्च काम के लिए आया था। मैं इस ओर क्यों पड़ूँ। जब इस तरह के उपदेश सुनकर आपे को रोकेगा तो रोक तो उदासी पैदा करेगी, वैराग भी देगी, वैराग का प्रभाव तन को क्षीण करने वाला भी पड़ेगा, पर साथ ही दिखाई देगा कि सत्संग में लगे हुए लोग जो उससे आगे हैं प्रसन्न हैं। 'नानक भगतां सदा विगास'[३] है। तब मन में साहस भरेगा और सोचेगा कि नाम की कमाई अन्त में आनन्द के घर में ले जायेगी। यह जो सन्त जन आनन्दित है और वाणी भी बताती है कि अभ्यास का अन्त आनन्द है। अत: वह मन का मैल धोये और उच्च हो, जिससे आनन्द प्राप्त हो। यों आनन्द की आशा मन को अरुचि तथा बन्धन में कठोर नहीं

---

१. खसमु विसारि कीए रस भोग।।
ता तनि उठि खलोए रोग।। [मलार म: १]
तथा–जेते रस सरीर को तेते लगहि दुख।। [वार मलार १]

२. जैसे कि गुरू अमरदास जी ने कहा है:–
'मन तू जोति सरूप है आपणा मूल पछाणु'।। [आसा म: ३ छंत ७]

३. तीसरे गुरू अमरदास जी ने लिखा है:–
"अनंद भइआ मेरी माए सतिगुरू मै पाइआ।" [रामकली अनंद १]

होने देती, फिर अभ्यास नाम का है, नाम है वाहिगुरू। 'वाह' में चाव उल्लास है। उसकी स्तुति का उल्लास है। 'वाह' में आश्चर्य की प्रसन्नता है[१]। वह मन को अभ्यास करते-करते स्फूर्ति का प्रभाव देता है, रोगियों की भाँति मन पर मातम का प्रभाव नहीं डालता। यों मन सेवा, वाणी, सत्संग तथा नाम से देव स्वभाव भी हो जाता है, पशु स्वभाव भी छूटता है और शरीर भी मर्यादा में आकर नीरोग रहता है। पर सारी कमाई है, सुन्दर कमाई है, और समय लगता है।

: ५ :

सीहां उप्पल इस तरह परिश्रम करता रहा, सदैव उसका मैल कम होता रहा, अन्दर सुख बढ़ता गया। श्री गुरू नानक देव जी जगत को अपना सौन्दर्य लगाकर अपने ज्योति मण्डलों को चल दिये हैं। सीहां वही कुछ जगत गुरू श्री गुरू अंगद देव जी में देखता कृतज्ञ-कृतज्ञ होता रहा। खंडूर साहब दर्शनों के लिए जाता है और लाभ प्राप्त करता है। इस समय उसके घर में पुत्र पैदा हुआ, बिरादरी की रीति अनुसार उसने अपने घर में समागम किया, उस समय बकरे का माँस तथा और समागम होना था, उसकी पत्नी ने सारी तैयारी कर ली थी, पर सीहें ने गुरू की आज्ञा को सामने रखा। श्री गुरू अंगद देव जी ने आज्ञा की कि इस समय ढोंग रचने और बकरों के वध का त्याग करके बच्चे को हमारे पास लाओ, हम उसे सिक्ख बनाएँगे। सीहें ने सारे ढोंग त्याग दिए और पुत्र को गुरू के द्वार पर खंडूर साहब ले जाकर गुरू का सिक्ख बनाया[२], जैसा कि महमा प्रकाश में लिखा है– "सतिगुरू दुआर सिख को कीओ कारज होए रास"। यह दूसरी बार लोक लज्जा का समय आया, जिस पर सीहां जी विजय प्राप्त कर गए और अपने मार्ग पर चलते रहे। अनुमान है कि इन दिनों में सीहां जी ने गोइंदवाल में आकर निवास कर लिया था। गोइंदवाल नगर दूसरे गुरू जी की आज्ञानुसार तीसरे गुरू जी ने बसाया था। आज्ञा पाकर वहाँ बहुत से सिक्खों ने जा निवास किया था। अत: सीहां जी का भी वहाँ जाकर निवास करने का अनुमान होता है। सीहां जी की पत्नी तनिक सख्त स्वभाव वाली थी, पर वैसे पति के सत्संग में जाती और सेवा करती और उच्च जीवन प्राप्ति का साधन भी करती थी।

अकाल पुरुष की आज्ञा अब दूसरे सतगुरू जी को भी अपनी ज्योति में ले गई। सीहां का भरोसा तीसरे सतगुरू में भी अचल रूप से बना रहा। सीहें की भक्ति, उसकी प्रेम भक्ति तीसरे गुरू जी में भी गुरू नानक देव जी को देखती रही और वह अपने प्रेम में लगा रहा।

अब सीहें के मन में जो नाम की शक्ति तथा उच्च पद की प्राप्ति थी, उसकी परीक्षा का स्वत: ही फिर समय आ गया। गोइंदवाल में तीसरे श्री गुरू नानक देव जी के नाम का

१. श्री गुरू अर्जुन देव जी का वाक्य है:–
"हलतु पलतु होहि दोवै सुहेले अचरज पुरख धिआऊ"। [रामकली म: ५]

२. 'गुरु प्रताप सूरज' में झण्ड (मुंडन) का समागम लिखा है पर महमा प्रकाश में लिखा है कि खँडूर में गुरुद्वारे में ले जाकर सिक्ख बनाने की मर्यादा की।

वह प्रसाद बाँटा कि एक जगत का उद्धार हो गया। बाईस गद्दियाँ तो नाम के प्रचारकों को देकर देश परदेश में भेज दिया था। इनके इलावा कई अन्य माताएँ तथा मनुष्य प्रबुद्धि करके आप नाम जपने और दूसरों को जपाने के काम पर लगाये गये थे। इन्हीं दिनों में भाई प्रेमे का गुरू जी ने उद्धार किया था। यह सज्जन क्षय रोग का रोगी था और अत्यन्त दुःखी था, पर गुरू के प्रेम मे मग्न था। यह सज्जन प्रेम की किश्ती में सवार होकर नाम के परिश्रम द्वारा पार हो गया और शरीर के रोग से भी मुक्त हो गया।

आज वह दिन है कि साहब श्री गुरू अमरदास जी के दरबार में 'प्रेमा' आया बैठा है, सतगुरू जी ने स्वयं बुलाया है। इस अनुकम्पा द्वारा, नाम की कमाई द्वारा और शूरवीर सतगुरू जी की करुणा दृष्टि द्वारा गुरुमुख नीरोग हुए को सतगुरू जी ने अब गद्दी प्रदान की, कहा कि तू मुक्त हुआ है, अब तू जगत को मुक्ति प्रदान कर। इधर सतगुरू जी ने सभा में आवाज़ लगाई: "हमने इसे नीरोग करके नाम का दान प्रदान करके बोहित बना दिया है। इसका नाम 'मुरारी' रख दिया है। अब यह (कृष्णजी) मुरारी की भाँति सुन्दर हो गया है। यह जगत का उद्धार करेगा। पर हमको इसे पूरा करके जगत में भेज़ना है। कोई गुरू का प्यारा सिक्ख इसे कन्यादान दे, तो हम इसका विवाह करके दम्पति को जगत की पीड़ा दूर करने के लिए भेजें"। इस समय सीहां उप्पल बैठा था। महाराज के वाक्य सुने, मन आत्म अवस्था में पहले ही उच्च हो चुका था, अब ज़गत पीड़ा को भी अनुभव करता था कि इसे दूर करना भी नामी पुरुषों का धर्म है। सीहें को दूसरा विचार यह फुरा कि इस सिक्ख को बड़े रोग से स्वस्थ करके गुरू जी ने नीरोग किया है, इस सा सौभाग्यवान और कौन है। फिर इसे दाता ने जगत तारक बनाया है, जो इसे अपनी कन्या देगा वह अपने जीवन को सफल करेगा, जोकि एक महान नामी पुरुष के साथ में तर जायेगी और जगत का उद्धार करेगी। सीहां अब हाथ जोड़कर उठ खड़ा हुआ–'पातशाह! आपकी दी हुई विवाह योग्य कन्या दास के घर में है, मैं उसे उपस्थित करता हूँ'। यह कहकर सीहां घर चला गया, पत्नी के स्वभाव से परिचित था। चाहता था कि यह कहीं विघ्न न डाल दे, अतः उसे लंगर की सेवा में भेजकर पुत्री को साथ लेकर सभा में आ उपस्थित हुआ। श्री गुरू जी ने विवाह कार्य की जो रीति चलाई उसके अनुसार लड़की का विवाह भाई मुरारी के साथ कर दिया और दोनों को वरदान देकर मंजी (गद्दी) प्रदान की। किसी ने लंगर में जाकर सीहें की पत्नी को डराया कि तू क्या कर रही है, गुरू जी ने तो तेरी बेटी कुष्ट के रोगी प्रेमे से विवाह दी है। सीहें की पत्नी को प्रेमे का पता था, जो गुरू के द्वारे पर पड़ा रहता था और गुरू की स्तुति गाता रहता था। वह घबड़ाई, डरी, क्रोध में आई और भागकर सतगुरू जी के दरबार में गई और कहने लगी:–

इह किआ कीनसि? हे प्रभु धीर!
कुष्टी, मात पिता कुल हीन।
सुता निनावे को मुर दीन॥ [सूरज प्रकाश]

श्री गुरू जी देखकर हँसे और कहने लगे, 'बिटिआ! देख तो सही'। जब उसने देख तो प्रेमा नीरोग और स्वस्थ बैठा हुआ पाया। हैं, यह कैसे स्वस्थ हो गया? फिर भय सा

छाया कि गुरू कितना शक्तिवान है, कुष्टी को स्वस्थ कर देता है। अभी वह इस आश्चर्य के भाव में ही थी कि दयालु दाता ने वरदान देने आरम्भ कर दिये, हे बिटिया:–

जानहु मम सुत इह जो मुरारी।
ब्याहयो तनुजा संग तुमारी॥
तव तनुजा कौ नाम मथो है।
नाम मुरारी याहि कथो है॥
मथो मुरारी सिमरैं नाम।
पूरन होंइ नरन के काम॥
'मथो' नाम आगे कहिं आछे॥
नाम 'मुरारी' भाखहिं पाछे॥
नर पूजहिंगे मथो मुरारी।
चित चिंता दिहु शोक बिदारी॥
इह दोनहु हुइ हैं बड़भागे।
मेरी प्रेम भगति महिं पागे॥ [सूरज प्रकाश]

यह सुनकर उसे भी शन्ति प्राप्त हुई। आँखों से देख लिया कि प्रेमा नीरोग होकर बिल्कुल स्वस्थ मुरारी हो गया है। कानों ने सुन लिया कि सतगुरू जी ने दयादृष्टि द्वारा नाम का दान प्रदान करके उच्च कर दिया है। ठण्ड पड़ गई और प्रसन्नता सहित पति के साथ घर गई और बेटी तथा दामाद का सत्कार किया। फिर सतगुरू जी ओर से विदैगी के समय जो वरदान के वाक्य दूसरी बार कहे-सुने गये। वे यह थे:–

मथो मुरारी अब तुम जावहु।
सतिनाम उपदेश छिड़ावहु॥
गुर सिक्खी जग अधिक दृढ़ावहु।
निज गृहि बसहु सदा सुख पावहु॥
तेरो बाक फुरै जिम कहैं॥
बर कै स्राप देहिं जिस चहैं॥
तेरी भगति परी अब पूरी।
प्राप्त भई महाँ गति रूरी॥
तुझ सों मिलै सु भवजल तरै॥
है कहिबो इस ते क्या परै। [सूरज प्रकाश]

सीहें का शिष्यत्व निभ गया, पूर्ण गुरू जी के साथ तीन पीढ़ियों तक निभ गई। अन्दर आत्मा में नाम रंग में रांता परमपद को पहुँचा। बाहर जगत के व्यवहार में उसका उपकार निभ गया। दु:खी जगत में नाम की शीतलता वाले महान उपकार के कार्य में कन्या का जीवन सफल हो गया।

इससे आगे अनुमान है कि सीहें उप्पल ने चौथे गुरू के समय तक जगत यात्रा की है। जब श्री गुरू रामदास जी ने आज्ञानुसार चक रामदास (अमृतसर) बसाया और अपने रहने का ठिकाना[१] बनाकर बाज़ार का निर्माण किया, गुरू का बाज़ार और चौक पासीआं

१. इसे अब गुरू के महल कहते हैं।

(अमृतसर में) से आगे बनाया। यह बाज़ार, बाज़ार साबूनियाँ में सम्मिलित होकर आगे तक चला गया है। सीहां जी भी गुरू की आज्ञा पाकर यहाँ आकर बसे हैं। गुरू जी के इस बाज़ार में उन्होंने गली की योजना बनाकर घर बनाया। भाई सज्जन और दूसरे उप्पल सज्जन साथ ही यहाँ आकर बसे। सीहें उप्पल के निवास से गली का नाम उप्पलों वाली गली पड़ा, जो अब तक प्रसिद्ध है। इसके निकट उस समय दुग्गल सिक्खों के घर निवास से दुग्गलों वाली गली और नयड़ खत्रिय गुरू सिक्खों के निवास से नयड़ा वाली गली बसी। इन नयड़ खत्रियों के परिवार में से ही श्री परमपावन माता गुजरी (गुरू गोबिन्द सिंघ जी की माता) जी थीं।

अत: आज आपने और हमने प्यार के नैनों से, श्रद्धा से, कथा के प्रकाश से, साहब श्री गुरू नानक देव जी, दूसरे, तीसरे एवं चौथे सतगुरू जी के, उनके द्वारा मुक्त किये गए सिक्ख सीहां उप्पल और इस सिक्ख के चार गुरूओं तक सिक्खी मत में भरोसे का निर्वाह और नाम के शुभ कर्म द्वारा उच्च जीवन प्राप्त करके परमपद को पहुँचने के दर्शन किये हैं। हाँ, सीहाँ उप्पल जी! जिस तरह आप भौजल से तरे थे, जिस तरह असाध मन को जीता था, जिस तरह मन को मारकर उसका दमन करके उसे बरबाद नहीं किया था[१], पर मन को ज्योति स्वरूप करके लख लिया था और इसे परमतत्त्व के साथ मिलाकर सुख प्राप्त किया था, वैसे ही अपनी दया का कण प्रदान कीजिए और अपने गुरू की ज्योति से हम पर, सभी सिक्खों पर, नाम के याचकों, जिज्ञासुओं पर दया प्रदान करवाइए कि वे भी इस नाम की टेक लेकर मुक्त हो जाएँ और उच्च जीवन को प्राप्त हों। धन्य गुरू नानक!

ऐतिहासिक पक्ष

उपरोक्त प्रसंग श्री गुरू नानक प्रकाश, सूरज प्रकाश, महमा प्रकाश, भगत रतनावली, वारां भाई गुरुदास आदि से प्राप्त किये हैं। पर सीहें के पुत्र के उत्सव का प्रसंग सूरज प्रकाश में ठीक ढंग से नहीं दिया। वहाँ पर ऐसे लिखा है जैसे सीहां कोई अपरिचित मनुष्य था और दूसरे गुरू ने उसे सुमार्ग पर चलाया था और शिष्य बनाया था, पर भाई गुरुदास जी सीहें उप्पल का गुरू नानक द्वारा सिक्ख बनाना ही लिखते हैं और भाई मनी सिंघ जी भी पहले गुरू जी के हाथों सिक्खी प्राप्त होने का प्रसंग देते हैं और कवि सन्तोख सिंघ जी आप भी यही बात श्री गुरू नानक प्रकाश में लिख आये हैं। यहाँ महंमा प्रकाश से आपको भूल लगी है। महंमा प्रकाश वाले लेखक जी ने शायद दूसरा प्रसंग गोइंदवाल से सुना और पहली वार्ता बिना खोज किये ही लिख दी है। ज़बानी चली आ रही वार्ता प्राय: बदल जाती है और उनका दूसरा रूप सा हो जाता है। दूसरे सतगुरू जी के समय का इतना प्रसंग ही ठीक प्रतीत होता है कि बच्चे का जन्म संस्कार गुरू जी के पास जाकर सिक्ख मंडल में प्रवेश का ही किया और गुरू जी की आज्ञा से किया और लौकिक रीति नहीं की।

१. मन हठि कीचै अंति विगोवै।। [आसा म: १]

१. गीत[१]

तरसती रूह

विषम पद–

गुरू नानक महाराज!
जन्म जन्म से तरस रही की आशा पूरो आज!
पूरी आशा करने वाले आ मेरे सिरताज।
पतित पावन है विरद तुम्हारा पाल विरद की लाज।
रख मत अब विछोह में मुझको अपना ले महाराज।

❑ ❑

१. यहाँ पर लेखक के गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

८८ भाई मालो तथा मांगा

"आवहु भैणे गलि मिलहु अंकि सहेलड़ीआह॥"

: १ :

हे वीणा! तू सुहाना स्वर निकाल जो हृदयों को धो डाले; प्रेम मींड़ का झटका मारे और झन्नाहटें छिड़ जाएँ। जो आत्माएँ फर्शों पर धक्के खा रही हैं, उन्हें अपने आँचल से लगा ले। वह अदेश को उठाकर ले चले और उसके चरणों की शरण में समा दे।

भाई गुरुदास जी लिखते हैं :-

मालो माँगा सिख दुइ गुरबाणी रस रसिक बिलासी॥

इनके कीर्तन कथन का प्रभाव भाई मनी सिंघ जी इस तरह लिखते हैं : "भाई मालो गुरूवाणी की पुस्तक से कथा किया करता था और भाई माँगा सम्मुख बैठकर सभी इन्द्रियों को संयम में करके सुनता और दोनों मिलकर फिर कीर्तन करते। तब उनकी रसना से सभी सिक्खों को इस तरह का रस आता कि जो भी सुनते वे पापों का त्याग करते और धर्म की कृत्य करके आपस में बाँटकर खाते और आने जाने वाले साधुओं सन्तों की सेवा करते। सारे देश का कल्याण हुआ।" यह फल था जो मालो माँगे की कथा तथा कीर्तन को लगता था। अत: कथा कीर्तन वाले तो इसी प्रकार के होने चाहिए। यह दोनों सज्जन श्री गुरू नानक देव जी के पास आये थे, आकर-

हाथ बंदि अरदास बखानी,
'करहु कृपा श्री गुर गुन गुनखानी।
निज मुख सों उपदेश करीजै,
जिहते जन्म मरण कटि लींजै'। [नानक प्रकाश]

यह विनती सुनकर श्री गुरू नानक देव जी कहने लगे। भाई! तप करो, तप के बिना मैल नहीं उतरता। उन्होंने ससत्कार पूछा, हे जगत के उद्धारकर्ता! तप का ढंग बताइए, तप कैसे किया जाता है? श्री गुरू जी ने उत्तर दिया-भाई! तप कई प्रकार का होता है, तुम सुन लो फिर चुन लेना। वे कहने लगे, कृपा कीजिये। तब बाबा जी ने कहा-जल खेना, अग्नि तापना, व्रत रखने, ठण्ड गर्मी सहन करना, उलटे लटकना, खड़े रहना, कंदमूल का भोजन करना, वनों में रहना तथा तीर्थों पर भ्रमण करना, यह कठिन तप है, इनसे मन को तथा देह को मारा जाता है। दूसरा तप और है-इन्द्रियों को एकाग्रता के साधनों द्वारा शिथिल करना, इसके लिये योग के कर्म-नेती धोती, न्योली, फिर प्राणायाम आदि किये जाते हैं। इनके लिये संसार से कुछ पृथक रहने की भी आवश्यकता है। तीसरा है कथा कीर्तन में रहना, गुरूवाणी का पाठ करना, उसे विचारना, वाणी का कीर्तन करना सुनना, वाणी में जो

आज्ञा आई है उसके अनुसार चलना। अतः ~~पहला तप तो~~-बहुत कठिन है, दूसरा कठिन है, तीसरा सुगम है। अतः पहला तप बहुत कठिन है, उसका फल थोड़ा है, दूसरा जो कठिन है उसका फल उसकी अपेक्षा ज्यादा है, तीसरा जो सुगम तप है उसका फल सबसे अधिक है। तब मालो ने सत्कार सहित कहा :–श्री महाराज जी! लोग तो कहते हैं जैसा परिश्रम वैसा ही उसका फल, जितनी बड़ी मज़दूरी उतना ही बड़ा उसका पारिश्रमिक। आपने कहा है बड़े परिश्रम का मूल्य कम और थोड़े परिश्रम का मूल्य अधिक, यह बात समझ में नहीं आई, कृपा करके समझा दीजिए। तब आपने कहा :–देखो भाई लकड़ी वाले लकड़ी लाते और बोझा उठाने वाले बोझा उठाते हैं, बहुत परिश्रम करते हैं, कम परिश्रमिक प्राप्त करते हैं। जो नमक तेल की हट्टी करते हैं, उनका परिश्रम उनकी अपेक्षा कम है, पर कमाई ज्यादा होती है। इसी तरह बजाज तथा सराफ कम परिश्रम करते हैं, ज्यादा लाभ प्राप्त करते हैं, और जौहरी तो बहुत ही कम परिश्रम करते हैं पर उनको बहुत लाभ प्राप्त होता है। वैसे ही उपरोक्त तपों को समझ लो। एक तप का प्रभाव तो देह पर पड़ता है, एक का अंदर के इन्द्रियों पर पड़ता है, पर एक का प्रभाव मन तथा बुद्धि पर पड़ता है। देह को शिथिल करना, इन्द्रियों को शिथिल करना, यह तो बड़े ही कठिन कार्य है, पर यदि कोई वासना को रोके और देह इन्द्रिय इसके पीछे लगा ले तो बहुत लाभ होता है। सर्वोत्तम तो मन को बस में करना है, उसके ऊपर निरंकार की भक्ति तथा उपासना को दृढ़ करना है। इसलिये तुम वाणी का पाठ करो, वाणी को विचारो, वाणी का कीर्तन करो और जो वाणी में कहा जाता है, उनके अनुसार चलो। फिर शीघ्र ही तुम्हारे मन पर से मैल उतर जायेगा, तुम भले हो जाओगे और भलाई करोगे; फिर भलाई की सिरोमणि भलाई–प्रेम भक्ति उत्पन्न होगी, वे सुगमता से संसार के स्वामी के साथ भेंट करा देगी। इस तरह सतगुरू जी का उपदेश सुनकर मालो तथा माँगा लग गये और यहाँ आ पहुँचे कि उनका अपना भी उद्धार हो गया और उन्होंने दूसरों का कल्याण भी किया।[1]

एक तो इन पर गुरू नानक देव जी की दया हो गई, दूसरे इन्होंने आज्ञा पाकर उस पर अमल किया। वह अमल अथवा कर्म क्या था, वाणी का अभ्यास : प्रतिदिन गुरूवाणी का पाठ करना तथा विचार करना।[2]

अब तो पाठक जी आप भी एकान्त में बैठकर पाठ किया करो और गुरूवाणी का विचार किया करो। फिर जो कुछ वाणी कहती है, उस पर अमल किया करो। वाणी कहती है कि देह को कुकर्मों से दूर बाँधकर रखो।[3] वाणी कहती है मन यदि दौड़े तो उसे रोको–

'घरि रहु रे मन मुगध इआने॥
राम जपहु अंतरिगति धिआने॥

---

१. तिनके सदन देस जिस मांही।
भा उधार बहु नरनि तहाँ ही। (गुरू नानक प्रकाश)

२. बाणी बिरलऊ बीचारसी जेको गुरमुखि होइ॥ (दखणी ओअंकार)

३. मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ॥ (वार आसा म: १)

लालच छोडि रचहु अपरंपरि।
इऊ पावहु मुकति दुआरा हे॥१॥ [मारू सोलहे म: १]

यदि फिर दौड़े तो फिर उसे रोके रखो। रोकते रोकते तुम्हारी इन्हें रोकने की शक्ति बढ़ जायेगी और मन अधिकार में आ जायेगा। जब मन अधिकार में हो गया तो इन्द्रियाँ अपने आप भागकर अपने भोगों के पास नहीं जायेंगी। जब इन्द्रियाँ बस में हो गईं, शरीर अपने आप बस में हो जायेगा, फिर इस शरीर को दुख देने की क्या आवश्यकता है?

मनुष्य का बड़ा दुख यही है कि मन धावता है और बिखरता है। अब यदि गुरूवाणी की दूसरी आज्ञा मानें–नाम जपें, तो यह दुख भी दूर हो जायेगा। इसके दो पक्ष हैं :–एक तो अपने कल्याण के लिये वाणी का पाठ करना। वाणी वासना को रोकने तथा मन को वश में करने की ओर लगायेगी।[१] वाणी स्तुति यश द्वारा[२] तुम्हारे अंदर वाहिगुरू का प्रेम उत्पन्न करेगी[३], परमेश्वर के साथ प्रेम का रंग उत्पन्न होगा। दूसरे, वाहिगुरू नाम का जाप करना, पर यह मनोरथ धारण करके जपना कि यह नाम प्रभु का लखायक है; इसके द्वारा ही हमारे अंदर प्रभु की स्मृति ने निवास करना है। जब स्मृति परिपक्व हो जायेगी तब प्रभु तथा हमारे बीच में पड़ी हुई दूरी समाप्त हो जायेगी। फिर वाहिगुरू की पवित्रता एवं उसके उच्च गुण प्रेम आदि हममें प्रवेश करेंगे। यहाँ तक कि प्रभु हमारे में प्रतिबिंबित होगा। देखिए जो कुछ कोई सोचेगा उसे वही कुछ वही हो जाता है। चोर पहले चोरी की बात सोचता है तब चोरी का कर्म करता है, कर्म कर करके चोर रूप हो जाता है। वैसे ही गुण के सागर प्रेम सागर वाहिगुरू जी का चिंतन अपना उत्तम प्रभाव डालता है। पहले वाणी से प्रेम किया तो वाणी ने मन में प्यार उत्पन्न किया। इस चाह से वाणी ने नाम का मार्ग बताया। नाम स्मृति बन गया, प्रेम स्मृति का एक रूप है, प्रेम ही तो मिलाने वाला है, ईंटों को चूना मिलता है, लकड़ी को सरेस जोड़ता है, आत्मा को आत्मा के साथ जोड़ने वाला मसाला प्रेम है। हाँ प्रेम! वह जोड़ने वाली शक्ति है जो जीव रूपी आत्मा को परमात्मा रूपी महा आत्मा के साथ जोड़ती है।

हमारे सतगुरू ने विस्मय का सर्वोत्तम मार्ग रखा है। जपुजी नामक वाणी में सतगुरू ने सच्चे बनने के सभी ढंगों का निषेध करके अपना ढंग बताया था। 'हुकमि रजाई चलणा' और स्वामी जी की आज्ञा में चलने का गुरूवाणी में यह ढंग बताया है :–'सिफति सालाहणु तेरा हुकमु रजाई' और स्तुति विस्मय में ले जाती है और विस्मय आज्ञा देने वाले ईश्वर में, यह प्रेम की अवधि है। विस्मय का साधन है उसकी स्तुति :–'विसमाद सिफति विसमादु सालाह'। हमारे श्री गुरू जी की आज्ञा है–'जिसनो बखसे सिफति सालाह। नानक पातिसाही पातिसाहु'। फिर आज्ञा है :–'नानक सिफति सलाह करि प्रभु का जैकारु'। वाहिगुरू जी की स्तुति द्वारा मैल उतरता है :–'गुन गावति तेरी उतरसि मैलु। बिनसि जाइ हऊमै बिखु फैलु'॥

स्तुति से ही मन एवं शरीर सुखी और रसमय होते हैं। "नानक सिफती रतिआ मनु

---

१. गुरबाणी सुणि मैलु गवाए॥ (धनासरी म: ३)
२. अंम्रित वेला सचु नाऊ वडिआई वीचारु॥
३. नानक सिफती रतिआ मनु तनु हरिआ होइ॥ (सारंग वा: म: १)

तुन हरिआ होइ।।" पर यह मार्ग हरेक को प्राप्त नहीं होता :–'सिफति सालाहणु भगति विरले दितीअनु'।।

स्तुति का मार्ग कैसे है। प्रार्थना करना, वाहिगुरू का यश करना, अपना आत्म दान माँगना, यह पहला कदम है। गुरूवाणी प्रभु की स्तुति से भरी पड़ी है और उसकी स्तुति के भंडार भरे पड़े हैं : 'सिफती भरे तेरे भंडारा'।। गुरूवाणी का पाठ प्रेम सहित करना ही स्तुति है। 'कीर्तनु निरमोलक हीरा'। 'हरि कीरति साध संगति है सिरि करमन कै करमा।।' पुनः 'कीरति करहि सुआमी तेरै दुआरे'।।

नाम जो सतगुरू जी ने हमें प्रदान किया है, वह मन्त्रों का सिरोमणि मन्त्र है– 'वाहिगुरू गुरु मन्त्र है जप हऊमै खोई' ही स्तुति है। वाह-वाह अकाल पुरुष की स्तुति करनी है, उसकी शलाघा करना है, धन्य है, धन्य है। कौन धन्य है? जो हमारे अन्धकार को दूर करने वाला गुरू–है वाहिगुरू। लिखा है :– वाहु वाहु सिफत सलाह है। अतः वाहिगुरू मन्त्र का जाप करना उसकी स्तुति उसका यश करना है। वाह उस समय कहा जाता है, जिस समय विस्मय से नीचे मन में लौटते हैं, अथवा मन से विस्मय की ओर चढ़ा जाता है। अतः यह मन्त्र वाहिगुरू विस्मय में चढ़ने का साधन बनाया गया है। वाहिगुरू जपा जाता है, उससे **मन** को उसकी स्तुति, यश का चाव चढ़ा रहे जो बढ़कर विस्मय बन जाये और अनजाने ही बुद्धि में से अहं कटता रहे।

प्रेम भगति तिन पाईआ बिखिआ नाहि जरे।

यों हंसते तथा खेलते हुए स्वाभाविक रूप से ही अकाल पुरुष से भेंट हो जाती है, जीवित ही आपे में सुखी हो जाया जाता है और हम से सबका भला होने लग जाता है।

गुरू जी की आज्ञा है, 'सुनत कमावत होत उद्धार'। पर यदि न सुना और न ही उसकी कमाई न की, पढ़ा और उसे कमाया न।[१] समझा पर न कमाया, तो क्या बने?[२] बाबा जी की आज्ञा है, "सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाऊ। अंतरिगति तीरथि मलि नाऊ"।।

भाई मालो माँगो के जीवन का जो तनिक-सा हमें इतिहास में से पता चलता है, उसके अनुसार सतगुरू जी ने उन्हें योग के कठिन मार्ग सुनाकर स्तुति का सुगम मार्ग बताया, और उन्हें अहं पर विजय प्राप्त करने का वास्तविक मार्ग बताया। अहं अमली रूप में अर्थात् हमारे कर्तव्यों में अपने आप को 'द्वैत' (स्वार्थता) में प्रकट करती है। जगत में द्वैत का व्यवहार होना, आपे की ही इच्छा होनी और दूसरों के साथ द्वेष रखना, यह अहं व्यवहार में प्रकट होती है। मालो माँगो के बारे में लिखा है कि सतगुरू की आज्ञानुसार वे मालो तथा माँगो धर्म की कृत्य करते और आपस में बाँटकर खाते; इससे व्यवहार में जो अहं थी उसकी निवृत्ति हो गई, अर्थात् द्वैत कम हो गई। फिर जो नाम जपा जाता है, उससे

---

१. पड़ीअै गुनीअै नाम सभु सुनीअै अनभऊ भाऊ न दरसै।। [रामकली रविदास]

२. मानुखु कथै कथि लोक सुनावै जो बोले सो न बीचारे।।
सतसंगति मिलै त दिढ़ता आवै हरि राम नामि निसतारे।। [नट म: ४]
पुनाः–कहत सुनत किछु सांति न उपजत बिनु बिसास किआ सेखा। [सार: म: ५]

अंदर का अहं का मैल कटता है जो इसका मूल है। दूसरी बात जो सतगुरू जी ने उन्हें बताई वह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ रही है कि हठयोग तथा कठिन तप करके शरीर को तुम शुद्ध करोगे तो फिर क्या करोगे? फिर तुम परमेश्वर जी के मिलाप की खोज करोगे। सतगुरू जी ने प्रभु की स्तुति सिखलाई और उन्हें बताया कि यही मार्ग सुगम है और इसका फल अधिक है। यह सीधा प्रभु के मिलाप की ओर ले जाता है। अहं को कुछ तो दान खा जायेंगे और जब वाणी की स्तुति बनायेंगे तो एक तो वाहिगुरू से मिलाप हो जायेगा और दूसरा अहं से पल्ला छूट जायेगा। जो पुरुष वाहिगुरू की स्तुति में लगकर रंग में आ गया, उसका अहंकार कहाँ रहा और, जो प्रेम में आकर सदैव उसी के रंग में रहता है, वह उसे मिल गया।

१. गीत[१]

दर्शन के लिये तरसना

जिज्ञासु की पुकार :–नैन तरस-तरसकर थक गये हैं; अब तरसने वाली पर दया कीजिए, देख लीजिए, नैन तरस के भर रहे हैं। दर्शन की लालसा में आयु व्यतीत हो गई है। हे गुरू नानक! सुखों के घर। दर्शन की प्राप्ति के बिना मेरा तरसना समाप्त नहीं होता और दर्शन के बिना चैन कैसे आये? दिन व्यतीत नहीं होता चिन्ता चित्त में चुभ रही है, सोच, चिंता में रात्रि व्यतीत नहीं होती। हे मीठे वचन बोलने वाले! कब आयेंगे? कब दर्शन दिखायेंगे? क्यों आयेंगे? मुझे तो कोई ढंग नहीं आता और न ही मेरे पास कोई गुण है। मुझे अब निराशा गोदी में डाल ले और शोक अपनी गोदी में ले ले। अरी दर्शन की प्यासी! तेरे नैनों की शीतल करने के लिये कौन आयेगा?

२. दर्शन की देन

गुरमुख का वाक्य :–

बुलबुल! तू विलाम मत कर।

गुरू नानक रूपी फूल चारों ओर खिला हुआ है, तू हृदय के नैन खोलकर उसे देख। तू दर्शन कर जिससे तेरा सारा हृदय प्रसन्न हो जाये और यह दर्शन कभी भी ओझल न हो। प्रेम की नरद यहीं आकर जीतती है, यही सुख आनन्द का पड़ाव है।

❑ ❑

१. यहाँ पर गीत का अनुवाद प्रस्तुत है।

८९ श्री पावन लहना जी

१. मिलाप

जब लग दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी॥
दरसनु देखत ही मनु मानिआ जल रसि कमल बिगासी॥ [सारंग म: १]

वर्षा ऋतु की उज्जवल भीनी रात्रि है, एक सुन्दर से मैदान में दरी बिछी है, बीच में एक चौकी है और इस पर एक थाली है, थाली में आटे की ज्योति घी से भरी हुई लौ उग्र जल रही है, चारों ओर फूल सुसज्जित हैं। इस चौकी से थोड़ी-थोड़ी दूरी पर अनेकों प्रेमी अखाड़ा लगाये बैठे हैं, किसी के पास मजीरे हैं और किसी के पास ढोलकी, किसी के पास षट्ताल है और किसी के पास मृदंग। सभी देवा रानी की भेंट गा रहे हैं। इस सब में एक व्यक्ति गरीबी रूप वाला मधुर, रस भीना, प्रेम की दमक वाला पावों में घुँघरू बाँध बैठा है और कई बार हिलोर में आकर उठता और इस तरह का नृत्य करता है कि सबकी आँख मुंद जाती हैं और ढोलक मजीरे रखे रह जाते हैं। रात व्यतीत होती कई, तीसरे पहर का समय हुआ, अब ढोलक मजीरे बंद हुए और आपस में सलाह होने लगी। काफी समय के पश्चात् फैसला हुआ कि आगामी मास सारी सभा पहाड़ों वाली की ओर चले। अभी पहली घड़ी ही बजी थी कि सभी व्यक्ति अपने-अपने घरों को चल दिये, पर वे जो पावों में घुँघरू बाँधकर नृत्य करने वाले सुन्दर स्वरूप वाले थे, एक तालाब की ओर स्नान करने के लिये चले गये। यहाँ आगे एक मनुष्य स्नान करके जपुजी साहब का पाठ कर रहा था। समाप्ति करके इसने राग आसा में एक दो शब्द गायन किये।

घूँघरूओं वाला सज्जन, जिसका नाम 'लहना' था, इस पाठ को सुन-सुनकर मग्न होता चला गया। उसे वह स्वाद आया जो कभी पहले देवी की भेंट गाते समय नहीं आया था और कभी अपने नृत्य में भी इतना स्वाद नहीं आया था। लहना जी अंदर तथा बाहर से सुन्दर हैं। कस्तूरे मृग की भाँति सुगंधि के नाफा हैं, पर न जाने प्रभु ने इनसे क्या काम लेना है, कि लहना जी को उसका कुछ पता नहीं। वे घी की जलती शिखा पर मुग्ध हैं। हर वर्ष देवी के स्थान पर पहाड़ पर जाते हैं और वहाँ पर जलती हुई[१] शिखाओं को देखकर चकित हो जाते हैं। आप नेकी के पुंज हैं, भलाई का रूप हैं, गरीबी की सीमा हैं, सुन्दरता की अवधि हैं, पर देखिए अभी अपनी सुगंधि तथा नाफे को आप सूँघ नहीं रहे। प्रभु के किसी कुशल हाथ ने 'ताण होदे होइ निताणा' कर रखा है।

जब सिक्ख उठकर चला तो लहना जी ने उसे बुलाकर पूछा, 'हे सज्जन! तैने

---

१. ज्वाला जी के स्थान पर भूमि से निकल रही आग की लपटें जलने वाली गैसों से जलती हैं। वैष्ण देवी के स्थान पर आप ज्योति जलाई जाती है।

किसकी वाणी का पाठ किया है?'

सिक्ख–जीवित सतगुरू जी की।

लहना जी–जीवित सतगुरू कौन है?

सिक्ख–जो वाहिगुरू में से आया है।

लहना जी–वह कहाँ है?

सिक्ख–'यहाँ पर' है, 'वहाँ' है, 'सर्वत्र' है।

लहना जी–कब से?

सिक्ख–अजल से है, आदि युगादि से हैं।

लहना जी (चकित होकर)–देही में हैं क्या?

सिक्ख–आजकल इस मृत्युलोक में देह धारण करके प्रकट हुए हैं।

लहना जी–अच्छा?

सिक्ख–संसार में प्रेम नहीं रहा, जीवन-कण नहीं रहा, अन्धकार छा गया है, ग्लानि है, इसलिये, गुरू ने अबकी बार अपना कोई प्रतिनिधि अवतार अथवा भक्त प्रकट नहीं किया, आप ही आ गया है।

लहना जी–आजकल डेरा कहाँ पर है?

सिक्ख–रावी नदी के किनारे कर्तारपुर।

लहना जी–कृपा करके नाम तो बताइए।

सिक्ख (सीस झुकाकर)–"श्री गुरू नानक देव जी"।

नाम सुनते ही लहना जी के रोंगटे खड़े हो गये, एक कम्पन सा आया और नैन मुँद गये।

कितना समय व्यतीत हो गया? इसका कुछ पता नहीं।

फिर लहना जी के नेत्र खुले, आप सोचते हैं, यह कौन है? इसने मुझे क्या सुनाया है। मैं किस रस सागर में गोता लगा आया हूँ। 'गुरू नानक'!!! हे देवा! यह कैसा अपनापन सा है कैसा आकर्षण है। (सिक्ख की ओर) प्यारे! यह गुरू नानक तेरा गुरू है? (स्वागत) हे देवा! मेरी तो तू थी, यह गुरू नानक मुझे क्यों मेरा होकर लगा है? यह तेरा है, अथवा तू इसकी है?

(सिक्ख की ओर देखकर) हे सुन्दर सज्जन! गुरू नानक धुर से आया है, क्या यह सच्च है?

सिक्ख–हाँ भाई! धुर से, आप।

लहना जी–अब भी प्रभु तक पहुँचा है?

सिक्ख–वह ब्रह्मांड का है, वह नौ खण्ड पृथ्वी का है, वह हरेक का है।

एक बार गुरू नानक देव जी को वेईं नदी में स्नान करते समय प्रभु के अरूप सेवक प्रभू के दरबार में ले गये–

तब सेवकों ने जाकर हाज़र किया, 'गुरू नानक आये हैं।' तब सच्चे दरबार का दर्शन हुआ, प्रभु दयालु हुआ। परमेश्वर की आज्ञा हुई तो अमृत का कटोरा भरकर गुरू नानक देव जी को मिला, आज्ञा हुई, "नानक! यह अमृत नहीं, मेरे नाम का प्याला है, तू इसे पी

ले"। तब गुरू नानक देव जी ने स्वीकार किया, प्याला पिया, प्रभु दयालु हुआ। "नानक मैं तेरे साथ हूँ, मैंने तुझे निहाल किया, और जो तेरा नाम लेगा मैंने उसे भी निहाल किया। तू जाकर मेरा नाम जप और लोगों से जपा और संसार से निर्लेप रह, नाम, दान, स्नान, सेवा स्मरण में रह। मैंने तुझे अपना नाम प्रदान किया है, तू यही काम कर"। तब गुरू नानक ने प्रणाम किया, खड़ा हुआ, तब आज्ञा हुई, "नानक! मेरे नाम की बड़ाई कैसी है"। तब गुरू नानक ने सिरीराग महला १ में शब्द उच्चारण किया। 'कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआऊ। चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सऊण न थाऊ।। भी तेरी कीमति न पवै, हऊ केवडु आखा नाऊ···" तब फिर आवाज़ आई : "नानक मेरी आज्ञा तेरी दृष्टि में आई है, तू मेरे हुकम की स्तुति कर"। तब बाबा ने राग आसा में 'जपु' उच्चारण किया– सलोक पहला १ "आदि सचु जुगादि सचु।। है भी सचु नानक होसी भी सचु" जब बाबा जी ने 'जप' उच्चारण किया तब फिर आज्ञा हुई "नानक! जिस पर मेरी दया तिसके ऊपर तेरी कृपा, उसी पर ही मेरा कृपा, मेरा नाम पारब्रह्म परमेश्वर, तेरा नाम गुरू परमेश्वर।" तब गुरू नानक चरणों पर झुके, तब बाबा को प्रभु के दरबार से सिरोपाव प्राप्त हुआ। [पुरातन जन्मसाखी]

जब लहना जी ने इस साखी सुनी तो और ज्यादा प्रेम में आकर कहने लगे :–भाई! गुरू नानक की बाणी और गुरू नानक का नाम इसीलिये इतना मीठा है कि उन्हें आप भगवंत ने भेजा है, 'गुरू परमेश्वर' है। आप परमेश्वर रूप ही हुए न?

यह सुनकर आपने उस गुरू के सिक्ख से जो शब्द उसने पढ़ा था, उसे कंठस्थ कर लिया और दूसरे दिन आप माई विराई से मिले। उनके साथ वार्तालाप के पश्चात् आपने निश्चय धारण कर लिया कि देवी की ओर जाते समय कर्तारपुर में गुरू जी के दर्शन करके ही जाना है।

शनैः-शनैः वे दिन आ गये। सब लोग देवी के दर्शनों को चले, पर पहले कर्तारपुर से होकर जाने का निश्चय लहना ने कर लिया था, अतः पहले सभी कर्तारपुर पहुँचे। सब ने आबादी से बाहर डेरा डाला और अब श्री लहना जी आबादी में गये।

शरीर में एक पुलकावलि सी है, अंदर एक अकथनीय आकर्षण है, आँखों में झलक है, छाती धड़कती है, उमगती है और शीतल हो हो जाती है। श्री लहना जी के गाँव में प्रवेश करते ही गुरूओं के गुरू गुरू नानक अपने प्यारे आपके आगमन को समझकर आकृष्ट हुए, अपने आसन से उठे और आगे से स्वागत के लिये गली में आ गये। देखिए अद्भुत सी बात है; गुरू सिक्ख को लेने के लिये आ रहा है।[1] लहना जी के नेत्र सजल हैं, सूरत अपने गुरू नानक से मिलने के चाव में मुग्ध है–इसी दशा में चले आ रहे थे। गुरू नानक जी को देखकर केवल इतना प्रतीत हुआ कि कोई शीतल सज्जन खड़ा है। उनसे सनम्र 'गुरू नानक' का ठिकाना पूछा। बड़े हित तथा प्यार सहित श्री गुरू नानक देव जी ने

१. महमा प्रकाश गद्य में लिखा है–'जो चलां मेरे राज का धनी आया है, उसे ले आऊँ।' यह कह कर आप उठ कर चल दिये और मार्ग में आकर खड़े हो गये।

कहा, 'आ पुरुष! मेरे पीछे-पीछे अपनी घोड़ी ले आ'। यह कहकर गुरू जी ने उसे धर्मस्थान के पास पहुँचाया और आप दूसरे मार्ग से अंदर जाकर बैठ गये। लहना जी घोड़ी से नीचे उतरे, घोड़ी खूँटे से बाँधी और धर्मस्थान के अंदर चले और गुरू नानक देव जी के चरणों पर जाकर झुक गये। समुद्र की शरण में सिंधु आ गया है, प्रकाश ने आकर सूर्य की शरण ली है।

"जोति समाणी जोति माहि आपु आपै सेती मिकिओनु॥"

[रामकली वार सत्ता बलवंड]

जितनी देर चरणों पर पड़े रहे, नेत्र मिलाप रस में मग्न, सजल पड़े रहे, आत्मा में वह शांति आई जो पहले कभी नहीं देखी थी।

वास्तव में श्री पावन लहना जी भी धुर से आये थे, आप भी गुरू ज्योति ही थे, पर उन्हें वाहिगुरू ने जान-बूझकर इस रंग में रखा हुआ था कि 'सिक्ख धर्म का आदर्श' दिखायें। जिस तरह गुरू का पूर्ण आदर्श गुरू नानक ने दिखाना था, उसी तरह सिक्खों के कल्याण के लिये सिक्ख मत का पूर्ण आदर्श लहना जी ने भी दिखाना था, इसलिये लहना जी उस दशा में रखे गये थे कि जिसमें से वे स्वाभाविक रूप से सिक्ख मत की ओर आयें, सिक्ख मत का पालन करें और सिक्ख मत का 'प्रकाश स्तम्भ' बनें। इसलिए गुरू नानक देव जी से मिलने और उनके चरणों से लगने से उन्हें यों रस आ रहा था कि जैसे आपे से आपा मिलता है। श्री गुरू ग्रंथ साहब जी के वाक्यानुसार "जोत ओहा जुगति साइ" होने के कारण वे मिल तो आप से रहे हैं, पर इस समय सिक्ख भावना में भीगकर गुरू रस में लीन हो रहे थे। जब काफी समय के पश्चात् सिर उठाया और सतगुरू के चेहरे की ओर ध्यान सहित देखा तो हौका भरकर चौंक उठे, कि हैं, यह तो वही सौंदर्य का फव्वारा है जो गली में से घर तक मुझे अपने साथ लाया था, आप पैदल चलकर आया है और मैं घोड़ी पर चढ़कर आया हूँ। आपने अपनी ओर से हुए अपमान के लिए हौका भरा, पर श्री गुरू नानक देव जी ने हृदय की बात को जानकर धैर्य बँधाया, सिर उठाया और कुशलता पूछी। गाँव, घर बार का पता और अंत में नाम पूछा। जब लहना जी ने अपना नाम बताया तो श्री गुरू नानक जी ने कहा :-'आ भाई लहना! तुझे लेना है और हमें तेरा देना है'। जैसा कि नानक प्रकाश में लिखा है :-

श्री गुर कहि 'लहणे तैं लहणा।
सुन पुरखा! हमने है देणा।'

तात्पर्य यह कि श्री लहना जी तो ऐसे मोहित हुए कि वहाँ से उठना ही भूल गये। साथी जाने के लिए अधीर हो रहे थे। अतः आप उनसे कहने लगे कि मैं तो अब यहाँ पर ही टिक गया हूँ, यदि तुम्हारी जाने की इच्छा है, तो तुम जाओ, अपनी यात्रा पूरी करो, यदि तुम्हारी इच्छा नहीं तो रुक जाओ। पर यदि जाना भी है तो लौटकर यहीं पर होते जाना, सतगुरू जी के दर्शन करना, जिस-जिस व्यक्ति के हृदय की बीना रुक जाये, वह इस ज्योति का भँवरा बन जाये, जिसकी न रुके, वह मनमानी शिखा के इर्द-गिर्द और चक्कर काटे जब इस शिखा की लग्न लग जाये, तब इसके भँवरे बन जाना।

कुछ दिनों में सतगुरू जी ने श्री लहना जी को आज्ञा की। प्रेम आकर्षण में पिरोए हुए आप खँडूर पहुँचे। लोग अचम्भा करने लगे, दंत कथा चली, जैसी सदैव चला करती

है, पर प्रेम में मग्न हो रहे प्रेमियों को क्या प्रवाह। घर पहुँचे, पर हाँ अब घर पर कौन ठहरे, एक-एक रात पाँच-पाँच पहाड़ों की सी प्रतीत होने लगी। कर्तारपुर, कर्तारपुर की ओर आकर्षण, आकर्षण के कटक का तड़पन लग रहा है। थोड़े ही समय के पश्चात् नमक का एक बोझ उठाया और पैदल कर्तारपुर को चल दिये।

वास्तव में लहना जी फिरोजपुर के इलाके 'मते की सराय' के निवासी बहुत धनी खत्रिय वंश के पुत्र थे और खंडूर के समीप संघर नामक गाँव में एक भारी शाह के घर में इनका विवाह हुआ था।[१] मते की सराय–जब से बाबर का आक्रमण हुआ और फिर पचाधे बलोचों आदि लुटेरों ने लूटी[२] और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दी थी उससे पहले ही आपने संघर में आ निवास कर लिया था।[३] तब से आप खंडूर में आ बसे थे। दोनों ओर कुशलता आनन्द होने के कारण स्वाभाविक रीति से ही रेशम पहनते और सुखी जीवन व्यतीत करते थे। आज पहला दिन था कि इस प्रेम के कारण सिर पर नमक का बोझा उठाया और पैदल चल पड़े थे। रिश्तेदार, संबंधी मना कर रहे थे, और कह रहे थे कि नौकर अथवा घोड़ी ले जाइए, पर आपने उनकी एक भी न सुनी। सच्चे सतगुरू का प्यार खींचे ले जा रहा है। अमीरी-गरीबी का प्रेम में किसे चेता होता है?

शनैः-शनैः कर्तारपुर पहुँचे, घर गये, माता जी ने प्रेम मूर्ति को देखकर शीघ्रता से बोझा उतरवाया, मोढ़ा पंखा दिया, आदर सहित बैठाया। आगे श्री गुरू जी खेती के लिये खेतों में गये हुए थे, लहना जी से कैसे बैठा जा सकता था? श्री गुरू जी का पता पूछकर झट ही खेतों को उठकर चल दिये। खेतों में जाकर निरंजनी ज्योति के दर्शन किये।

परम प्रेम करिकै तत्काला।
परयो पाइ पंकज धरि भाला॥ [गुरू नानक प्रकाश]

इस नमस्कार में लिखा है कि लहना जी ने अपना सब कुछ गुरू नानक को अर्पण कर दिया :–

"जो अपनो तन मन हुतो अरपन गुर आगै॥"
सरबस तजि कीनो तबै चरनन अनुरागै॥'' [गुरू नानक प्रकाश]

इस समय सेवक धान के खेतों में घास आदि निकाल रहे थे, लहना जी भी उनके साथ घास आदि निकालने लगे। आपने यह काम कभी भी नहीं किया था, आप धान भी साथ ही उखेड़ते जाते। गुरू जी देखकर कहने लगे, 'भले पुरुष! यह काम तेरे करने योग्य नहीं, तू तो लगाने वाला है, उखेड़ने वाला नहीं, इसे रहने दे और जो घास-फूस इकट्ठा हो गया है उसकी गठड़ी बाँधकर घर को ले चल और पशुओं को डाल दे। आज्ञा पाकर लहना जी ने तत्काल ही पानी से भीगा हुआ, कीचड़ बहता हुआ घास गट्ठड़ी में बांधकर

---

१. पता चलता है कि ससुराल संघर गाँव में थे जो अब खडूर के समीप खंडहर बना पड़ा है।
२. मते की सराय के खंडहर पर श्री गुरू अंगद देव जी का गुरुद्वारा जन्म स्थान है, इससे थोड़ी-सी दूरी पर पश्चिम की ओर एक 'नागे की सराय' नामक गाँव है जो 'मते की सराय' के नष्ट भ्रष्ट होने के बाद एक नागे साधु ने बसाया था। यहाँ गुरू नानक देव जी का भी एक गुरुद्वारा है। नागे की सराय 'मुकतसर' से आठ-नौ मील की दूरी पर है।
३. गुरू अंगद देव जी के यह समाचार अष्टगुर चमत्कार में सविस्तार दिये हैं।

सिर पर रख लिया और घर को चल दिये। कीचड़ के छींटों के गिरने से रेशमी पहरावा सारा भीग गया। यथा :–

जामा गल बहु मोला पहरयो।
पंक संग सगरो तहिं भरिओ। [गुरू नानक प्रकाश]

माता जी यह कौतुक देख रही थीं, चकित हुईं कि एक तो नमक का इतना भारी बोझ इतनी दूरी से उठाकर लाया है, दूसरी बार फिर खेतों से इतना बोझ उठाकर लाया है, फिर इसके बहुमूल्य वस्त्र कीचड़ से लथ-पथ हो गये हैं।

तब माता जी ने दर्द से गुरू जी से कहा कि इस भले पुरुष ने कितना भारी बोझ दो बार उठाया है और अब इसके अमूल्य वस्त्र भी कीचड़ से भर गये हैं।

तब गुण ग्राहक गुरू नानक मुस्कराये और कहने लगे :–

अरी भोली! दो गठड़ियों का बोझ इसने तो नहीं उठाया था, वह तो दो जगत का बोझ इसके सिर पर था, धान के खेत का घास तो इसके सिर पर नहीं था, वह तो इहलोक तथा परलोक का छत्र झूलता था। वस्त्रों पर कीचड़ तो नहीं पड़ा था, वे तो केशर के छींटें पड़े हैं।[१] यह मेरा राजयोग का धनी है।

२. कमाई

गुर कै ग्रिहि सेवक जो रहै॥
गुर की आगिआ मन महि सहै॥
आपस कउ करि कछु न जनावै॥
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि॥
तिसु सेवक के कारज रासि॥
सेवा करत होइ निहकामी॥
तिस कउ होत परापति सुआमी॥ [गउड़ी सुखमनी]

संसार चतुर तथा बुद्धिमान है, इसलिये अपना माना हुआ ढंग ही ठीक चलता है। प्रेम बावला तथा मस्ताना प्रतीत होता है, वास्तव में प्रेम है चेतंन, पर संसार की दृष्टि में प्रेम बावला है और हमारे गुरू जी ने भी कहा है :–

'भगता ते सैसारीआ जोड़ कदे न आइआ॥ [वार माझ म: १]

देखिए गुरू नानक पूर्ण गुरू, जगत के लिये प्रेम लेकर आया, लोगों ने आपको बावला बैताल, कुमार्गी आदि कहा। पूर्ण गुरू अवतार न पहचाना, प्यार के स्थान पर अपमान किया, क्यों अपमान किया? प्रेम रंग अद्‌भूत होता है, संसार ने उसे देखा नहीं होता, वे उसे अपरिचित जानकर उसका अपमान करते हैं। भला हमारी आज वाली कथा में ही देखिए लहना जी भलों के घर में पैदा हुए थे, भलों के घर में विवाह हुआ था, सुख से पालन-पोषण हुआ, नौकरों पर आज्ञा करने वाले, रेशम, सोना देकर गुरू नानक को

---

१. केशर को हम छिरकावा। [गुरू नानक प्रकाश, पृष्ठ ४७-८३]

प्रसन्न नहीं करते, पर विनम्र होकर कोसों दूर नमक का बोझा उठाकर आते हैं। घास निकालते हैं, कीचड़ से भरे हुए बोझ उठाते हैं, चरण पखारते हैं, पंखा झुलाते हैं, वस्त्र धोते हैं, हाँ, वह कौन-सी सेवा है जो अपने प्रियतम जी की, वे नहीं करते। पर यह सब कुछ कौन करा रहा है? हृदय में से उत्पन्न हुआ प्रेम। उनके अंदर नीच श्रमिक वाली गिरी हुई सुरत काम नहीं करवा रही, मज़दूर की उदास चित्त वृत्ति की भाँति यह सेवा नहीं हो रही, यह उत्साह प्यार के रस भरे काम हैं, यह वह सेवा नहीं जिसे अनजाने ही तथा बेखबर ही 'मीनीअल सर्विस' 'निम्न सेवा' कह देते हैं। वे क्या जाने कि यह सेवा थी अथवा पातशाही से अधिक उच्च हृदय करने वाली किसी साम्राज्य की अधीश्वरी थी? पातशाह सिंहासन पर भी उदास है, पर लहना जी गुरू नानक की सेवा में एकाग्रचित है, रसलीन हैं, लौ धारी हैं, उच्च हैं, उत्साह भरपूर हैं, उन्नति में हैं।

दुनीआ नहीं समझ सकती, दुनीआ हुशिआर है।

कहती है, देखिए लहने को क्या हो गया है, घर बार का त्याग करके नानक तपे के द्वार पर जाकर सेवा कर रहा है। लोग सभाएं लगा-लगाकर बैठते हैं और अकल दौड़ाते हैं। लहना जी के मन की गति को कौन जान सकता है। बुद्धि अंत में उन्हें यहाँ ही ले आती है कि लहना जी के दिमाग़ में कोई फर्क हो गया है कि परमेश्वर के दिये हुए सुख, आराम, देवी के साथ की अगुवानी तथा अपने पराये को त्यागकर एक तपे के द्वार पर जा बैठे हैं। हाँ, कई ज़्यादा बुद्धिमान हैं, वे समझते होंगे कि नानक तपा चेटकी है, लहने के सिर पर कोई जादू कर दिया है और निकटवर्ती कई सोचते होंगे कि लहना किसी लोभ के कारण यह सब कुछ कर रहा है। शाबाश! चालाक जगत। श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी ने तब ही तो कहा है :–

दुनीआ हुसीआर बेदार जागत मुसीअत हऊ रे भाई।। [रामकली कबीर जी]

अर्थात् संसार अपने लिये तो जागता है, चतुर चेतन है, पर सत्य यह है कि यह जागता हुआ लुटा जा रहा है, अमूल्य समय नष्ट हो रहा है। परमेश्वर के प्रेम का बोझा नहीं लादा जा रहा, नेकी नहीं की जा रही, स्तुति निंदा में यह लाखों अमूल्य आयु व्यतीत हो रही हैं। जैसे कि एक कवि जी ने श्री गुरू गोबिंद सिंह जी के समक्ष लखी जंगल में उच्चारण किया था :–

"उसतत निंदा करकर बीती बेईमान लुकाई।"

जगत का तथा भक्तों का आपसी प्रेम इसलिये नहीं होता, जगत चतुर है, परस्वार्थ के लिये। अपनी हऊ में से आगे देख ही नहीं सकता। इसलिये हरेक भली बात के साथ उलटी होकर चलता है। गुरू बाबे ने संसार की यह रीति देखकर ही कहा है :–

नानक दुनीआ कैसी होई।।
सालकु[१] मितु[२] न रहिओ कोई।।
भाई बंधी[३] हेतु चुकाइआ।।

---

१. सच्चा फकीर, प्रभु के मार्ग का सहाई।
२. सच्चा मित्र। २ प्रभु दोस्त तथा मित्र।
३. भाईयों और बंधुओं ने।

दुनीआ कारणि दीन गवाइआ॥५॥ [वारां ते वधीक म: १]

जगत की इसी अंधदशा के कारण, निंदा तथा ईर्ष्या भक्तों के भी पल्ले पड़ी और सतगुरू जी ने सावधान रहने के लिय कहा था :–

जे को सतु करे सो छीजै तप घरि तपु न होई॥
जे को नाऊ लए बदनावी[1] कलि के लखण एई॥ [रामकली म: १]

अत: किसी युग में किसी समय परमेश्वर जी से प्यार करने वाले चाहे अवतार हों चाहे जीव, वे संसार की ओर से प्यार की आशा न रखें। कदर वाले दुख नहीं देंगे, शेष दुनियाँ तो भक्तों को दुख देती ही आयी है और देगी भी। श्री गुरू अर्जुन देव जी ने श्री गुरू ग्रन्थ साहब का सम्पादन करके इसीलिये ग्रन्थ का रूप दिया था और गुरू गोबिन्द सिंघ जी ने इसी ग्रन्थ को गुरू गद्दी प्रदान की थी कि सभी सिक्ख इसमें लिखे हुए नियमों के अनुसार चलें, तो भक्त को दुख नहीं देंगे, पर सिक्खों ने डोगरा गर्दी के पीछे संसारिक रीति को ग्रहण कर लिया और फल क्या हुआ? जिस तरह तुर्कों ने सरमद जैसे अपने फकीरों का वध कर दिया, उसी तरह गुरूबाणी से अपरिचित सिक्ख सेना ने बाबा बीर सिंघ जैसे शूरवीर सिक्ख और पूर्ण पुरुष, नाम के कण वाले, गुरू नानक के प्यारे भक्त, बंदूकों से उड़ा दिये।

जिसको इस भूल से बचना हो वह गुरू का खालसा (सिक्ख) बने। श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी का अनुयायी बने और गुरू नानक के उपदेश को समझे और उस पर अमल करे, गुरूमुख की संगत करे, साधु की संगत और नाम के रसिक की संगत करे, जिससे नाम चित में रहे और परमेश्वर के प्रेमियों से उसकी अनबन न हो। पर जो व्यक्ति मन की अकल के पीछे चलेगा, जो स्वार्थ के पीछे घूमती है, जो गुरूवाणी से प्रेम नहीं करेगा, वह वही भूल करेगा, जो तैमूर, बाबर, महमूद, औरंगजेब ने की थी। सिक्खों के गुरू श्री गुरू ग्रंथ साहब जी हैं और श्री गुरू ग्रन्थ की शिक्षा प्रेम है और जो सिक्ख कहलाकर प्रेम नहीं करता, वह संसारी है और वह सांसारिक भूलों में दुख बोयेगा, दुख काटेगा, पर जो गुरू नानक के सर्व प्रेम को समझता है वह–

"दूखु न देई किसै जीअ पति सिऊ घरि जावऊ॥" [गउड़ी वार म: १]

की आज्ञा मानकर सुखी होगा। वह गुरू गोविंद सिंघ जी के अट्टल नियमानुसार :–

साच कहऊँ सुन लेहु सभै जिन प्रेम कीयो....॥ [सवैये पातशाही १०]

के अनुसार चलेगा, उसका इहलोक सुखी और परलोक सुहावना हो जायेगा। जो अप्रेम कर रहा है, वह सतगुरू का नहीं, वह "गुरू" की ओर "मुख" नहीं रखता। श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी की भाषा में वह मन की ओर मुख रखने के कारण मनसुख है।

पर आईए श्री लहना जी की आगे की व्यथा सुनिये। वे सेवा में मग्न हैं, प्रेम में तारी ला रहे हैं, उन्हें कोई परवाह नहीं। प्रेम ऐसा ही है, पातशाहों के पुत्रों को फकीरी प्रदान करता है, पर जो स्वाद गुरू नानक देव जी की फकीरी में है, वह संसार की पातशाही में नहीं। लहना जी की प्रेम दशा के बारे में कवि संतोख सिंघ जी इस तरह लिखते हैं।

भई प्रीत नहिं जाइ बखानी।

---

१. नाम जपने वाले की बदनामी होगी, यही कलियुग के लक्षण हैं।

को उपमा कछु दिऊं, न समानी।
अलप पतंग मिरग की जानी।
तिन ते तूरनता पहिचानी।
सीस देन की हुइ जि रज़ाइ।
पलक मात्र कबहि न बिलमाई।। [गुरू नानक प्रकाश]

जब ज्वाला जी पर गये साथी लौट आये, तब लहना जी ने सबको गुरू जी का दर्शन करवाया। अनेकों व्यक्तियों के हृदय में देवी-प्रेम के स्थान पर सच्चे सतगुरू का प्रेम उमग पड़ा और सिक्ख मत धारण किया। दो दिन रहकर सारे साथी गाँव को चले गये, पर लहना जी:–

'गई पूतरी लौण की थाह सिंध की लैन'।

की भाँति गुरू चरणों में ही भौंरे हुए और सेवा में निमग्न टिके रहे।

श्री लहना जी एक दिन पिछली रात को जागे तो बहुत गर्मी थी, आप पंखा लेकर श्री गुरू जी को हवा करने के लिये आऐ तो पंखा करते ही आपको नींद आ गई, तब क्या देखते हैं कि लाल वस्त्रों में एक दिव्य ज्योति कन्या–जो शरीरधारी नहीं, पर आकार वाली है–द्वार पर झाड़ू फेर रही है[१] जब उठे तो गुरू बाबा से पूछने लगे, "सच्चे पातशाह! आपके द्वार पर स्वप्न में एक लाल वस्त्रों वाली कन्या को मैंने झाड़ू करते हुए देखा है, वह कौन थी?" तब गुरू बाबे ने बताया, "भले पुरुष! वह तेरी पूरानी पूजित देवी थी, जिसे ऐश्वर्य के लिए पूजा जाता है जो मुक्ति प्रदान करने वाली नहीं है[२]। देवी अथवा दुर्गा भक्तों के विचारानुसार सेवक का दर्जा रखती है[३] "परमेश्वर के प्रेमियों को इसकी पूजा की आवश्यता नही"।

लहना जी बड़े प्रसन्न हुए कि जिससे वे मुक्ति के इच्छुक थे, वह मुक्ति प्रदान करने वाली नहीं है।

हमारे सिरताज पावन लहना जी! यदि तुम्हारा वाहिगुरू तुम्हें इस निष्काम भक्ति में न डालता तो हमें सिक्खी का रहस्यपूर्ण नमूना तथा आदर्श कहाँ से प्राप्त होता जो आपने करके दिखाया है। तुम्हारे शिष्यत्व का चित्र (आप जो कारक थे) उसे आप ही खींच सकते थे, हमारी जीव श्रेणी के बड़े-बड़े तो वही ऊँचे से ऊँचा चित्र गुरू के सिक्ख मत का खींच सकते थे जो प्यारे भाई बुड्ढ़ा जी ने खींचा है, पर तुम्हारा दोष रहित बनाया चित्र तुम्हारा ही काम था। जैसे सिनेमा की मूर्तियाँ देखने के लिये अन्धकार की आवश्यकता होती है, तैसे 'कारक ज्योति' से सिक्ख मत का पूर्ण चित्र प्रकाश डालने के लिये कुछ समय के लिए माया के अन्धकार की आवश्यकता है। 'माया' में से निकलकर 'दैव' में अचल भावना से आने का नाम ही तो सिक्ख धर्म है। अत: श्री लहना जी, प्यारे लहना

१. तवारीख खालसा में लिखा है कि देवी सारे साथ को झाड़ू देती हुई दिखाई दी।

२. तू कहीअति ही आदि भवानी।।
मुकति की बरीआ कहा छुपानी।। [गौंड नामदेव]

३. 'दुरगा कोटि जाकै मरदनु करै'।। [भैरव कबीर]

जी ने बिना कम्पन के आकर पूर्ण रूप से दिखाई। वाहिगुरू ने इसीलिये तो प्यारे लहना जी! आपको धनी पुरुषों के घर जन्म दिया, माया में निवास दिया और पूजा के लिये भी देवी की मूर्ति ही आगे की। इस स्थूल सूक्ष्म माया में से आप किस सुन्दरता से निकले? यह आपका आदर्श जगत के लिये प्रकाश-स्तम्भ है, इस भौसागर में आपने यह 'प्रकाश-स्तम्भ' खड़ा किया है। हज़ारों सिक्ख मत के जहाज़ इस प्रकाश से सुरक्षित हुए हैं और प्रलय तक सुरक्षित होंगे। यदि आप भी गुरू नानक की भाँति प्रकट होकर गुरू मूर्ति बनाकर दिखाते तो हमें गुरू की पहचान तो हो जाती परन्तु हम सिक्ख धर्म का आदर्श कहाँ से प्राप्त करते? हम किसके पद चिन्हों पर चलकर सिक्ख मतानुसार चलते? वाह परम पावन लहना जी? आप धन्य हैं, सिक्खों का आपके जीवन के इस भाग के साथ इतना लगाव है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

धन्य पूर्ण गुरू गुरू नानक देव।
धन्य पूर्ण सिक्ख श्री लहना जी!
आप दोनों कलियुग के जीवों के,
'गुरू+सिक्ख' आदर्श हैं। आप धन्य हैं'।

एक दिन गुरू नानक देव जी विश्राम कर रहे थे, पर चरण हिल रहे थे, लहना जी जैसे-जैसे देखते चकित होते, इसी रंग में आपकी सुरत ऊँची होकर विस्मय की दशा में जाकर टिक गई, क्या देखते हैं कि गुप्त संसार के दिव्य लोग आकर गुरू नानक देव जी के चरण परस रहे हैं। इसके संबंध में पुरातंन जन्मसाखी में इस प्रकार लिखा है:-

[१]"जब (लहना जी) देखे तो कई जीव पावों से विदा होते हैं"।

गुरू नानक सूर्योदय में लिखा है:-

'सुर पग द्वै बंदन करै पुन सदन सिधारैं'॥

इस तरह सतगुरू के रंग देखकर प्रेम करते हुए लहना जी सेवा में मग्न रहे। चित की अवस्था अब द्रवित मन तरंगों की सुख स्वरूप, रस रूप हो रही है:-

परम प्रेम जाग्यो मन माँही।
रंग्यो रंग भगति मन जांही।
इक मन है पढिहैं गुरवाणी।
सुनहु, गुनह कीरत चित मानी।
वाहिगुरू को सिमरन करिही।
उमगि उमगि मुख सुजस उचरिही।
चीर प्रीत की रीति निआरी।
लिव लागी निसदिन सुखकारी॥ [गुरू नानक प्रकाश]

लहना जी के मन की यह आवस्था थी और शरीर की आवस्था यह थी:-

करत्यो सेवा समा बितावहि। जग कारज को रिदे न आवहि॥ [गुरू नानक प्रकाश]

इस तरह शरीर से निष्काम सेवा तथा मन द्वारा उच्च भाव तथा लौ में उमगे तथा उत्साहित हुए रमभीने रहकर लहना जी का शिष्यत्व का बाग़ प्रतिदिन प्रफुल्लित हो रहा

१. पुरातन जन्मसाखी ने केशर के छींटों वाली कथा यहाँ दी है।

है। नाम लौ हो चुका है, रस मग्नता रहती है, सदैव उच्चता तथा शीतलता रंग लगाये रखती है, वाहिगुरू प्रेम वाहिगुरू रस हिलोर लेता है।

एक दिन सतगुरू जी विराज रहे थे और लहना जी चरणों को दबा रहे थे; क्या देखते हैं कि चरणों पर अपने आप ही कांटों के चुभने जैसी खरोंचे प्रकट हो रही हैं। लहना जी चकित हो रहे हैं कि यह क्या कौतुक हो रहा है? पूछने लगे कि यह क्या कौतुक हो रहा था? पूछने लगे, 'पातशाह'! यह क्या होता जा रहा है। तब गुरू जी ने उत्तर दिया:—

"एक अयाली अजा चराई॥३६॥
दोहा॥ मन एकान्त ह्वै प्रीत जुत पढ़हिं सोहला सोइ॥
कंटक झार अपार जहिं फिरत प्रेम महि होइ॥३७॥
चौपाई॥ ह्वै समीप बिचरों तिह संगा॥
लगने देऊं न कंटक अंगा॥
तहा झरट लगी इह जानहु॥
लहने! साच बचन मम मानहु॥३८॥
पढ़हि सोहला जो कित कोऊ॥
तिह समीप निश्चय मैं होऊ॥ [गुरू नानक प्रकाश]

तब श्री गुरू जी ने उसे लिवा भेजा, जब वह आया तो गुरू जी ने आज्ञा की कि 'सोहला' नामक वाणी का रात को पाठ किया करो। उसने 'सत्य वचन' कहकर प्रसन्नता प्राप्त की, तब गुरू जी ने उसे पूर्ण भक्ति प्रदान की।

कहा जाता है कि इस दिन से लहना जी के कोमल प्रेम के कारण यह मर्यादा चली कि कीर्तन सोहला नामक वाणी का पाठ रात को सोते समय किया जाये। आपका वरदान है कि जो प्रेमी गुरू नानक के प्रेम में चित्त को जोड़कर पाठ करेगा, उसकी रात सुख से व्यतीत होगी।

तीन वर्ष सिक्ख धर्म के आदर्श श्री लहना जी को गुरू की सेवा में इस तरह व्यतीत हो गये। आपकी इस समय की करनी सिक्ख मत की करनी है और इस तरह की सिक्ख धर्म की करनी है, जिसकी अपेक्षा और कोई सुन्दर तथा शुभ करनी नहीं हो सकती, इसलिये इनके पद चिन्ह हमारे लिये सिक्ख धर्म के सच्चे मित्र हैं। श्री लहना जी की करनी के साथ हमें विशेष प्रेम है। उन्होंने सिख मत हमारे लिये धारण किया था कि वे सिक्ख बनकर दिखायें तो हमें सिक्ख मत का जीवन दिखाई दे और हम धैर्य धारण कर उस मार्ग पर चलें।

धन्य श्री पावन लहना जी, कारक होकर, गुरू के सिक्खों में सिक्ख बनकर बिचरे, जिन्होंने सिक्खों वाली करनी, परिश्रम तथा टहल की। शिष्यत्व की भावना में 'गुरू नानक' की सेवा की और हमें ढंग बताया कि सतगुरू नानक की सेवा इस प्रकार की जाती है और यों उससे 'सच्च' प्राप्त किया जाता है। धन्य श्री लहना जी! जिन्होंने इस तरह किया, जिस तरह पातशाह का पुत्र पाण्डेय के पास आम बालकों में बैठकर पढ़ता है और अपनी शाहज़ादगी को नहीं जतलाता, पर सभी बालकों को शिष्यत्व का आदर्श दिखाता है। एक दिन गुरू बाबा ने आज्ञा की "अपने गाँव में चले जाओ, परिवार से जाकर मिलो"। आज्ञा

सिर पर रखकर प्रेम में प्रविधि हुए गुरू के सिक्ख धर्म के पूर्ण आदर्श रखने वाले परम पावन लहना जी चल पड़े।

आज्ञा पाकर जब श्री लहना जी गाँव में आए, सारे ग्राम ने आपका सत्कार किया, चौधरी तखतमल जी गाँव के मुखियों सहित आपसे भेंट करने के लिये आये, विनती की, "हे हमारे सिरोमणि श्री लहना जी! आप धन्य हैं! हमारा ग्राम पवित्र हो गया है, जिस गाँव के निवासी होकर आपने गुरू नानक जैसे महाबलि महापुरुष को प्रसन्न कर लिया है।"

बात क्या, अपने घर में, सुसराल में, चौधरियों के घर और सभी नगर निवासियों के घर लहना जी की उज्जवल कीर्ति शरद ऋतु की चाँदनी की भाँति फैल गई और आपका इतना सत्कार हुआ कि कि अकथनीय है। परन्तु क्या शिष्यत्व का सच्चा आदर्श श्री लहना जी, इस कीर्ति में मग्न हो गये? नहीं, हाँ कीर्ति करने वालों को आत्मसुख तो प्रदान किया और आशीर्वाद और वरदान भी स्वाभाविक रूप से ही प्रदान किया, पर क्या आप अब अपने गाँव में निमग्न हो गये हैं? नहीं, कदाचित नहीं, आपकी तो वही दशा है:–

जिना पिरी पिआरु किऊ जीवनि पिर बाहरे॥
जां सहु देखनि आपणा नानक थीवनि भी हरे॥ [सलोक वारां ते वधीक म: ४]

लहना जी के मन की जो दशा यहाँ पर हुई, कवि संतोख सिंघ जी ने उसे बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया है:–

कब इक छिन चित परचत नाही।
कब आंगन कब बाहर जाहीं।
गुर पद पंकज ढिग मन छोरा।
तन आइओ थो घर की ओरा।
कैसे होइ चैन मन मांही।
चंद चकोर चीति चित चाही।
लोचन कमल रहे अलसाये।
बिन अपने प्रीतम रवि पाए।
किस सों कहैं न रहैं उदासा।
करत न सुध ऊर काज अवासा।
रहे अलप दिन बीच खडूरे।
मन चहि चलयो निकट गुर पूरे॥ [गुरू नानक प्रकाश]

हाँ जी! हमारे सिक्ख धर्म के सिरताज और नेता लहना जी की कीर्ति इस प्रेम दशा में, आओ सभी मिलकर गायें:–

३. विषम पद

"मैं गुरू नानक के चरणों के साथ लगी हूँ" मेरे इस मन को चैन नहीं आता, रातें बड़ी हो गई हैं।

देश विदेश और आँगन भी अपरिचित सा लगता है, मेरी तो लालसा गुरू की ओर ही लगी हुई है।

दर्शन की भिक्षा हर समय प्राप्त हो, मैंने इसके अलावा सभी माँगे त्याग दी हैं। बाँह को ऊँचा उठाती हूँ, आवाज़ें लगाती हूँ, और एड़ी उठा-उठाकर देखती हूँ। जिस ओर प्यारे प्रियतम का निवास है, मेरी आँखें उसी ओर लग रही हैं। जिस धरती पर गुरू नानक का निवास है, मैंने अपनी सूरत को उसी ओर गाढ़ दिया है। अरी सखी! अब चलो, शीघ्रता से चलें, बड़े-बड़े कदम उठाकर पहुँचें। मेरे प्राण तो प्राणों में तब आयेंगे, जब उसके चरणों के साथ जाकर लगूँगी।

हाँ जी, प्यारे मित्र! गुरू नानक जी की शरण में आइए, उस शूरवीर सतगुरू जी की शरण में जिसकी वास्तविक पहचान श्री लहना जी ने की थी उसकी शरण में आइए! यदि श्री लहना जी न आते तो गुरू नानक जी की सारी पहचान ही कौन करता; क्योंकि पूरी पहचान तो वह ही कर सकता है, जिसकी दृष्टि उसी उच्चता तक ऊँची उठ सके, लहना जी की दृष्टि उतनी ऊँची उठी, जितना सतगुरू आप था, तभी तो श्री लहना जी एक दिन आप ही उतने ही बड़े हो गये। अत: हे मित्र! उस शूरवीर लहना जी ने हमें बताया कि गुरू जैसा कोई भी नहीं, अत: सज्जनो आओ! गुरू नानक की कीर्ति करें:-

गुरू नानक जैसा कोई भी नहीं;
अब और तलाश छूट गई।
जब सिर पर पूर्ण शूरवीर गुरू नानक खड़ा है,
गुरू नानक पूर्ण है।

गले से लगाने के लिये बाँहें फैलाए हुए हैं, और जी गोदी में डालने को चाहता है, फिर से जीवदान देकर प्रभु में लौ लगाना है। तो तू क्यों धृष्टता करता है? आ! शूरवीर गुरू की शरण ले, आ जा उस आशाओं को पूर्ण करने वाले की शरण में। 'नानक, नानक' नाम जप। कह 'धन्य सतगुरू नानक'। कह 'धन्य प्यारा नानक'! कह 'धन्य बाबा नानक'। 'धन्य कर्ता नानक'! 'सब पाप हरता नानकं'! कह 'प्रियतम' गुरनानकं! 'गुर कीतमं गुरनानकं' कह 'परम सुन्दर गुरू नानकं' कोमल हृदय वाले 'गुरू नानकं'। कह 'मीठे गुरू नानकं'! मन के ईठ 'गुरू नानकं'! कह! 'रक्षा कर गुरू नानकं'! पृथक मत कर गुरू नानकं'! कह 'उद्धार कर बाबा नानक'। 'पार कर दे बाबा नानक'। कह दे 'तेरा हूँ बाबा नानक'! हाँ तेरा हूँ बाबा नानक'! 'मैं पापी हूँ, पर तेरा हूँ बाबा नानक'! 'हाँ अभिशापित हूँ, पर तेरा हूँ, हाँ भूला हुआ हूँ, पर तेरा हूँ, 'हाँ भटक रहा हूँ, पर तेरा हूँ' 'हाँ फँसा हुआ हूँ, पर तेरा हूँ', 'ओ नानक! मेरा उद्धार कर, 'ओ बाबा नानक! मेरा उद्धार कर' 'हे गुरूओं के गुरू नानक! मेरा उद्धार कर' हे ईश्वर रूप गुरू नानक! मेरा उद्धार कर' 'हे मेरे पिता नानक! मेरा उद्धार कर' मैंने भूल की है, तू क्षमा कर', हे कृपा सिंघु! आकर निवास कर, 'इस हृदय में आकर निवास कर, 'कोई इस तरह की सुमति प्रदान कर दे; 'कोई ऐसी बुद्धि प्रदान कर, जिससे तेरी प्रीत निवास कर जाए, हाँ प्रीत गहरी चली जाये', जिसमें मैं सारा फंस जाऊँ। 'हे प्यारे! तू प्यारा लगे! संसार अपरिचित सा लगे! हे प्यारे! अपना प्यार प्रदान कर, हे प्रुभु द्वारा संवारे हुए! अपना प्यार प्रदान कर! 'मुझे प्रेम प्रदान कर, मुझे प्रेम का दर्शन प्रदान कर', 'प्रेम में दे, सँवारे हुए! हे प्यार पिय्रतम! प्रेम प्रदान कर'। 'हे प्यार करने

वाले! प्यार प्रदान कर'। उत्साह प्रदान कर, हे उत्साह साहस के तारे! उत्साह प्रदान कर, 'मुझे कोई अगंम का आकर्षण प्रदान कर', 'मेरे प्राण फटकते जा रहे हैं, 'मुझे अगम्य का कोई आकर्षण डाल दे', 'वह आकर्षण लगाना जो मुझे आकृष्ट कर ले'। मेरे कलेजे में कोई खींच डाल दे। जिससे मेरा हृदय भी साथ ही खींचा जाये। आकर्षण डालकर आकृष्ट कर लें, 'कोई खींच डालकर रक्षा कर ले, 'पक्की डोरी डालकर खींच ले, तगड़ी सी डोरी डालकर खींच ले। मैं सदैव गिरने वाला हूँ, 'मैं सदैव टूटने वाला हूँ, 'मैं पतन की ओर जाने वाला हूँ, मैं नीचे की ओर गति रखता हूँ, मैं बहुत भारी बोझा हूँ और प्रतिदिन पतन की ओर जाने वाला हूँ। मेरे हृदय में कोई कील चुभो दे, कोई कांटा मेरे कलेजे में चुभो दे, मेरे चित में कोई सांकल डाल दे, मेरे हृदय में कोई खूँटी लगा दे, फिर कोई पक्का तार डालकर, कोई पक्की डोरी लगाकर, कोई पक्की रस्सी लगाकर, कोई सांकल कसकर, फिर ऐसी खींच डालो कि एक बड़ा आकर्षण हो। वह डोर फिर तोड़ने पर भी न टूटे। मैं बनी हुई प्रीत को देखूँ, प्रियतम की प्रीत, हाँ, बनी, प्यारे की बनी हुई प्रीत, आपकी प्रीत का आकर्षण, गुरू जी इस कसी हुई को खींचो। खींच लगाकर खींचते जाना, खींच डालकर खींचते चलना, उस खींच में ही समा जाना है, संसार पर भी यह खींच ही ले आए, और यहाँ से ले भी यही जाए और उसी आकर्षण में ही रखना। खींच डालकर खींचते ही चलना। तू, मेरा आकर्षण इस डूबे हुए डोल को खींचना।[१]

सारांश यह है कि लहना जी यहाँ बहुत उपराम और श्री गुरू जी की इस प्रकार की अजर खींच में रहे। अंत आप रुक न सके; चल पड़े और कर्तारपुर में आकर फिर गुरू जी के ईश्वरीय दर्शन प्राप्त किये।

४. शुद्ध करना

साहिबु होइ दइआलु किरपा करे ता साई कार कराइसी॥
सो सेवकु सेवा करे जिसनो हुकमु मनाइसी॥
हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी॥
खसमै भावै सौ करे मनहु चिंदिया सो फलु पाइसी॥
ता दरगह पैधा जाइसी॥ [वार आसा म: १]

सतगुरू नानक देव जी ने संसार को जन्म जन्मान्तरों की भूल से निकाला है। लोग घरों का त्याग करके वनों में जाकर ईश्वर से भेंट के विचार में आयु नष्ट कर लेते थे, पर उनके पल्ले तो घबराहट ही पड़ती थी, अथवा नाटक चेटक सिद्धियों आदि पर अधिकार प्राप्त करते थे और अपना ऐश्वर्य बनाकर माल बड़ाई तथा ईर्ष्या में ही फंसे रहते थे। मन तथा मन का रंग तथा आत्म हिलोर किसी एक को मोक्ष की ओर ले जाया करता था। सतगुरू जी ने बताया कि यदि मन शुद्ध हो तो घर में ही परमेश्वर मिल सकता है। कर्म शुभ होने चाहियें, मन प्रेम के कण द्वारा जागृत होना चाहिए और भक्ति में जीवित हो। गृहस्थ में अतीत रहने का केवल उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि उसे करके दिखाया। गुरू

१. यहाँ पर लेखक की कविता का अनुवाद प्रस्तुत है।

बाबा जी ने सारे संसार में भ्रमण करके नौ खण्ड, और चारों कोनों का उद्धार करके कर्तारपुर में डेरा डाला, पर परिवार को पास बुलाकर गृहस्थी बनकर दिखाया। आप खेती करवाई, खेतों में खड़े होकर सिक्खों को आप श्रम करके खाने का ढंग सिखाया। सतगुरू जी ने आप कर्तारपुर बसाया। यह सभी चीज़ किए कि कहीं घरों का निर्माण करते समय, धर्मस्थान बनाते समय, गाँव बसाते समय सिक्खों को यह भूल न हो जाए कि यों परमार्थक जीवन की कोई हानि हो जाती है। फिर आप खेती करवाकर सिखाया कि यह भूल मत करो कि धर्म की कृत्य करने से सिक्ख धर्म की अन्दरूनी स्नेह भरी स्मृति नहीं रह सकती। आप काम करके सिखाया कि गृहस्थी धर्मी अथवा कृत्य करने वाला हो और फिर नाम जपे, रस ले और इहलोक तथा परलोक सुहावना हो। गृहस्थ मार्ग को 'प्रवाण गृिहसत उदास' मार्ग बनाकर दिखा दिया। सतगुरू नानक के द्वार पर इस तरह की कृत्य अथवा कमाई होती पर यह कृत्य करने वाले, अचेत कमेरे, नाम तथा वाणी से रिक्त कमेरे, अभिमानी कमेरे, हठी तथा साकट कमेरे, नहीं थे। यह सभी रसभीने नाम के प्यारे थे, जो 'परवाण गृहसत उदास' का आदर्श थे। श्री लहना जी को भी गुरू जी ने इसलिए घर भेजा था कि उन्हें (लहना जी को) गृहस्थ से पृथक करके बाहरी त्याग में नहीं डाल दिया गया। सिक्ख मत में त्याग तो सुरत में बसाया जाता है। वे धन्य हैं जो गृहस्थ में निवास करते हैं पर उनकी सुरत में त्याग का निवास होता है, पर शोक है उन पर हाय! हाय! है उन पर, जो लम्पट गृहस्थ हैं, और फिर कहते हैं कि हमें बाबे नानक का अनुयायी कहो, जो भगवंत की ओर से अचेत हैं और गृहस्थ की बड़ाई करते हैं, जो गुरू नानक के प्रदान किये हुए प्रेम तथा भक्ति में नहीं आये और त्याग की निंदा करते हैं। सतगुरू नानक ने 'परवान गिृहसत उदास' का मत चलाया। सतगुरू जी ने अपने द्वार पर जो धरती से अन्न उत्पन्न होता था, उससे लंगर चलता था, भूखों को भोजन मिलता था। भूखा चाहे किसी भी मत का क्यों न होता, जो भी भूखा होता, उसे भोजन मिलता, यही पहचान थी। यह मर्यादा केवल गुरू घर की ही है, क्योंकि अन्न, जल, गुरू जी के कथनानुसार 'परमेश्वर की देन है' मनुष्य के अहं की बात नहीं, यह सुमति प्रदान करके गुरू जी ने स्वयं यही करके दिखाया। लंगर चलाया। जो भी कोई जीव आता, वह लाभ उठाता। सिक्ख गुरू की इस आज्ञा का पालन करके इस लोक तथा परलोक में सुखी हुए, बहुत से सत्संगी लोग आते और सत्संग का आनन्द बँधा रहता।

गुरू की आज्ञा मानने के संबंध में एक साखी इस प्रकार है:–

एक बार बड़ी झड़ी लगी, लगातार वर्षा हुई, लकड़ी आदि कुछ भी प्राप्त न होता था। अगणित सत्संगी लोग आये हुए थे, जब दो दिन तक कुछ खाने को न मिला तो सतगुरू जी ने कहा–"बेटा श्री चंद! वर्षा थम गई है, बाहर जाकर वृक्षों को हिलाओ, जिससे प्रभु अपने पुत्रों के लिये भोजन बरसायें और सत्संगी तृप्त हों।" तब श्री चंद जी ने कहा:– "वृक्षों के साथ भोजन नहीं लटकते"। तब गुरू नानक देव जी मुस्कराये। लक्ष्मीचंद जी से कहा–"जाओ बेटा! वृक्षों को झंझोड़ो, जिससे भोजन बरसे"। तब उन्होंने कहा:–"वर्षा अधिक रही है और वृक्षों के साथ तो फूल भी नहीं रहे, भोजन कहाँ से बरसेगा"? तब गुरू बाबा ने लहना जी से कहा:– 'भले पुरुष! जाओ वृक्ष को झंझोड़ो; देखो! जिसने सत्संगी बनाये हैं, उन्हें यहाँ भेजा है, वह पालक आहार देगा"। लहना जी की दृष्टि में गुरू

नानक मनुष्य मात्र नहीं थे जिस तरह अत्तार की दृष्टि फूल के शरीर (आकार) पर नहीं ठहरती वरन फूल की सुगंधि पर ठहरंती है। उसी तरह उनकी दृष्टि चंद्रमा के शरीर पर नहीं ठहरती थी वरन् चन्द्रमा के प्रकाश पर ठहरती थी। जब गुरू जी ने कहा तो लहना जी को यों लगा कि मानों ईश्वरीय सौंदर्य बोला है। न तो गुरू नानक देव जी के मन में अपने परमेश्वर के पालक होने में कोई संशय था और न ही लहना जी के मन में गुरू नानक देव जी के वाक्य को ईश्वरीय शक्ति (प्रभु जी बसहि साध की रसना) के अतिरिक्त कुछ और होने का संशय था। गुरू के सिक्ख विश्वास रूप थे और विश्वासपूर्ण–ज्ञानपूर्ण शक्ति है। लहना जी–हाँ जी, संशय रहित सिक्खमत के विश्वास में पूर्ण सिक्ख–सीस झुकाकर चल दिये, वृक्ष पर चढ़ गये, झंझोड़ा, देखिये, जो कुछ वृक्षों से नीचे गिरा, सत्संगी पुरुष उसे खाकर तृप्त हुए। वह देखिए वृक्ष पर भरोसे तथा विश्वास की मूर्ति वृक्ष झंझोड रही है[1] और तनिक ध्यान लगाकर दूर देखिये, कौतुकी सतगुरू नानक खड़े होकर किस प्यार तथा कोमलता भरी दृष्टि से, हाँ जी, हमारे नेत्रों वाले गुरू नानक, लहना जी की ओर टकटकी बाँधकर देख रहे हैं और अक्लों में, सोच में, भ्रम में, लौ से मुक्त तृष्णा में बल रहित हुई सृष्टि को दिखा रहे हैं कि परमेश्वर विश्वम्भर है[2]।

'वाहिगुरू पालक है' हे मनुष्यो! इसमें विश्वास रखो! कि 'प्रभु पालक है', गुरू नानक का प्रभु 'आजीवका देने वाला है'। हाँ मनुष्यो! इस प्रभु पर भरोसा रखो। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण देने के लिये 'गुरू चेला' प्रत्यक्ष करके दिखा रहे हैं। गुरू नानक ने जो कुछ कहा, वह करके दिखा दिया, यह गुरू नानक की सर्वोत्तम बड़ाई है।

न रिजकु दसत आ कसे॥
हमारा एकु आस वसे॥
असति एकु दिगर कुई॥
एक तुई एकु तुई॥५॥ मः १॥
परंद ए न गिराहजर॥
दरखत आबआस कर॥
दिहंद सुई॥
एकु तुई एकु तुई॥६॥ महला १॥
नानक लिलारि लिखिआ सोइ॥
मेटि न साकै कोइ॥
कला धरै हिरै सुई॥
एकु तुई एकु तुई॥८॥ [वार मा: महला १]

एक ध्वनि गुरू नानक के हृदय में से उठी और लहना जी संकेत पाकर नीचे उतरे। आज लहना जी ने अपने अंदर उस शक्ति के प्रवेश का अनुभव किया जो प्रभु की ओर से

---

१. नानक प्रकाश।

२. जिनि जीऊ दीआ सु रिजकु अंबरावै॥
सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥ [सूही रविदास]

गुरू में आज्ञा की भाँति निवास करती है। गुरू नानक जी ने जपु नौसान नामक वाणी में लिखा है "करमखंड की वाणी जोरु"।

जब सुरत प्रभु की अनुग्रह के मण्डल में आती है तो आत्मबल उदय होता है। यह स्तर गिरने, दुर्बल होने तथा निकम्मे हो जाने वाला नहीं। जब प्रभु ने अनुग्रह की, तो 'ज़ोर' बल बन गया। अनुग्रहीत पुरुष आत्मा के शूरवीर होते हैं। अत: आज लहना जी शिष्यत्व के मार्ग पर चलते हुए (अनुग्रह) के 'कर्म खण्ड' में आये। आज महाबलि योद्धा हो गये, उनमें, वह वाहिगुरू, जिसने अनुग्रह किया है मन्दिर बनाकर निवास करता है। उसमें अपार सुन्दरता निवास करती है। आज सुन्दर रामनिवासी, योद्धा, महाबलि, शूरवीर लहना जी सिक्ख धर्म के पड़ाव को लाँघकर उच्च अटारी में पहुँच गये हैं। सैनिक अपने सेनापति की आज्ञा का पालन करता हुआ सेनापति की अनुग्रह का पात्र बना है और जिस दिन सेनापति ने अपने परिश्रमी सैनिक पर कृपा की दृष्टि डाली, वह सारी सेना में बलवान हो गया, सभी उसका सम्मान करते हैं।

सतगुरू नानक जी ने कोई ऐसी बात नहीं कही जिसे पहले स्वयं करके परखा न हो। यदि सिक्खों को हठयोग के अवगुण बताये, तो आप हठयोग करके दिखाया। कठोर तपस्वियों को तप के तपोगुणी दोष दिखाया तो आप तप की कमाई करके। यदि कभी उपरोक्त कथा की भाँति कोई चमत्कार बताया तो आज्ञा में और परोपकार के लिये।

इस समय की एक और साखी है जिससे पता चलता है कि गुरू बाबे ने सभी परिश्रम सिक्खों के लिये किये थे:-

एक दिन गुरू नानक नदी में घुसे, वहाँ खड़े होकर विस्मय के घर में आये, फिर वहाँ पहुँचे जिसके बारे में लिखा है:-

तिथै ऊँघ न भुख है हरि अंमृत नाम सुख वासु॥ [स: वा: ते वधीक म: ३]

लहना जी वस्त्र लेकर किनारे पर बैठे थे, जाड़े का मौसम था, आकाश पर बादल थे, वर्षा होने लगी। बैठे-बैठे लहना जी के वस्त्र भीग गये, जाड़ा लग गया, शरीर का रंग नीला पड़ गया, गिर पड़े। कोमल शरीर, सुख में आयु व्यतीत हुई थी, शरीर को जाड़ा लग गया, तत्काल ही गुरू बाबा ने बाहर आकर चरणों से स्पर्श करके उठाया तो गर्मी और सुध लौट आई। इस समय लहना जी के पूछने पर बाबा ने कहा:-

सुन बोले श्री प्रभु कृपाला॥
हऊँ घालत जो घाल विसाला॥
अनिक प्रकारन जो तप करना॥
सभ सिक्खन हित लखहु अचरना॥
जो मेरे में श्रद्धा धरिहीं॥
मनकर शब्द कमावन करिहीं॥
नानक पंथी जिनकै नाम॥
वाहिगुरू जपु रहत अकाम॥
सो जम को नहिं देखन पैहैं॥
सुख सों गति प्राप्त तिन ह्वै है॥ [गुरू नानक प्रकाश]

इन्हीं दिनों गुरू नानक जी सभी काम करवाते हुए फिर उदासीनता के वही रूप दिखाते थे कि पूर्ण त्याग का चित्र बाँध देते थे। कई बार आप अन्न नहीं खाते थे। कई बार सारी रात जंगल में बैठे रहने अथवा भ्रमण करते रहते, अथवा रोड़ों पर, रेत पर पड़े रहते, जाड़े तथा गर्मी की कोई परवाह न करते। डेरे की प्रतिदिन की क्रिया यह थी:–अमृत वेले में प्रेमी आसा दी वार का कीर्तन करते। सायंकाल को आसा राग में सोदर नामक वाणी का उच्चारण होता, दोनों समय सभी प्रेमी भोजन लंगर में से करते थे और कई सिक्ख लंगर की सेवा करते थे और खेतों में काम करते थे। हज़ारों लोग प्रतिदिन आते, दर्शन करते और प्रेम का कण पाकर जाते थे। सतगुरू जी के लंगर, सत्संग सभा, त्याग तप फिर गृहस्थ आदि एक आदर्श थे कि जिनकी बराबरी न तो हो सकती है और न ही हो सकेगी। देश-देश में आपकी महिमा हो रही थी, इधर सिंहलद्वीन और दूसरी ओर पूरवी द्वीपों–मनीपुर, आसाम, इधर चीन, तिब्बत और काश्मीर और उधर कुक्करम, अफग़ानिस्तान, बग़दाद, रूम तक से लोग तथा फकीर और साधु गरीब, अमीर सत्संग की प्राप्ति के लिये आते थे और सभी सुख प्राप्त करके जाते थे।

एक दिन खेती की सेवा करने वाले सिक्खों में यह ख्याल उठा कि जो काम करके नहीं खाते, वे सिक्ख नहीं हैं, यह अहंकार की दशा गुरू जी को अच्छी न लगी। कटाई के दिन थे, जिस समय अन्न के अँबार लगे तो सतगुरू जी ने आज्ञा दी कि इन्हें जला दो। सेवक बहुत चकित हुए, पर भरोसे वालों ने आज्ञा मान ली। सतगुरू जी ने पाठ पढ़ाया: मन को तो नम्र रखो और बुद्धि को ऊँचा रखो, यदि दाता को दान का अहंकार है और भिखारी का भिक्षा माँगने से पतन होता है, तो दोनों ही बुरे हैं। वाहिगुरू में एक मन होकर एकाग्र होवो, किसी बात से भी पतन की ओर मत जाओ, एक रस उच्च और एक रंग में प्रभु की स्मति में रहो।

घालि खाइ किछु हथहु देहि॥
नानक राहु पछाणहि सेइ॥ [सा: वा: म: ५]

पर यह करके अपने आपको अच्छा और लेने वालों को बुरा मत समझो। उस समय जो आज्ञा हुई उसका भाव गुरू रामदास जी ने इस तरह बताया है:–

इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा। [आसा म: ४]

कई सिक्खों के मन में यह विचार आया:–

फिर हमारे करने से क्या होता है? अत: परिश्रम की ओर से ढील होने लगी। सतगुरू जी के वाक्य का तो यह भाव था कि जो बल द्वारा, अहं से भरे हुए धक्के द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं, वे भूल में हैं, यह ज़ोर अथवा धक्के की वस्तु नहीं; पर लोगों ने समझा कि सतगुरू 'उद्यम तथा सावधानियों की ओर से रोकते हैं, इस भूल को ठीक करने के लिये सतगुरू ने भयानक सा रूप बना लिया। सतगुरू जी की कृपा द्वारा जो नाम रंग में रहते थे, जिन्हें दया और गुरू की कान्ति ने सुखी बना रखा था, पर जिन्होंने कमाई करके सावधानी और उद्यम द्वारा उच्चता, पक्की उच्चता प्राप्त नहीं की थी, वे घबड़ा गये, काँपने लगे। सतगुरू को आज यह सुझाना है कि 'परिश्रम तथा अनुकंपा' के क्या स्तर हैं, कैसे और कहाँ प्राप्त होते हैं?

सतगुरू धाणक[1] रूप बनाकर वन में विचरने लगे। सभी सिक्ख उदास तथा दुखी होकर डेरे पर आ बैठे। बड़ों ने एक दो दिन साथ व्यतीत किये, पर अब वे भी घर को लौट आये। जब तक गुरू की कान्ति[2] प्रकाश कर रही थी, वे मोहित थे, जब कान्ति ने रूप परिवर्तित करके तेज दिखाया, तो केवल एक लहना जी को ही प्रकाश दिखाई देता रहा।

हमें बुलबुल की आवाज़ सुन्दर लगती है, कोयल की वाणी मीठी भासती है और जल स्रोत की झंकार प्यारी लगती है, पर सिंघ की गर्जन भय उत्पन्न करती है, उकाब की आवाज़ डरा देती है, और बिजली की गर्जन हमें भयातुर करती है। वास्तव में सभी सुन्दर हैं, हमारे कान, हमारी तृष्णा के कारण भय भ्रम के स्वभाव इनमें अन्तर डालते हैं। वैसे ही गुरू नानक हरेक दशा में सुन्दर है, पर जब वह सुन्दरता का प्रकाश करता है, जिसकी हमें पहचान है, जैसे कि दया, दान, मीठा बोलना, भोजन खिलाना, आत्म रस दान देना– तब हमें सुन्दर लगता है, पर जब सोधने के लिये भय वाला रूप धारण किया, तब 'नानक की ईश्वरीय सुन्दरता' इस नवीन 'रूप मात्र' के पीछे छिप गई प्रतीत होने लगी। लहना जी की दृष्टि दया तथा परिश्रम द्वारा 'नानकीय सुन्दरता' पर ठहर गई थी, उन्हें गुरू नानक के हरेक रूप तथा रंग में 'ईश्वरीय सुन्दरता' झलक मारती थी, उन्हें कुतका तथा धाणक वेश में भी वही 'गुरू नानक प्रकाश' दिखाई देता था, उसी तरह मोहित हुए खड़े रहे। जैसे एक व्यक्ति को पानी ठण्डा, गर्म, बर्तन के रूप की भाँति गोल, लंबा, स्वाद की दृष्टि से मीठा, खट्टा कई एक अंतर वाला दिखाई देता है, पर रसायण विद्या वाले की दृष्टि उसे देखकर 'हाईड्रोजन दो और आक्सीजन एक' (H^2O) इस बात पर रहती है, वह जल की वास्तविकता को जानता है, रूप को देखकर भूल भी नहीं पड़ता। वैसे ही लहना जी ने 'धाणक रूप' और 'मोहन रूप' दोनों में 'गुरू नानक की सुन्दरता' को ही सदैव देखा और पहचाना। सतगुरू ने अब लहना जी को कान्ति से कहा--जा, आज्ञा है चला जा, पीछे मत देखना। पहले तो लहना जी ठहरे, पर आज्ञा को सुनते ही, आज्ञा मानकर आप धर्मस्थान पर आ गये। आगे प्रेमियों ने समाचार पूछा, तब आपने कहा:–सतगुरू जी की अनुकंपा महान अनुकंपा है, पर उससे बड़ी अनुकंपा सतगुरू जी की आज्ञा है। जब सतगुरू आज्ञा करता है तब उस आज्ञा का पालन करना ही उससे और अनुकंपा मांगने के तुल्य है। हम कर्तार से मांगें कि गुरू-आज्ञा का हम पालन कर सकें।

अब घबड़ाने का समय नहीं, सतगुरू जी की आज्ञा है नाम जपो। अत: तुम नाम जपो! सतगुरू जी के कौतुकों से हमें क्या? आइए नाम जपें, आज्ञा का पालन करें, यदि उस द्वारा स्वीकृत हों तो उसका स्वरूप स्थान प्राप्त होगा।

कुछ समय के पश्चात सतगुरू जी आ गये। चाहे लहना जी के कहने पर सिक्ख उदासी से निकलकर नाम जप रहे थे, पर गुरू जी ने आकर सीस झुकाने पर प्यार थपकी देने के स्थान पर एक कुतका मारना शुरू कर दिया। जिनकी सुरत प्यार थपकी के रस में गीझ चुकी थी, अब कुतके के रस को नीरस जानकर उठ भागी, चाहे यह भी अनुकंपा ही थी। जैसी

---

१. कहा जाता है कि "धाणक रूपि रहा करतार" वाला शब्द उसी समय ही उच्चारण किया था।

२. जमाल, जलाल-तेज, प्रताप वाली प्रचण्ड कान्ति।

थपकी वैसा कुतका। दोनों में दाता जो सदैव 'भलाई' है, आत्म शक्ति दान करता है, पर उसे सहन कौन करे? जिसकी दृष्टि दोनों पर जम गई हो। पर अब की बार लहना जी के आश्रय के कारण कई सिक्ख बैठे रहे।

अब कौतुकी प्यारे जी शिष्यत्व का अन्तिम उच्च रूप प्रकट करने के लिए चल दिये शिष्यत्व उस समय संपूर्ण होता है जब अहं खो जाता है। जिस तरह भाई गुरुदास ने कहा है:–

मुरदा होइ मुरीद तऊ गुर गोर समावै। [वारां भाई गुरुदास]

गुरू को इस बात की आवश्यकता नहीं कि सिक्ख उसकी आज्ञा का पालन करे, तब वह सांसारिक शासकों की भाँति बन जायेगा, गुरू को मनुष्यों को बस में करने का चाव नहीं, गुरू किसी को दास बनाने के लिए उन्हें अपने पीछे नहीं लगाता। गुरू ने सिक्खों को मन में से मैल निकालने के लिए, सिक्खों को अहंकार से मुक्त करने के लिये यह कौतुक रचे थे। सिक्ख वह जो अविद्या से दूर है। जो भूल करे, उसमें अभी कुछ कमी है। कमी को दूर करने के लिये, स्वर्ण को शुद्ध स्वर्ण बनाने के लिए, स्वर्ण की भलाई के लिए ताव पर ताव दिये जाते हैं। गुरू की सेवा करवाने तथा अधीनगी वाले सेवकों की खोज की आवश्यकता नहीं। गुरू संपूर्ण है और इसलिये इच्छा रहित, बे-परवाह है, पर ताव देकर जीवों की कमियों का मैल निकालता है।

अब गुरू नानक एक उजाड़ की ओर चल पड़े! वहाँ गये तो क्या देखते हैं कि लकड़ियों की एक चिता थी, उसके ऊपर एक शव पड़ा हुआ प्रतीत होता था, जिसके ऊपर सफेद चद्दर थी, आज्ञा हुई:–सब चले जाओ! यदि साथ रहना है तो चद्दर उठाकर जो कुछ उसके नीचे पड़ा है, उसे खाओ। जो कुछ पड़ा था वह चद्दर के नीचे शव पड़ा प्रतीत होता था। सभी काँप उठे, फिर बाहरी रूप की ओर ध्यान पड़ा, असलियत से ध्यान उठ गया। गुरू नानक विशुद्ध प्यार, विशुद्ध उत्तमता, विशुद्ध सुन्दरता है, उसकी आज्ञा भी सुन्दरता वाली होगी, यह ख्याल न आया। (वाहिगुरू क्षमा करे, हम इन सिक्खों की चरणधूली के समान भी नहीं, पर) सभी बेचारे काँप उठे, घबड़ाये, कई उठकर चल दिये कई रह गये। इन्हें सतगुरू जी ने आज्ञा दी कि चले जाइए। अत: अनेकों सिक्ख चल दिये। जाना नहीं चाहते हैं श्रद्धा में हैं पर परीक्षा सामर्थ्य से बड़ी है। जा रहे हैं, पर रोते हुए जा रहे, आकर्षण हो रहा है और घबड़ा रहे हैं, गुरू जी से नाता तोड़कर नहीं जा रहे।

अब लहना जी शेष रह गये। आज्ञा हुई, "खाओ, अन्यथा, चले जाओ"। लहना जी ने पूछा, "किस ओर से चद्दर उठाऊँ?" आज्ञा हुई, 'दक्षिण की ओर से'। जब श्री लहना जी ने चद्दर उठाई तो कड़ाह प्रसाद पड़ा था। परन्तु पुरातन जन्मसाखी में लिखा है:–

"जां गुरू अंगद चादर उठावै,
तां गुरू नानक सुता (सोया) पिआ (पड़ा) है"।

इस साखी में ही लिखा है कि गोरख आया था और गुरू जी ने उसे पूर्ण शिष्यत्व का रूप दिखाया था। शिष्यत्व के इस पूर्ण रूप को देखकर गोरख ने कहा था:–

"नानक! तेरा गुरू वह जो तेरे अंगों से उत्पन्न होगा, तब लहना जी का नाम अंगद रखा गया"।। अर्थात् जैसे तू वाहिगुरू का अनन्य तथा पूर्ण शिष्य है, इसी तरह तेरा जो

अनन्य सिक्ख होगा, वह केवल सिक्ख ही नहीं होगा, कारक तथा गुरू भी होगा, उसे तू गुरू गद्दी के योग्य मानेगा और उसे जगत का गुरू स्थापित करेगा।

सतगुरू नानक देव जी अब लहना जी पर अत्यंत कृपालु हुए, जो आपके चरणों पर पड़े हुए आपका यश गा रहे थेः–

सुनिकै परम प्रसीदे दयाला।
देखी करुना दि्ष्टि बिसाला।
कहयो जु मेरो अहै सरूपा।।
सो तुम ह्वै है परम अनूपा।। [गुरू नानक प्रकाश]

लहना जी पर अब वह कृपा हुई कि सतगुरू जी ने अब उन्हें अकाल पुरुष के निज-स्वरूप में निवास दिया। पूर्ण कृपा दृष्टि हुई। शिष्यत्व में लहना जी पूरे उतरे, अहं से मुक्त निकले, प्रेम में पूरे निकले, पूरे उतरे, अब शेष केवल एक ही अगंमी भलक की आवश्यकता थी कि वे सच्चखण्ड (स्वर्ग) में, अकाल पुरुष में, परमपद पर एक रंग हो जायें। अतः कृपालु गुरू नानक की दृष्टि से ही निहाल कर दिया। अब गुरू, श्री नानक देव जी अपने मधुर सुहावने रूप में धर्मस्थान पर वापिस लौटे, सत्संगियों ने सुन्दर दर्शन करके शीतलता प्राप्त की। सभी प्रेमी चरणों पर गिर-गिरकर आपसे मिले। अब परिश्रम तथा विश्वास ने अत्यंत उन्नति की। लहना जी ने जो शिष्यत्व का अचल आदर्श सामने रखा, उससे सबको धैर्य हुआ, साहस बढ़ गया, प्रत्यक्ष नमूना देखकर दृढ़ता बढ गई[१]। आकर चरणों से चिपट गये। धन्य श्री लहना जी; जिन्होंने सबका आश्रय रखा और इधर अपना आश्रय यह रहा कि गुरू नानक उन्हें अनुकंपा में–'कर्मखण्ड में' ले आये और उस दाते से ऊँचा उठाकर सच्चखण्ड (वाले) में मिला दिया, जो अकथनीय है। हाँ, श्री लहना जी पर उनका वास्तविक 'कारक रूप' प्रकाश करवा दिया। आनन्द आया, पूर्ण आनन्द आया। लहना जी ब्रह्म रस में लीन हैं, ज्ञानी, सफल ज्ञानी, अनुभव वाले ज्ञानी हैं, पूर्ण तत्ववेत्ता हैं, पूर्ण पद पर स्थित हैं, पूर्ण रूप आप हैं। हाँ अपना वास्तविक कारक तथा गुरू का अवतार रूप अपने आप पर प्रकाश डाल गया प्रतीत करते और प्रफुल्लित होते हैं। पर सिक्ख मण्डल में अब भी सिक्ख ही हैं और अपने सतगुरू नानक देव के विशेष प्रेम में और सत्कार में हैं और त्यों-त्यों गुरू नानक की अनुकंपा भी विशेष हैः–

जिऊँ तरु शाख निवैं फल पाई।।
तैसी गति लहिणै ठहिराई।।
देखि निम्रता परम धनेरी।।
दिन प्रति क्रिपा सवाइ बघेरी।। [गुरू नानक प्रकाश]

---

१. पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि सिक्ख परीक्षा के समय वेमुख हो गये थे, गुरू अंगद देव जी ने उन पर क्षमा करने के लिये प्रार्थना की, तब गुरू बाबा जी ने आज्ञा की 'तेरे लिये सभी को क्षमा किया'।

५. टीका

सिखां पुत्रां घोखिकै सभ उमति वेखहु जिकिओनु॥
जां सुधोसु ताँ लहणा टिकिओनु॥ [रामकली की वार राय बलवंड]

सोध वाले ताव समाप्त हो गये। लहना जी का गुरू नानक की आज्ञा का पालन करने के लिए जो अनंत प्रेम का रुख था, गुरू नानक में ईश्वरीय सौंदर्य की ओर जो उनका लगाव था, उसकी परख चद्दर उठाते ही हो गई और गुरू नानक ने तत्काल गले से लगा लिया। जन्मसाखी में आया है कि वहाँ गुरू नानक सो रहा था। अर्थात् लहना का जीवन नानक प्रेम था। जब गुरू नानक ने लहना शिष्य में पूर्ण शिष्यत्व देखा, शिष्यत्व की कमाई करते हुए अन्त में लेश मात्र अहं का अभाव भी देख लिया, जो इस शोध ने बताया कि अब सिक्ख एक पूर्ण सिक्ख हो गया है, सिक्ख नहीं तद्रूप हो गया है। हाँ संसार के हिसाब देखिए, स्वामी का पूर्ण दास सेवक कई बार स्वामी हो जाता है। पूर्ण सैनिक जब सेनापति को पूर्ण रूप से प्रसन्न कर ले तब सेना पर आज्ञा करने वाला स्थापित कर दिया जाता है। पर वह तो सांसारिक लेखे हैं, यहाँ तो आत्मिक खेल हो रहे हैं। जब लहने शिष्य में 'अल्प काल के लिये' शिष्यत्व के प्रयोजन के लिये रखी गई 'शिष्यत्व वाले में अहं का पूर्ण रूप से अभाव हो गया, तो उनमें पूर्ण रूप से गुरू रूपता प्रवेश कर गई। गुरू नानक की भाँति उनमें पूर्ण ब्रह्म ने निवास किया। यों गोविंद रूप, ब्रह्म रूप हो गये। गुरू वह है जिसमें अहं का पूर्ण अभाव है,[१] गुरू वह है जिसे परमात्मा ने गुरू बनाया है। अहं के पक्ष से पूर्ण सिक्ख श्री लहना जी में अहं का पूर्ण अभाव है। पूर्ण गुरू नानक जी की कृपा द्वारा उनमें पूर्ण ब्रह्म ने निवास किया है। अब स्थापना करनी है। अब लहना जी और गुरू नानक में क्या अन्तर रह गया? गुरू नानक में वाहिगुरू की ज्योति की गुरुता थी, अब वही ज्योति लहना जी में लसने लगी। इस लिये नानक ने उन्हें "अंगद" नाम दिया और अपना नानक नाम साथ ही प्रदान किया। अब फेरू का पुत्र लहना आत्म मण्डल में लहना मात्र नहीं वह गुरू नानक का अंग+द (आत्मज) हो गया है। वह गुरू की गोर (समाधी) में अर्थात् शरीर में समा गया है और अब उस गोर में से गुरू का आत्मज, गुरू के निज स्वरूप से उत्पन्न होकर नये जन्म में जन्मा है, वह वैस का वैसा है:–

"जोति ओहा (वही) जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ"।

श्री लहना जी में नम्रता, मधुरता, ग़रीबी, सहनशीलता असह्य को सहन करने की पूर्ण शक्तियाँ थीं, उनका प्रेम असीम था और उसमें अहं का अभाव था। रस, स्वाद, प्रेम रंग के हिलोर अकथनीय थे। शरीर में से अमृत के फव्वारे छूटते थे, आत्मिक ओज अर्थात् आत्मिक शिखर उन्नति उनमें से भड़क भड़ककर लस रही थी। इस सभी रंगों को देख देखकर प्रेमी सत्संगी अनुमान लगा रहे थे कि यह जो हम में हम जैसा ही सिक्ख था और है भी, यह जिसने

१. गुरू नानक जी का अपना वाक्य है:–
"होंदा फड़ीअग नानक जाणु॥
ना हऊ ना मैं जूनी पाणु॥"
अर्थात् गुरू नानक पूर्ण रूप से हऊमै रहित है।

सबसे निम्न जाकर, अपने आप के अहंकार का अत्यंत अभाव दिखाया है, यह जो आज्ञा का पालन करने से आज्ञा से ही तद्रूप हुआ है, यह जो चकमक पीछे आपे का त्याग करके खिंचा जाता है, आप चकमक हो गया है। हो न हो यह एक राजकुमार ही तो हम ग़रीबों में नहीं था, जिसे हम अपने जैसा ही समझते रहे हैं? जिसे धीरे से सिंहासन पर जाकर बैठना है और हमें भी सिक्ख धर्म प्रजा तथा शरण में समाकर सुख प्राप्त करने हैं। यह विचार प्रसन्नतादायक था, सत्संगी लोग प्रसन्न थे, कि गुरू उनका यह अनुमान पूरा करे। यह विचार तथा इस पर यह प्रसन्नता मनों में ही नहीं छिपी रही, सत्संगियों में यह कानों कान बातें भी होने लगीं और माता सुलक्षनी जी ने भी सुन लीं। माँ का प्यार अपार कोमल वस्तु है, वह सुनकर धर्मस्थान पर आई और सतगुरू जी के चरणों में सीधी विनती कर दी कि सत्संगी लोग यह कह रहे हैं और मुझे यह अच्छा नहीं लगता। अपने पुत्र भी अच्छे हैं। बड़ा तो है ही उदास वृत्ति वाला और अतीत, और छोटा लाल भी सत्संगी है। पुत्रों को यह वस्तु प्रदान कीजिये। यह आपका इहलोक तथा परलोक का ऐश्वर्य कुल में ही रहना संसार की मर्यादा है। सतगुरू जी सुनकर चुप हो रहे।

इस समय गुरू जी धर्मस्थान पर बैठे थे, एक बिल्ली भागती हुई घबराई हुई गुज़री, एक मृतक चूहा उसके मुँह में था जो वहीं पर गिर पड़ा। सतगुरू जी ने, श्री चन्द से, जो अभी पास आकर बैठा था, कहा–"बेटा! इसे बाहर फेंक आ"। श्री चन्द के चेहरे पर ग्लानी दिखाई दी, अपने बड़प्पन का ध्यान आया कि कोई दास पास है जो उठाकर फेंक दे। इनकी इस तरह की दशा समझकर श्री सतगुरू जी ने लक्ष्मीचन्द जी को संकेत किया, वे शीघ्रता से बाहर की ओर दौड़े कि किसी सिक्ख को बुलाया जाये जो आकर यह क़ार्य करे।

इतने में श्री लहना जी अन्दर आये तो गुरू ज़ी ने उन्हें आज्ञा दी और वे जगत के चन्द्र उसी समय आज्ञा का पालन कर आए। तब सच्ची प्रीति, प्रीत में मरने वाले लोगों की प्रीति, प्रीत में अपना न्योछावर करने वालों की प्रीति समाधी में समाए हुए व्यक्तियों की प्रीत–के ज्ञाता। सतगुरू जी ने कहा:–

मूले सुता! पिखहु मन गुनीए!
ए निज सुत कै पर सुत जनीए? [गुरू नानक प्रकाश]

हे मूले की पुत्री! देखो और मन में विचार करो कि इस लहना जी को अपना पुत्र समझें कि पराया पुत्र समझें?

यह कहकर आपने माता जी को समझाया कि जल नीचे स्थान पर ही ठहरता है, जहाँ पर सच्ची नम्रता है वहाँ अहं नहीं होता, जहाँ पर अहं वहाँ पर उच्चता, वहाँ देन रूपी नीर के ठहरने का स्थान नहीं। उपरोक्त दृष्टान्त तो एक कौतुक मात्र था, उसका भाव यह बताने का था कि पुत्रों में अहं है और उनका आज्ञा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं और वाहिगुरू रूपी प्रवाह ने वहाँ निवास करना है जहाँ अहं नहीं होता और प्रभु की आज्ञा के साथ विलगांव नहीं होता–एकस्वरता होती है। हाँ, जो तरब बाज के तार से एक स्वर हो जाता है, वही बाज में से प्रकाश डालने वाले स्वर के साथ वह आवाज़ निकालता है, दूसरे बेस्वर तरब वह स्वर नहीं देते।

सतगुरू जी ने सारा कुछ बताकर फिर गुप्त आत्मिक रहस्य बताया:–

नहि किसहूँ के कर बिखै सभ करतार अधीन।।

जिस पर करुणा दृष्टि है तिनहि वसतु इह लीन।। [गुरू नानक प्रकाश]

मूले सुता, अर्थात मूली जी की पुत्री, सुलक्षणी जी, (श्री गुरू नानक देव जी की पत्नी) सच्च को प्रत्यक्ष रूप से देखकर, मानकर, तथा सीस झुकाकर घर को चल दीं। चाहे वे उदास निराश होकर गईं, क्योंकि पुत्र प्रेम ने उदासी नहीं हटने दी पर सच्च को सच्च देखती हुई और विचार करती हुई गईं। श्री गुरू जी ने इसके पश्चात भी दो तीन अवसरों पर फिर माता जी के सामने पुत्रों तथा लहना जी की परीक्षा ली, जिनसे माता जी को और स्पष्ट हो गया कि पुत्रों के अन्दर अभिमान है और लहना जी का अन्दर इससे खाली है और ब्रह्म से परिपूर्ण है, गुरू नानक की प्रीत 'चितहि समाया चित' है और आत्म रसज्ञता में श्री पावन लहना जी श्री गुरू नानक देव जी की भाँति ही हो रहे हैं।

जब सिक्खों में गुरू नानक का यह परम गुण स्पष्ट हो गया कि गुरू नानक सच्चा न्याय करने वाला है, सच्चा तोल तोलता है और सच्च प्रदान करता है, पुत्रों को पुत्र होने के नाते नहीं, पर गुणों के कारण आदर देने को तैयार है और न होने के कारण पुत्रता के मोह की नदी भी सूखें पाँवों से चलकर आ सकता है, तो विचार आया कि देखें श्री लहना जी और भाई बुड्ढ़ा जी में से किस पर अनुकंपा होती है।

बूड़ा और बुड्ढ़ा जी जीव श्रेणी में से ऊँचे उठकर ऊँचे पद पर गये और परम उच्च पद पर पहुँचे सिक्ख माने जाते थे, इसलिए इनकी ओर दृष्टि पड़ती थी। लहना जी प्रेम तार में पिरोये हुए सिक्ख थे, बूड़ा जी सेवा में लगे रहते थे। बुड्ढ़ा जी बड़े सिक्ख थे पर लहना जी की उच्चता उनसे भी ऊँची थी।

एक रात को तीन बजे श्री गुरू जी जागकर बैठे हुए थे, सिक्ख भी धर्मस्थान पर आ बिराजे। श्री गुरू जी ने कहा, "बूड़िया! कितनी रात है" तो उसने उत्तर दिया, "सवा पहर रात शेष है"। श्री गुरू जी ने कहा, "नहीं, पहर शेष है। भली भाँति देख, तारों की परख कर और आकर बता"। बूड़ा जी ने वैसे ही किया और कहा, "पातशाह! सवा पहर है"। तीन बार सतगुरू ने कहा, आपने तीन बार ही वही उत्तर दिया। फिर लहना जी को आज्ञा हुई। वे कहने लगे: "जगत गुरू स्वामी काल तेरा किया हुआ तेरी आज्ञा में है, आपने जितनी रात व्यतीत करवाई है, उतनी व्यतीत हुई है, और जितनी आपकी आज्ञा है, शेष है।" भाई बूड़े की दृष्टि थी कि गुरू नानक पूर्ण महापुरुष प्रभु का अवतार हैं, पर लहना जी की दृष्टि उनकी (ईश्वरीयता) ईश्वरीय रंग पर जमी रहती थी और एक क्षण पृथक नहीं होती थी। उस समय रात पहर भी शेष रहती थी, बुड्ढ़ा जी ने अपने हिसाब पर ध्रुवा बाँधा, श्री लहना जी ने काल को किया हुआ जानकर, गुरू जी के कर्ता जानकर अहं को उसके बीच में नहीं आने दिया। इस तरह की परिक्षाओं से भी स्पष्ट हो गया कि गुरू नानक की गद्दी संसार से कोई गद्दी नहीं, यह तो धुर की वस्तु है और स्वामी ने ही इसे लेना है, वह लेने वाले श्री पावन "लहना जी" ही हैं।

एक दिन सतगुरू जी स्नान करने के लिये नदी में गये, लहना जी किनारे पर बैठकर गुरू नानक स्वरूप के ध्यान में ऐसे मग्न हुए कि मानो शरीर से विदेह हो गये। गुरू नानक

जी स्नान करके आ गये। श्री लहना जी को सुध ही नहीं। उनकी गोदी में से जगत गुरू ने अपने आप ही वस्त्र उठाये और पहन लिये, पर लहना जी को इस बात का पता न चला। श्री गुरू जी काफी समय तक खड़े होकर प्रतीक्षा करते, देखते, प्रसन्न होते और विस्मत होते रहे, पर लहना जी मग्न टिके रहे। अब श्री गुरू जी ने श्री पावन लहना जी को उनकी लौलीनता के ठिकाने में अंदर आत्मा की ओर से झंझोड़ा, तब व्याकुल होकर आपजी के नेत्र खुले और श्री गुरू जी के चरणों से लिपट गये।

गुरू जी अब बाँह से पकड़कर प्रेम भरे लहना जी को साथ लेकर धर्मस्थान पर आये; सत्संगी भी आ गये, गुरू जी ने पुत्रों तथा परिवार को भी बुलाया। अपने स्थान पर श्री लहना जी को बैठ जाने की आज्ञा देकर श्री गुरू जी ने पाँच पैसे और एक नारियल आगे रखकर और परिक्रमा करके सीस झुकाया। फिर–

हाँ जी, जगत गुरू ने अपने सुसजित माननीय पूर्ण सिक्ख के आगे आप जगत-गुरू होकर सीस झुकाया, सिक्ख को गुरू बना दिया। सिक्ख के आगे गुरू झुका, 'टीके की वार' में इसे उल्टी गंगा बहाना[१] लिखा है। यह उल्टी गंगा लहना जी ने किस तरह सहन की? आज्ञा पाकर बैठे तो रहे, पर अपने प्रियतम जगत गुरू स्वामी का सीस झुकता देखकर तड़पकर बोल उठे:–

तुम करतार सरब सिरताजा,
परम परमेश्वर श्री महाराजा।
जिसु तनु कऊ तुमने सिर नयायो,
उचित बड़े दुख मैं लखि पायो।[२] [गुरू नानक प्रकाश]

---

१. 'होरिओ गंग वहाईऐ...'। [टिके की वार, पऊड़ी ४]

२. यह बात कि श्री गुरू अंगद देव जी के चरणों के अंगूठे पर कोई फोड़ा था, उनके गुरू गद्दी पर विराजमान होने पर उनके विरोधियों, निन्दकों द्वारा चलाई हुई निन्दा है, जिसे अनजान पर प्रेम अधीन सिक्खों ने सुन्दर अर्थों में लाने का यत्न किया है। महिमा प्रकाश (काव्य) में, जो गुर प्रताप सूरज ग्रन्थ से कोई तीस वर्ष से अधिक पहले का रचित ग्रन्थ है, यह कथा नहीं दी हुई, महिमा प्रकाश में गद्य में, जो महिमा प्रकाश (काव्य) से भी पुराना है, पर यह बात नहीं दी हुई और न ही भट्टों के सवैयों में इसका ज़िक्र आया है। बल्कि यह बात प्रसिद्ध है कि सवेरे जिस रोगी पर गुरू अंगद देव जी की पहली दृष्टि पड़ती थी वह नीरोग हो जाता था। भट्ट भी कहते हैं:–

'जा की द्रिसटिं अमृित धार कालुख खनि उतार...'।।

गुरू प्रताप सूरज रास १ अंशु १० के अंक ४ और ५ में यही बात कवि जी आप बता आये हैं। फिर टीके वाली वार में लिखा है कि 'जोति समाणी जोति माहि...'।

पुनः–'जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फैरि पलटीऐ।' जब श्री गुरू नानक देव जी ने काया बदली है तो फिर फोड़े का स्थान कहाँ है। फिर भाई गुरुदास जी लिखते हैं: 'जोती जोति मिलाइकै सतिगुर नानक रूप वटाइआ'। 'काया पलटि सरूप बनाइआ'।। [वार १ पौड़ी ४५] तथा, 'गुर अंगद, गुर अंग ते अंमितृ बिरख अंमृित फल फलिआ'। [वार २४ पौड़ी ८]। यह सारे प्रमाण आपके शरीर को गुरू नानक जैसा नीरोग तथा स्वर्ण की भाँति प्रकट करते हैं। सतगुरू ने कहा है: "नाम अऊखधु जिह रिदै हितावै।। ताहि रोगु सुपने नहीं आवै।" और गुरू अंगद जी तो नाम से हित करने से बढ़कर, सदैव नामी के साथ अमेद थे। यदि कहा जाये कि उन्होंने इतना कष्ट अपने लिए रख

श्री गुरू जी ने उनके मुँह के आगे हाथ रखकर कहा:—बसे भले पुरुष! मुँह से कुछ मत कह।

जो उचरहु सो होवहि साची।
पुनअस करहु न गिरा उबाची।
आइस मानह, अस मत मेरो।
तू सभ को गुर, ह्वै जग चेरो।
अंगद नाम आज ते होही।
निज अंगन ते कीनो तोही।
सिमरन सतिनाम प्रगटावो।
जहिं तहिं सिक्खी राहु चलावो। [गुरू नानक प्रकाश]

यह वरदान प्रदान करके लहने से 'गुरू अंगद' नाम प्रदान किया। फिर सतगुरू ने भाई बुड्ढे से कहा—मेरे प्यारे। तू सिक्खों में सिरोमणि सिक्ख है, तू गुरू अंगद के भाल पर गुरूता का तिलक लगा दे। बुड्ढे ने बड़े प्रेम में उठकर तिलक लगाया। फिर गुरू नानक देव जी के चरणों पर सीस रख दिया। फिर गुरू नानक देव जी ने सभी सिक्खों तथा परिवार को गुरू अंगद जी के आगे सीस झुकाने को कहा, सबने सीस झुकाया, पर—

'पुत्री कऊल न पालिओ करि पीरहु कंन मुरटीऐ'।। [रामकली वार सत्ता बलवंड]

६. खंडूर

'सा वेला कहु कऊण है जितु प्रभु कऊ पाई।।
सो मूरत भला संजोग है जितु मिलै गुसाई'।। [जैतसरी वार म: ५]

कुछ दिनों के पश्चात श्री गुरू जी ने गुरू अंगद जी को आज्ञा की कि आप अब खंडूर[१] में जाकर रहो। गुरू जी से बिछुड़ना 'प्रीत प्रेम तन खच रिहा' गुरू अंगद जी के लिये असह्य था, पर आज्ञा मानकर चल दिये, चलते समय फिर दर्शन की आज्ञा माँगी, तब आज्ञा हुई, 'हम तेरे पास आयेंगे, तुम हमारे पास मत आना'।

श्री गुरू अंगद देव जी आज्ञा पाकर चले गये, खंडूर में आये। विरह वियोग में भीगे हुए गुरू अंगद जी का इस तरह समय व्यतीत होने लगा, सारा दिन लौलीन बैठे रहते। सायंकाल के बाद कुछ थोड़ा सा खाकर शहर से बाहर चले जाते और (जहाँ पर अब तपियाणा है) वहाँ बैठकर वाहिगुरू में लौलीन सहज समाधि लगाकर टिके रहते। प्रात:काल स्नान करके फिर गाँव में माई इराई के घर में एक कोठड़ी में आकर बैठ जाते। असह्य

लिया था तो गुरू नानक देव जी की आज्ञा का अपमान होता है जो श्री अंगद देव जी कभी भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि गुरू नानक देव जी तो मुँह के आगे हाथ रख रहे हैं कि कोई वाक्य अपने आपके विरुद्ध मत कहो। इस आज्ञा के होते हुए, जिसका स्पष्ट भाव है कि वह गुरू अंगद जी में कोई कष्ट नहीं देखना चाहते थे। श्री गुरू अंगद देव जी कैसे अपने लिए दुख रख लेते यदि दुख रखना गुरू नानक की आज्ञा के विरुद्ध था? अत: इस तरह की साखियाँ मानने योग्य नहीं हैं।

१. खंडूर में चौधरी महिमा और माई विराई उसकी पत्नी, गुरू नानक के परम प्रेमी सिक्ख निवास करते थे। आपको इनके पास भेजा गया था।

वियोग के दुखदाई आठ महीने गुरू अंगद जी ने प्यारे सतगुरू के ध्यान में मग्न रहकर व्यतीत किये। अब आकर्षण और बढ़ा, इतना कि सतगुरू नानक देव जी प्रेम के विरद वाले रुक न सके। धीरू तथा सधारना नामक सिक्खों को साथ लेकर गुरू नानक देव जी आप खंडूर पहुँचे। गुरू अंगद जी इस समय गुरू नानक प्रेम में मग्न होकर बैठे थे, गुरू नानक देव जी ने वह अंदर की लौ बाहर की ओर फिराई, तो आपके नेत्र खुले। गुरू अंगद देव जी के नेत्र खुले तो वही आपे का आपा सतगुरू जी को सामने देखा। देखते ही रौंगटे खड़े हो गये, शरीर काँप गया, नैन सजल हो गये और विह्वल होकर चरणों पर गिर पड़े। सतगुरू जी ने प्यार दिया, गले से लगाया। काफ समय तक दोनों ज्योति एक रूप हो आनन्द मग्न रहीं।

धन्य गुरू नानक देव जी!
धन्य गुरू अंगद देव जी!

गुरू नानक देव दो मास वहाँ पर रहे। सारा दिन सत्संग वार्तालाप होता। गुरू अंगद देव जी के कठिन तप पर श्री गुरू नानक देव जी ने कहा, 'हमने सारी कमाई तुझे दे दी है, तू तप क्यों करता है'। पर गुरू अंगद जी तो गुरू नानक के प्रेम में निमग्न बैठा करते थे, इस रस भरी प्रेम लौ में से किस तरह बाहर निकला जाये? गुरू नानक देव जी गोविंद रूप हैं, गुरू अंगद देव जी यों गोविंद मग्न सहज समाधि में रहते हैं। यही लौ तो प्राणाधार है। गुरू नानक देव जी दो महीनों के पश्चात कर्तारपुर को चल दिये। लहना जी साथ जाना चाहते थे पर गुरू अंगद देव जी की दशा वही लालसा, वही चाह, वही लौ, वही मग्नता वाली थी।

पहले चक्कर को चार महीने व्यतीत होने वाले थे, गुरू अंगद जी का भरोसे में अपनी जढ़ पक्की किए बैठा प्रेम-स्वीकार हो चुका प्रेम, पूर्ण पुरुष का प्रेम-इस लालसा में था कि गुरू नानक देव जी जो फिर तीव्र आकर्षण हुआ। प्रेम एक महान शक्ति है जो वाहिगुरू जी को वश में कर लेती है:-

"जऊ हम बाँधे मोह फास हम प्रेम बंधनि तुम बाँधे"॥ [सोरठ रविदास जी]

सधारने सिक्ख के घर में बैठे हुए गुरू बाबे का आकर्षण हुआ। अकेले ही वृद्ध बाबा जी उठकर चल दिये और शनैः शनै खंडूर आ गये। अमृत वेला था, प्रेम भरे, प्रेम प्रविधे तपियाणे वाले स्थान पर गुरू अंगद जी लौ लगाए बैठे थे, कि जगत रक्षक जी ने आकर सीस पर हाथ रखा। आप विह्वल होकर चरणों पर गिरे पर प्यार वाले ने शीघ्रता से उठकर छाती के साथ लगाया और सिर पर अति कोमल दैवी प्यार दिया। श्री गुरू नानक देव जी प्यार देते हैं। अनुकंपा और सत्कार का दोनों ओर से आश्चर्यजनक चित्र खिच रहा है।

फिर उस स्थान से खूंडर में माई के घर आये, वहाँ पर ठहरे। कई दिन वहाँ पर ठहरे। कई दिन वहाँ हर ही रहे। श्री गुरू नानक देव जी ने देखा कि गुरू अंगद देव जी का शरीर दुबला हो रहा है, चेहरे की ज्योति और तेज तो असह्य है और वियोग का प्रभाव और उग्र तप का प्रभाव शरीर को कुछ दुर्बल कर गया है। इसलिये पंद्रह[१] दिन श्री गुरू जी फिर

१. तवारीख खालसा।

वहीं ठहर गये। अब प्रतिदिन श्री गुरू अंगद देव जी को आप इस तरह के उपदेश किया करते, जिससे वे सदैव उत्साह में रहें, परन्तु जिस दिन सतगुरू जी तैयार हों, गुरू अंगद जी की विह्वलता उन्हें जाने न देती। दोनों गुरू हैं, दोनों गुरू अवतार हैं दोनों पूर्ण योगी हैं, दोनों पूर्ण ब्रहाज्ञानी हैं, दोनों अवतार पूर्ण संत हैं, फिर देखिए कितना प्रेम है।

इस प्रकार एक दिन गुरू नानक जी चल पड़े और बहुत ही प्रसन्न होकर विदा हुए, क्योंकि आज उन्होंने श्री गुरू अंगद जी को चलते समय प्रसन्न तथा उत्साह में देखा था। अपनी सारी शक्ति, सारी प्रसन्नता इस समय जो पहले दे चुके थे और प्रदान की और फिर पखोके नामक गाँव में सधारन नामक सिक्ख के घर जा रहे और यहाँ से फिर कर्तारपुर को विदा हुए।

❑ ❑

१० मखदूम बहाउद्दीन

पीर मखदूम अपने आप में रोता है:-

फकीर रोता है; धाड़ मारकर रोता है और कहता है कि हे ईश्वर! फिर क्या बात हो गई है कि ईश्वरता उलट गई है। यात्रा समाप्त हो चुकी थी, मेरी बाजी जीती जा चुकी थी, पर जो गुरू ने कहा था, वे अभी दर्शन नहीं हुए। मैं उस प्यारे सौन्दर्य के दर्शन कर रहा हूँ, मुझे जिसके प्रकाश में चलने के लिये तैने कहा था वह कोई और ही सूरत दीख पड़ती है। हाँ, हाँ, वह मुसलमान नहीं, मुसलमानों की सी उसकी शक्ल भी नहीं, पर अदेश से आवाज़ आती है, 'यह सृष्टि का स्वामी' है। यह सौंदर्य, यह सौंदर्य से आया है और सौंदर्य प्रदान करके भूले हुओं का, यह सौंदर्य का स्वामी, सुमार्ग पर चलाता है'।

चेला-'हे पीर जी! आप क्यों रोते हैं? आपके नैनों से नीर झर रहा है, आप जगत का उद्धार करने वाले हैं', पर श्रीमान्! आपका हृदय क्यों डरता है? यदि आपको कोई कष्ट है, यदि आपको हमारी आवश्यकता है, तो हमारा शरीर आपकी सहायता के लिए हाज़िर है, आपका प्रत्येक दास यही दम भरता है।

पीर-मुझ पर न तो कोई खेद आया है और न ही कोई कष्ट आया है, मैंने अदेश में जाकर देखा है, वहाँ तो कोई और ही रंग हो गया है। कोई अजब सूरत है, बड़ी प्यारी मूर्ति है, आकाश में उसका प्रकाश बहुत फैल रहा है। मखदूम को उसके प्रकाश में पार जाना है, हाँ, हाँ, वह हिन्दू की सूरत बहुत सुन्दर है। वह मुसलमानी कट्टरता वाली सूरत नहीं है, पर वह सूरत प्रेमपूर्ण है और सारा बल लगाकर आकर्षण कर रही है।

चेला-मुसलमान के बिना दूसरा कोई भी स्वर्ग में नहीं आ सकता। जो मुसलमान नहीं है वह अदेशी कैसे हो सकता है?

मखदूम-बात तो यह यों ही है पर जो मैंने आँखों से देखा है, वह अकथनीय है। मुझे तुम नास्तिक तो कहोगे, आज तुम्हारा विश्वास मुझ से दूर हो जायेगा।

चेला-कोई चतुर काज़ी अथवा मुल्ला बुलवा लीजिये और अपना संशय मिटाने के लिये उसके साथ भली-भाँति विचार कर लीजिये।

मखदूम-मेरी मृत्यु का समय निकट आ रहा है, थोड़े दिन शेष रह गये हैं, विचार करने का समय ही नहीं रहा। मैं हरेक क्षण उसी सूरत में मग्न रहता हूँ और उसी के दर्शनों के लिए तरसता हूँ, उसी के प्रकाश से मैं भवसागर से पार हो जाऊँगा। अच्छा किसी बुद्धिमान को लिवा लाओ जो धैर्य बँधाये, मैं पत्र लिखकर देता हूँ, जो जाकर उसे पहुँचा दे। वह उससे मेरे पत्र का उत्तर लाये और वहाँ जाकर उसके रंग देखे; वही आकर तुम्हें बतायेगा और तुम्हारी तसल्ली करायेगा।

चेला-(एक विद्वान को लाकर) हे स्वामी जी! एक विद्वान को खोजकर लाये हैं। जो

संदेश आप देना चाहते हैं, इसे लिखकर दे दीजिये। यह शीघ्रता से जायेगा और शीघ्र ही उत्तर लायेगा, हमारे मन का संशय मिट जायेगा और सुखी हो जायेंगे।

मखदूम–लो बुद्धिमान बालिक! यह पत्र लेकर जाओ; गुरू नानक की रावी नदी के किनारे पर खोज करना। उनके हाथ में यह पत्र देना और यदि कहें तो पढ़कर सुना देना, एक तुक को कंठस्थ कर लो और इसे जाकर ज़बानी सुना देना:–

"हमने जो बोझा लादा है, हमारा भी कुछ करो"।

दूत–(गुरू के स्थान पर पहुँच कर स्वागत) मैं मुलतान से चलकर कर्तारपुर आया हूँ, यह अद्भुत पत्र लिखा है, एक ही तुक सुनाई है। मैंने गुरू नानक का ठिकाना खोज लिया है, उसे सब सृष्टि सारी जनता मानती है। हिन्दू तो मानते ही हैं पर इस गुरू को झुकने वाले इसके मुसलमान चेले भी मैं देख रहा हूँ। पर मैं देख तो लूँ कि यह वैसे ही है कि किसी शक्ति अथवा करामात वाला है'। पहले उसकी परीक्षा तो कर लूँ फिर उसके द्वार पर जाऊँगा। यदि वह प्रभु का सौंदर्य शक्ति वाला है, जिस ईश्वर का सौंदर्य आकाश से पृथ्वी तक छाया हुआ है, तो मुझे इस स्थान पर दो कोस की दूरी पर बैठे हुए को लेने के लिये कोई दास भेज दे। वह दास मुझे आकर कहे, "क्या तू मुलतान से गुरू नानक के द्वार पर आया है? तुझे नानक ने बुलाया है।" मैं सायंकाल तक यहाँ बैठकर प्रतीक्षा करूँगा। मैं इस करामात को देखकर तब उस द्वार पर जाऊँगा।

दास–(गुरू नानक देव जी ओर से आया हुआ)–हे मखदूम के दास! हे सोच विचार वाले विद्वान! 'तू मुलतान से संदेश लेकर आया है? संसार तथा धर्म का प्रभु स्वामी गुरू तुझे बुला रहा है, तेरे भाग्य जाग्रत हुए हैं, तुझे गुरू ने बुलाया है।'

दूत–(दास से) मैं अभागा था, पर अब आकर मेरे भाग्य जागे हैं, नानक पूर्ण गुरू है, हृदय को जानने वाला है।

(गुरू के समक्ष जाकर)–हे गुरू! आकाश अथवा धरती पर तेरा ही सौंदर्य है। हे नानक गुरू गोसाईं। धरती पर भी तेरा ही प्रकाश है। तू ही सूर्य को प्रकाश दे रहा है, और चन्द्र को भी तू ही प्रकाश देने वाला है और तारों ने तुझसे ही प्रकाश लिया है। मैं तेरी ही खोज करता हुआ दूर देश से आया हूँ, मेरा शरीर अवगुणों से भरा हुआ है और मैं बावला तथा गुणहीन हूँ। मैं तेरे द्वार के योग्य नहीं हूँ, न दर्शन प्राप्त करने के योग्य ही हूँ, मुझ में ऐसी क्षमता नहीं कि आपकी उपस्थिति में उपस्थित होऊँ। आप दया के सागर हैं, कृपा के निधि हैं। अनुग्रह के पुञ्ज दाता और अनुकंपा के स्वामी! आपका विरद है तारना, हे रक्षक! आपका ही आश्रय है, दासों को निवाजने का आपका विरद है। आप शरण में आने वालों का पालन करने वाले हैं, दुर्बलों के रक्षक हैं, भटकने वालों के सहारा है, भूले हुओं की अगुवाई करने वाले हैं, मैं दीन होकर आपके दर्शन के लिये आया हूँ, मेरे अवगुणों को आप मत देखना, हे प्यारे! तेरा विरद है अवगुणों को ढाँकना। मेरी परीक्षा मत लेना, मेरे हृदय की परख मत करना, मेरे अवगुणों को मत जाँचना, मेरे पापों की ओर मत देखना। आपके असंख्य पापियों को चरणों से लगाकर तार दिया है, जहाँ पर इतना जगत समा गया है, वहाँ पर मुझे भी समा लेना। यदि मेरे कर्मों के अनुसार मेरा फैसला हो तो

मेरा अन्य कोई ठिकाना नहीं, मेरे अवगुणों के अनुसार मेरे लिये कोई आश्रय ही नहीं रहता। अपने विरद के लिये, अपनी दया के कारण, हे गुरू जी! अपने आंचल के साथ लगाकर मेरा उद्धार कर लीजिये। हे त्राण प्रदान करने वाले! हे जगत रक्षक! मेरी रक्षा कीजिये! मेरी यही दुहाई है:–अपने चरणों में मुझे स्थान दीजिए। अपने चरणों में समा लीजिये, चरणों से लगा लीजिये, चरणों में बसा लीजिये, चरणों में समा लीजिये।

गुरू नानक देव–

'से दुख आगै जि भोग बिलासे॥
नानक मुकति नहीं बिनु नावै साचे॥ [मलार मः १]

दूत–हे गुरू गोसाई! रक्षा करना। भोगों के कलंक मिटा देना, हे जगत के स्वामी! क्षमा करना। 'विलास की काई' को मिटा देना। अपने विरद के कारण दुखों से मुक्त कर दनो, अपनी शरण में समा लेना, अपनी शरण में समा लेना।

गुरू जी–हे भाई! निहाल हो जा, निहाल हो जा।

भाई! जो पत्र मखदूम ने भेजा है, वह हमें दिखाना।

(पत्र लेकर, उसे पढ़कर आप उसके ऊपर लिखकर)

हमनें पत्र पढ़ लिया है, उसके ऊपर उत्तर लिख दिया है, अब धुर से उत्तर आया है, उसे लेकर निहाल हो:–

"जो भरिआ सो लदसी सभना हुकम रजाइ॥
नानक ते मुख उजले चले हुकम रजाइ[१]॥
भुक्तु मुक्तु।

जाकर यह पत्र दो और कहो कि तैयार हो जाये, चलो, हम भी चालीस दिन के बाद आवेंगे। यह प्यार शब्द गुरू जी ने कहा, ईश्वरीय ध्वनि लग गई, प्यारे गुरू नानक ने उच्चारण किया:–

धनु जोबनु अरु फुलड़ा नाठीअड़े दिन चारि॥
पबणि केरे पत जिउ ढलि ढुलि जुंमणहार॥ [सिरी राग मः १]

(दूत पत्र लेकर आया और मखदूम को आकर दिया)

मखदूम ने कहा–हे लोगो सुनो! इस बुद्धिमान से पूछो, यह आँखों से देखकर आया है पूछो क्या साक्षी देता है। हाँ, हाँ, हे लोगो! क्या करूँ, उदासी छा गई है, हाय! वियोग बहुत बुरा है, हाय यह वियोग क्यों है?

चेले कहने लगे–हे हमारे पूज्य पीर जी! आपकी बात सच्ची है, जो प्यारे ने देखा है, वह साक्षी सच्ची है। यह स्वयं बुद्धिमान पुरुष है, आँखों से देखकर आया है, यह साक्षी भरता है कि गुरू पूर्ण है। नानक सौंदर्य ही सौंदर्य है, वह सारा सौंदर्य है, वह तो ईश्वरीय सौंदर्य है, हाँ वह ईश्वरीय सौंदर्य है। उसके द्वार पर हिन्दू, मुसलमान सभी जाते हैं, वह सबकी लौ प्रभु के साथ लगवा देता है। हमें विश्वास हो आया है, फिर आप रोते हैं, अब कौन सा कारण शेष रह गया है, आपने क्यों अश्रुओं की झड़ी लगा रखी है?

१. यह गुरूवाणी पुरातन जन्मसाखी में दी हुई है।

मखदूम–मेरी यह चाह थी कि किसी तरह आपसे (गुरू नानक) पहले न जाऊँ, यहीं उनके चरणों में पड़ा रहूँ। यदि मैं उनके साथ जाऊँ तो प्रकाश में जाऊँगा, यदि अकेला जाऊँगा तो अंधकार में जाऊँगा। पर आज्ञा यह हुई है कि पहले मैं जाऊँ, गुरू जी के आने तक मैं अन्धकार में रहूँगा।

फिर सोचकर और मुस्कराकर–आहा अंधकार चला गया है, उसकी आज्ञा का प्रकाश आ गया है, प्यारा सौंदर्य से भरा हुआ है, उसका प्रकाश सच्चा है। वह दिन और रात, दोनों का सूर्य है और सदैव चढ़ा रहता है, नानक हज़ारों सूर्यों और लाखों चन्द्रमाओं से बढ़कर है। सारे ब्रह्मांड में उसी का ही प्रकाश है, वह प्यारा मेरे हृदय का भी प्रकाश है, वह मेरे अंग संग है, कभी भी मुझसे नहीं बिछुड़ता। उसी की आज्ञा है कि मैं जाऊँ, मैं सहर्ष पहले जाऊँगा, पहले जाना तो सरल है, पर बाद में जाना कठिन है। प्यारे ने मेरा उद्धार कर दिया है, उस प्यारे ने मुझे निवाज लिया है, प्यारे ने ही भेजा है, प्यारे को ही भेजना है। मैं कट्टर मुसलमान मखदूम हूँ, पर नानक का दास हूँ, नानक गुरू का दास हूँ, वह मेरा स्वामी है। हे स्वामी! सदैव मेरे अंगों के साथ रहना, मुझे वहीं निवास देना, हे मेरे स्वामी! तुझे अपने चरणों में निवास देना।[१]

❑ ❑

१. मखदूम की यह साखी पुरातन जन्मसाखी में दी है।

९१ 'जोती जोति रली संपूरनु थीआ राम'

कुछ समय के पश्चात एक समय ऐसा आया जब ईश्वरीय ज्योति मानवी शरीर का त्याग करके ईश्वरीय ज्योति में चली जाने लगी। तब गुरू बाबा सरींह (सिरस) के पेड़ के नीचे जा बैठा। सिरस का वृक्ष सूखा हुआ था, वह उस समय हरा हो गया, उसके पत्ते फूल निकल आये। तब गुरू अंगद चरणों पर झुके। तब माता जी वैराग्य करने लगीं। उस समय शब्द हुआ, भाई, बंधु, परिवार सभी रोने लगे। तब राग वडहंस[१] में शब्द हुआ। तब सत्संगी अलाहणियाँ (मातमी गीत) नामक वाणी गाने लगे।

तब बाबा विस्मय के घर में आया। आज्ञा हुई, बाबा जी ने राग तुखारी मे बारह माह नामक वाणी उच्चारण की। रात व्यतीत हुई, अमृत वेला हुआ, गुरू जी के देहांत का समय।[२]

उस समय जो शब्द रचे गये उनकी पुस्तक गुरू अंगद जी को प्राप्त हुई। तब पुत्रों ने कहा, 'हमारी क्या दशा होगी?' तब गुरू जी ने पुत्रों से कहा, 'बेटा! गुरू के कुत्तों को भी कोई कमी नहीं, अन्न वस्त्र बहुत होगा और यदि गुरू-गुरू का जाप जपोगे तो जन्म सफल होगा'। तब नाम जपने वाले हिन्दू, मुसलमान सभी कहने लगे। मुसलमान कहने लगे, 'हम गुरू जी के शव को धरती में गाड़ेंगे', और हिन्दू कहने लगे, 'हम जलायेंगे'। तब बाबे ने कहा; तुम दोनों ओर फूल रखो, दाहिनी और हिन्दुओं के रखो और बाईं ओर मुसलमानों के, सवेरे तक जिनके फूल हरे रहें–अर्थात यदि हिन्दुओं के हरे रहें तो वे जलायें और यदि मुसलमानों के हरे रहें तो वे गाढ़ दें'। तब बाबे ने सत्संगियों को 'कीर्तन सोहिला' नामक वाणी का पाठ करने को कहा, तब संगत ने कीर्तन सोहिला का पाठ किया।[३]

धनासिरी राग में आरती गायन की गई। तब शब्द उच्चारण किया गया:–

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥१॥

---

१. यहाँ 'धंन सिरंदा सचा पातिसाह' वाला शब्द उच्चारण किया।

२. तुखारी राग वाली बारहमाह नामक वाणी 'तू सुणि किरति करंमा' यहाँ पर उच्चारण की।

३. यहाँ "जै घरि कीरति" वाला शब्द राग गऊड़ी दीपकी म: १ है।

जब यह श्लोक पढ़ा, गुरू बाबा ने चद्दर ऊपर ओढ़कर मुँह से वाहिगुरू कहकर सीस झुकाया। जब चद्दर उठाई गई, तो कुछ भी नहीं था। तब फूल दोनों के हरे रहे, हिन्दू अपने ले गये और मुसलमान अपने ले गये। सारे सत्संगी चरणों पर झुके। बोलो वाहिगुरू।। संवत १५९५,[१] तिथि असुज सुदी १०।। बाबा नानक जी कर्तारपुर में समाये।"

[पुरातन जन्मसाखी]

❑ ❑

१. शेष सभी इतिहासों में परलोक गमन का संवत १५९६ लिखा है। लगता है कि गुरू अंगद जी को १५९५ में गद्दी दी और परलोक गमन १५९६ में हुआ।

प्रभावशाली श्री गुरू नानक देव जी

गुरू अवतार एवं कारक

(कीर्ति, कर्म, कमाल और आदर्श)

१. आवाज़ सुनाई दे रही है[१]

तारों भरी आधी रात के समय मुझ सोए हुए को किसने आकर जगाया है? न कोई जाग रहा है और न कोई दीख रहा है, यह नाद फिर किसने आकर बजाया है?

अरी माँ! क्या यह वही आवाज़ नहीं, जो धुर आकाश से आती है; आकाश के मण्डलों को चीरती हुई मेरी छाती को आकर वेध रही है। यह सितारों वाली मिजराव खाकर नक्षत्रों से मींड ले रही है। यह रस से भीगी हुई आवाज़, थरथराती हुई आ रही है और मुझ सोये हुए को जगाती है। मेरा आपा कांपकर सरोद हो जाता है और रोम-रोम से लहर छिड़ रहा है।

जन्त्र इस तरह बजता है जिस तरह कोई कंपन होता है और वह कंपन रूप राग रूप बन रहा है। अरी सखी! यह उस प्रियतम की आवाज़ है जो बार-बार आकर पीड़ा छेड़ रही है; वही आवाज़ आकाश से आ रही है, वही आकर्षण डाल रही है। यह उस आवाज़ की वही प्यार की कणी है, जो कलेजे में चुभ जाती है। अरी सखी! उसी 'प्यार भरी ध्वनि' ने हमें फिर आकर जगाया है; हम अचेत सो रहे थे, उस सुन्दर आवाज़ ने हमें पकड़कर सुन्दर की कलाई पकड़वा दी है। हमने समझा था कि हम प्यार करते हैं और उस प्रियतम पर न्योछावर होते हैं, आगे वह बेपरवाह सुन्दर है, हम उस पर आपा न्योछावर करते हैं।' अरी सखी! यह सब झूठ है, भुलावा है, हमें तो प्यार करने का कोई पता नहीं। उसे ही प्यार भरने का पता है। जो हमें प्यार करता है और प्रेमी बनाता है, वह आप ही हमें चौंककर जगाता है और सोये हुए को नाद सुनाता है। आप ही अदेश से अपनी बंसरी की ध्वनि हमारे हृदय में भरता है, आप ही वह अपने प्रेम पालने में हमें डालता है और हम उसके हिडोले पर चढ़कर झूलते हैं। हम कहते थे कि हम प्यार करने वाले हैं और हमारे स्वामी निर्लेप रहते हैं पर बात उल्ट निकली।

अरी माँ! सज्जन ने आज फिर हमें झंझोड़कर जगाया है, अदेश से आकाश में से बिंधता हुआ उसका प्रेम संदेश आया है। शृंगार करके मेरे बाल गूंथ दे और मेरे हाथों में मेंहदी लगा दे। मुझे रूप का रंग चढ़ा दे, जिससे मेरा सुन्दर मुझे अपने अंगों से लगा दे। अरी माँ! मोह का त्याग कर दे, मैं तो अब उस प्रियतम की बनूँगी। केवल उसी प्रियतम

---

१. लेखक की पंजाबी कविता का (सरल अर्थ) अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

की बनूँगी और उसी के प्यार में पिरोई जाऊँगी। हाय! मैं अचेत होकर न सोऊँ, अरी माँ! तू मुझे प्यार भरी लोरी मत देना। मैं उस सदैव जागृत के रंग में हमेशा के लिये रंगी गई हूँ और उस सुन्दर के अंगों में समाये रहना चाहती हूँ। अरी माँ! कलेजे को छेद करने वाली और झंझोड़ने वाली आवाज़ मुझे सुनाई दे रही है। यह कोई कानों द्वारा सुनने वाली आवाज़ नहीं, यह तो प्रेम का संदेश है। यह संकेत तो कलेजे को खींचने वाला है और उस प्यारे के अंगों से मिलाने वाला है। अरी माँ! पृथ्वी पर बैठे हुओं को यह आवाज़ आकाश के हिडोले के झूले झुलाती है। यह आवाज़ अदेश से कुँडी लगाकर खींचती है और पृथ्वी पर पड़े हुओं को खींच कर उठा देती है। यह आवाज़, अरी माँ! प्यारे के अंगों में मिला देने वाली है, सुन्दर के अंगों में समा देने वाली है।

सूचनाः–श्री गुरू जी के कई भँवरों (प्रेमियों) के जीवन समाचार, जो गुरू जी के ही समय में हुए किसी न किसी तरह गुरू जी के द्वार पर उन्होंने आकर गुँजार की, गत वर्षों में समय-समय पर अंकित होते, प्रकाशित होते, प्रचारित होते रहे हैं अथवा नये लिखे गये हैं, वे लगभग सभी इस संस्करण में आ चुके हैं। अब इस स्थान पर गुरू जी के स्वत्व, स्वतेज और स्वप्रकाश के भाव, शुभ गुण, कीर्ति, करनी, कमाल और अन्य विलक्षणताओं सम्बन्धी जो ख्याल कभी-कभी लिखे जाते रहे हैं, वे आगामी पृष्ठों में आयेंगे। पहले कुछ ऐतिहासिक बातों का उल्लेख आयेगा जोकि श्री गुरू जी के जीवन सम्बन्धी गुरूवाणी में से लिये गये हैं।

❑ ❑

ओस से भीगी हुई पहेलियां

१२ श्री गुरू नानक देव जी की जन्मसाखी

श्री गुरू ग्रन्थ साहब जीं में से संकलित

गर्मी की घबराहट भरी ऋतु चली गई। वर्षा का, जी को मिचला देने वाला मौसम समाप्त हो गया। ठण्डी, ठण्डी सुहावनी गुलाबी ऋतु आ गई। रात का समय है, चाँदनी फैल रही है। यद्यपि पूर्णिमा का सम्पूर्ण चन्द्रमा कल चढ़ेगा, पर आज भी चाँदनी की उज्जवलता में कोई कमी प्रतीत नहीं होती।

एक घर की सबसे ऊपरली छत का सारा परिवार बैठा है। बड़े सरदार जी अभी कहीं बाहर से लौटे हैं और भोजन कर रहे हैं। भोजन करके आपने कहा: 'पंजाब के सभी पुराने रंग चले जा रहे हैं और नये रंगों ने सुन्दर स्वादों अदोष रसों एवं सुहावने स्वादों को भी समाप्त कर दिया है, विस्मय भरे रंगों रसों की ओर से तो पीठ ही फिरी जा रही है। गणना, लेखा, दिखावा, बनावट, अकड़, फूंफाँ, दूरी-दूरी, परे-परे, मैं मैं की रीति चला दी है। यदि कहीं गहरी विद्या है तो वह केवल शुष्क बुद्धि की ओर लिये जा रही है और जीवन के दूसरे भागों को भुला रही है।

इस विषय पर काफी समय तक बातें होती रहीं, इतने में एक छोटी कन्या, जोकि पड़ोस वालों के यहाँ बच्चों के साथ खेल रही थी और पहेलियाँ बुझा रही थी, घर आ गई और बड़े भाई के गले से लिपटकर कहने लगी, "भैया जी! पहेलियाँ बुझाओ"। भाई हँसने लगा और उसने बहन को गोदी में ले लिया। सरदार जी मुस्कराये; पर बड़ी बहन कहने लगी, 'भैया! वही बात हुई न, जो अभी पिता जी कर रहे थे। कैसे स्वाद भरे दिन हुआ करते थे जब रात को बैठकर पहेलियाँ बुझा करते थे और सारा संसार भुला दिया जाता था, जब एक पहेली बुझा ली जाती थी तो स्वाद का अंत ही नहीं रहता था।

माता कहने लगी, लल्ला! यदि तुमने पश्चिम की शिक्षा प्राप्त कर ली है, तो स्वादभरी बातों का तो त्याग मत करो, रूखे मन बनो, बहन भाईयों के प्यार तथा मीठ मावों से अपने आपको रिक्त मत करो। यह तो मैं भी देख रही हूँ कि केवल बुद्धि तथा विदेशी शिक्षा कठोर बना देती है। धर्म भावना तथा स्वच्छ प्यार और मन में द्रवित होने का गुण तथा अदोष रस, यह सभी कम होते चले जा रहे हैं।

यह एक सुन्दर बुद्धिमान युवक था, जो एम० ए० की परीक्षा में सफल हो चुका था और वकालत पढ़ रहा था। पर इसकी शिक्षा में इसके योग्य पिता जी ने कुछ नेतृत्व अपने हाथ में रखा हुआ था। बेटों को सदैव विद्या के तत्त्व सार की ओर झुकाते, उच्च आदर्श समझाते और आत्म सुख की अगवानी करते रहते थे। अपनी प्रागम्य बुद्धि तथा सच्ची करनी एवं कर्म की रसज्ञता के कारण, वे बेटे को अपने अंदर के तथा बाहर के तजर्बों का

रहस्य भरी बातें बताने की ऐसी योग्यता रखते थे कि उनके गहरे विचार, बेटे को उनके सामने झुका देते ओर उसे सफल तथा करनी वाला विद्वान बनाने की ओर प्रेरणा करते रहते थे। आज भी जब बेटे की माता की ओर से एक ऐसा वाक्य सुना, जो था तो साधारण, पर था ठीक और बहुत विस्तार पकड़ने वाली बुद्धिमता का, तो सरदार जी ने पुत्र की ओर पितृ प्रेम की भाँति देखा और कहा:–

लल्ला! तुम्हारी माता ने एक ही टप्पा कहा है, पर वह संगीत भरा है। उसमें बुद्धि भी है, रस भी है, त्याग भी है और स्वाद भी।

बेटा–कैसे पिता जी!

पिता–बेटा! मनुष्य एक मिश्रित वस्तु है। किसी एक आशय अथवा भाव एवं वस्तु का बना हुआ नहीं है। इसके अंदर तरंग हैं, मन है, मन के उच्छाल हैं, फिर लक्ष्य प्राप्ति के लिये बुद्धि की अगवानी शुष्क सी होती है। फिर हमारे अंदर दया है, त्याग है, प्रेम है, उत्साह है, सुन्दरता की झलकों पर मन को प्रतीत देने वाला कोई रस-अनुभव है, आपे में स्थिरता की कोई दशा है, उसमें ठण्ड, सुहावनापन और मग्नता है। अत: मनुष्य कई बातों का संगम है।

पुत्र–तनिक सविस्तार बताइए न?

पिता–हमारे अंदर एक तो वे वलवले हैं जो पशुओं जैसे हैं, इन्हें हदबन्दी में रखने के लिये और उचित व्यवहार में उपयोग करने के लिये बुद्धि है। बुद्धि का मार्जन विद्या द्वारा और निजी तजुर्बे द्वारा होता है। पर बुद्धि द्वारा मन के वलवलों में बाधा डालने से एक शुष्कता सी एक रुष्टता सी आ जाती है। यह रुष्टता बढ़कर शरीर तथा मन को रोगी बना देने का प्रभाव भी रखती है। इसकी कठोरता और कोरापन दूर करने के लिये और उच्च रसों में प्रवेश करने के लिये फिर उच्च तरंगों द्वारा बुद्धि को रंगा जाता है। इस रंग से मन सुहावनी रोक में भी आ जाता है, नीरोग भी रहता है और जीवन रस का आनन्द भी प्राप्त करता है। हाँ, आपा ऊँचा होकर उच्च रसों का आनन्द भोगता है जिससे आगे फिर आत्म सुख बताया जाता है। पश्चिम की शिक्षा–जहाँ तक वह अब तक पहुँची है, अथवा हमारे लोगों ने यह विद्या ग्रहण की है–इसमें सबसे बड़ी कमी यही है कि यह बुद्धि अथवा तर्क पर जाकर 'बस' कहकर आगे द्वार खटखटाने से रुक जाती है और कठोर होकर और ऊँची बात को हँसी उड़ाने की ओर ले जाती है। यदि यह ठीक ढंग से चले तो मनुष्य को कुछ अलग, पृथव रहने वाला रूखा-रूखा सा बना देती है। प्राय: इससे अहं तथा स्वार्थ बढ़ रहा दीखता है। शायद यों कहना ज्यादा ठीक है कि लोग पश्चिम की शिक्षा इतनी कम प्राप्त करते हैं कि इससे शिक्षित हुई अपनी बुद्धि को 'संपूर्ण जीवन' समझकर अटक जाते हैं, पर लल्ला जी! हम केवल बुद्धि ही तो नहीं हैं और न ही केवल मन ही हैं। हम मन भी हैं, बुद्धि भी हैं और इससे और ऊँचे भी हैं, अत: हमें 'ऊँचा जीवन' अवश्य ही खोजना चाहिये। हमारा पहला आपा, साधारण वलवलों वाला, हमें पशु श्रेणी से ऊँचा नहीं बनाता, उसके साथ हम शारीरिक स्वादों को भोगने तक पहुँचते हैं। बुद्धि हमें उनसे ऊँचा बनाती है और आपे को समझने, उस पर नियंत्रण रखने और उसे न्याय के तौल में चलने का ढंग सिखाती है। बुद्धि एक महान वस्तु है, पर बुद्धि हमारा सब कुछ नहीं, न ही हमारा सारा

जीवन केवल 'बुद्धि' मात्र ही है। बुद्धि हमें हमारे जीव श्रेणी वाले वलवलों पर नियंत्रण करना सिखाती है। वह नियंत्रण कई बार इतना कठोर तथा जड़ हो जाता है कि अंदर कई प्रकार के बंधन पड़कर मन की स्वस्थता नष्ट कर देते हैं और कई बार बुद्धि शरीर को रोगी बना देती है। इसलिये सतगुरू ने उच्च भावों में जाने की आज्ञा दी है।

यह उच्च भाव हमारे वलवलों का दमन करके उन्हें मुर्दा नहीं बना देते, बल्कि उन्हें बुद्धि के मण्डल में से खींचकर और फिर कोमल तथा उच्च करके हमें किसी रस में रखते हैं और आपा 'शारीरिक रस' से और 'बुद्धि के सिवाये हुए त्याग' से ऊँचा उठकर आपे के अनुभव में रस लेता है और इस स्वानुभव से आगे परमात्मा की शरण अथवा भेंट के रस में ले जाता है। मेरा अभिप्राय यह है कि मनुष्य, जो अपनी सर्वांगी उन्नति करता है, वह फिर एक व्यक्तित्व बन जाता है। केवल एक एकांगी उन्नति इसे एक पक्षीय उन्नति प्रदान करती है। यह मनुष्य को एक व्यक्तिमात्र बनाती है, पर उसमें सभी शक्तियाँ होने के कारण सब के परस्पर योग मिलाप तथा योग उन्नति से मनुष्य पूरी उन्नति कर सकता है। सभी शक्तियों के योग्य ढंग से उन्नत होने से मनुष्य का व्यक्तित्व बनता है; जो एक जीवित जागृत, नीरोग, सर्वगुणों में उन्नत मानवी कमाल की दशा है। इस तरह के उन्नत पुरुष को, गुरू गोविन्द सिंह जी ने 'खालसा' कहा है। खालसा एक आदर्श–हरेक पक्ष से उन्नत–व्यक्तित्व का नाम है। बेटा! यह थोड़ी लम्बी बात है, कभी फिर इस पर विचार करेंगे। संक्षिप्त रूप से बात यह है कि बुद्धि को माँजने से साधारण वलवलों तथा भावनाओं को ऊँचा करना चाहिये और बुद्धि को माँजते हुए हमें अदोष रसों, दोष रहित स्वादों और विस्मय रस का स्पर्श प्राप्त करना चाहिये और ऊँची भावनाओं की ओर मन की गति को ले जाना चाहिये और विस्मय रस का स्पर्श प्राप्त करना चाहिये। इधर अपनी भावनाओं को रुष्ट करना, काटना, मार देना, आपे को ऐसे काटना है जैसे पैबंद वाले पौधे के नीचे वाले भाग को काटना है। बुद्धि का प्रयोग न करना और निम्न तरंगों को स्वतन्त्रता देकर दोबारा पशु बनना है और आपे को पशु बनाए रखना है। दोनों को एक दूसरे के साथ किसी ठिकाने पर लाकर दोनों से ऊँचे उठकर आपे के रस में न जाना अपने आपको धोखे में रखना है। आपे में आपे का अनुभव करके परम आपे में और ऊँचे न उठ सकना सदैव आनन्द में न पहुँच पाना है।

बड़ी बहिन कहने लगी–"भैया! बापू जी ने सुन्दर बात कही है और खूब ऊँची बात कही है, चाहे सारी तो हमारी समझ से परे हैं; पर मेरी छोटी सी बात इसमें से भी निकली है कि अदोष चावों तथा स्वादों का त्याग करना कोई उन्नति वाली बात नहीं, अत: मैं एक इस तरह की बात पर एक अलक्षित सी बात करती हूँ। पहेलियों की बात चली थी, अत: मैं एक उच्च प्रकार की पहेली बुझाती हूँ, तुम उसे बुझो, जिससे बुद्धि भी लगे और स्वाद भी आये। मन का ख्याल तो सतगुरू जी के प्यार की ओर जाये, उनकी करनी अनुकंपा की ओर और पहेली खुले।" बड़े सरदार जी कहने लगे, "अच्छी बात है, बुझाओ पहेली, हम भी सुनेंगे।" बड़े भाई ने कहा, "पिता जी ने बड़ी अमूल्य सुमति प्रदान की है और बहिन ने सुन्दर ढंग निकाला है, आओ फिर बुझाओ पहेली।"

बहिन–भैया! मान लो कि सूरज प्रकाश सूर्य लोक का भ्रमण करने को चल दिया, जन्मसाखियाँ कल्पवृक्ष की शाखाओं में छिपकर बैठ गईं, गुरू विलास गुरूपुरी की यात्रा को चले गये, पंथ प्रकाश धुर प्रकाश में उसकी किरणों के पीछे जा छिपे, पर्चीयाँ प्रसंग सभी अलभ्य बाग में छिप गये, भाई गुरुदास जी और भाई नंदलाल जी की पुस्तकें अदेश की चली गईं। अन्य देशीय तथा अन्य भाषीय लेख सभी लोप हो गये, फिर भी तुम सतगुरू नानक देव जी के जीवन के बारे में हमें कुछ बता सकोगे?

भाई–क्यों नहीं, मुझे सारा जीवन याद है?

बहिन–यों नहीं, मान लो कि आकाश से कोई अपसरा आकर कोई जल साबुन लगाकर तुम्हारे मस्तिष्क का तख्ती पर से यह सारी याद भी धोकर ले जाये तो?

भाई–फिर श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी तो युगों युगांतरों तक अचल होंगे।

बहिन–हाँ भैया!

भाई–फिर तो मैं कई बातें बता सकूँगा।

बहिन–कैसे! श्री गुरू ग्रन्थ साहब में तो गुरू की वाणी है, जीवन तो नहीं?

भाई–ठीक है और हमें स्मरण भी होगा कि कई वर्ष पहले हमने 'खालसा समाचार' पत्र में किसी सम्पादकीय लेख में पढ़ा था कि सिक्ख धर्म का केन्द्रीय आधार श्री गुरू ग्रन्थ जी हैं, अर्थात इस धर्म की टेक केवल इसकी नींव डालने वालों के इतिहास पर ही आधारित नहीं बल्कि उस वाणी पर है जो वाहिगुरू द्वारा गुरूओं को आवेश के रूप में प्राप्त हुई थी और गुरुओं ने संसार को प्रदान की थी। अत: चाहे सच्चा इतिहास हमारे धर्म की उन्नति और ज्ञान खोज का आवश्यक अंग है, पर केन्द्रीय आधार 'धुर की वाणी' है।

बहिन–हम दूसरी ओर चल पड़ें हैं।

भाई–नहीं जी, मैं यही बताने लगा हूँ कि इस धुर की वाणी में हाथों हाथ कई इस तरह के उल्लेख भी आयें हैं जिनमें से सतगुरू जी के जीवन पर प्रकाश पड़ता है, बल्कि इस विषय पर अंदर से साक्षी मिलती है।

बहिन–यही पहेली तो मैंने बुझाई है, तुम बुझो न!

भाई–बहुत अच्छा।

पहली बात तो यह है कि गुरू का वास्तविक अंदर का जीवन–उनका मन–यह गुरूवाणी है। जो किसी सच्चे पुरुष का हृदय होता है, वही उसके वाक्य अथवा कर्म होते हैं। जैसे हमें पिता जी ने समझाया था और मुझे वाणी पढ़कर स्वयं भी पता चला है, वह यह हैं कि यह वाणी सतगुरू का हृदय है और इसके अनुसार ही उनके जीवन कर्त्तव्य हैं। सारा गुरू ग्रन्थ साहब एक निरंतर गति, एक निरंतर रूप, एक निरंतर ध्वनि, एक निरंतर अमूर्त मूर्ति है, जिसमें विनती, विरह, निर्मल भय, ज्ञान, सेवा, श्रद्धा, प्यार, प्रेम भक्ति के अनेकों अरंग रंग हैं। हाँ इसमें एक निरंतर संगीत, एक निरंतर काव्यरस, एक निरंतर प्रकाश, एक निरंतर रस मस्ती, रस हिलोर, रस सरूर, रसलीनता का दर्शन है, यही गुरू नानक का हृदय है, यही उनका इतिहास है और यही ईश्वरीय ज्ञान है। यही ईश्वरीय नाद एवं सरोद हैं यह गुरू के हृदय पर प्रभु की ओर से प्रकाशित हुआ ज्ञान है। गुरू जी का हृदय अहं रहित और विशुद्ध होने के कारण यह ज्ञान वहाँ इस तरह प्रकाशित हुआ है कि वैसे का वैसा, ज्यों

का त्यों जैसे दर्पन में से मूर्ति प्रकाशित होती है। ज्यों की त्यों वाणी गुरू हृदय रूपी शीशे जड़ी हुई ईश्वरीय ज्ञान की मूर्ति है। हाँ वह वाहिगुरू का ज्ञान है, गुरू का हृदय है और यह उनका रूप है। श्री गुरू ग्रन्थ साहब ईश्वरीय ज्ञान तथा गुरू हृदय का एक प्रत्यक्ष दर्शन है। अतः इस गुरू हृदय में चित समाने से हम गुरू हृदय का रंग अपने पर लेंगे। चित में चित समाने से हमारी सुरत की उच्चता तथा स्वच्छता होगी[1]। चित में चित समाने पर रंग चढ़ता है। अब विचार कर लीजिए कि 'गुरू हृदय रूपी इतिहास' तो जीवों द्वारा रचित इतिहासों में नहीं, वह इतिहास तो केवल श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी में हैं जो सदैव 'गुरू उर दर्पन' है और हमें विशेष आवश्यकता भी 'गुरू उर इतिहास' की है।

बहिन–ठीक है, स्वाद आ गया, पर सतगुरू जी की जीवन क्रिया के बारे में तुम व्यौरा तथा पता गुरू ग्रन्थ साहब में से दे सकते हो?

भाई–मेरा वाणी का विशेष अध्ययन नहीं पर अनेकों बातों पर प्रकाश, बाणी द्वारा ही पड़ता है।

१. सतगुरू की का समय

बहिन–भला बताइए, सतगुरू जी की संसार यात्रा का समय तुम किस ढंग से बता सकोगे, मैं कहती हूँ उन्हें दस हज़ार वर्ष व्यतीत हो गया है।

भाई (मुस्कराकर)–वैसे तो सतगुरू आदि युगादि से हैं, पर इस समय शारीरिक रूप में आपको आये हुए चार सौ पचास वर्ष ही व्यतीत हुआ है।

बहिन–कैसे?

भाई–श्री गुरू ग्रन्थ जी में आदि गुरू की वाणी है, जिसमें गुरू बाबे ने बाबर के आक्रमण के लिये भविष्यवाणी कही है और फिर उसकी लूटमार का अपनी आँखों देखा हाल बताया है। पहले भविष्यवाणी इस तरह भी कहीं हुई है:–

"जैसी मै आवै खसमु की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो॥"

इससे स्पष्ट है कि अगंध्य की बात कहने लगे हैं।

फिर जो कुछ घटना है उसे बताते हुए कहते हैं:–

"काइआ कपड़ु टुकु टुकु होसी, हिंदुस्तान समालसी बोला"॥ [तिलंग महला १]

इन तुकों से भी पता चल जाता है कि गुरू जी बाबर के आने से पहले यह वाक्य कह रहे हैं। जिससे सिद्ध हुआ कि आप इससे पहले अवतार धारण कर चुके थे और साथ ही आप गुरुता का काम भी आरम्भ कर चुके थे और आकाशवाणी वाले अगंम्य को बाँधने वाले महापुरुष थे। इससे अनुमान लगता है कि यह वाक्य कहते समय आपकी आयु बाल्यावस्था अथवा युवावस्था से बड़ी थी। 'बाबर ७८ संवत में आयेगा', यह बात सतगुरू जी ने पहले बताई थी, यथा:–'आऊण अठतरै'। अतः संवत १५७८[2] विक्रमी से पहले

१. चितहि चितु समाइ त होवै रंगु घना॥ [फुनहे म: ५]

२. पंद्रहवीं शताब्दी का पता बाबर के समकालीन होने से चल जाता है। श्री गुरू ग्रंथ साहब 'आदि ग्रन्थ' में संवत १६६१ संकलित होने का दिया है, इससे भी इस शताब्दी से पहले का पता चलता है।

सतगुरू संसार में विचर रहे थे, अत: यह बात स्पष्ट हो गई कि गुरू बाबे का समय १५७८ विक्रमी से पहले आरम्भ हो गया था, तुम्हारी दस हज़ार वर्ष बाकी बात तो रह गई।

पिता—शाबाश बेटा! तुमने बहुत अच्छी खोज की।

बहिन—भला बाबर कौन था, कहाँ से आया था?

भाई—बाबर मुग़ल था और उस समय खुरासान की सम्भाल कर आ रहा था, यथा:—

खुरासान खसमाना कीआ हिंदुस्तान डराइआ॥
आपै दोसु न देई करता जमु करि मुगलु चड़ाइआ॥ [आसा म: १]

फिर गुरू जी ने बाबर की पठानों के साथ लड़ाई तथा कत्लेआम के आँखों देखे समाचार लिखे हैं:—

"बाबर वाणी फिरि गई कुइरु न रोटी खाइ॥"

पुन:— **"महला अंदरि होदीआ हुणि बहणि न मिलनि हदूरि॥"**

२. बंदूकें

जब बाबर सैदपुर को कत्लाम करके चला गया तब का समाचार भी सतगुरू जी ने:—

"कहा सु खेल तबेला घोड़े कहा भेरी सहनाई" वाली बाणी में बताया है।

बल्कि वाणी से एक और बात का भी पता चलता है कि पठानों के पास, जोकि हिन्द के राजा थे, बंदूकें नहीं थीं, उन्होंने हाथियों की सेना चढ़ाई थी, उनके पास केवल बाण थे। पर मुग़लों के पास बंदूकें थीं और उन्होंने बंदूकों द्वारा ही विजय प्राप्त की थी।

"मुगल पठाणा भई लड़ाई रण महि तेग वगाई॥
ओनी तुपक ताणि चलाई, ओनी हसति चिड़ाई॥" [आसा म: १]

अत: बाबर के आने से पहले उसके आक्रमण के समय और उसके पश्चात सतगुरू जी मनुष्य शरीर में पंजाब में भ्रमण कर रहे थे।

बहिन—पर सतगुरू जी ने यह ऐतिहासिक समाचार क्यों लिखे?

भाई—इस वाणी से पता चलता है कि देश में पाप था, पठान विलासी तथा दण्ड के योग्य थे, प्रजा मूर्ख थी और उसका पतन हो चुका था। सतगुरू जी ने बताया है कि पापों का फल देने के लिये 'यम रूपी मुग़ल' आया, सतगुरू जी ने प्रभु की आज्ञा और पाप के दण्ड का उल्लेख करते हुए यह घटनायें बताई हैं और बाबर के कत्लाम, अत्याचार पर उसे कोसा है और अपने दयालु हृदय का दर्द—अनुभव सहानुभूति तथा प्यार में वर्णन किया है।

३. गुरू अवतार

बहिन—क्या तुम बता सकते हो कि गुरू नानक देव जी एक सुधारक मात्र थे, अथवा वाहिगुरू जी के ज्ञान को धुर से प्राप्त किये हुए, 'गुरू अवतार' थे?

भाई–आप वाहिगुरू के साथ आठों पहर जुड़े और कभी भी न बिछड़े। सदैव उस के उच्च ज्ञान को प्राप्त करने वाले धुर से आये गुरू अवतार थे। वे स्वयं हमें बताते हैं:–

"जैसी मै आवे खसम की बाणी
तैसड़ा करी गिआनु वे लालो[1]॥"

बहिन–गुरू नानक देव जी का गुरू कौन था?

भाई–सतगुरू जी ने स्वयं बताया है:–

"अपरंपर पारब्रह्मु परमेसरु नानक गुर मिलिआ सोई जीऊ"॥ [सोरठ म: १]

अर्थात्–आपका गुरू वाहिगुरू था।

बहिन–न जाने कोई मनुष्य भी उनका गुरू हो?

भाई–दीदी! सतगुरू जी ने बताया है कि उनके सामने गलीचा बिछाकर बैठने वाला कोई नहीं, अर्थात् कोई ऐसा मनुष्य नहीं जिसके आगे उन्होंने अपना शिष्यहव प्रकट किया हो। यह एक कहावत है कि जो कोई किसी के सामने आसन लगाकर बैठे वही पूज्य अथवा गुरू होता है देखिए:–

"बीजऊ सूझै को नही बहै दुलीचा पाइ॥
नरक निवारणु नरह नरु साचऊ साचै नाइ॥ [रामकली म: १]

पुन:– **"जाकऊ महलु हजूर दूजे निवै किसु"।** [सूही म: १]

४. यात्रा

बहिन–क्या सतगुरू जी सारी आयु अपने देश में बैठे रहे अथवा जगत का भ्रमण करते रहे?

भाई–गुरुवाणी से पता चलता है कि आपने बहुत भ्रमण किया और जगत का उद्धार किया। जिस तरह आप कहते हैं:–

"तट तीरथ हम नव खंड देखे हट पटण बाजारा"॥ [गऊड़ी म: १]

५. गुरूआई

बहिन–सतगुरू जी अपने आपको दास अथवा निम्न कहते रहे हैं, गुरू कैसे हुए?

भाई–परमेश्वर ने आपको गुरू बनाकर भेजा था और सारे लोग तब से ही आपको गुरू कहते थे। देखिए–'कल नामक कवि' आपको अपनी वाणी 'सवैयों' में "परम गुरू" और "....प्रमाण नानक गुरू" लिखते हैं।

फिर बाकी गुरूओं ने जब शब्द और श्लोकों के अंत में 'नानक' लिखा है, तो अपनी छाप लगा दी है, पर जहाँ कहाँ 'गुरू नानक' पद लिखा है, वहाँ सतगुरू नानक को 'गुरू' कहा है।

---

१. श्री गुरू नानक देव जी के स्वरूप पंचम गुरू जी ने भी इस विषय पर, यों कहा है:–
'हऊ आपहु बोलि न जाणदा मैं कहिआ सभु हुकमाउ जीऊ॥'
गुरू नानक साहब के बारे में आपने कहा है:–
"गुर नानक देव गोविन्द रूप" [बसंत म: ५]

यथा:–"**दीखिआ आखि धुझाइआ सिफती सचि समेऊ॥**
तिन कऊ किआ उपदेसीऐ जिन गुरू नानक देऊ॥१॥ [वार माझ म: २]
पुन:–**चारि बरन चारि आश्रम है कोई मिलै**
गुरू गुर नानक सो आपि तरै कुल सगल तराधो॥ [कानड़ा म: ४]
गुर गोबिंद गोपाल गुर गुर पूरन नाराइणह॥
गुर दइआल समरथ गुर गुर नानक पतित उधारणह"॥ [जैतसिरी वार म: ५]
आज मैं दृष्टान्त तो गुरू ग्रन्थ जी में से ही दूँगा, इसलिये सुनो! वहाँ लिखा है:–
"**सभ ते वडा सतिगुर नानक जिनि कल राखी मेरी**"॥४॥ [सूही म: ५]

सतगुरू नानक देव जी सबसे बड़े हैं; संसार में जितने जन अथवा हरिजन, पैग़म्बर अवतार हुए हैं उन सभी से बड़े हुए हैं। गत वर्ष तुमने और मैंने 'खालसा समाचार' का संपादकीय लेख पढ़ा था, जिसमें इस बात को सिद्ध किया गया था कि गुरू नानक सबसे बड़े हैं, वह इसी तुक की व्याख्या थी। फिर पंचम गुरू जी ने सभी भक्तों की गणना करके गुरू नानक देव जी को 'गुर नानक देव गोविंद रूप' कहा है।

६. बाबा

बहिन–भैया जी! गुरू नानक को बाबा नानक भी कहते हैं, क्या यह बाबा का उपनाम बाद में मुसलमानों ने रखा है।

भाई–नहीं बहिन, सतगुरू जी के समय में लोग उन्हें गुरू और बाबा भी कहते थे। तुर्की भाषा में बाबा पिता को, आदरणीय को कहते हैं। गुरू नानक को बाबा पहली बार बाबर पातशाह ने पुकारा था जिसने अपनी ईश्वरीयता को माना और आपकी प्रेरणा से सैदपुर का कत्लाम और बन्दी किया था। पर बाहर की बात तो तुम सुनोगे ही नहीं, अत: गुरू वाणी के अन्दर की साक्षी हमें इतनी ही मिलती है कि सतगुरू जी को लोग बाबा तब ही कहते थे। यथा:–

"**हऊ खरी दुहेली होई बाबा नानक मेरी बात न पुछे कोई**"॥ [ग: चेती म: १]

गऊड़ी नामक राग में गुरू जी की अपनी उच्चारण की हुई यह तुक है और स्पष्ट है कि लोग आपको 'बाबा' अर्थात् आदरणीय, पिता, उस समय पुकारते थे। आजकल बाबा पिता के पिता को कहते हैं, पर उस समय नये-नये तुर्क आये थे और उनका यह शब्द बड़े ही सत्कार सहित आदरणीय पुरुष के लिए देखकर तुर्कों ने गुरू जी के लिये प्रयुक्त किया था।

७. प्रभु के दरबार में जाना

बहिन–तुम कहते हो गुरू नानक का गुरू ईश्वर है, भला कभी ईश्वर ने गुरू नानक को पास बैठाकर नाम का दान प्रदान किया था और कभी कहा था–तू इसका प्रचार कर और सृष्टि का उद्धार कर?

भाई–सतगुरू जी सच्चे लोग तथा वाहिगुरू की ज्योति में से आये थे, पर इस देह

में आकर भी दरगाह में गये थे और वाहिगुरू के नाम का दान प्रदान किया था और गुरुपद पर आपकी स्थापना की थी।

बहिन—पर श्री गुरू ग्रन्थ साहब में से बताइए, जन्मसाखी में से मत बताना, आज यही नियम रखना।

भाई—लो सुनो, जैसा कि वे आप बताते हैं—

"हऊ ढाढी वेकारु कारै लाइआ॥
राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ॥
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ॥
सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ॥
सचा अंमित नामु भोजनु आइआ॥
गुरमती खाधा रजि तिनि सुखु पाइआ॥
ढाढी करे पसाऊ सबदु वजाइआ॥
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ॥ [वार माझ म: १]

इसमें स्पष्ट बताया है कि उन्हें जिन्हें उन्होंने ढाढी (यश गाने वाला) कहकर लिखा है, उनको स्वामी (प्रभु) ने अपने सच्चे महल में बुलाया। अपने सच्चे अमृत नाम एवं स्तुति (कीर्तन) का सच्चा सिरोपाव प्रदान किया, धुर से आज्ञा की कि रात दिन, प्रतिदिन जाप करो। अब वे उसके (नाम कीर्तन) का प्रचार करते हैं।

वाहिगुरू के साथ भेंट होने का, हुजूरी के प्रत्यक्ष होने का और वरदान प्राप्ति की अकथनीय अवस्था का हमारी जानकारी के लिये किस सुन्दर ढंग से स्पष्ट वर्णन किया है।

पिता—शाबाश बेटा!

८. अमृत वेला

बहिन—सतगुरू जी तड़के जागते थे अथवा दिन चढ़े?

भाई—एक पहर रात शेष रहने के लगभग। अमृत वेला उस समय का नाम ही गुरू नानक देव जी ने रखा है, वैसे आठों पहर सतगुरू जी ने प्रभु का आराधन किया है। जिस तरह पंचम गुरू जी ने बताया है:—

"सभे वखत सभे करि वेला॥
खालकु यादि दिलै महि मऊला॥ [मारू म: १]

और गुरू नानक जी ने स्वयं कहा है:—

यथा—**'सभे वेला वखत सभि जे अठी भऊ होइ'॥** [वार माझ म: १]

अर्थात् प्रत्येक समय, आठों पहर प्रभु के भय में रहिये।

पर अमृत वेले को सतगुरू ने विशेष लौलीनता के लिये रखा था।

'नाऊ प्रभातै सबदि धिआईऐ छोडहु दुनी परीता'॥ [प्रभाती म: १]
सबाही[1] **सालाह जिनी छिआइआ इक मनि॥**

---

१. सबाही=सुबह सवेरे।

सेई पूरे साह वखतै उपरि लड़ि मुए।। [वार माझ म: १]

पुन:– **अमृत वेला सचु नाऊ वडिआई वीचारु।।** [जपुजी]

यह व्यवहार गुरू अंगद देव जी ने गुरू नानक से सीखा और हमें बताया।

'चऊथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाऊ।।

तिना दरीआवा सिऊ दोसती मनमुखि सचा नाऊ।। [वार माझ म: २]

९. शेष सात पहर

'सती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि।।

ओथै पापु पुंनु बीचारीऐ कूड़ै घटे रासि'।।[१] [वार माझ म: २]

बहिन–और कैसे पता चलता है कि सतगुरू जी अमृत वेले के प्रेमी थे?

भाई–गुरू नानक देव जी की वाणी सबसे ज्यादा आसा राग में है, जिससे पता चलता है कि आप को आसा राग बहुत अच्छा लगता था और आसा राग तो अपना पूरा सुहाव अमृत वेले ही में देता है, अत: इसके गाने अथवा सुनने के लिये अमृत वेला में जागना अति आवश्यक है। इसलिये सतगुरू जी स्वयं अमृत वेला में जागते और प्रेमी सिक्खों का वाहिगुरू में लीन होने के लिये यही वेला बताते थे। मेरे विचार में तो आसा राग तो बनाया ही गुरू जी ने था। मैंने एक गायक से पता किया था। वह बताता था कि यह राग गुरू नानक देव जी से पहले संगीत के ग्रन्थों में कहीं नहीं आया।

१०. कवि

बहिन–सतगुरू जी वाहिगुरू के भेजे हुए पूर्ण गुरू अवतार थे, पर वाणी रचना के कारण उन्हें कवि भी कहा जा सकता है?

भाई–जी, गुरू जी ने स्वयं अपने आपको शायर (कवि) कहा है। "नानक साइर इव कहिआ"। तथा, "नानकु साइरु एव कहतु है सचे परवदगारा"।[२]

जिसका माथा वाहिगुरू के द्वार पर ठहकता है और वहाँ से ईश्वरीय झन्नाहट से अकथनीय भावों में थर्रा उठता है और फिर उन भावनाओं को रंग में राँती भाषा में गाता है, वह वास्तविक कवि है, वह संपूर्ण कवि है। असली कवि वही है जो दृष्टमान संसार को अदृष्ट के साथ मिलाये रखता है। अदृष्ट रसों का विकास करता रहता है। सतगुरू तो पूर्ण परमेंश्वर के प्यारे थे, उच्च कविता उनका स्वाभाविक स्वभाव था। संसार के कवि 'लालसा' भरे वलवते लिखते हैं, दुख भरी, रंजीदा और उदासी भरी रचना रचते हैं। सतगुरू

---

१. चौथे पहर अर्थात सवेरे नाम जपना चाहिए और शेष सात पहर सत्य में रहना चाहिए, अर्थात् वाहिगुरू के अस्तित्व प्रतीत, स्मरण में रहना चाहिए और विद्वानों की संगति भली है क्योंकि वहाँ पापों पुण्यों का विचार होता है (कि कौन से कर्म करने से पुण्य होता हो और कौन सा कर्म करने से पाप) जिसे सुनकर झूठे कर्म (जो पापों की पूँजी है) में श्रद्धा कम हो जाती है अथवा झूठे कर्मों के समूह कम हो जाते हैं।

२. धनासरी म: १।

ने विरह वियोग, प्यार रचकर भी सभी स्थानों पर पक्की सुखभरी उन्नति की ओर ले जाने वाला रंग भरा है। कविता का यह रंग केवल गुरू नानक में है, जगत के सभी कवि यहाँ पर निस्तेज हैं[१]। श्री गुरू ग्रन्थ जी में लिखी गुरू नानक जी की वाणी से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

११. वाणी के रंग

श्री गुरू जी प्रकृति के बहुत प्रेमी थे, प्राकृतिक जलवों का वर्णन किया करते थे। उनके प्रभाव आश्चर्य में से गुज़र कर विस्मय में जाते हैं। उनकी स्तुति में लीन होकर फिर कर्तार में लीन हो जाते हैं। गुरू जी की वाणी इस बात को स्पष्ट रूप से प्रकट करती है। जिस तरह 'आसा दी वार' नामक वाणी में 'विसमाद' की पौरी और जगह-जगह पर ऐसे पाठ आये हैं। वैसे आत्मा में तो वह प्रत्येक क्षण प्रभु के साथ बिना दूरी के मिले रहते हैं। नाम, लौ, प्रभु आज्ञा का पालन सतगुरू जी के उपदेशों का सार है और यह सारी ब्रह्म विद्या की वास्तविक प्राप्ति का ढंग है।

विशुद्ध वाहिगुरू के साथ संयोग की एक ही अमूल्य बात संपूर्ण है तथा और साधन, प्रयत्न, ढंग सभी कमी वाले हैं, वह प्रेम सहित, भक्ति से सिरे चढ़ती है। प्रेम स्मरण द्वारा प्रफुल्लित होता है। स्मरण जाप द्वारा ही चलता है। निर्मल भय, प्रेम, अनन्य भक्ति, यह आपकी वाणी के मुख्य लक्षण हैं।

दृष्टमान पदार्थों के बारे में आपके बताये हुए विचार ठीक थे, जैसे लोग कहते थे कि धरती के नीचे धवल है; सतगुरू जी ने कहा–यह ग़लत है। लोगों ने कहा–सात आकाश-पताल एवं चौदह खण्ड हैं। सतगुरू जी ने कहा–पाताल और आकाश लाखों हैं। लोगों ने कहा, सूर्य एक स्थान पर खड़ा है, किसी ने कहा धरती खड़ी है, आप कहते हैं, "भै विचि (में) सूरजु भै विचि चंदु।। कोह (कोस) करोड़ी चलत न अंत[२]।" [वार माझ म: १]

मैंने तुम्हें उस दिन सुनाया था कि पशिचम में 'ललित कला' और 'सुन्दरता' के बारे में कैसे सुन्दर ख्याल अब प्राप्त हुए हैं और उन्होंने जो आश्चर्य का पक्ष खोजा है, मैंने तुम्हें उसकी व्याख्या बताई थी, पर इन बुद्धिमानों के पैदा होने से पहले आज से लगभग ४०० वर्ष पहले गुरू जी ने आश्चर्यभरी 'विस्मय' की व्याख्या बताई थी। 'आसा दी वार' में एक पऊरी 'विसमाद' पर है और गुरू ग्रन्थ जी में स्थान-स्थान पर इसका वर्णन है। 'स्तुति' जो इसी की बहिन है और प्रसन्नता आनन्द, उन्नति, सुरति का रंग में राँते रहना, जो इसी परवार के हीरे हैं, सतगुरू जी ने कैसे बताये हैं। इसी तरह मैं तुम्हें सतगुरू की 'प्रकृति तथ अहं' के बारे में सिद्धान्त बताऊँ। पर आज हमें उनकी शिक्षा की खोज नहीं करनी, आज हमें उनकी शिक्षा एवं गुरूवाणी में से इस तरह के कणिके चुनने हैं, जिनसे महाराज जी के जीवन पर प्रकाश पड़ सके।

---

१. विशेष के लिये देखिए इसी पुस्तक का लेख 'सभ ते वड़ा सतिगुरू नानक' जो आगे आयेगा।

२. विशेष विस्तार के लिये 'सभ ते वड़ा सतिगुरू नानक' वाला इसी पुस्तक में आया लेख पढ़िए।

१२. निन्दा

बहिन—भैया! सतगुरू जी से सारा जगत प्यार करता होगा। यदि आप उस रूप में आज जगत में आयें तो हम न्योछावर हो जायें।

भाई—भोली बहिन! वे आखें दूसरी हैं, जो सच्च पर पतीजती हैं, भेदभाव वाली आंखें सतगुरू जी की भी निंदा करती हैं। सतगुरू जी स्वयं बताते हैं:—

मसटि करउ मूरखु जगि कहीआ॥
अधिक बकऊ तेरी लिव रहीआ॥

... ...

अैसे झूठि मुठे संसारा॥
निंदक निंदै मुझै पिआरा॥ [प्रभाती म: १]

स्पष्ट है कि सांसारिक लोग झूठ में पड़कर झूठ बोलते हुए आपकी निंदा करते थे, पर वे जगदाते उसे इसलिये अच्छा समझते थे कि वह पापों का मैल धोते थे। अत: बहिन! निंदा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि निंदक अपनी ओर से तो आघात करता है पर वास्तव में जिसकी निंदा करता है उसके पाप धोता है और अपने मन को मलिन करता है।

१३. दीवाना

बहिन—जन्मसाखियों में लिखा है कि गुरू जी की वाहिगुरू प्रेम में लीनता के कारण लोग उन्हें दीवाना कहने लगे थे। क्या इस बात का प्रमाण गुरू ग्रन्थ से भी प्राप्त होता है?

भाई—जी हाँ, सतगुरू जी ने स्वयँ बताया है:—

कोई आखै भूतना को कहै बेताला॥
कोई आखै आदमी नानकु वेचारा॥
भइया दिवाना साह का नानकु बऊराना॥ [माझ म: १]

अत: स्पष्ट है कि कोई गुरू को मनुष्य कहता था, कोई भूत, कोई दीवाना और वे कहते थे कि मैं 'नानक बेचारा हूँ'। अगली तुकें बताती हैं कि 'नानक बेचारा' वाहिगुरू प्रेम से लाल हो रहा था। इस प्रेम को लोग दीवानापन समझते थे।

१४. वैद्य

भाई—अनुमान है कि श्री गुरू जी को परमेश्वर की ओर खचित हुआ देखकर, रोगी समझकर कभी वैद्य को भी लिवाया गया था। गुरू जी ने उस वैद्य से कहा था:—

वैदु बुलाईआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह॥
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि॥ [मलार वार म: २]

इन तुकों में स्पष्ट दीख रहा है कि वैद्य को बुलाया गया था। उसने आकर गुरू जी की नाड़ी देखी और सतगुरू ने उसे समझाया। अत: यह सतगुरू के साथ घटी साखी है। वैद्यों के प्रति प्राय: उपदेश भी यह है पर यह ऐतिहासिक नुकता भी है। मलार राग की वार

का यह श्लोक है, मलार राग में ही एक और शब्द है जहाँ गुरू जी सामने बैठे हुए वैद्य से कहते हैं:–

वैद न भोले दारू लाइ॥ [मलार म: १]

अत: यह आपके साथ घट चुकी वार्ता है।

बहिन–भला खेत हरा करने तथा वृक्ष की छाया न हटने की कथा श्री गुरू ग्रन्थ जी में से प्राप्त हो सकती है?

भाई–मैं तुम्हें बताने ही लगा था कि 'सतहु खेत जमाइओन सतहु छावाणु' वाली तुक में खेत को हरा करने और छाया वाली कथा है[1]।

१५. हिन्द का उस समय का आचरण

बहिन–बाबर के अत्याचारों की पीड़ा क्यों हिन्दवासीओं को सहन करनी पड़ी!

भाई–हिन्दी लोग आचरण खो चुके थे। वे अंदर अपने उत्थान का तेज खो बैठे थे। दीदी! जिनका आचार व्यवहार अच्छा हो, उनके अंदर भय तथा टोटा नहीं होता, फिर उनमें तेज आकर निवास करता है। तेज वाले को कौन मार सकता है। देखिये गुरू नानक देव जी लोगों के आचरण की दशा कैसे वर्णन करते हैं:–

'कलि होइ कुते मुही खाजु होआ मुरदारु॥
कूड़ु (झूठ) बोलि बोलि भऊकणा चूका धरमु बीचारु॥"[वार सारंग म: १]
पुन:–**'रंना होईआ बोधीआं (कुचील–मूर्ख)**
पुरस होए सईआद (शिकारी–दग़ेबाज)।
सील संजमु सुच भंनी, खाणा खाजु अहाजु॥
सरमु गइआ घरि आपणै पति उठि चली नालि'॥ [वार सारंग म: १]
पुन:–**नानक दुनीआं कैसी होई॥**
सालकु (मर्यादा पुरुषोतम) मितु (मित्र) न रहिओ कोई॥
भाई बंधी हेतु चुकाइआ॥
दुनीआ कारणि दीन गवाइआ॥ [सलोक वा: ते वधीक म: १]
पुन:–**लाहौर सहर जहरु कहरु सवा पहरु॥** [सलोक वा: ते वधीक म: १]

अर्थात लाहौर नगर जो कि राजधानी है, वह ऐसा पाप में ग़रक है कि सवा पहर दिन चढ़े तक यहाँ ज़हर (पाप कर्म) और कहर (विपत्ति और कष्ट लाने वाले कर्म) होते रहते हैं। यदि उस समय राजधानी की यह दशा थी तो शेष देश तो यही कुछ सीखता होगा।

राजा तथा प्रजा की उस समय यह दशा थी:–

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ॥
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ॥
हऊ भालि विकुंनी होई॥

---

१. इस साखी की साक्षी देने वाले उस समय के लेखक सता बलवंड रबाबी, गुरू अमरदास जी से कह रहें हैं कि आप वही गुरू नानक हैं जिन्होंने अपनी शक्ति द्वारा भैंसों का चरा हुआ खेता हरा किया और अपनी शक्ति से वृक्ष की छाया आपने पर टिका रखी थी।

आधेरै राहु **न कोई॥**
विचि हऊमै **करि दुखु रोई॥**
कहु नानक किनि बिधि गति होई॥ [माझ वार म: १]
पुन:– राजा निआऊँ **करे हथि होइ॥**
कहै खुदाइ **न मानै कोइ॥** [आसा म: १]
कालु नाही **जोगु नाही नाही सत का ढबु॥**
थानसट जग **भरिसट होए डूबता इव जगु॥** [धनासरी म: १]

अत: पता चला कि सतगुरू जी जिस समय में हुए समय राजा प्रजा एवं देश के आचरण की बुरी दशा थी।

१६. भाषाएँ

बहिन–सतगुरू जी के समय पंजाब में कौन-कौन सी भाषायें बोली जाती थीं?

भाई–एक तो पंजाबी भाषा थी। इस बात का यहाँ से पता चलता है कि सतगुरू जी ने अपनी भाषा में भी रचना की और मुलतानी, पश्चिम, दक्षिण भारत और पूरब की देश भाषायों की थोड़े बहुत अंतर वाली भाषाओं में भी वाणी रची है। सिंधी, बहावलपुरी, डेराजात की, मुलतानी साहीवाल की, पेशावर की, पोठोहारी, माझे की, दोआबे की और मैनदाब की भाषाओं को माध्यम बनाया है। अत: इन पंजाबी भाषाओं के अतिरिक्त आपने प्राकृत अर्थात् सहसकृत, हिंदी, कई प्रकार की पूरबी तथा दक्षिणी भारत की भाषाएँ प्रयुक्त की हैं।

दूसरे फारसी। इसका प्रमाण यह है कि सतगुरू जी ने 'यक अरज गुफतम' आदि फारसी भाषा वाणी रची।

उस समय उस भाषा का आरम्भ–जो बाद में उर्दू बन गई–हो रहा था, जिसमें फारसी एवं देश भाषा मिल गई, जैसे:–

हम आदमी हां इक दमी॥ [धनासरी म: १]
असति एक **दिगरि कुई॥** [वार माझ म: १]
पुन:– **जब अजराईलु बसतनी तब चिकारे बिदाइ॥** [तिलंग म: ५]
चिलमिलि विसीआर **दुनीआ फानी॥**
कालूबि अकल मन गोर नमानी॥
मन कमीन कमतरीन **तू दरीआऊ खुदाइआ॥**
ऐकु चीजु मुझै देइ अवर जहर चीज न भाइआ॥ [मलार वार म: १]

'असत' 'दिगर' यह फारसी है। शेष 'जब तब' हिंदुस्तानी भाषा के शब्द हैं। जैसे आजकल पंजाबी लोग पंजाबी में बातें करते हुए स्वाभाविक रूप से ही बीच में अंग्रेज़ी के शब्द तथा वाक्य बोल जाते हैं और कुछ अस्वाभाविक सा नहीं लगता। वैसे ही उस समय प्राय: बोलचाल की यही दशा हो रही थी।

चौथी भाषा वह थी जो पुरातन गाथा[1] भाषा थी। जिसमें कई मतों के गीत आदि रचे जाते थे। पंचम सतगुरू ने गाथा, सहसकृत आदि नाम दिये हैं। जैदेव भक्त जी के भी कई शब्द इस भाषा में गुरू ग्रन्थ जी में हैं। गुरू नानक देव जी का "पढ़ पुस्तक संध्या बादं" आदि वाक्य भी इस भाषा में है।

वैसे पंजाब में देश भाषा तो पंजाबी ही थी, जिसमें प्राकृत, संस्कृत के शब्द तो थे ही, फिर अरबी, फारसी के शब्द भी मिल गये और अब तुर्की भाषा के शब्द भी मिलने शुरू हो गये थे।

जैसे ईश्वर, अल्ला, महज़र, कासा, बाबा, तरकश, तुपक, आलम, दुनीआ, खाक नूर भिस्त, दोज़ख आदि शब्दों से अरबी, फारसी और तुर्की भाषा का पता चलता है।

१७. व्यवहार

बहिन–लोगों के खाने, पीने, पहनने के बारे में भी उस समय का कुछ पता चलता है, जिस समय सतगुरू पंजाब को भाग्यवान बना रहे थे?

भाई–सतगुरू जी की वाणी में मजीठ का रंग अच्छा और सुहाग का चिन्ह बताया गया है। लाल रंग और कुसंभे का रंग कच्चा लिखा है। चोली, दस्तार का भी वर्णन है। धोती, कबा, चोले पैराहन (पहरावे) का नाम भी आता है। शक्कर, खांड, मिसरी, दूध, भुसरी, गोला, छुहारे, पंजाब के इन खाने के पदार्थों का वर्णन है। कस्तूरी, कुमकुम, केशर, फूल आदि सुगंधियों का नाम भी है। कोयल, पपीहा, मोर आदि पक्षियों और हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों का भी नाम है। चूड़ियाँ, सुहागिनों की बाहों में चूड़े का भी वर्णन है।

ग्राम, शहर, नदियाँ थीं, अनाज होते थे, लोग गऊओं का दूध पीते थे और घी खाते थे। ईख उगाते थे, गुड़ शक्कर बनाते थे। बहिनों के प्यार, माता-पिता का मोह, बरादरी के आपस में परिवार के से व्यवहार थे। यही ऋतुएँ अथवा रंग थे, हाँ अत्याचार था अशिक्षा तथा दरिद्रता के कारण लोगों के आचरण नीचे थे, जिन्हें गुरू बाबा ने सुधार दिया और सोया हुआ देशा जगा दिया और उच्च आचरण एवं ईश्वरीय प्रेम की नदी बहा दी। पंजाब को तगड़ा बना दिया। जो समान आपके समय थे, वे अब तक भी पंजाब में चले आये हैं, पर अब रीति रिवाज तबदील हो रहे हैं।

१८. साखियाँ

बहिन–कोई साखियाँ भी हैं क्या?

भाई–दीदी! कई शब्द तो लगभग साखियाँ ही हैं। सतगुरू जी ने किसी न किसी के बारे में बहुत से शब्द उच्चारण किये हैं। कोई दूसरे को सामने रखकर (संबोधन करके)

---

१. गाथा नाम गीत का भी है और विलसन ने गाथा के अर्थ प्राकृतिक भाषा भी किये हैं। यह भाषा उस समय की बोलचाल की भाषा थी। 'सहसकृत' का अर्थ है जो स्वाभाविक ही रची जाय। यह प्राकृत एक प्रकार की प्राकृत की सी साधु भाषा थी। संस्कृत जिसकी रचना प्रयत्न से हुई। यह मांजी हुई पुस्तकों की भाषा का नाम था।

कहा है, कभी अन्य पुरुष होकर और कभी अपने मन को संबोधन करके। 'परथाइ साखी महा पुरख बोलदे साझी सगल जहानै'। कभी गोष्टियों के पश्चात उसके सार कथन करने में वाणी की रचना की है। अकाल पुरुष के प्रेम एवं लौलीनता में ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति को वाणी में ही कथन किया है, वही किसी को उपदेश हुआ है। यों वाणी ईश्वरीय ज्ञान है और अनुभवी प्रेम तरंग हैं। वही ईश्वरीय ज्ञान लोगों को उपदेश हुआ और गोष्टियों में बताया गया भी ईश्वरीय ज्ञान की है।

(क) बगले की समाधि (बक ध्यान)

जैसे 'आसा दी वार' में गुरू नानक देव जी एक बगले की भाँति समाधि लगाने वाले पण्डित को समझाते समय कहते हैं, "त्रैपाल तिहाल बिचारं" वाहिगुरू तेरी दशा पर विचार कर रहा हैं, 'तेरा' कहने से स्पष्ट पता चल गया कि यह किसी पण्डित से ही उपदेश के रूप में कह रहे हैं।

पर अपरिचित होकर अथवा अपने आप को जब सामने लाकर कहते हैं, तब कभी कभी होता तो किसी साखी के संबंध में है, पर हम स्पष्ट रूप से नहीं कह सकते। संभव है कि अपने रंग में उच्चारण कर रहे हों।

(ख) राजपुत्रियों की साखी

जन्मसाखियों, प्रसंगों की सहायता से तो हम कितने ही शब्दों के बारे में बता सकते हैं कि अमुक पुरुष के प्रति अमुक शब्द उच्चारण किया है, पर विशुद्ध, श्री गुरू ग्रन्थ जी की साक्षी से भी बहुत समाचार पता चलते हैं, जैसे कि:–

गाछहु पुत्री राज कुआरि॥
नामु भणहु सच दोतु सवारि॥ [बसंत म: १]

यह उपदेश राजा शिवनाभ की पुत्री के प्रति हुआ था, पर श्री गुरू ग्रन्थ जी से केवल इतना ही पता चलता है कि किसी राजकन्या से सतगुरू जी ने कहा है:–जाओ बिटिआ! नाम जपो, यही सच्ची सुन्दरता है।

(ग) शिवनाभ की बहू

फिर शिवनाभ की पत्नी अपनी बहू से कहती है, महाराज के आगे सीस झुका; और उत्तर में वह कहती है, 'मुझसे झुका नहीं जाता'; तब सास कहती है, 'देही का अभिमान मत कर, बड़े-बड़े पक्के मंदिर गिर गये, इस देह को कब रहना है?' तब सतगुरू जी उस सुन्दरी से कहते हैं, नहीं बिटिया! किसी के कहने पर सीस मत झुकाना:–

'पहिला वसतु सिञाणकै तां कीचै वापारु'।

तू अपने लिये पहचान कि तुम जिसे वाहिगुरू नाम की देन प्रदान करने वाला दाता स्वीकार करोगी, वह ठीक दाता है भी अथवा नहीं? सतगुरू जी ने रीति प्रथा का त्याग करवाकर स्वतंत्र चुनाव का उपदेश दिया था और बताया था।

श्री गुरू ग्रन्थ जी में यह साखी तो नहीं लिखी हुई, पर यह बहू, सास तथा गुरू जी की बात लिखी है, जिसने यह तो सिद्ध होता है कि सास ने किसी बहू से सीस झुकाने

को कहा और सतगुरू जी ने अपने नीरोग, स्वस्थ, तगड़ा, तथा निर्भय आत्मिक जीवन उत्पन्न करने का सच्चा स्वतन्त्र चुनाव वाला उपदेश उसे प्रदान किया।

(घ) जनेऊ

'आसा दी वार' में सतगुरू जी ने उपदेश दिया है कि तागे का जनेऊ मुक्त नहीं कर सकता, मुक्त करने वाला जनेऊ दया, संतोष, जत, सत्य आदि शुभ गुणों वाला होना चाहिए। यह श्लोक है तो उपदेश रूप, इस में तुक आई है–'इहु जनेऊ जीअ का हई त पांडे घतु'; अब 'हई त पांडे घतु' सम्मुख संबोधन है, किसी से कर रहे हैं कि यदि जनेऊ है तो ला, डाल दे, यह पाण्डेय के साथ बातें कर रहे प्रतीत होते हैं।

सतगुरू बाल्यकाल से ही एकान्तवासी थे, अत: किसी के यज्ञोपवीत के समय भीड़ों में जाना आपके लिए संभव नहीं, अपने बच्चों के लिए पाण्डेय को बुलाना भी संभव नहीं, क्योंकि इन विचारों वाले पुरुष का रीति करने के लिये पाण्डेय को बुलवाकर फिर समझौता करना अपने आप में असंभव है। शेष यही बात स्पष्ट है कि आपके जनेऊ पहनते समय पाण्डेय आया था और उसे सुमति प्रदान कर रहे हैं और सच्चे जनेऊ की, जो मुक्त कर दे, व्याख्या कर रहे हैं। जो वार्तालाप पण्डित के साथ हुई, जो ईश्वरीय ज्ञान उसे बताया, उसे गुरू जी ने वाणी में रच दिया।

(ङ) पिण्ड, पत्तल आदि

पिण्ड पत्तल गंगा आदि के लिये व्योरा इस शब्द से स्पष्ट रूप में प्रतीत होता है:–

दीवा मेरा एकु नाम दुखु विचि पाइआ तेलु॥
उनि चानणि ओहु सोखिया चूका जम सिऊ मेलु॥१॥
लोका मत को फकड़ि पाइ॥
लख मढ़िया करि एकठे एक रती ले भाहि॥१॥रहाऊ॥
पिंडु पत्तलि मेरी केसऊ किरिआ सचु नामु करतारु॥
अैथे ओथै आगै पाछै एहु मेरा आधारु॥२॥
गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राऊ॥
सचा नावणु तां थीअै जां अहिनिसि लागै भाऊ॥३॥
इक लोकी होरू छमिछरी ब्राहमण वटि पिंडु खाइ॥
नानक पिंडु बखसीस का कबहूँ निखूटसि नाहि॥४॥२॥३२॥[आसा म: १]

स्पष्ट है कि किसी पिण्ड भराने के लिए पाण्डेय अथवा किसी अन्य व्यक्ति ने कहा है तो आप जी ने कहा है, "पिण्डु पतलि मेरी केसऊ किरिआ सचु नामु करतारु॥" 'मेरी' शब्द से अपने बारे में कह रहे साफ दीख पड़ते हैं। इससे सिद्ध होता है कि परलोक गमन के समय आपने यह उपदेश अपने अन्तिम संस्कार के बारे में दिया है। यदि यह उपदेश किसी दूसरे के प्रति हुआ भी माल लें, तब भी उसमें पाण्डेय के लिए सूचना है कि अन्तिम संस्कार

हमको ब्राह्मणी मतानुसार नहीं कराना, पर गुरुमत के अनुसार कराना है। फिर देखिए कि जगत की सभी रीतियों के बारे में भी आप कहते हैं:–

"जालऊ ऐसी रीति जितु मै पिआरा वीसरै॥
नानक साई भली परीति जितु साहिब सेती पति रहै॥ [वार वडहंस म: १]

(च) मरदाना

इसी तरह मरदाने का पता भी श्री गुरू ग्रन्थ जी में से चलता है। मरदाने प्रति गुरू जी ने एक श्लोक कहा है, देखिये गुरू ग्रन्थ साहब में 'वार राग बिहागड़ा में'।

(छ) मूला

इसी तरह 'वारां ते वधीक' नामक वाणी में:–

"नालि किराड़ा दोसती कूड़ै कूड़ी पाइ॥
मरण न जापै मूलिआ आवै कितै थाइ॥"

इस श्लोक से भी पता चलता है कि मूले किरार के प्रति यह वाक्य कहे गये हैं।

(ज) धर्म

बहिन–उस समय पंजाब में मज़हब, धर्म अथवा मत क्या था?

भाई–कौआ शोर। वेद मत को बुद्ध धर्म खा चुका था, बुद्ध मत को ब्राह्मण मत फिर समाप्त कर चुका था। ब्राह्मणी मत को मुसलमान मत ग्रहण लगा रहा था और उस पर वैष्णव मत का हल्का सा रंग चढ़कर फीका पड़ रहा था। कनफटे योगी मत का पेबंद कुछ हरा था। पर यह हरियाली धारणा, ध्यान, समाधि की ही नहीं थी, यह नाटकों चेटकों, तंत्रों, मन्त्रों, सिद्धियों तथा भट्ठियों द्वारा रस निकालना, मदिरा पान करना, कान फाड़ने और राजाओं के गीत गाते फिरने तक आ गई थी, पर तब भी ब्राह्मण मत के कोई-कोई पण्डित मौजूद थे। दूसरी ओर मुसलमान थे, जिनके सूफी फकीर हिन्दू वेदान्त के प्रभाव के नीचे आकर अपने मत के प्रचार का काम कर रहे थे, पर तेज में शरअ वाले काज़ी मुल्ला थे।

अब हम गुरू नानक देव जी की वाणी[1] द्वारा इन सिद्धान्तों तक कैसे पहुँचते हैं? सुनिये! सबसे अधिक सतगुरू जी से सिद्ध मिले हैं और स्थान-स्थान पर आप योगियों के साथ चर्चा करते हैं। 'सिद्ध गोष्ट' तथा अन्य अनेकों शब्द श्लोक इनके प्रति लिखे हैं। सतगुरू जी उन्हें मदिरा पान करने से वर्जना करते हैं और "गुड़ करि गिआनु धिआनु करि धावै" की आत्मिक मदिरा बताते हैं। इसी तरह काज़ी मुल्लाओं को उनके शरअ के ढोंग तथा रिक्त रीति पूजा से निकालने के लिये अनेकों शब्द उच्चारण करते हैं और फिर ब्राह्मणी मत के

१. कादी कूड़ु बोलि मलु खाइ॥
बाह्मणु नावै जीआ घाइ॥
जोगि जुगति न जाणे अंधु॥
तीने ओजाड़े का बंधु॥२॥ [धनासरी म: १]

पाण्डेयों, पण्डितों के प्रति और 'पट्टी' तथा 'ओअंकार' नामक वाणी उच्चारण करते हैं। जो कुछ मैंने कहा है, वह श्री गुरू ग्रन्थ जी से सिद्ध होता है। फिर देखिए, सिरी राग में एक शब्द है, जिसमें गुरू जी कहते हैं:–

मरणा मुला मरणा॥

भी करतारहु डरणा॥१॥रहाऊ॥

ता तू मुला ता तू काजी जाणहि नामु खुदाई॥ [सिरी राग म: १]

इससे स्पष्ट है कि किसी मुल्ला के साथ साखी हुई है और सतगुरू ने यथार्थक जीवन और नाम का उपदेश दिया है। उसकी बनावटी शरअ के हठ को ग़लत बताकर 'वाहिगुरू नाम' का उपदेश दिया है। इस तरह 'मुसलमाण कहावणु मुसकलु' तथा और कई शब्द जो सम्मुख वार्तालाप के हैं, चाहे श्री गुरू ग्रन्थ जी से यह नहीं कहा जा सकता कि लोधी शासक के काज़ी के साथ हुए अथवा मक्के के शरीफ़ (उच्चाधिकारी) के साथ हुए, पर किसी समय किसी मुसलमान के साथ यह विचार और उसे उपदेश अवश्य ही हुआ है। जिसे सतगुरू ने आप मीठी प्यारी पंजाबी भाषा में हमारे तक पहुँचने के लिये रचा और पंचम गुरू जी ने श्री गुरू ग्रन्थ जी में लिख दिया।

इस तरह 'आसा दी वार' का कुछ भाग, विशेष करके पौरियां का, वाहिगुरू जी के संबंध में है। किसी दार्शनिक से चर्चा का है, कुछ पण्डितों के साथ है, कुछ ब्रह्मचारियों के साथ है, कुछ मुसलमानों के साथ और कुछ आम कुरीतियों के बारे है और सिद्धान्त वही 'वाहिगुरू प्रेम, नाम, लौ और प्रभु की आज्ञा[१]' को सिखाया है। जब कि जैन मत भी था, बौद्ध तथा बुद्ध धर्म का पद तो सतगुरू जी ने थोड़ी बार ही उपयोग किया है। जिस से प्रतीत होता है कि इस धर्म वाले मर चुके थे, पर गुरू जी को उनका पूरा-पूरा पता था।

(झ) सेवड़ा

बहिन–कभी सतगुरू जी से कोई सेवड़ा भी मिला है?

भाई–हाँ दीदी, 'माझ की वार' में पौरी है जिसमें सतगुरू जी ने सेवड़ों को उनकी भूल बताई है।

सिरू खोहाइ पीअहि मलवाणी [माझ वार म: १]

इससे पता चलता है कि या तो किसी के साथ गोष्ठी हुई, या उनकी क्रिया को बुरा कहकर लोगों को समझाया है। प्रत्येक दशा में उन्होंने इस मत की क्रिया को पसन्द नहीं किया। अत: पता चला कि सेवड़े भी उस समय थे।

इसके अतिरिक्त 'इकि जैनी ऊझड़ पाइ' की रचना भी है। यद्यपि पता नहीं कि सूरत, धनासरी देश अथवा किसी अन्य स्थान पर बात हुई, पर जैनियों की क्रिया के बारे आपने अपनी असम्मति बताई है।

(ञ) आरती

इसी तरह सतगुरू जी ने धनासरी राग में, 'गगन मै थालु रविचंदु दीपक बने' निराकार की आरती प्रकृति की सामग्री द्वारा की है। अर्थात् उन्होंने मन की बनावट से ऊँचा करके

१. यह 'आसा दी वार' के बारे में है जिस स्वरूप में वह अब पवित्र ग्रंथ में हैं।

प्रकृति के साथ एक स्वर करके वाहिगुरू की स्तुति में लौ लगाने का ढंग बताया है। ऐसे प्रतीत होता है कि कहीं किसी मूर्ति के आगे आरती होती देखकर सतगुरू ने उन्हें यह मीठा उपदेश दिया है। हम समझ सकते हैं, पूरब, बिहार, बंगाल, उड़ीसा में वैष्णव मत प्रधान था। अत: हम विचार कर सकते हैं कि वहाँ के लोगों को रिक्त एवं रीति पालन से उठाकर उद्धार के लिये और जीवित, प्रेम की झन्नाहट वाला, रोग रहित ईश्वरीय जीवन प्रदान करने के लिये यह प्रकृति के साथ एक स्वर होकर कर्तार के आगे करने योग्य आरती सिखाई है।

(ट) अहिंसा परमोधर्मः

पता चलता है कि किसी एक 'अहिंसा परमोधर्म:' को मानने वाले पाण्डेय के साथ सतगुरू की गोष्ठी हुई। वह कहता था कि माँस न खाने से ही मुक्ति प्राप्त होती है और सतगुरू जी कहते थे कि माँस खाने अथवा न खाने का झगड़ा एक मूर्खता वाली है, मुक्ति तो नाम जपने और लौ लगाने से प्राप्त होती है। मलार राग में यह गोष्ठी लिखी है। गुरू नानक जी वहाँ कहते हैं:–'पांडे तू जाणै ही नाही किथहु (कहाँ से) मास उपन्ना'। स्पष्ट है कि आप किसी पाण्डेय को सम्बोधन कर रहे हैं। सतगुरू जी उसकी यह भूल बता रहे हैं कि मुक्ति नाम जपने से, एवं वाहिगुरू प्रेम से प्राप्त होती है। वाहिगुरू से विमुख होकर रहने वाले, चाहे वे माँस भी नहीं खाते तो भी कल्याण के अधिकारी नहीं और चाहे वे खाते हैं तो भी मुक्ति नहीं हो सकते। तुम मन का वाहिगुरू से निरंतर ध्यान छोड़कर विहत अविहत कर्मों के झगड़े में पड़कर आसुरी सम्पत्ति में खेल रहे हो। अत: किसी अहिंसा को केवल मुक्तिदाता मानने वाले के साथ यह वार्तालाप हुई प्रतीत होती है, यह केवल एक काल्पनिक रचना मात्र नहीं; इस पद में 'तू' शब्द आया है, जिससे पता चलता है किसी माँस के भ्रम मे पड़े हुए पर वैसे फोकट कर्म एवं विशुद्ध कर्मकांड में पड़े हुए किसी व्यक्ति के प्रति उच्चारण हो रहा है और वह है ही पाण्डेय।

(ठ) दखणी (दक्षणी) ओअंकार

बहिन–क्या दखणी ओअंकार नामक वाणी से कुछ पता चलता है?

भाई–जी हाँ! यह एक वर्णमाला द्वारा उपदेश है, पर इसका ढंग बता रहा है कि एक पाण्डेय के साथ चर्चा है। यह पाण्डेय केवल तीर्थों का पाण्डेय नहीं बल्कि बालिकों को भी पढ़ाता है। जिस तरह कि आरम्भ में उसे 'सुणि पाण्डे' कहते हैं और अंत में बताते हैं "पाधा गुरमुखि आखीअै चाटड़िआ मति देइ"।। इससे स्पष्ट धुनि निकल रही है कि पाण्डेय भी है और बालकों को भी पढ़ाता है। इस पाण्डेय को खोखले ज्ञान से, रिक्त विद्वता से निकालकर गुरू जी नाम की उच्चता, परमेश्वर के प्यारे के सच्चे संयोग का उपदेश करते हैं और उपदेश में मनुष्य के जीवन के सभी अंग दिखाते जाते हैं। इसको पढ़ने से पता चल जाता है कि पाण्डेय ने शिष्यत्व धारण कर लिया है, उसकी बहिन को यह बात बुरी लगी, फिर उसने प्रश्न किये, फिर उसे भरोसा हुआ। अन्त में सतगुरू जी उन्हें नाम का दान और प्रभु की लौ का दान प्रदान करके आ गये।

(ड) भृतहरि योगी

भृतहरि नामक योगी को सतगुरू ने उपदेश दिया है, जो आसा राग में एक संपूर्ण शब्द के रूप में है। इसकी अन्तिम तुक है "कहु नानक सुणि भरथरि जोगी पारब्रह्म लिव एकं"।। दो शब्द और भी इसी राग में भृतहरि नाम सहित आये हैं। "कहु नानक सुणि भरथरि जोगी खीवा (मस्त) अंमित धारै"। तथा–"सुणि भरथरि नानक कहै बीचारु।। निरमल नामु मेरा आधारि"।। जिससे स्पष्ट हो गया कि यह उपदेश भृतहरि नामक योगी को हो रहा है। अंत में यह पता चलता है कि भृतहरि गुरू जी का गुणानुवादी हो गया और फिर सदैव आपके साथ रहा जैसे कि भट्टों ने सवैयों में पता दिया है, 'भरथरि गुण उचरै सदा गुर संग रहन्तौ'।

(ढ) सिद्ध गोष्ट

बहिन–सतगुरू जी पातंजलि के योग दर्शन एवं सांख्य की साधना और हठयोग के ज्ञाता थे अथवा नहीं थे?

भाई–जी, केवल ज्ञाता ही नही थे अपितु उन्होंने हठयोग स्वयं करके भी देख रखे थे। इसीलिये सिद्धों के साथ, योगियों के साथ जब चर्चा होती है तो उनका खूब खंडन करते हैं। यथा:–'पहिरा अगनि हिवै घरु बाधा' कहा जाता है कि एक बार अचल बटाले में सिद्धों को पराजित कर दिया, पर तुम इस समय गुरू ग्रन्थ साहब के बाहर की बात तो सुनोगे ही नहीं अत: अन्दर की साखी ही सुनो। श्री गुरू ग्रन्थ साहब में सिद्ध गोष्ट (वाणी) गुरू जी ने स्वयं लिखी है और यह वाणी स्वाभाविक ही लिखी गई प्रतीत नहीं होती। यह तो किसी हो चुकी गोष्ठी का साराँश गुरू जी ने लिखा है। पहली तुक यों है:–

'सिद्ध सभा करि आसणि बैठे'।।

सिद्ध हमारी सभा में आयें और आकर आसन लगाकर बैठ गये और हमें कहने लगे हे सन्त सभा! तुम्हें जैकार हो; आगे फिर प्रश्न उत्तर चलते हैं।

'कवन तुमे किआ नाऊ तुमारा, कऊनु मारगु कऊनु सुआओ'।

आगे फिर चर्चा होने लगती है, जिसमें सतगुरू जी उन्हें हठयोग के कष्टों तपों के स्थान पर नाम के अभ्यास, लौ और वाहिगुरू के प्रेम में ले आते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि यह वाणी एक हो चुकी घटना एवं उस पर दिये जा चुके उपदेश का सारांश है।

वास्तव में इस समय पंजाब में से, जो कुछ बुद्ध मत का पालना था, योग मत कम हो रहा था। इसके शुष्क तने पर ब्राह्मणी मत चल रहा था, उस पर वैराग्य मत का रंग चढ़ गया था और अब वे गोरख के योग मत और बाद के मदिरा आदि वाले योग मत में भटक रहा था। पंजाब में यही कुछ प्रदान था। योगी प्रचारक घर-घर में फिर रहे थे। उनमें धर्म के स्थान पर मदिरा आदि ने स्थान बना लिया था।

राग रामकली में सतगुरू जी की, योगियों के साथ चर्चा कई स्थानों पर आई है[१], पर सबका निचोड़ सिद्ध गोष्ट में है जो उन नामों से, जो सिद्ध गोष्ट में आते हैं, पता चलता है कि समाज में प्रामाणित योगियों नेताओं के साथ चर्चा हो चुकने के पश्चात सतगुरू जी ने पंजाब को इनके प्रभाव से स्वतन्त्र किया और सच्चे वाहिगुरू का सच्चा प्यार और वाहिगुरू के साथ हार्दिक भावों से इहलोक तथा परलोक के संयोग बनाने का सदैव युवा से भरा हुआ बलवान, सच्चा, उन्नति वाला जीवन प्रदान किया, क्योंकि सिद्ध गोष्ट के अन्त में से पता चलता है कि इन लोगों ने हठ का त्याग करके सतगुरू जी से प्रभु के नाम की याचना की। तुम्हें तो आज सुनना नहीं; भाई गुरुदास जी ने लिखा है, "बाबे कीती सिध गोष्ट, 'शबद साँति' सिधां विच (में) आई"। अर्थात हठयोग से हटकर उन्होंने गुरू जी को शब्द शन्ति दाता माना और इस तरह शन्ति में आ गये। पर लीजिये मैं तुम्हें 'सिद्ध गोष्ट' में से ही यह कथा सुनाता हूँ।

गुरू नानक जी अहं से अतीत थे। वे आप बताते हैं, "होंदा फड़ीअगु नानक जाणु।। ना हऊ ना मैं जूनी पाणु"।। वे अपनी विजय को अपनी नहीं समझते थे, वे तो सब वाहिगुरू का खेल जानते थे और कहते थे। अपनी इस नम्रता वाली भाषा में गुरू जी सिद्धों पर प्राप्त विजय को यों बताते हैं:–

"साधिक सिध गुरू बहु चेले खोजत फिरहि फुरमाणै।।
मागहिं नामु पाइ इह भिखिआ तेरे दरसन कऊ कुरबाणै।।
अबिनासी प्रभि खेलु रचाइआ गुरमुखि सोझी होई।।
नानक सभि जुग आपे वरतै दूजा अवर न कोई।।७३।।१।।" [सिद्ध गोष्ट]

अर्थात् सिद्ध जो (योगमत के) गुरू हैं और साधक जो साधना करने वाले हैं, वे सभी (योगियों के गुरू तथा चेले अब) नाम (हम से) माँगते हैं, (कहते हैं हमें किसी तरह यह) भिक्षा प्रदान कीजिये, (और कहते हैं) तेरे दर्शन पर न्योछावर हैं।

अर्थात उस दर्शन (मत, फिलासोफी, धर्म की शिक्षा) पर हम न्योछावर हैं। अथवा आप के दीदार पर न्योछावर हैं। अत: गुरू जी कहते हैं (जैसा कि गुरू जी का अभिमान रहित स्वभाव था) यह वाहिगुरू का खेल है कि यह लोग गुरुमुख बन गये हैं, इन्होंने नाम ले लिया है और इन्हें सूझ आ गई है। गुरू नानक जी कहते हैं, सभी युगों में वही आप परमेश्वर है और कोई नहीं। अर्थात कलियुग में जो कुछ मैं कर रहा हूँ, यह मेरा काम नहीं, अपितु उसका है। अत: दीदी! यह गोष्टी पंजाब में से योग मत का अन्तिम दिया बुझाने वाली थी। यद्यपि कहीं-कहीं मठ अथवा योगी रह गये थे और आज तक भी हैं, पर 'पंजाब का मत योग है' यह दिया बुझ गया है, क्योंकि सभी नामी योगी 'नाम धारण करके' बाबे नानक के सिक्ख बन गये[२]।

सांख्य तथा योग के दर्शन से भी गुरू जी कई बातों में अपनी असम्मति बताते हैं। जैसे कि सांख्य 'पुरुष' को कर्त्ता नहीं मानता और योग अपने 'पुरुष विशेष' को कर्त्ता नहीं मानता,

---

१. सुणि माछिंद्रा नानकु बोलै।
वसगति पंच करे नह डोलै। [रामकली म: १]
२. भाई गुरुदास जी ने 'बाबे जिती सिध मंडली' स्पष्ट लिखा है।

पर गुरू जी अपने ईश्वर को 'पुरुष' कहकर उसे 'कर्त्ता' बताते हैं, जैसे 'कर्त्ता पुरुष'। सांख्य तथा योग प्रकृति को स्वतन्त्र मानते हैं, पर गुरू जी बताते हैं, 'सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु'। वेदान्त माया को उपाधि बताता है और गुरू जी माया को भी कर्त्ता की रचना बताते हैं।

(ण) गद्दी प्रदान करना

बहिन–गुरू जी ने अपनी गद्दी किसे दी।

भाई–गुरू अंगद देव जी को, जिनका पहला नाम 'लहना जी' था।

बहिन–सारा प्रसंग सुनाइए, पर बाहर से नहीं, गुरू ग्रन्थ जी में से।

भाई–श्री पावन लहना जी ने खंडूर में निवास किया था, यथा–

'फेरि वसाइआ फेरु आणि सतिगुरि खाडूरु'॥

गुरू अंगद देव जी के पिता का नाम 'फेरू' था, जो इसी तुक में 'फेरु आणि' (फेरू के पुत्र) करके बताया है।

गुरू नानक देव जी ने गद्दी देते समय पुत्रों एवं सिक्खों की शोध की थी, सब में से लहना जी संपूर्ण निकले, यथा:–सिखां पुत्रां घोखि कै सभ उमति वेखहु जिकिओन॥ 'जां सुधोसु तां लहणा टिकिओनु'॥ श्री गुरू जी के पुत्रों ने सतगुरू के वचनों का पालन नहीं किया था, अर्थात वे सोध के समय पूरे नहीं उतरे थे। उनके बारे मे लिखा है, 'पुत्रीं कउलु न पालिओ करि पीरहुं कंन्ह मुरटीऐ॥ दिलि खोटे आकी फिरनि बंनि भारु उचाइनि छटीऐ'॥

बहिन–अच्छा भैया! तुम जो टीके की वार की तुकों में से यह प्रसंग बता रहे हो वहाँ 'लहना' नाम लिखा है। तुमने गुरू अंगद किस तरह कह दिया है?

भाई–नहीं दीदी! वहाँ ही लिखा है, 'गुरू अंगद दी दोही फिरी सचु करतै बंधि बहाली॥" और सुनिए:–

दीदी! गुरू अंगद जी की पत्नी का नाम 'खीवी जी' था और वह बहुत नेक स्त्री थी। साधु संगत को पदार्थ देती थी, आप लंगर बाँटती थी और घी डालकर खीर खिलाती थी। उनके समय में सृष्टि ने बहुत सुख प्राप्त किया है। देखिए लिखा है:–

'बलवंड खीवी नेक जन जिसु बहुती छाऊ पत्राली॥
लंगरि दऊलति वंडीऐ रसु अंमृतु खीर घिआली (घी वाली)'॥

बहिन–यह कैसे पता चला कि खीवी जी गुरू जी की पत्नी थी?

भाई–इस तुक से 'माता खीवी सहु सोइ जिनि गोइ उठाली'। बलवंड कवि उन्हें अपनी माता कहता है और कहता है सृष्टि का बोझ उठाने वाले गुरू उसके (खीवी के) पति थे और बोझ उठाने का प्रसंग अंगद जी का चल ही रहा है।

पिता–शाबाश बेटा! बहुत खूब।

बहिन–गुरू अंगद, गुरू नानक देव जी जैसे ही थे अथवा कम बढ़ती थे?

भाई–उन्हीं जैसे। देखा लिखा है:

"लहणे दी फेराईऐ नानका दोही खटीऐ॥
जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ"॥

बहिन–भला गद्दी स्वयं गुरू नानक देव जी ने प्रदान की थी अथवा बाद में प्रेमियों सिक्खों ने मिलकर दी? इस संशय का समाधान कैसे करेंगे?

भाई–यह तो स्पष्ट है कि 'गुरि चेले रहरासि कीई नानकि सलामति थीवदै।। सहि टिका दितोसु जीवदै"। अर्थात गुरू नानक ने जीवित समय चेले को गुराई का साझी बना लिया, जीवित ही गुरू अंगद को, गुरू नानक ने टीका प्रदान किया।

बहिन–क्या गुरू अंगद देव जी ने उसी तरह काम किया, जिस तरह गुरू नानक देव जी ने किया था?

भाई–जी हाँ! आपने गुरू की वाणी का (गुरू के उपदेश का) लंगर खूब उदारता से बाँटा:–

लंगरु चलै गुर सबदि हरि तोटि न आवी खटीऐ।।
खरचे दिति खसंम दी आप खहदी खैरि दबटीऐ।।
होवै सिफति खसम दी नूरु अरसहु कुरसहु झटीऐ।।
तुधु डिठे सचे पातिशाह मलु जनम जनम दी कटीऐ।।

(त) पाँच गुरू

बहिन–गुरू नानक से लेकर पाचवें गुरू जी तक नाम एवं गद्दी मिलने के संबंध में श्री गुरू ग्रन्थ जी में से कोई प्रमाण मिलता है।

भाई–हाँ दादी, सुनो:–

"जोति रूपि हरि आपि गुरू नानकु कहायऊ।।
ताते अंगदु भयऊ तत सिऊ ततु मिलायऊ।।
अंगदि किरपा धारि अमरु सतिगुरु थिरु कीअऊ।
अमरदासि अमरतु छत्रु गुर रामहि दीअऊ।।
गुर रामदास दरसनु परसि कहि मथुरा अंम्रित बयण।।
मूरति पंच प्रमाण पुरखु गुरु अरजुनु पिखहु नयण"।।१।।

बहिन–तुखारी राग में उच्चारण की गई 'बारां माह' नामक वाणी में से ही कुछ रहस्य का पता चलता है।

भाई–वाणी तो वही वाहिगुरू प्रेम से भरी हुई हमारे उद्धार के लिये उपदेशों वाली है, पर गम्भीर दृष्टि से पाठ करने से यह पता चलता है कि सतगुरू जी बड़ी मीठी ध्वनि में संसार से चलने की अपनी तैयारी कर रहे हैं।

इस विचार के समाप्त होने पर पिता ने पुत्र को आशीर्वाद दिया ओर परिवार गद्-गद् हो गया।

(थ) गीत– रावी नदी की अरदास[1]

सतुगरू नानक ने सारे संसार का भ्रमण करके रावी नदी के किनारे पर आ डेरा डाला। कर्तारपुर बसाया और शेष आयु यहीं पर व्यतीत की। बाद की यात्राएँ यहीं से कीं। यहाँ पर

१. यहाँ पर लेखक के गीत का (सरल अर्थ) अनुवाद प्रस्तुत है।

धर्म स्थान की रचना की, सत्संग मण्डल बाँधा, नाम का लंगर जारी किया, कृत्य करके खाने का ढंग बताने के लिए खेती करवाई। अत: इस सौभाग्यवान स्थान के कारण रावी नदी मानो अरदास कर रही है और कहती है:–

दासी तेरी हे नानक! मैं हर क्षण तेरी दासी हूँ। चेरी तेरी मेरे स्वामी! तू मुझे अपनी बंदी बना ले। आपने मुझे मान प्रदान किया और सौभाग्यवान बनाया, सारी धरती का सुधार करके, पाव-पाव पर जगत को मापकर। आपने यहाँ पर डेरा डाला। हे सतगुरू जी! आप अगंम अदेश के निवासी हैं, आपने मेरे किनारे पर डेरा डाला है। आपने अपने पवित्र चरण रखकर मुझे पवित्र किया है, यहाँ आप आकर विराजमान हुए हैं और आपने सदैव सुहाव लगाया है। जिस नदी में अदेश के राजा ने स्नान किया, वह भली सुहावनी तथा नदियों की सरदार बन गई। सच्चे गुरू नानक ने अपने प्रेम से मोहित कर लिया और अपनी समझकर मुझे अपना बना लिया और कुशलता शान्ति तथा मोक्ष प्रदान किये। इस तरह प्यारे जी अपना बनाकर अपने गृह को चल दिये और मुझे अपने सुन्दर ध्यान का दान प्रदान कर गये। कर्तारपुर में आकर देखिए, मैं गम्भीरता से बह रही हूँ, मैं मस्त होकर, सुहावनी, सुन्दर होकर बहती हूँ और मेरे किनारे भी सुन्दर हैं। प्रतिपल मेरे नेत्र आकाश में लगे रहते हैं। मैं उस सुजान का दर्शन करती हूँ, जो संसार में प्रकट है। मैं चलती-चलती उसके दर्शन के रंग में मस्त हुई रहती हूँ, मेरी दृष्टि आकाश की ओर लगी रहती है और वह मस्ती तथा प्यार से भरी रहती है। गुरू जी मुझ में स्नान कर के, मुझे पवित्र बना गये हैं, इस स्मृति का नशा मुझे हर समय रहता है। मुझे अपनी प्यारी याद प्रदान कर गये हैं और वे सुजान अपने ध्यान में मेरी लौ लगा गये हैं। हिन्दू तथा मुसलमान सतगुरू जी की देह की खोज करते थे, वे दाह करने अथवा दबाने के झगड़े के लिये चिल्लाते थे। पर मुझे तो आपने अपने सौंदर्य भरे दर्शन का रहस्य प्रदान किया था और मैं उनकी याद की मदिरा की प्याली पीकर मस्त हूँ। इस मस्ती में मस्त हुई मैं गज गामनी होकर चलती रहती हूँ और हर वर्ष इसी स्थान पर लौटकर आती हूँ। कर्तारपुर के किनारे पर स्मृति उछाल खाती है और प्यार हिलोरें मारता है और लौ की लहर चलती है। प्रेम की विभूति लगाकर प्रसन्नता और चाव से भरकर तब मैं आगे जाती हूँ धरती और आकाश पर चक्कर लगाती हूँ। भूगोल की यात्रा करके सिर फिर इस स्थान पर आकर यात्रा करके सुख प्राप्त करती हूँ और अरदास करती हूँ, 'हे नानक! मैं प्रतिपल आपकी दासी हूँ, हे नानक मैं तेरी चेरी हूँ, हे स्वामी! मुझे अपनी बंदी बना ले। मैं चलती बहती हुई जगत के सभी काम करती हूँ, धरती अथवा आकाश पर फिरती हूँ और सदैव तेरा नाम जपती हूँ। तेरे प्यार का आकर्षण मेरे अंदर झन्नाहट छेड़ देता है और तेरे सुन्दर चरणों की लौ सदैव मेरा मन लगाये रखती है। हे सच्चे पातशाह गुरू नानक! तेरे ही चाव, रंग और उल्लास में भरी हुई मैं सदैव हंस की चाल चलती रहूँ।

❑ ❑

१३ प्यारे की प्रेम विजय

१. जीत

सभी जानते हैं कि गुरू नानक देव जी ने युद्ध नहीं किये, पर उन्होंने वह विजय प्राप्त की जिससे अमर पताका झूलने लगे और अट्टल चिन्ह उदय हो गये। आपकी विजय प्रेम की विजय है और प्राय: विजय में एक अद्भूत रंग है वह यह कि दूसरे को दीखता है कि आपने पराजय मान ली है, पर जब दूसरा विचार करता है तो उसे अपनी पराजय प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। जैसे मक्के के किबले की ओर पैर करके सोया हुआ देखकर जिसने आपको क्रोधित होकर डांट डपट दी भी थी कि ईश्वर के घर की ओर पैर करके क्यों सो रहा है? उसे यह कहकर, अच्छा भाई, 'जिस दिशा में ईश्वर नहीं, मेरे पाँव उसी ओर कर दे', लगता है कि आपने पराजित होकर कहा है, पर इसमें उसकी पराजय थी। क्योंकि कोई ऐसी दिशा नहीं, जिधर प्रभु नहीं।

अत: उस प्रभु की ज्योति ने जो विजय सुलह में प्राप्त की है आज हम उन पर कुछ विचार करेंगे, फिर हमें यह विचार भी करना है कि क्या हम सतगुरू जी की इस तरह की विजयों में आकर सम्मिलित हुए हैं अथवा उनसे हमारी आत्मा में कोई बल आया है, और हम 'गोसाईं का पहलवान' बनकर अपने सामर्थ्यानुसार उसी मार्ग पर चल पड़े हैं जिससे हम भी अखाड़ा जीतने वाले और विजय प्राप्त करने वाले सिक्ख बन जायें?

२. प्यारा

श्री गुरू जी वाहिगुरू की ओर से गुरू अवतार होकर सृष्टि का उद्धार करने के लिये आये थे, इसलिये जन्म से ही आपके लक्षण महापुरुषों के से थे। सतगुरू जी के जीवन के बारे में पुरातन से पुरातन साखी जो अब तक प्राप्त हुइ है–जो कि अनुमान है कि छटे गुरू जी के समय में लिखी गई[१], जिसका कि एक संस्करण इंगलैंड में है और कई स्वदेश में भी हैं, उसमें लिखा है–

"श्री सतगुरू जी जगत का निस्तार करने के लिये आया, बाबा नानक का जन्म कलियुग में हुआ, वह पारब्रह्म का निज भक्त था"।

फिर लिखा है:–

"जब बाबा पाँच वर्ष का हुआ तो अगंम निगम की बातें करने लगा, जो कुछ बात भी करता , समझकर करता, जिससे सबको निश्चय हो जाये। हिन्दू कहते थे कि कोई देवता रूप पैदा हुआ है, मुसलमान कहते थे कि खुदा का कोई सादिक (भक्त) पैदा हुआ है"।

१. इस लेख में क्रमवार घटनाएँ और प्रसंग विशेष करके इस जन्मसाखी पर ही आधारित हैं। इसके कई पांडुलिपि अथवा फोटो संस्करण हैं और इसे प्रकाशित भी कर दिया है जो खालसा समाचार के दफतर से मिलती है।

इस जन्मसाखी से पहली रचना भाई गुरुदास जी की है। इस समय तक भाई गुरुदास जी की दो पुस्तकों का हमें पता है, एक 'वारा' और दूसरी 'कबित सवैये'। 'वारां' में आपने श्री गुरू नानक देव जी का संक्षिप्त चित्र दिया है। भाई गुरुदास अपनी रचना से उस समय के महान विद्वान प्रतीत होते हैं और रचना में से ही उनके उच्च आदर्श, उच्च आचरण तथा आत्मप्राप्ति का स्पष्ट रूप से पता चलता है। जिससे उनकी साक्षी बड़ी आदरणीय है और इस समय तक प्राप्त समाचारों से सनातन है। आप लिखते हैं:-

सुणी पुकार दातार प्रभु गुर नानक जग मांहि पठाया।
चरण धोइ रहरासि कर चरनामित सिखाँ पीलाया।।
पारब्रह्म पूरन ब्रह्म कलिजुग अन्दर इक दिखाया।
चारे पैर धरंम दे चार वरन इक वरन कराया।
राणा रंक बराबरी पैरीं पवणा जग वरताया।।
उलटा खेल पिरंम दा पैरां उपरि सीस निवाया।
कलिजुग बाबे तारिआ सतिनाम पढ़ मन्त्र सुणाया।
कलि तारन गुर नानक आया।।२३।। [भाई गुरुदास वार १]

इससे प्रकट होता है कि श्री गुरू नानक देव जी जगत के उद्धार के लिये वाहिगुरू की ओर से भेजे हुए आये और आकर अपने उद्देश्य का प्रचार किया।

उस समय 'कल' नामक एक कवि हुए हैं जो अवश्य ही गुरू अर्जुन साहब के समय जीवित थे और अनुमान है कि यह दूसरे गुरू श्री अंगद देव से मिले हैं; क्योंकि दूसरे गुरू जी को अपनी रचना में सम्मुख संबोधन करते हैं और उनकी दृष्टि से अमृत बरसना आदि प्रत्यक्ष अवलोकन के समाचार कथन करते हैं। आश्चर्य की बात नहीं कि आपने गुरू नानक देव जी के दर्शन भी किये हों। भृतहरि योगी के सतगुरू जी के साथ रहने और महादेव वैरागी के गुरू जी के गुणानुवापद करने की साक्षी भरते हैं। हरेक दशा में यह सज्जन पंचम गुरू जी के समय के बाद नहीं हुए। आप श्री गुरू नानक देव जी के बारे में यों साक्षी भरते हैं:-

गावऊ गुन 'परम गुरू' सुख सागर दुरत निवारण सबद सरे।।
राजु जोगु माणिओ बसिओ निरवैरु रिदंतरि।।
स्त्रिसटि सगल उधरी नामि ले तरिओ निरंतरि।। [सवैय महले १ के]

'कल' जी ने तो यहाँ तक पता दिया है कि अपने समय ही गुरू नानक देव जी अवतार माने गये थे और प्रमाणिक अवतार माने गए थे। यथा:-

कलिजुगि प्रमाणु नानक गुरू अंगद, अमरू कहाइओ।।
श्री गुरू राजु अबिचलु अटलु आदि पुरखि फुरमाइओ।।७।। [सवैय महले १ के]

यह उस समय के गवाहों की साक्षियाँ हैं जिनसे गुरू जी का वाहिगुरू की ओर से भक्त, अवतार गुरू अवतार होना सिद्ध होता है, जिससे उनका जन्म से ही ज्ञानी एवं प्रेमी होना प्रमाणित है।

अतः सतगुरू जी ने, जो संसार में केवल उसके उद्धार के लिये ही आये थे, उन्हें संसार के अज्ञान पर विजय प्राप्त करनी थी, इसलिये "चढ़िआ सोधण घरत लुकाई" (भाई

गुरूदास) लिख है। हम अब आपके बड़े-बड़े लोगों के अज्ञान को दूर करने अथवा उन पर विजय प्राप्त करने के समाचार संक्षिप्त रूप में कहेंगे।

३. पाण्डेय

सतगुरू नानक देव जी जन्म से ही परमेश्वर के प्यार में पूरे थे, पर माता-पिता पहचानते नहीं थे। उन्होंने जगत की रीति के अनुसार पाण्डेय के पास पढ़ने के लिये भेजा। पाण्डेय ने आपको लण्डों की लिपि तथा लेखा सिखाना शुरू कर दिया। यह शिक्षा प्रतिभाशाली व्यक्ति के लिए कोई कठिन बात नहीं थी पर आप तो कोई वास्तविक, कोई गहन विद्या सिखाने के लिए आए थे और आप गुरू थे, पढ़ना क्या था, आप तो पढ़ाने के लिये आऐ थे, अत: आपका प्रचार का काम आज से ही आरम्भ होता है। पाण्डेय पर ही सतगुरू ने जो कौतुक किये उससे पाण्डेय ने पूछा कि तू क्यों नहीं पढ़ता? तब गुरू जी ने उसे यह वाक्य कहे:-

"पाण्डेय! तू स्वयं भी कुछ पढ़ा है जो मुझे पढ़ाता है?"

पाण्डेय ने चकित होकर अपनी विद्या के ग्रन्थ बताये। तब सतगुरू जी ने कहा इस शिक्षा से तो गले में फाँसी पड़ती है, उस विद्या का तुझे पता नहीं, जिस द्वारा बंधन मुक्त हो जायें। अत: चकित पाण्डेय को सात वर्ष की आयु वाले बालक ने यह सत्य विद्या का उपदेश दिया:-

"हे पाण्डेय! सब के अंदर एक प्रभु निवास कर रहा है, जिसने सारी सृष्टि का निर्माण किया है। भ्रम तथा मोह में पड़कर तुम बंधन मोल ले रहे हो। इस तरह उस प्रभु से बिछुड़ रहे हो। यह दशा 'साकट' दशा है। अर्थात् प्रभु से टूटी हुई और माया में फँसी हुई दशा है। तुम 'तिसै सरेवहु ता सुखु पावहु सरब निरंतरि रवि रहिआ'। वाहिगुरू से संयोग के बिना जीवन व्यर्थ जा रहा है, अत: उसकी खोज करो और उसे प्राप्त करो, फिर पढ़ो और पढ़ाओ। उससे मन को पृथक रखकर सभी कर्म करने व्यर्थ हैं।"[१]

पाण्डेय ने पूछा वाहिगुरू के साथ संयोग करके संसार में विचरने का क्या फल है और उसका ढंग क्या है? तब गुरू जी ने कहा:-

'मोह को जलाकर स्याही बना, मति को कागज़ बना, प्रेम को लेखनी और चित को लेखक बना और सतगुरू से पूछकर कर्तार का नाम लिख, उसकी महंमा और उसकी अनंतता लिख।' यदि तू यह लेखा लिख ले, अर्थात् वाहिगुरू को अनंत लखकर उसकी महंमा में लीन हो जाये तो परलोक में जहाँ लेखा पूछा जाता है, जहाँ बड़ाई, सदैव प्रसन्नता तथा चाव मिलते हों, वहाँ तुझे सच्ची बड़ाई प्राप्त होगी, क्योंकि वहाँ नाम वालों का ही सत्कार

---

१. राग आसा में 'पट्टी' नामक वाणी का यह सार उपदेश है। जो कि इस समय उच्चारण की गई कही जाती है। श्री गुरू ग्रन्थ जी में इसका शीर्षक 'पट्टी' नहीं, पर 'पट्टी लिखी' है। जिसका भाव यह है कि वह लिखित पट्टी पर लिखी थी। पट्टी पाण्डेय से ही लिखी जाती है और इसके भाव से पता चलता है कि यह पाण्डेय प्रति उपदेश है।

होता है। संसार के शेष बड़े लोग यहाँ खाक़ हो जाते हैं, वहाँ जाकर दुखी होते हैं। तब पाण्डेय का, चरणों के संग लगकर, उद्धार हुआ।

४. राजा

इसके पश्चात गुरू जी एकान्त होकर घर में बैठे रहते। माता-पिता ने सोचा और लोगों ने कहा कि विवाह होने पर उदासी का त्याग कर देगा, परच जायेगा, अत: बारह वर्षों की आयु में उदासी एवं लौ में संलग्न गुरू बाबे का विवाह कर दिया। काम धन्धे में भी लगाया, पर वे बेपरवाह होकर अपने रंग में बिचरते रहे! संपूर्ण नगर का विचार हुआ कि आजकल फकीरों के साथ चल देगा। पिता ने खेतों, जंगलों से प्यार करता देखकर कहा कि भैंसें ही चरा लाया कर। अत: जगत गुरू अब 'चरवैहा' बना, पर भैंसें अपनी इच्छा से मुक्त फिरतीं और गुरू बाबा 'अपने रंग रवे अकेला'। एक दिन भैंसें एक भट्टी जाट का खेत चर गईं, उसने परगने के शासक रायबुलार के पास चुगली की, राय ने कालू को बुलाकर कहा, तेरा पुत्र बावला है और इस भट्टी का नुकसान हुआ है; तू उसे पूरा कर! इस समय राय ने खेतों को देखने के लिये कुछ मनुष्य भेजे, तो वे क्या देखते हैं कि खेत हरा भरा है। आज पहला दिन था कि रायबुलार के मन में गुरू नानक का भय तथा प्यार पड़ा। इस समय गुरू बाबे ने वाणी उच्चारण की:-

तैसो जैसा काढीअै जैसी कार कमाइ॥
जो दमु चिति न आवई सो दमु बिरथा जाइ॥३॥
इहु तनु वेची बै करी जे को लए विकाइ॥
नानक कंमि न आवई जितु तनि नाहीं सचा नाऊ॥४॥ [सूही म: १]

एक दिन रायबुलार शिकार से वापिस लौटा तो एक स्थान पर क्या देखता है कि सभी वृक्षों की छाया पलट गई है, पर एक छाया नहीं पलटी। उस वृक्ष के नीचे सो रहे व्यक्ति को जगाया तो वह गुरू बाबा था। यह देखकर रायबुलार भयभीत हुआ और ससत्कार झुका और कहा, "यह महापुरुष है"। उस दिन से रायबुलार आपका पक्का प्रेमी हो गया और गुरू बाबा के कहने पर नाम जपने लगा। यह गुरू बाबे ने अपने परगने के राजे पर विजय प्राप्त की।

अन्य साखियों में लिखा है और 'सच्चा सौदा' नामक गुरुद्वारा जो चूहड़काने में अब तक (पाकिस्तान में) है, साक्षी भरता है कि एक बार पिता ने गुरू नानक देव जी को कुछ रुपये देकर व्यापार के लिए भेजा और कहा, 'खरा सौदा' करना। आपने चूहड़काने गाँव के निकट परमेश्वर के तप करने वाले साधुओं के एक झुण्ड को देखा जो कई दिनों से भूखे थे। उन पर दयालु होकर आपने उन रुपयों से रसद लेकर उन्हें भोजन खिला दिया और सचमुच का 'खरा सौदा' (सच्चा व्यापार) किया, पर घर आने पर पिता ने बहुत कष्ट दिया। यह समाचार पाकर रायबुलार ने कालू को बुलाकर नाराज़गी प्रकट की और उसे समझाया-

"इस संसार में, दुनिया में, सब कुछ इसी का है, संसार के सारे धन का यह स्वामी है, मैं इसका दिया खाता हूँ। हे कालू! संसार इसका दिया खाता है।"

इससे स्पष्ट है कि रायबुलार पूर्ण सिक्ख हो गया था और गुरू नानक ने पहले शहर शिक्षक, फिर राजे पर विजय प्राप्त करके ईश्वरीय राज्य में सम्मिलित किये।

इस तरह अन्य कई साखियाँ मिलती हैं कि घर के पुरोहित को, नगर के मुल्ला आदि को वाहिगुरू के प्रेम के यश सुनाकर कर्तार के चरणों से लगाया।

५. वैद्य

अब सतगुरू जी फिर उदास दिखाई देने लगे; घर वाले तो उदास ही समझते थे। माता-पिता ने कई बार समझाया पर वे लौलीन बैठे रहते, या जंगलों अथवा उजाड़ में जाकर प्रेम की लौ में बैठे रहते। इस रंग को देखकर लोगों ने माता-पिता से कहा: यह रोगी है, कोई उपाय कीजिये। तब वैद्य आया, नाड़ी देखने लगा तब गुरू जी ने उठकर उससे पूछा, 'क्या करते हो'? वैद्य ने कहा आपका इलाज। उस पर सतगुरू जी ने बड़े रंग में आकर वाणी उच्चारण की:-

सलोक महला १॥
वैद बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढंढोले बांह॥
भोला वैद न जाणई करक कलेजे माहि॥१॥

फिर कहने लगे:-

हे वैद्य! यहाँ संसार में रात्रि है आगे वाहिगुरू के देश में दिन है: 'ओथै दिहु अैथै सभ राति', तुम रात के अंधकार में घबड़ा रहे हो, परछाई को सच्च समझने लगे हो और सच्च को परछाई। राज्य, पदार्थ, यौवन सभी परछाईं हैं, नाम ही सच्चा धन है, जिन्हें यह धन प्राप्त हुआ है वे धनी है। इसलिये हमें औषधि न दे, अपना इलाज कर, स्वाद तृष्णा, काम, क्रोध को मार और वाहिगुरू के साथ प्रेम लगा।

यह उपदेश ऐसे बल एंव प्रभाव से दिया गया कि वैद्य चरणों पर गिर पड़ा और गुरू जी की शरण लेकर उसने सुख प्राप्त किया। यह बाबे की वैद्य पर विजय है।

६. दौलत खाँ

गुरू नानक देव जी ने सच्ची लौ में रहने तथा एकान्त का रंग जमाने की बान न छोड़ी। मरदाना नामक का डोम बड़ा गवैया था, इसे जंगलों में ले जाकर अपनी उच्चारण की हुई वाणी के कीर्तन उससे सुनते और आनन्द मौज में रहते। दुनियादारों के लिये यह सब रोग है, अपाहजपने हैं, कमियाँ हैं। अत: आपको कोई बावला कहता, कोई भूत कहता कोई प्रेत की परछाई कहता। अनेकों उपचार हुए पर सच्चे नीरोग महापुरुष पर रोग रूप उपचारों का क्या प्रभाव पड़ता है। अंत में यह सलाह ठहरी कि गुरू नानक जी को सुलतानपुर बहनोई जैराम के पास भेज दिया जाये।

सतगुरू जी तैयार हो गये, क्योंकि यहाँ घर के लोग दुखी रहते थे, कुटुम्ब कबीला भी माता-पिता को ताने देता था और सुलतानपुर में आपसे आयु में बड़ी बहिन थी, जो सत्संग की प्रेमिन थी और जैराम के मन में भी प्रभु का भय था; अत: आप सुलतानपुर

पहुँचे। जैराम वहाँ के नवाब दौलत खाँ लोधी[१] के पास ले गया। उसने आपको अपना मन्त्री पद दिया।[२]

यहाँ सतगुरू जी दिन को काम करते, पर रात को सत्संग होता। मरदाना डोम तलवंडी से आ गया था। रात दिन कीर्तन का रंग जमने लगा। नगर के कई लोग आया करते, पुराने साथी भी कभी-कभी आया करते। नये भी कई तर गये। मैलसीहा गाँव का निवासी भगीरथ काली देवी का उपासक काली को छोड़कर सतनाम का प्रेमी हो गया। दो जून जो रसद सरकार से मिलती थी उसका लंगर चलता था। सभी सत्संगी खुले ढंग से भोजन करते थे। एक पहर रात रहने पर गुरू जी वेईं नदी में स्नान करते और दिन चढ़े तक एकान्त में बैठकर लौलीन हो जाते। दिन को नवाब का काम करते थे।

मालूम होता है कि यहाँ सतगुरू का रंग पूर्ण रूप से जम गया और आत्मरस की पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गई। पर अंदर वाहिगुरू जी ने जो 'जगत के उद्धार' की तड़प डाली थी, उसने फिर उदास कर दिया। जिस सुख में आप मग्न थे, उसे आप दूसरों में बाँटना चाहते थे। इन रंगों में एक दिन स्नान करने के लिये गये वापिस नहीं लौटे। तीन दिन के पश्चात् आये, पर रंग फकीरों वाला था। यह तीन दिन आपकी खोज होती रही, कई जाल डाले गये और कई गुप्तचर भेजे गये। पर वे जग-कारक, लिखा है[३] कि वाहिगुरू के दरबार में रहे और वहाँ से जगत के उद्धार की आज्ञा पाकर आये। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि परमेश्वर ने आपसे कहा:-

'नानक! जिसके ऊपर तेरी दृष्टि, उस पर मेरी दृष्टि, जिसके ऊपर तेरी कृपा! उसके ऊपर मेरी कृपा, मेरा नाम पारब्रह्म परमेश्वर और तेरा नाम गुरू परमेश्वर'। 'नानक! मैं तेरे साथ हूँ, मैंने तुझे निहाल किया है'।

'तू जाकर मेरा नाम जप और लोगों से भी जपा'।

इस दिन से श्री गुरू जी ने काम काज छोड़ दिया और उदास वृत्ति धारण कर ली। वास्तव में आज से वह रीति चलाई जो बाद उदासी कहलाई। आप अकेले में जा बैठे और यह आवाज़ें देने लगे, 'न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान'।

गुरू नानक के त्याग की खबर सुनकर खान बहुत दुखी हुआ और सतगुरू जी को बुला भेजा, पर आपने इन्कार कर दिया। फिर नवाब ने ईश्वर की कसम खिलाकर बुलाया, तब आप गये। तब इसे सत्कार सहित बैठाया और कहा, 'नानक मेरे दुर्भाग्य हैं कि तुझ जैसा मन्त्री फकीर बन जाये'। फिर कहने लगा:-

'यह काज़ी कुछ पूछना चाहता है'। गुरू जी ने कहा, 'पूछे'।

काज़ी ने कहा-हे नानक! तू कहता है न कोई हिन्दू है और न मुसलमान, यह क्या बात है?

---

१. यह दिल्लीपति का भाई था और प्रान्त का शासक था।
२. नवीन साखियों में मोदी लिखा है, पर पुरातन जन्मसाखी में दौलत खाँ दो बार कहता है, 'नानक भला वज़ीर था' और एक स्थान पर लिखा है गुरू नानक 'दरबार में फुरमाण (आज्ञा) लिखण बहै' (गुरू नानक हुकम लिखने के लिये दरबार में बैठता)।
३. साखियों में लेखकों ने गुरू जी के 'सच्चे महल' में जाने और वरदान प्राप्ति का पता दिया है।

तब सतगुरू जी ने उत्तर दिया, 'काज़ी[१]! मुसलमान वह है जो निश्चय में जीवित रहे, मन साफ करे, प्रभु के प्रेमियों की संगत करे, मृत्यु पर विजय प्राप्त करे, प्रभु की आज्ञा में खड़ा हो और सबका भला चाहे। पूजा स्तुति में रहे, सत्य और न्याय पर चले। अत: बताइए किसका जीवन सचमुच ऐसा है। नाम मात्र से मुसलमान[२] नहीं बन सकता और न हिन्दू बुरे कर्म करने से हिन्दू बन सकता है'।

यह सुनकर काज़ी लज्जित हुआ। अब नमाज का समय था, काज़ी और नवाब गये गुरू जी को भी साथ ले गये। साखियों में लिखा है कि दोनों ने गुरू जी से कहा कि तुम भी हमारे साथ नमाज पढ़ो। पर जब काज़ी और नवाब नमाज़ पढ़ चुके तो क्या देखते हैं कि नानक ने नमाज नहीं पढ़ी, तब उन्होंने आपसे कारण पूछा। पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि जब नमाज़ पढ़ चुके तो काज़ी ने कहा, नवाब जी! आप कहते हैं नानक भला है पर नमाज़ पढ़ते समय यह हमसे मजाक करता था।

तब नवाब ने कहा, 'हे नानक! काज़ी क्या कहता है'? सतगुरू जी ने कहा, 'इस काज़ी ने प्रभु की नमाज नहीं पढ़ी, यह बछेड़ी की नमाज पढ़ता रहा है; क्योंकि सारे समय इसका ध्यान बछेड़ी में रखा था कि आंगन में जो बछेड़ी छोड़ आया था, कहीं वह पास वाले कुए में न गिर जाए। अत: इसकी नमाज प्रभु ने स्वीकार नहीं की। यह गैर हाजरी की नमाज़ पढ़ना तो प्रभु के साथ मजाक करना है"। यह सुनकर काज़ी चरणों पर आ पड़ा और कहने लगा, "वाह वाह इस पर प्रभु की अनुकंपा हुई है"। तब काज़ी के हृदय में विश्वास आया[३] और सतगुरू जी ने ईश्वरीय नाद किया:–

अमलु करि धरती बीजु सबदो करि सच की आब नित देहि पाणी।।
होइ किरसाणु ईमानु जंमाइ लै भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी।।१।।
मतु जाण सहि गली पाइआ।।
माल कै माणे रूप की सोभा इतु बिधी जनमु गवाइआ।।१।। रहाऊ।।
अैब तनि चिकड़ो इहु मनु मीडको कमल की सार नही मूलि पाई।।
भऊरु उसतादु नित भाखिआ बोले किऊ बूझै जा नह बुझाई।।२।।
आखणु सुनणा पऊण की बाणी इहु मनु रता माइआ।।
खसम की नदरि दिलहि पसिंदे जिनी करि एकु धिआइआ।।३।।
तीह करि रखे पंज करि साथी नाऊ सैतानु मतु कटि जाई।।
नानक आखै राहि पै चलणा मालु धनु कितकू संजिआई।।४।।२७।।

[सिरी राग म: १]

तब खान चरणों पर झुका, लोग हिन्दू मुसलमान खान से कहने लगे, "नानक में खुदा बोलता है"। सारांश यह कि नवाब ने गुरू नानक की शिक्षा स्वीकार की अर्थात रिक्त

१. 'मुसलमाणु कहावणु मुसकलु' वाले शब्द का यह सार है।
२. मुसलमान पद का कोश अर्थ अरब वाले मुहम्मद जी का अनुयायी नहीं, पर ईमानदार है।
३. यह साखी भी मिलती है कि नवाब नमाज़ के समय काबुल से घोड़े खरीदने में मग्न था, गुरू जी ने उसे भी बताया, 'हे नवाब! तेरी नमाज भी गै़र हुजूरी की थी, तू प्रभु की हुजूरी में हाज़िर नहीं था, तू काबुल में घोड़े खरीद कर रहा था'। नवाब ने भी इसे सत्य माना था।

धर्म से अमली जीवन में आया; कहने लगा, "हे नानक! राज्य माल हुकम हासिल सब कुछ तेरा है"। पर गुरू जी ने वहाँ रहना पंसद नहीं किया। वाहिगुरू की आज्ञा बताई और कहा, "संसार दुखी है, वाहिगुरू की आज्ञा में वाहिगुरू प्रेम से शीतलता प्रदान करने का कार्य सिर पर पड़ा है"। अतः आप चल दिये। जब आप सुलतानपुर से चले तो, पुरातन जन्मसाखी में लिखा है कि फकीरों ने आकर बाबा जी के पाँव चूमे, हिन्दू मुसलमान सभी प्रणाम करने लगे, खान आपको विदा करने के लिये स्वयं आया। अतः काज़ी नवाब तथा सुलतानपुर के फकीरों पर विजय प्राप्त करके वाहिगुरू के राज्य की वास्तविक प्रजा बनकर गुरू बाबा अबः–

"चढ़िआ सोधण धरत लुकाई"।

७. पहला धर्मस्थान[१]

गुरू नानक जी उठकर धरती का शोधन करने के लिये चल दिये। सुधाई करते-करते एक नगर में आए, जहाँ 'सज्जन ठग' का निवास था। वह समदर्शी, सेवा का प्रेमी और भारी परोपकारी था। उसने एक ठाकुर द्वारा और एक मस्जिद बनवा रखी थी और वह सबका अतिथ्य करता था। वहाँ गुरू नानक और मरदाना ने जाकर डेरा डाला। उसने भी बहुत आदर सत्कार देकर सेवा की। जब बड़ी रात हो गई तो कहने लगा, 'हे गोसाई जी! विश्राम कीजिए"। गुरू जी ने कहा, "हे प्यारे! एक क्षण ठहर जा, हम प्रभु का आराधन कर लें"। सतगुरू जी ने मरदाना से कहा, "तुम रबाब बजाओ"। आपने ईश्वरीय राग किया और अदेशी बाबा ने गायन किया:–

"उजलु कैहां चिलकणा घोटिम कालड़ी मसु"।

इस राग द्वारा एक आकर्षण सा हुआ, सज्जन का हृदय द्रवित हो गया। विह्वल होकर आपके चरणों पर झुका और कहने लगा, "हे मेरे प्रभु! क्षमा कीजिए! मैं साधु नहीं हूँ, मैं तो एक महान ठग हूँ, यह मस्जिद और ठाकुर द्वारा सभी ढोंग है। मैंने मनुष्यों को ठगा है, उन्हें दबा-दबाकर मारा है, बहुत से घर लूटे हैं। अंदर तह में तहखाना है, जहाँ मैं मार-मारकर लोगों को छिपाता रहा हूँ। धन लूटता, माला हाथ में रखता, पर मैं फकीर दिखाई पड़ता रहूँ। गुरू नानक जी ने कहा कि सच्च कहने से तो प्रभु कृपा करता है, जो तैने लूटमार का सारा माल संभाल रखा है, उसे ले आ। सज्जन ने किवाड़ खोल दिये। सतगुरू जी ने कहा, "इस सारे को प्रभु के नाम पर लुटा दे। प्रभु का नाम ले लेकर अपना दिल और दामन दोनों धो ले" जो धन उसने लूट रखा था वह सभी जरूरतमन्दों में बाँट दिया गया। उसके डेरे को गिराकर मैदान करवा दिया गया और वहाँ पर धर्मस्थान स्थापित किया गया। तब गुरू ने उसे "नाम धारण करने वाला" बनाया और उसकी स्याही उतार दी। उसके हृदय में प्रभु के नाम का निवास करवा दिया और उसके हाथों उस धर्मस्थान की सेवा दे दी। गुरू बाबे ने इस स्थान पर पहला धर्मस्थान बनाया[२]। सज्जन ठग को साधु

---

१. यह प्रसंग पहले आ चुका है। शीर्षक 'सज्जन ठग' है।

२. हाफज़ाबाद वाली जन्मसाखी।

बना दिया, इस प्रकार प्रभु की विजय यों प्राप्त की। यों एक महान अपराधी, पापी एवं जगत को दुखदाई कष्ट देने वाले गढ़ को तोड़कर वहाँ धर्मस्थान का निर्माण करवाया और उस मनुष्य को पाप राज से विजई बनकर प्रभु के प्रेम राज का सिपाही बनाया।

८. शेख शरफ[१]

शेख शरफ पानीपत में चौधवीं शताब्दी में हुआ है। बाद में गद्दी पर बैठने वाले प्राय: पहले नाम से ही पुकारे जाते हैं।

शेख शरफ का चेला शेख टटीहरी (शेख ताहर) अपने पीर से कहता है:–

हे दाता जी! आज एक निराले रंग वाला मर्द देखा है। मैंने 'सलाम अलेक' कहा था, उसने प्रसन्न होकर कहा, "अलेख को सलाम हो, उस अलेख को ही सलाम हो"।

शाह शरफ–मेरी आयु व्यतीत हो रही है, पर मैंने इस प्रकार का कोई साधु नहीं देखा। चल मुझे उसके पास ले चल, मैं उसके दर्शन करूँ, इस नये चिट्ठे को पढ़ें तो सही।

[दोनों सतगुरू जी के पास आये]

शरफ–आप कहाँ से आये हैं, क्या आपका पहरावा है? आपका धर्म क्या है, आपकी जिह्वा पर माथे पर अथवा अंदर और हृदय में क्या है?

गुरू नानक जी ने कहा–जहाँ रात आ गई वही हमारा देश है और जैसे वह प्रभु हमें रखे, वही हमारा पहरावा है। हमारी जिह्वा पर प्रभु नाम का निवास है और हमने हृदय में प्रभु को बसाया है। यदि उसकी लौ लग जाये तो उसके साथ रहते हैं। यों मरकर यदि जीवित हों, तो सदैव जीवन का रस लेते हैं। गगन मण्डल में ईश्वरीय नाद है और प्रभु के संयोग में रहते हैं।[२] हम उसके संयोग में इस तरह रहते हैं कि फिर कभी बिछुड़ते ही नहीं।

कवि–यह सुनकर पानीपत वाला शाह शरफ पानी पानी हो गया। प्रभु जी के चरण चूमकर सम्मान प्राप्त किया और सुख रूपी अमृत उसके हृदय में भरा। गुरू जी की शरण में आया, जीवन की वस्तु प्राप्त हुई और सौभाग्यवान होकर घर को लौटा। फिर आप लोगों का उद्धार करता रहा। वह फिर कभी संशय में नहीं बहा।

प्यारे की यह विजय एक प्रसिद्ध पीर पर हुई।

९. दखणी ओअंकार

इसी तरह एक पण्डित पर भी विजय प्राप्त की। जो वाणी उसके प्रति उच्चारण की उसका सुप्रसिद्ध नाम "दखणी ओअंकार" है। इसका प्रसंग इसी पुस्तक में पहले 'बानारस-पण्डित चतुरदास' शीर्षक से आ चुका है।

---

१. यह प्रसंग पीछे 'पानीपत' के शीर्षक से संक्षिप्त रूप में आ चुका है।

२. सारी चर्चा का सिद्धान्त इन पंक्तियों में है।

१०. नूरशाह[१]

११. झण्डा बाढ़ी

यात्रा करते-करते गुरू बाबे ने एक महान विकारी एवं बटमारों के झुण्ड को वाहिगुरू के मार्ग पर चलाया। यहाँ से आप आसाम पहुँचे, वहाँ नूरशाह नामक एक जादूगर स्त्री का निवास था, जिसके जादू, टोने मन्त्र तन्त्र आदि बहुत प्रसिद्ध थे।

इन्होंने पहले बहुत प्रयत्नों और दावपेच द्वारा मरदाना पर त्राटक डालकर नज़र से बांध लिया था। जिसे आजकल मैसमेरेज़म अथवा हिपनोटिज़म कहते हैं। मरदाने को अधिकार में लेकर गुरू बाबे पर अपनी तन्त्र विद्या चलाई, पर कुछ बस न चला, बहुत से ज़ोर लगाकर थक गये। अन्त में जब गुरू जी ने अपने अमोध बाण चलाये तब नूरशाह सहित सबने सतगुरू जी की शरण ली, नाम धारण किया, अर्थात वाहिगुरू का नाम जपने लगे। यह स्थान जो इन्द्रजाल का घर था, उस देश में फिर वाहिगुरू के प्रेम के प्रचार का केन्द्र बन गया।

यहाँ से फिरते-फिरते अनेकों का उद्धार करते-करते आप एक स्थान पर आये, जो अनुमान है कि चिट्टा गाँव था, जिसे अब चिट्टगांग कहते हैं। जहाँ एक बाढ़ी के साथ गोष्टी हुई, जिसका नाम झण्डा था। यह पुरुष इतना उच्च तथा स्वच्छ-आत्मा था, कि सतगुरू जी ने इसे गद्दी प्रदान की। इस स्थान पर राजे एवं उनके भानजे आदि को सत्यमार्ग पर चलाने की कथा भी मिलती है, सभी को राम राज्य में सम्मिलित करके झण्डे के नेतृत्व में छोड़कर गुरू बाबा जी आगे चल दिये।

१२. मरदाना, भाई मरदाना हुआ

मरदाना ने कहा:–बड़ा घना जंगल आ गया है, बारह कोस तक उजाड़ ही उजाड़ है। काई आबादी दिखाई नहीं पड़ती, उजाड़ मुँह फाड़कर खड़ा है। मैं रोटी माँगने वाला डोम था, इसी से अपना उदर पूर्ण करता था। मुझे उस दशा से हटा दिया है, मैं भूख का दुख सहन कर रहा हूँ। हे लोगो भूख का दुख बहुत ही बुरा है, यदि यह हटे तब ही तो जीना होता है, बिना भोजन किये यह जालिम पेट किसी तरह भी नहीं मानता। अब जो जंगल में सिंह गर्ज रहा है और यदि यह फाड़कर खा जाये तो फिर मेरी व्यथा मेरे घर वालों को कौन जाकर बतायेगा।

गुरू नानक जी ने कहा–हे सज्जन! व्याकुल मत हो, रंचक मात्र भी घबड़ाहट मत कर। तेरे निकट कोई भी नहीं आयेगा, जो आयेगा, वह मारा जायेगा। हे मरदाना! हम उजाड़ में नहीं हैं, यह तो बस्ती है। जहाँ पर प्रभु का नाम होता है, वे सच्ची बस्तियाँ होती हैं। रबाब को पकड़कर इसे स्वर कर और नाद की सम्भाल कर ले। सच्चे प्रभु की सच्ची स्तुति का रंग लगा दे, जिससे सच्च के विस्मय का आनन्द हो।

मरदाना–भूख के कारण तो मेरा गला ही बन्द हो गया है, शरीर की सभी रगें शुष्क हो गई हैं। अंगुलियों में बल नहीं रहा, मेरी अंतड़ियाँ भूखी हैं।

---

१. 'नूरशाह निस्तारा' और 'भाई झंडा जी' के शीर्षक से ये प्रसंग सविस्तार पहले आ चुके हैं।

गुरू नानक–चल पीछे लौटकर चलें, चल किसी बस्ती की जाकर खोज करें। कुछ अन्न दाना खोजें, चलकर तेरा व्रत तुड़वायें।

मरदाना–मेरी टाँगों में तो बल नहीं, मैं तो चलने में असमर्थ हूँ। मेरा गला बन्द होता जा रहा है, मैं तो मृत्यु के मुँह में जा रहा हूँ।

गुरू नानक–हे भोले मरदाना! मैं तुझे मरने नहीं दूँगा; यदि मृत्यु आ भी गई तो, उसे मना कर दूँगा, इस तरह तो तुझे नहीं जाने दूँगा। इसलिये हे मेरे मित्र! सावधान हो जा, मेरे देश के मेरे मित्र। चिरंकाल के मेरे साथी! तगड़ा हो, साहस बटोर!

मरदाना–अब और मुझ में क्षमता नहीं, अब मैं सावधान क्या होऊंगा। मेरा तो पेट पीठ से मिल रहा है, वह रोता है, मैं रोता हूँ।

गुरू नानक–ले कुछ फल खा ले और धैर्य बांध ले। पर थोड़े से खाना, पल्ले मत बांधना, अब तू अपना समय निकाल ले।

मरदाना–बलिहारी तेरी भक्ति को, तेरी करामात तो अद्‌भूत है। हे गुरू जी मुझे विदा कर दीजिये, इसी में मेरा कल्याण है।

गुरू नानक–मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूँ, तू क्यों विदा होना चाहता है, तू हमारे साथ सुखी रह, सदैव हमारे साथ रहे।

मरदाना–आपकी प्रसन्नता पर मैं बलिहारी हूँ, पर अब मुझे विदा कीजिये, मुझे घर को जाना है, अब मैं सदा घर पर ही निवास करूँगा।

गुरू नानक–हे मित्र! ऐसा कोई उपाय है जिससे तू हमारे पास रह जाये! क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे तू दुखी न हो।

मरदाना–हे जगत गुरू जी! हे प्रभु जी! यदि आप करें तो एक युक्ति है। वह यह है कि मेरी भूख ही हटा दीजिये, मैं भूख को चबा जाऊँ। जो आपका भोजन हो, वही मेरा भोजन हो, मैं नीच जाति वाला हूँ, भूख वाला हूँ, आप दयालु हैं। आप कभी भी मेरे अवगुणों पर ध्यान नहीं देते, आप मेरी भूल की ओर देखते तक नहीं, मुझे आप वही भोजन करा दीजिये जो आप करते हैं। जिस भोजन के आश्रय आप रहते हैं, आप बिना खाये तृप्त रहते हैं, मुझे भी उसी के आश्रय कर दीजिये, मैं भी तृप्त रहूँ। अथवा मेरी छटी रात की भूख भी ले लीजिये और मेरे पेट पर ढक्कन दे दीजिये, मुझे संतोष प्रदान कीजिये। यदि आप अपने भोजन से मेरा पोषण नहीं करना चाहते तो आप मुझ डोम को अवकाश प्रदान कर दीजिये कि यह डोम जाकर अपने घौसले में बैठ जाये।

गुरू नानक–हे प्यारे! तू अब डोम नहीं रहा। तू तो 'प्रभु का प्यारा' हो गया है। तू अच्युत गोत वाला हो गया है और तेरा पिछला जन्म तो खो गया है। तेरी भूख का दुख समाप्त हो गया है और नाम का रस तेरे अन्दर निवास कर गया है, क्योंकि वह प्रभु कर्तार तेरे हृदय में निवास कर गया है। हे भाई! अब तेरे अन्दर प्रभु के नाम का आधार रहेगा वही अदेश का भोजन तुझे मिलेगा, जो मेरे अन्दर भी आता है।

कवि–यह सुनकर वह 'भाई' बन गया, रो कर चरणों पर झुका। वह प्यारा उस गुरू के चरणों को, अपना हृदय धोकर चूमता है। उसे अगंम की सूझ हो गई और वह ईश्वरीय

निगम को वाचने लगा। वह उच्च सुरत वाले सुख का आनन्द हृदय में लेने लगा। उसकी चिन्तायें हृदय से निकल गईं, चिंताओं के बोझ चले गये, आकाश की भाँति हृदय स्वच्छ हो गया, उसके अन्दर प्रसन्नता भर गई। फिर रोता है और कहता है: "मैं बहुत अवगुणों वाला हूँ"। "मैं हठी हूँ, आपके सामने होकर बोल रहा हूँ, बेअदब हूँ, पर प्यार में हूँ"। "हे गुरू नानक! तू धन्य है, जो तू मुझ जैसों को क्षमा कर देता है। मैं बालक की भाँति हठ करता हूँ, पर तू सदैव मेरी इच्छा की पूर्ति करता है। हे नानक! तू धन्य है पूर्ण गुरू है, तू धन्य है, उद्धार करने वाला है"।

'हे बाबा तू धन्य है, रक्षा करने वाला है। नीचों का तू मित्र है"।

इस तरह अपने आँचल के साथ लगाकर उसे आत्मावस्था के शिखर पर पहुँचाकर गुरू बाबा जी अब स्वदेश को चल दिये।

१३. शेख ब्रह्म

गुरू बाबा पाक पट्टन में आया, जंगल में आकर डेरा डाला, मरदाना ने कीर्तन आरम्भ किया। कमाल नानक शेख ब्रह्म का चेला जंगल में लकड़ियाँ इकट्ठी कर रहा था। यह शेख ब्रह्म, शेख फरीद जी की गद्दी पर उन्हीं के सम्प्रदाय में थे और इस समय के महन्त थे। चेले पर कीर्तन का इतना प्रभाव पड़ा कि घर पर आकर उसने अपने गुरू को गुरू नानक देव जी के ईश्वरीय रूप एवं अदेशी कीर्तन की कथा सुनाई और एक श्लोक आकर सुनाया।

"ओ पटी कलम आपि ऊपरि लेखु भि तूँ॥
एको कहीअै नानका दूजा काहे कू॥" [मलार वार म: १]

यह सुनकर शेख ब्राह्म के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई, गुरू जी के दर्शनों को आया। आकर ससत्कार बैठ गया और बातें होने लगीं। पहली बात जो शेख जी ने गुरू जी से पूछी वह यह थी कि वाहिगुरू एक है अथवा दो, हिन्दू लोग अपने राम और मुसलमान अपने मुहम्मद को ही मानते हैं? तो बाबा जी ने कहा, एक वाहिगुरू का स्मरण कीजिए।

शेख ब्राह्म ने पूछा कि बुद्धि द्वारा प्रभु प्राप्ति होती है कि नहीं? सतगुरू जी ने बताया कि मन की उक्तियाँ वाहिगुरू तक नहीं पहुँच पातीं। प्रभु अपने आपको लखाता है। ईश्वरीय ज्ञान केवल खोज का काम ही नहीं, पर वाहिगुरू द्वारा प्रदान किया हुआ ज्ञान है। साराँश यह कि वाहिगुरू, सच्च, करनी, संसार की रचना, ब्रह्माण्ड का लेखा, अहं, प्रकृति का व्योरा, कर्तार और प्रकृति की संख्या, विस्मय की दशा का व्योरा, अन्तरमुखी एवं वर्हिमुखी संयोग का प्रकरण, हिन्दुओं, मुसलमानों में सच्च और झूठ की छानबीन, ज्ञान का परमार्थ के साथ सम्बन्ध, भक्ति के प्रकार, सभी निर्णय हुए। जिनके अन्त में शेख ब्राह्म ने सतगुरू जी के हाथों को चूमा, सीस झुकाया और कहा:–

"नानक! तैने खुदा प्राप्त किया है, तुझ में एवं खुदा में कोई भेद नहीं। पर तू दयालु बन, जिससे हमारी भी खुदा से निभ जाये"। [पुरातन जन्मसाखी]

तब सतगुरू ने फकीरी का कण प्रदान किया, जीवनदान की शुद्ध हीरा कणी प्रदान की, फकीर को होश आया और प्रभ के प्रेम में लग गया।

इसके पश्चात् पटने नगर में कई दिन सत्संग होता रहा और अनेकों प्रकरण चलते रहे, सत्संगी पुरुष निहाल हुए। पहले दिन की वार्ता की ९ पौरियाँ और शेष दिनों की वार्तालाप जो वहाँ साधुओं तथा पण्डितों के साथ सच्च के प्रति हुई, उन्हें आसा दी वार नामक वाणी में लिखा गया है। एक महान गद्दीदार पर इस तरह की विजय प्राप्त करके गुरू जी ने उसे सुमार्ग पर चलाया।

१४. कुष्टी के शरीर तथा मन के कुष्ट पर विजय

श्री गुरू नानक देव जी शेख ब्राह्म का उद्धार करके एक कुष्टी के द्वार पर आये। वह बस्ती से बाहर रहता था, कोई भी उसे मुँह न लगाता था, पर गुरू जी उसके अतिथि जा कर बने। इसी ग्रन्थ के तृतीय भाग के आरम्भ में 'अदेशी परोपकारी' शीर्षक से प्रसंग पहले आ चुका था। यहाँ सतगुरू जी ने उस कुष्टी पर विजय प्राप्त की। पापों का फल दुख होता है। घोर पापों के फलस्वरूप कुष्ट का रोग उसे खा रहा था, दाता ने उसकी सुरत को जागृति प्रदान की। सुरत में से पापों का बोझ निकाला, उसे आपे की सुध आई, नाम द्वारा उच्च हुआ, फिर उसका कुष्ट दूर किया। उसे निरोग किया। निरोग होकर वह फिर पाप करता क्योंकि निरोग एवं सामर्थ्य वाले प्राय: विलासी हो जाते हैं, पर बुद्धिमान दाता ने कुष्ट तो दूर किया अथवा पहले सुरत का कुष्ट हटाकर उसकी सुरत को नाम में लगा दिया। अन्तस के रस का ज्ञाता करा दिया, जिससे कि वह उच्च रसों का ज्ञाता होकर फिर रिक्त रसों में न पड़ जाये और फिर कभी दुख न सहन करे। यह विजय कितनी अद्‌भुत है। पापी एवं रोगी को निरोग किया और साथ ही उसका मन भी निरोग कर दिया और मन को प्रभु के नाम के आधार एवं स्वाद में लगा दिया।

१५. बाबर

एक बार सतगुरू जी सैदपुर पहुँचे। बाबर सेनाएँ लेकर धड़ाधड़ आ रहा था, इसके सम्बन्ध में प्रसंग पहले आ चुका है। इसी शासक ने पठानों के राज्य का अन्त करके मुग़ल राज्य की स्थापना की थी। इस आक्रमण में इसने सैदपुर के स्थान पर कत्लाम किया और लोगों को बन्दी बनाया। गुरू बाबे ने काफी समय पहले से ही बाबर वाणी नामक वाणी में इस आक्रमण एवं कत्लाम के सम्बन्ध में अपने विचार कह दिये थे, जो अब आकर प्रत्यक्ष रूप से फटे और बाबर के दासों ने गुरू बाबा को भी बेगार में ले लिया। पर आप अचल रहे और मरदाना कीर्तन करता रहा, यों बाबर के पास आपकी सूचना पहुँची और उससे भेंट हुई। काफी समय तक वार्तालाप होता रहा, गुरू जी ने बाबर जैसे जबर्दस्त शासक पर ऐसा प्रभाव डाला कि आपके कहने पर उसने सैदपुर का घेरा उठा लिया।

तीन दिनों के पश्चात् गुरू जी सैदपुर आये, कत्लाम और तबाही देखी और पता चला कि अनेकों पुरुष और स्त्रियाँ कैद में पड़े हैं, तो सतगुरू जी ने फिर सेनाओं में जाकर कीर्तन करवाया बाबर के ऊपर ईश्वरीय शब्द का बहुत प्रभाव पड़ा, फिर गुरू जी से भेंट हुई। अब की बार संतगुरू जी ने सभी बन्दियों को बाबर द्वारा मुक्त करवा दिया। लिखा है, 'तब बाबर ने सलाम की, सभी बन्दियों को ससत्कार मुक्त कर दिया'। सृष्टि से प्रेम की यह अवधि है। जब आप जानते थे कि बाबर आक्रमण करके आ रहा है, आप उस

समय किसी पर्वत पर जा पहुँचते, बन्दीगृह में न पड़ते, न बोझ उठाते, न चक्की पीसते, न खतरे में पड़ते, पर आप तो डटकर सैदपुर में रहे, प्रजा के दुख के साथ दुख सहन किया। अपनी आत्मिक शक्ति एवं अपना आचरणिक साहस दिखाया, बाबर पर प्रभाव डाला और उस प्रभाव के कारण बन्दियों को मुक्त कराया, दुखियों को सुखी किया। फिर आपने वहाँ रहकर लोगों को नाम का दान प्रदान करके निहाल किया। कितनी अद्‌भूत विजय है।

१६. मियां मिट्‌ठा

गुरू जी पसरूर से होकर कोटला मियां मिट्ठा में जा पहुँचे। मियां मिट्ठा बड़ा प्रसिद्ध फकीर था। वह सतगुरू जी से चर्चा करने के लिए आया और चेलों से कहकर आया कि दूध पर से मलाई की भाँति उतार देगा, पर जब गुरू जी के पास आया तो आप निस्तेज हो गया और सतगुरू जी से प्रश्नोत्तर करने लगा। इस चर्चा में उसे हार हुई और गुरू जी के चरणों पर झुका। सतगुरू जी ने इस फकीर को वास्तविक जीवन के जो विचार प्रदान किए, वे 'अछल छलाई नहं छलै' वाले शब्द में अंकित हैं।

एक प्रसिद्ध प्रश्न एंव उसका उत्तर जो आज तक लोगों में प्रचलित है, जो गुरू ग्रन्थ जी में नहीं है, निम्नलिखित हैं:–

मिट्ठा:–**अवल नाऊ खुदाइ का दूजा नबी रसूल॥**
नानक! कलमां जो पड़हि दरगहि पवहि कबूल॥

गुरू नानक जी ने कहा:–

अवल नाऊ खुदाइ का दरि दरवान रसूल॥
सेवा नीअत रास करि ताँ दरगह पवहि कबूल॥

अर्थात् पहली बात पीर कहता है और गुरू नानक जी से सम्बोधन करता है। दूसरा उत्तर गुरू जी का है।

गोष्टी के पश्चात् मियां मिट्ठा गुरू जी की शरण में आया। लिखा है, 'तब शेख मिट्ठे ने आकर पैर चूमे'। इस फकीर पर विजय प्राप्त करके हिन्दुओं को एक भारी कष्ट से बचाया, क्योंकि यह कहा करता था कि सभी हिन्दू सदैव अग्नि में जलेंगे और मुसलमान स्वर्ग में जायेंगे। यह प्रसंग पीछे इसी ग्रन्थ में 'गोष्ट मियां मिट्ठा' के नाम से आ चुका है।

१७. दुनी चन्द

सतगुरू जी ने कहा–दुनी चन्द! यह हमारी सूई अपने पास अमानत रखना। इसे सम्भालकर रखना, हम इसे तुझसे आगे चलकर ले लेंगे।

दुनी चन्द (पत्नी के पास जाकर)–हे भागवान! इस सूई को सम्भालकर रखना, सतगुरू जी ने यह सूई हमें दी है। यह गुरू जी की अमानत है आगे चलकर दे देना।

पत्नी–हे प्यारे पति! सूई हमारे साथ नहीं जायेगी। देही तक तो पीछे रह जाती है, सूई आगे कैसे पहुँचेगी।

दुनी चन्द (गुरू जी के पास आकर)–मेरे साथ सूई नहीं जायेगी, मैं आपको आगे चलकर कैसे दूँगा। यह अपनी अमानत ले लीजिए, मैं इसे सँभाल नहीं सकता।

गुरू जी–यदि सूई साथ नहीं जाती तो जो तुम्हारे द्वार पर सातध्वजा से फहर रही हैं, वे सात लाख कैसे साथ ले जाओगे।

दुनी चन्द–हे प्यार गुरू जी! आपने सत्य कहा है, आपने मुझे सोये हुए को जगाया है। मैंने तो माल के साथ स्नेह लगाया था, इसीलिए बहुत माल एकत्र किया था। बताइए इसे कैसे साथ ले जाऊँ, जिससे आगे (परलोक) में जाकर सुख प्राप्त करूँ? हे स्वामी जी! मुझे वह विधि बताइए जिससे मैं फिर दुख न पाऊँ।

गुरू जी–हे परमेश्वर के प्यारे! तू इस धन को भक्तों के साथ बाँटकर खा। हे प्यारे तू उनकी सेवा कर, जो प्रभु के द्वार पर बैठे हैं। हृदय में से माल धन का स्नेह छोड़ दे, और स्नेह प्रभु के साथ लगा। श्वास-श्वास पर हृदय में उसे प्रभु को स्मरण कर और उसे हृदय में बसा।

कवि–चरणों पर गिरकर वह साथी झुका, रो-रोकर न्योछावर हुआ। सतगुरू जी ने उसे नाम का दान प्रदान किया, उसका अन्धकार मिटा दिया। दुनी चन्द ने प्रभु का नाम धारण किया, सिक्ख धर्म में पूर्ण सिक्ख हुआ। लाहौर नगर में रहकर प्रभु का नाम जपता था और कीर्तन की तुरही बजाता था।

माया में फँसे हुए सुन्दर जीव ने माया के अन्धकार काटकर उस पर विजय प्राप्त की और उसे प्रभु के राज्य में लाकर खड़ा कर दिया। उसके इकट्ठे किए हुए व्यर्थ धन को ज़रूरतमन्दों के काम में लगवा दिया। धन्य है सुन्दर विजय वाला गुरू नानक! दुनी चन्द का सारा प्रसंग इसी ग्रन्थ में पहले आ चुका है।

१८. कर्तारपुर

गुरू नानक देव जी ने अपनी आयु के अंतिम दिन रावी नदी के किनारे, जिस स्थान पर व्यतीत किये, वह स्थान कर्तारपुर के नाम से सुप्रसिद्ध है। यहाँ करोड़िया नामक एक धनी पुरुष ने धर्मस्थान का निर्माण करवाया था।

यह करोड़िया सतगुरू जी के साथ ईर्ष्या करता था और आपको मारने के लिये चला था, पर जब कुछ दूरी पर गया तो उसे दिखाई देना बन्द हो गया। एक सिक्ख ने उसे ईर्ष्या द्वेष बन्द करने को कहा, क्योंकि गुरू जी निर्वैर हैं, तू प्यार से चल। जब उसने गुरू जी में श्रद्धा धारण की तो ठीक हो गया और फिर चरणों पर झुका। आपसे उसने नाम प्राप्त किया और सतगुरू जी के लिये गुरुद्वारा बनवाकर स्वयं आपकी सेवा की।

यह ऐसी विजय थी, जिसने गुरू जी के सिक्ख मत की टकसाल बाँध दी। सदैव भ्रमण करने वाले गुरू बाबे को एक केन्द्रीय स्थान पर टिकाकर सत्संग की नहरें बहा दीं, इस विजय ने सिक्ख धर्म का आरम्भ कर दिया। जो कुछ करोड़िये ने किया, वैसा कौन कर सकता है, जिसे गुरू नानक ने माया के अन्धकार एवं अहंकार की धुन्ध से मुक्त कराया। उस मुक्त पुरुष ने अपने प्रेम द्वारा गुरू बाबे को टिका लिया था, जहाँ पर गुरू जी ने कर्तारपुर स्थापन किया। जिस गुरू को माता, पिता, रायबुलार, दौलत खाँ न टिका सके, उस जगत के उद्धार करने वाले को यह सत्संग मण्डल का प्रकाश स्तम्भ टिका गया। यह प्रसंग इसी ग्रन्थ में पहले आ चुका है।

१९. 'माझ की वार'

गुरू जी ने फिर स्वदेश में यात्रा की, अब की बार देश में अति प्रेम हो गया था, हज़ारों लोग सिक्ख बने थे, जब सतगुरू जी को सूरत के इलाके एक सेवड़ा ने आकर दर्शन दिये तो उसने अपनी दिगम्बरी एवँ त्याग की दशा की प्रशंसा की, इस पर उसके साथ सतगुरू जी ने बहुत प्रश्नोत्तर हुए। फल यह हुआ कि यह सेवड़ा सिक्ख बना, नाम जपने लगा और सतगुरू जी से प्यार करने लगा, सतगुरू जी ने इनके मत का जो खण्डन उस समय किया और किसी अन्य समय किसी जैनी के साथ विचार हुआ, वे सभी भाव दो शब्दों में अंकित किये हैं और अनुमान है कि जो उपदेश वाहिगुरू के प्यार का देकर इसे हरि भक्ति में लगाया, वे सभी उपदेश हैं जो श्री गुरू ग्रन्थ साहब में 'माझ की वार' में अंकित हैं।

२०. कौड़ा राक्षस

दक्षिण के जंगलों में एक आदमखौर अत्याचारी के ठिकाने पर सतगुरू जी पहुँचे, आपके साथ उस समय सैदे घेहो और सीहां थे। पुरातन लेखों में लिखा है कि राक्षस ने सतगुरू जी को गर्म कड़ाह में डाल दिया[१], तब सतगुरू जी विस्मय में लीन हो गये। कड़ाह शीतल हो गया। तब इस राक्षस को होश आया, वह चरणों पर झुका, सीहें ने पाहुल प्रदान की, सतगुरू जी के नाम प्रदान किया, वह सिक्ख बना। मनुष्यों का आहार करने वाला—इस तरह के दुष्टों को घर पर जाकर कौन सुधारता है, धन्य गुरू नानक! तेरी विजय।

२१. शिवनाभ

सिंहलद्वीप में एक राजा था। यह राजा सारे देश का राजा था एवं कुछ इलाके का शासक था, अथवा जागीरदार था, इसका कुछ पता नहीं, पर अवश्य ही यह उत्तरी सिंहलद्वीप का राजा था। इसकी राजधानी का नाम 'सतावद' था, जिसमें इलाके की बंदरगाह उस समय 'जाफा पट्टम' थी और अब भी 'जाफा पट्टम' है। यह सिंहाली जाति में से था, एवं भारतीय था, इन बातों की खोज की आवश्यकता है। यह राजा हिन्दू मत का अनुयायी था। इसने मनसुख नामक गुरू जी के सिक्ख से मूर्तिपूजा के विषय में हार खाई थी और गुरू नानक देव जी का प्रेमी हो गया था। सतगुरू जी इसे सिंहलद्वीप में जाकर मिले थे और इसे नाम प्रदान किया था, लौ लगवाई थी और इसका उद्धार किया था। इसे मंजी प्रदान की थी, अनेकों सिक्ख बनाये थे, यहाँ पर जो विचार विनिमय हुआ वह 'प्राण संगली' नामक वाणी में लिखा है, उसकी २२ पौरियाँ हैं और सारी वाणी में अनमना अवस्था का निरूपण है। अनमना अवस्था वह बताई है जिसे सहजपद कहते हैं, जब यथार्थ ही यथार्थ आकर प्रकाशता है।

गुरू ग्रन्थ जी का संगीत अपने भिन्न संगीत मत में चलता है। अनुमान है कि इसका निर्माण यहाँ हुआ और रागमाला में दिये गए राग के प्रकार यहाँ निरूपित हुए।

१. अन्य साखियों और नानक प्रकाश में मरदाने को कड़ाह में डालने के बारे में लिखा है।

एक राजा का उद्धार सारे देश का उद्धार है। वह देश एवं इलाका सत्संगी हो गया था, कितनी आत्माएँ वाहिगुरू के राज्य में पहुँची। यह प्रसंग इस ग्रन्थ में पहले आ चुका है।

२२. ब्रह्मदास

सिंहलद्वीप से अनेकों लोगों का उद्धार करते हुए सतगुरू जी स्वदेश में आये। कुछ समय तक देश के सत्संगियों की सम्भाल की, फिर तीसरी यात्रा आरम्भ की। काश्मीर गये, वहाँ आपसे ब्रह्मदास नामक एक पण्डित आकर मिला, इसने बहुत प्रश्न किये, सतगुरू जी ने उत्तर दिये, निरूत्तर होकर चरणों पर झुका, पर अन्दर माया की लौ लगी रही। जो वार्तालाप इसके साथ हई, उसे श्री गुरू नानक देव जी ने राग मलार की वार में श्लोकों तथा पौरियों में कथन किया है। ब्रह्मदास का हृदय शीतल नहीं होता था, तब वह गुरू जी से पूछने लगा। आपने आज्ञा की, 'अपने गुरू से पूछ'। तब वह उन सिक्खों से मिला, जो आपके साथ थे, जिनमें से बड़े प्रेमी हस्सू लोहार और सीहां छींबा थे। इन्होंने इसे निश्चय कराया कि उसका गुरू 'माया' है, जिससे उसके हृदय का प्रेम है, क्योंकि गुरू वही है, जिसके साथ हृदय का प्यार है, अत: जगत में किसी का गुरू उसकी पत्नी है, किसी का पुत्र, किसी का मान। जब ब्रह्मदास को इस भूल का पता चला तो अंदर आत्मा में सतगुरू जी से प्रेम हो गया, तब उसका उद्धार हुआ। तब सतगुरू ने 'सहंसरदान दे इन्द्रु रोआइआ' वाला शब्द उच्चारण किया और हस्सू लोहार ने ठाकुरी लिपि में उसे लिख लिया। विद्या द्वारा मूर्ख बने मनुष्य को राम राज के लिये जीत लेना बड़ा कठिन है, पर गुरू बाबा ने इस पर किस तरह विजय प्राप्त की। एक कमाल नामक मुसलमान फकीर का उद्धार किया। यह भी लेख है कि एक चरवैहा का उद्धार भी किया। वैसे तो काश्मीर में अनेकों का उद्धार किया, जिनके प्रसंग नहीं लिखे गये।

मट्टन का स्रोत गुरू बाबे के सत्संग का ठिकाना होने के कारण, उस समय से ही 'मट्टन साहब' कहलाता है।

यहाँ से आगे फिरते-फिरते आप सुमेरू पर्वत पर जा चढ़े, यह बहुत ऊँचा स्थान है। यहाँ सिद्ध अर्थात् गोरख मत के योगी आपसे मिले। गुरू नानक का नाम तो जानते थे, अनेक बार आपके साथ विचार विमर्श कर चुके थे, यह समय उन्हें बहुत ही अच्छा प्राप्त हुआ, अत: यहाँ खूब चर्चा हुई।

यहा की[१] चर्चा, सारे उपदेश रामकली राग के अनेकों शब्दों एवं 'वार' के कई श्लोकों में दिये हैं। सिद्धों पर विजय प्राप्त करनी एक महान विजय थी। महादेव वैरागी

१. काश्मीर से कुछ दूरी पर ऊँचा एक बर्फानी स्थान है, जिसे अमरनाथ कहते हैं और यहाँ हर वर्ष मेला लगता है और हरेक मत के अगणित साधु यहाँ एकत्र होते हैं। अनुमान है पहले गुरू जी यहाँ आये थे। यहाँ से होकर, भाई गुरुदास जी से पता चलता है कि जहाँ गुरू जी गए थे, वह स्थान सिद्धों का ठिकाना था। मेले मात्र का जमाव नहीं था, क्योंकि सिद्ध गुरू जी से मैदानी देशों का समाचार पूछते थे। अत: यह स्थान पता चलता है कि गढ़तोक से लेकर मानसरोवर झील कैलाश के पर्वत तक का ठिकाना था। सम्भव है कि सिद्ध रहते तो इधर होंगे, पर उस समय मानसरोवर पर गए होंगे।

सिद्ध सतगुरू का यश गाने वाला हुआ है और भृतहरि योगी तो लगता है कि बाद में योग का त्याग करके सदैव गुरू जी की शरण में रहा।

'सवैये महले-पहले' में दोनों का पता दिया है।

२३. मक्के की गोष्टी

चौथी यात्रा पश्चिम की ओर हुई, गुरू जी मक्के को गये। पुरातन साखी में मार्ग का समाचार नहीं दिया और न ही भाई गुरुदास जी ने मार्ग का समाचार दिया है, पर भाई जी ने बताया है कि मक्के से आप बग़दाद आये, अत: साखियों पर विचार करने से पता चलता है कि जाते समय सतगुरू जी समुद्र के रास्ते गये हैं और आते समय थल मार्ग द्वारा बग़दाद पहुँचे और वहाँ से स्वदेश को लौटे। इस ग्रन्थ में पहले दी गई साखी एवं गोष्टी से स्पष्ट है कि कट्टरता से भरी हुई जाति के केन्द्रीय स्थान पर जाकर और गैर मुसलमान होकर भी न केवल अपने प्राणों को ही बचाया, पर वहाँ गोष्टी करके उन पर विजय भी प्राप्त की। आत्मिक बल दिखाकर उन पर विजय प्राप्त करना और उन्हें समदृष्टि एवं प्यार का उपदेश देकर सम्मान प्राप्त करना विजय की शिरोमणि विजय है।

२४. वली कंधारी

यों लगता है कि मक्के मदीने आदि से फिरते हुए रूप, ईरान, तुर्किस्तान, अफ़ग़ास्तिान के अनेकों स्थानों पर ठहरते, उपदेश करते, जगत का उद्धार करते हुए आप 'कुर्रम' पहुँचे[१]। यहाँ से पिशौर, नौशहरे से होते हुए हसन अबदाल आये, जहाँ टीले पर एक फकीर तप किया करता था और जल के स्त्रोत पर अधिकार रखता था। गुरू जी ने एक पीपल के पेड़ के नीचे डेरा डाला, लोग झुक गये। मरदाना जल लेने के लिये गया, वली कंधारी ने जल देने से, मरदाने को इन्कार कर दिया और कहा, "यदि तेरा गुरू 'गुरू' है तो ईश्वर से जल माँग ले।" गुरू जी ने, जहाँ आप बैठे थे, वहाँ से पत्थर उठाया, जल निकल आया और वली का स्त्रोत शुष्क हो गया, तब उसने टीले पर से एक भारी पत्थर गिरा दिया, जिसे गुरू जी ने हाथ से थाम लिया। यह पत्थर अब भी है और उस पर गुरू जी के हाथ के पंजे का निशान भी है। बताया जाता है कि मुसलमानों ने अपने शासन काल में कई बार उस चिन्ह को खरोचा है। नये प्रबन्धकों ने भवन के निर्माण के समय इस चट्टान को ऊपर से काट दिया है और पर्वत का सीधा सम्बन्ध पंजे तक नहीं रहा, पीपल का पेड़ भी नहीं है। अब नीचे एक शिला की सी के दर्शन होते हैं। वली कंधारी गुरू जी की शक्ति देखकर आया, आपसे गोष्टी की, उसे सतगुरू जी ने 'मन का मान' और फकीरों के लिये परदा बताकर उस पर विजय प्राप्त की और उसे सिक्ख बनाया। वली की कब्र टीले पर है।

उत्तरी पंजाब में वली कंधारी की बहुत शक्ति फैली हुई थी और यह बड़ा कट्टर मुसलमान और तपस्वी था। उसका मान हारकर, उसकी कट्टरता हटाकर उसे समदृष्टि से

१. कई पुरातन लोगों का विचार है कि गुरू जी मक्के से घर को लौटे। फिर आप लाहौर से होकर पहले दक्षिण फिर पश्चिम में अफगानिस्तान को गए, जब वापिस आए तो कुर्रम के निकट भाई मरदाने की मृत्यु हो गई। परन्तु भाई मनी सिंघ जी मरदाने का देहान्त कर्तारपुर में हुआ लिखते हैं।

सृष्टि के साथ व्यवहार करने का ढंग सिखाया। सारा इलाका सुखी कर दिया। धन्य गुरू नानक।

सैदरपुर का जो साखी हमने पीछे इस ग्रन्थ में दी है, उसके बारे में कई इतिहासकारों के विचार हैं कि वह उस समय घटी, क्योंकि तिथियाँ तो इस यात्रा से ही मिलती-जुलती हैं, अत: ठीक यही लगता है। सैदरपुर का हत्याकाण्ड जिसमे फरिशता नामक ऐतिहासिक के अनुसार ३०००० मनुष्यों का बध हुआ बताया जाता है, उसका समाचार पहले दिया जा चुका है।

२५. सिद्ध मण्डली पर विजय

गुरू जी अब फिर कर्तारपुर आये। फकीरों वाला पहरावा उतार दिया और सृष्टि का उद्धार करने लगे, इस समय आपकी आयु भी काफी हो चुकी थी।

जिस समय में सतगुरू जी हुए, उस समय पंजाब में और विशेष करके पूरव में गोरख के योग मत की प्रधानता थी। मुसलमानों में से भी अनेकों लोग चेटकों के कारण योगी बन जाते थे, पर यह योग मार्ग पातंजलि के राजयोग की साधना पर नहीं था, यह विशेष करके हठयोग के तांत्रिक मत का ही था। योगी समाधि के लिये मदिरा पान भी करते थे। इन लोगों के साथ सतगुरू जी की कई बार चर्चा हुई। उन्होंने अनेकों बार सतगुरू जी को अपना चेला बनाने का यत्न किया, पर इनके ईश्वरीय सच्च के आगे झुक जाते थे। इनके साथ चर्चा करने पर अनेकों शब्द भी गुरू ग्रन्थ जी में अंकित किये गये हैं। सबसे महान चर्चा को श्री गुरू जी ने 'सिद्ध गोष्ठ' नामक वाणी के रूप में लिखा है, जिसमें प्रश्न उत्तर हैं।

सिद्ध गोष्ट में सतगुरू जी ने योगियों के तांत्रिक विश्वासों एवं तपों का खंडन किया है और उच्च स्वच्छ आचरण वाला जीवन सिखाया है और गृहस्थ मार्ग में रहकर नाम के प्रेम द्वारा मुक्ति बताई है, सारांश यह है:-

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नैसाणे॥
सुरति सबदि भवसागर तरीऐ नानक नामु वखाणे॥ [सिद्ध गोसट]

सिद्धों के साथ चर्चा एवं विजय का समाचार एक अंग्रेज स्त्री[१] ने अपनी पुस्तक में दिया है, जिसके अंत में वह लिखती है कि सिद्ध लोग करामातों द्वारा श्री गुरू नानक देव जी को डरा न सके, क्योंकि गुरू नानक सच्चे दार्शनिक थे जो पवित्र एकता एवं धर्म मण्डल में दूसरे की राय और दृष्टिकोण को सहन करना तथा सहोदरता सिखाते थे। यह प्रसंग पहले आ चुका है।

योगियों एवं सिद्धों पर यह विजय ऐसी थी कि पंजाब में लोगों के हृदयों पर उनके अधिकार का दिया लगभग सदैव के लिए इतना मन्द हुआ कि मानों वह बुझ ही गया।

---

१. यह पुस्तक सियालकोट लायब्रेरी में हमने देखी है। इसकी लेखिका का नाम 'कैथरिन केरवे' है।

२६. हरिद्वार

अचल बटाले से गुरू जी मुलतान गये, सभी पीर जल उठे और दूध का एक कटोरा लबालब भरकर भेजा, जिसका तात्पर्य था, 'हे गुरू! मुलतान तो पहले से ही पीरों से भरा पूरा है, तुम कहाँ समाओगे'? गुरू जी ने चंबेली का फूल उसके ऊपर रख दिया। आप कुछ समय तक यहाँ रहे, सतनाम का छत्र झुलाया, सच्च का प्रचार किया, किसी को कोई कष्ट न हुआ। फिर आप कर्तारपुर आये।

एक बार सगतुरू जी हरिद्वार मेले पर गये[१], यहाँ लोग सूर्य को जल देते थे। आप अपने गाँव की ओर मुँह करके जल देने लगे। लोगों ने पूछा आप क्या करते हैं? आपने उत्तर दिया, अपने गाँव में अपने खेतों को जल दे रहा हूँ। लोग हँसने लगे, तब गुरू जी भी हँस दिये कि मेरे गाँव में जल नहीं पहुँचता तो तुम्हारा जल सूर्य को कैसे पहुँचता है? बस फिर क्या था लोग आपकी ओर ध्यान लगाकर उमड़े। गुरू जी ने सतनाम प्रदान करके अनेकों का उद्धार किया।

२७. मखदूम बहाउद्दीन

इस बात पर मखदूम बहाऊद्दीन की कथा पहले आ चुकी है। मखदूम का दुख करना कि उसको गुरू नानक के प्रकाश में जाना था और वे उससे ४० दिन बाद जायेंगे और फिर पुछवाना, यह एक ऐसी टकसाली विजय है, जो अद्वितीय है। उच्च मुसलमान फकीर का आपको अवतार मान लेना प्रेम राज की महान विजय है।

२८. गुरू अंगद

ज्योति ज्योति की संधि, दीप दीप का मेल ज्यों।
गंध गंध से मिले, आत्म आत्म से मेल त्यों।

सबसे अंतिम प्यारी आत्मा जो सतगुरू जी ने रामराज में मिलाई, वह धुर से रामराज के लिये आई थी और वह गुरू अंगद जी की ज्योति थी।

सतगुरू को दीपक के समान समझिए। सभी सिक्ख भँवरे बनकर प्रेम पाकर चरणों में आये और नाम की ज्योति में मिलकर माया की ओर से मर गये और फिर आत्मा में जीवित हुए। अब सतगुरू जी जगत से चलते समय इसे अपने जैसा दिया बनाकर जलाते हैं, जिस पर पंतगे आ-आकर न्योछावर करते कीट–मृत्यु प्राप्त करते एवं आत्म-जीवन प्राप्त करते उठते। अत: लहना जी मिले, जो सौंदर्य की भाँति मिले। लहना जी धुर से ही अवतार थे, पहले शिष्यत्व का आदर्श दिखाया, फिर गुरू बने।

आपके साथ चर्चावाद, आत्मबल की खींचातानी नहीं हुई, देखते ही ईश्वरीय चोट लग गई।

---

१. कईओं ने इस कथा को पहली यात्रा के आरम्भ से पहले की घटना माना है। 'हरिद्वार फेरी' शीर्षक से यह कथा इस ग्रन्थ में पहले आ चुकी है।

लहना जी विस्मय के घर आये, फिर बोले नहीं, देवी के द्वार पर नहीं गये, साथियों को विदा कर दिया। पंचम गुरू के वाक्य में रहस्य खुला है:-

कबहू साध संगति इहु पावै॥
उसु असथान ते बहुरि न आवै॥
अंतरि होइ गिआन परगासु॥
उसु असथान का नहीं बिनासु॥ [सुखमनी असटपदी ११]

एक दिन धान की कीचड़ से भरा हुआ बोझ उठाकर लहना जी घर को लाये, कीचड़ पड़ने से सुन्दर वस्त्र खराब हो गये। जब घर पर आये तो माता जी खड़ी थीं, गुरू नानक देव जी भी आ गये, रेशमी वस्त्र खराब हुए देखकर माता जी ने गुरू नानक-धरती पाताल, गगन पाताल के स्वामी से कहा कि यह कितने सुन्दर वस्त्र, कीचड़ के छींटों से भरकर खराब कर आया है? तो गुरू बाबे ने कहा, "यह कीचड़ नहीं, दीन दुनिया का चंदन है[१]। अथवा ये केशर के छींटें हैं[२]।

आज भी जो लोग गुरू नानक के राज्य में आना चाहते हैं, वे आ सकते हैं। ढंग यह है:-

१. वाहिगुरू की ओर मन का रुख करें, प्यार वाला झुकाव करें।

२. गुरू नानक प्यारा एवं मीठा लगे।

३. गुरूवाणी का पाठ, विचार तथा कीर्तन करें।

४. प्रभु के नाम का अभ्यास करें।

५. "दुखु न देई किसे जीअ पत सिऊ घरि जावहु"॥ और किसी को दुख न दें और इज्जत से ईश्वर के घर जायें।

६. सर्व का भला सोचें और करें।

७. कृत्य एवं व्यवहार धर्म का करें और हाथ से बाँटकर खायें, हां जी, 'अभै निरंजन परमपदु ताका भीखकु होइ', इस तरह के भिक्षकों के साथ बांटकर खायें।

८. अपने मन से सच्चे एवं स्वच्छ हों, मन को बाचें, मन पर अंकुश रखें, उसे अधिकार में रखें।

९. श्री गुरू ग्रन्थ जी का, विचार से, समझकर, सोचकर पाठ करें, मन को श्री गुरू ग्रन्थ जी की शब्द रूपी टकसाल में ढालें और दशम शरीर में गुरू नानक (गुरू गोबिंद सिंघ) जी के बताये हुए प्रभु के साथ एक स्वर रहकर खालसा जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करें।

❑ ❑

---

१. पुरातन जन्मसाखी।

२. मंहमा प्रकाश और श्री नानक प्रकाश।

१४ सर्वकालीन सतगुरू नानक देव

१. दार्शनिक एवं फकीर

संसार के बहुत पुराने समय में किसी अदृष्ट शक्ति, अपने से ऊँची न दीखने वाली शक्ति अथवा व्यक्तित्व पर मनुष्य का विश्वास होता आया है। इस विश्वास ने भिन्न-भिन्न देशों में, भिन्न-भिन्न जातियों में और भिन्न-भिन्न सभ्यताओं एवं बर्बता की दशा में क्या-क्या रूप बनाये, यह एक लम्बे विस्तार एवं पुस्तकों का विषय बनने वाली बात है। परन्तु मनुष्य के विचार मण्डल में भिन्न-भिन्न देशों एवं समयों में इस विचार ने चक्कर खाकर अंत में दो रूप धारण किये।

(क) धर्म का प्रभु।

(ख) दर्शन का प्रभु।

धर्म चाहे कोई था, जिन्होंने परमेश्वर के अस्तित्व में भरोसा रखा, उन्होंने उसे निर्माता, पालन लालन करने वाला माना, उसकी, किसी न किसी रूप में, चाहे मानसिक पूजा द्वारा, चाहे मूर्ति पूजा द्वारा, चाहे गीत नाद द्वारा भक्ति की।

दर्शन चाहे कोई था (जिसने नास्तिकता से मुँह मोड़ा) उसने इस दृष्टमान प्रसार की नींव में इस अनेकता के पीछे, इस प्रतिक्षण बदल रहे दृश्य के पीछे इसका मूल कारण, इसकी वास्तविकता, उक्तियों आदि से सिद्ध की और उसे स्वीकार किया। या यों कह लें कि उन्होंने परमेश्वर को निराकार, अनंत एवं अपरिवर्तनीय समझा और इतना जान लेना ही काफी समझा।

अत: प्रभु के बारे दोनों विचारों एवं व्यवहारों में अंतर पड़ गया। प्राय: दर्शन तो प्रभु को कर्तार, पालक, दयालु मानने में यह देखता है कि यों वह विकारी हो जाता है और विकारी होने पर वह देशकाल से अतीत नहीं रह सकता, वह 'पारब्रह्म'[१] एवं 'अनंत'[२] नहीं रह सकता। अत: यदि वह अनंत एवं पारब्रह्म नहीं तब वह प्रभु भी नहीं, क्योंकि उस पर जीवों वाली बातों का आतंक जम गया, इस पक्ष से दर्शन, धर्म से दूरी पर जा खड़ा हुआ।

धर्म ने कहा कि जो प्रभु मनुष्य से दूर खड़ा है, जिसने हमारा निर्माण किया ही नहीं और जो हमारा लालन-पालन भी नहीं करता, जो हमारे सुख-दुख में कोई रस ही नहीं रखता, उसका मानव जीवन में मनुष्य का क्या आधार है? यदि हमारे हृदय के टूटते समय, दुखों, चिन्ताओं, मुसीबतों, भय, त्रास, विनाश के त्रास के समय, वह हमारी प्रार्थनाओं को सुनने वाला नहीं, यदि वह हमारी दुर्बलताओं के समय हमारे सहारे का हमारे मनों में आश्रय नहीं बनता तो उसका होना न होना मानवी दुखों सुखों के लिये समान है, केवल

१. Absolute.

२. Infinite.

इतना जानने से कि कोई अनंत एवं पारब्रह्म है, हमारी मानसिक गणना में एक कोठड़ी और बढ़ गई तो बढ़ गई, हमने पदार्थों की गणना (शाखा एव कैटेगरी) (category) में सिरे पर एक अक्षर लिख लिया तो लिख लिया। हमें, जो हम चारों ओर दुखों से घिरे हुए हैं और हमारा अन्तस दुर्बल है इसलिए हम हर मुसीबत के मुँह में प्रतिक्षण फिसलकर गिर पड़ने को तैयार रहते हैं; उस ज्ञान से हमें कौन सा विशेष लाभ है? हाँ संसार से ऊँचे उठे हुए मस्तिष्क को कल्पना मण्डल में आधार प्राप्त होता है, पर सृष्टि तो ज़रूरतमन्दों से भरी पड़ी है। इस तरह धर्म और दर्शन 'प्रभु' को मानते हुए भी दो भिन्न-भिन्न और परस्पर नापसंदी वाले मार्ग अपनाये रखते हैं। दर्शन, विद्वानों और पण्डितों के भाग में आया है यह लोग धर्म को घटिया और कुछ मूर्खों एवं शीघ्रता से पसीजने वालों की प्रसन्नता समझकर प्राय: उनसे ऊँचे और दूरी पर खड़े होते रहे हैं। पर धर्म वालों में उनकी भक्ति ने नाना तरीकों से कईओं को हृदय की शुद्धता, चित्त की एकाग्रता और जगदाधार के साथ निरंतर लगाव में लगा गये हैं। जहाँ और जब किसी मनुष्य में ये 'पक्ष अन्तस की उन्नति कर गये, वहाँ ही उसने आश्चर्यजनक शक्तियाँ, चकित कर देने वाले दुख रहम प्यार अचम्भा कर देने वाले दुख तसीहे, मुकाबले, दया, प्यार, सहनशीलता के नमूने दिखाये। उसके शब्दों एवं क्रान्ति के आकर्षण और सुन्दरता साधारण मनुष्यों से ज्यादा दिखाई और उसके अंदर प्राय दुखों, सुखों, सोचों, चिंताओं वाले मनुष्यों ने किसी के अंदर निवास कर रही पूर्ण प्रसन्न ा के दर्शन किये, इन बातों ने साधारण मानवता को इनके साथ मिलाये रखा। समाज की रीढ़ की हड्डी ज़मीनदार है, मज़दूर है, कारीगर है, व्यापारी है, जो परिश्रम करके, चाहे उनके वे परिश्रम शरीरिक हैं, चाहे मानसिक, चाहे सम्मिलित, जगत के समाज को रूप दे रखा है, जिसमें सभी चल रहे हैं। यह कृत्य करने वाले लोग सारे के सारे उस ईश्वरीय मनुष्य अर्थात् भक्ति करने वाले धार्मिक ढंग से प्रभु को मानने वाले लोगों के इर्द-गिर्द घूमते रहे हैं और समाज-रूपी सेना सारी की सारी इसके पीछे रही है, जिसे तुम दार्शनिक के मुकाबले में प्रभु का जीव, या फकीर, एवं हरिजन कह लो। इनकी वाणी में, जहाँ भी तुम देखोगे, इन्हें अपने आपको मूर्ख, नीच आदि कहने में रस लेते हुए पाओगे, क्योंकि भक्ति, नम्रता, पवित्रता के कारण किसी को बुरा कहने के बजाय, अपने आपको उनके द्वारा नीच कहने में नम्रता एवं प्रसन्नता लेता है, चाहे कई बार ईश्वरीय कान्ति में आये इन हरिजनों ने, 'मलिन हृदय एवं विचल मन वाले' पण्डितों की इस दुर्बलता का बोध कराया है, पर इन्होंने कभी घृष्णा नहीं दिखाई।

अत: एक कुदरती दूरी दार्शनिक और फकीर में चल पड़ी, इसमें चाहे पहला समय कम हानि देखता था, पर वास्तविक रूप से यह भय सदैव से बना हुआ था और अब ज़्यादा स्पष्ट है कि विद्या उन्नति करे, इसका हर ओर विस्तार हो तब दार्शनिक का दृष्टिकोण विशेष रूप से प्रामाणिक होगा और फकीर का दृष्टिकोण ओझल होगा और अंत में 'वास्तविक जीवन' जो शिष्यों फकीरों का है, वह लोप हो जायेगा और ईश्वरीय अस्तित्व दार्शनिक की केवल गणना मात्र (categorical) रह जायेगा। धर्म की नास्तिकता की ओर से धक्का लगने का भय तो है, पर यह भय थोड़ा सा आस्तिक दार्शनिक से भी है। वास्तविक जीवन में किसान,

मज़दूर, कृत्य करने वाले, कारीगर, व्यापारी की भक्ति स्वीकार करने वाले, प्रार्थना सुनने वाले; कृपालु प्रभु की आवश्यकता है और सारी मानवता का यही एक आधार है।

इस दूरी को दूर करने वाले सतगुरू नानक देव जी जगत में आये। जो सुमति उन्होंने प्रदान की, उसकी बुनियाद यह दीख पड़ती है कि वे दो आस्तिकों 'दार्शनिक एवं फकीर' की फूट को देखकर चकित हुए हैं। आप यदि इस समय गुरुवाणी पढ़ें तो देखेंगे कि वे एक ओर सिक्खों, साधुओं एवं फकीरों को सम्बोधन कर रहे हैं; एक ओर ज्ञान लोगों को, दूसरी अभ्यासी योगियों आदि को। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे इस आरम्भ से पड़ी हुई फूट को दूर करने की इच्छा करते हैं, पर यह फूट कोई रूठे हुए भाईयों की नहीं कि परस्पर क्षमा करने से मिट जाये; यह फूट तो आत्म विद्या के केन्द्र की है, वह फूट तो ईमानदारी से दोनों ओर अपनी-अपनी दिमाग़ी खोज एवं अनुभव में प्रतीत कर रहे हैं। इसलिये इसका इलाज 'इलमी एवं अमली' दोनों प्रकार का होना चाहिये, जो दोनों को एक कुठाली में ढाल सके और यदि कोई ऐसी औषधि हो तो वह ऐसी होगी जो सर्वकालीन होगी, अर्थात् वह सभी समयों पर चलेगी।

इस पर सतगुरू ने ईश्वरीय ज्ञान की यह बात बताई कि यह संसार अपने आप नहीं बन सकता, आत्मा अपनी स्वतन्त्रता मे स्वतन्त्र है, इसे कोई आवश्यकता नहीं कि यह प्रकृति के चक्कर में पड़े और प्रकृति तो जड़ है, इसमें कोई चाह, इच्छा, आवश्यकता का सामान् नहीं कि यह इस जड़ता से उठने की इच्छा करे। अत: दो इच्छा रहित पदार्थों में से एक चेतन है, पर आवश्यकता रहित है दूसरे जड़ है, उसमें आवश्यकता का ज्ञान नहीं, इन दोनों का अपने आप किसी कारण मेल हो जाना असंभव है, यह मेल चाहे किसी तरह का हो और कभी हुआ हो और यह ढंग चाहे विकासवाद का हो, चाहे अन्य प्रकार का, निश्चित रूप से कोई नहीं जानता कि यह कब और कैसे हुआ?[१] परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि यह अपने आप नहीं हुआ। जो कहते हैं कि केवल आत्मा है, वे उस नुकते उस गिरह को नहीं बता सकते, जहाँ से उस आत्मा में यह प्राकृति ओर इसका प्रसार हुआ। जो कहते हैं कि केवल प्रकृति है, वे उस नुकते को नहीं बता सकते कि जड़ पदार्थ कैसे चेतनता, सुरतबुधि में परिवर्तित हो गया? जो दोनों को मानते हैं, वे नहीं बता सकते कि कैसे दोनों इच्छा रहित एक दूसरे में मिलकर संसार में पलटा खा गये।

सतगुरू नानक देव जी बताते हैं कि एक 'नुकता' प्रभु की आज्ञा है। दार्शनिक जिसे अनंत अनादि कहते हैं, वे उसकी अगम्य एवं अनंत शक्तियों में एक शक्ति 'आज्ञा' है। यह सब कुछ उसकी आज्ञा का प्रसार है। दार्शनिक कहता है कि जिसमें से आज्ञा निकलती है, उसमें इच्छा है, जिसमें इच्छा है, वह विकारी है, निरंतर नहीं, जो निरंतर नहीं, वह 'अनाद अन्नत' नहीं। अत: वह नहीं जिसे मैं ब्रह्म कहता हूँ, वह तुम्हारा कोई बढ़ा हुआ जीव होगा।

सतगुरू जी कहते हैं, हे दार्शनिक! क्या तू उस अनादि और अनन्त का समाचार कुछ बता सकता है? दार्शनिक कहता है, नहीं! वह अनंत है, मेरा ज्ञान तो अंत वाला है, वह

---

१. थिति वारु न जोगी जाणै रुति माहु न कोई।।
जा करता सिरठी कउ साजै आपे जाणै सोई।। [जपुजी]

अनादि है, मैं आदि एंव अंत वाला हूँ, वह देशकाल असीम का आप निमित्त से पार है मेरा ज्ञान देशकाल निमित्ति का स्वयं स्वरूप है, मैं कभी भी उसका वर्णन नहीं कर सकता, मैं कभी भी उसके स्वरूप को समझ और बता नहीं सकता। सतगुरू जी कहते हैं, क्या वह, जिसे तुम अनन्त कहते हो, 'है'?

दार्शनिक कहता है, हाँ वह 'है', यह उसका स्वरूप है। सतगुरू जी कहते हैं वह "है" जड़ है एवं चेतन? दार्शनिक कहता है 'विशुद्ध चेतनता'। सतगुरू जी कहते हैं वह चेतनता दुख रूप है, एवं सुख रूप? दार्शनिक कहता है कि वह विशुद्ध, परम 'आनन्द' रूप है। सतगुरू जी कहते हैं कि उसकी 'है' 'चेतनता' एवं 'आनन्द' की व्याख्या कर सकते हो? बता सकते हो कि उसमें इनका क्या व्यवहार है? कैसे वहाँ इनका निवास और कर्म आदि है? और क्या यह आनन्द आदि तेरे आनन्द जैसे प्रामाणिक हैं? दार्शनिक कहता है कि जो प्रश्न आप करते हैं उसके उत्तर में मैं 'अंत' वाली वस्तुओं के उत्तर दे सकता हूँ, अनन्त में यह प्रश्न सम्भव नहीं। तब सतगुरू जी कहते हैं कि ईश्वर के उपरोक्त तीन स्वरूप लक्षणों में मुझे यह बता कि यदि वह वहाँ कुछ करता है तो उसकी यह क्रिया अपने में देश, काल निमित्त रहित का कोई स्वरूप नहीं रख सकती? जैसे उसका स्वरूप अगम्य है, वैसे ही क्या उसकी करनी अगम्य नहीं हो सकती? करनी से हमारा तात्पर्य उस प्रकार की करनी नहीं, जिस प्रकार की मनुष्य में है, परन्तु उस देशकाल रहित की अदेशी अकाली, करनी, जिसे मनुष्य को देशकाल वाली बुद्धि समझ ही न सके। तब दार्शनिक कहता है कि यह तो ठीक है, जब हमने उसे अपनी समझ की पकड़ से दूर देखा है, तो हम देशकाल वाले हैं, वह इनसे परे है, तब उसके स्वरूप की सारी व्याख्या असंभव है। तब सतगुरू कहते हैं कि जैसे प्रभु व्याख्या में नहीं लाया जा सकता, इसी तरह उसकी आज्ञा की व्याख्या भी नहीं की जा सकती।[१]

जो कुछ तुम देखते हो, वह उसी अनन्त की रचना है, पर इस तरह की रचना नहीं जिस तरह कुम्भकार एवं लोहार की हैं, पर इस तरह की जिसे देश काल बुद्धि समझ ही नहीं सकती। अतः निश्चय से सोच ले, जैसे तू वाहिगुरू को 'आनन्द' कहता है, पर यह आनन्द वह आनन्द नहीं जिस तरह के आनन्द का तुझे तर्जुबा है। इसी तरह उस वाहिगुरू में 'कर्म विचार' एवं 'आज्ञा' का निवास है, जिनकी बराबरी हमारे कर्मों विचारों और आज्ञाओं से नहीं है। हम पहले बता आये हैं कि यह सारा आकार अपने आप बन नहीं सकता, इसे किसी ने बनाया है, जिसने बनाया है उसने उसे हमारे ढंग से नहीं बनाया, जिस तरह वह स्वयं अगम्य है, उसी तरह उसका वह ढंग भी अगम्य है, हमारे मन एवं बुद्धि से परे है। हम जिस निर्माण को विकार की इच्छा कहते हैं, पर वहाँ नहीं है, हमारी देश-काल वाली इच्छा का वहाँ निवास नहीं। वहाँ जैसे आनन्द है, पर वह आनन्द नहीं जिसका ज्ञान हमें है, हाँ हमारा आनन्द जो कि आनन्द अनन्त नहीं, इसी तरह वहाँ पर 'निर्माण' है, पर वह निर्माण अनन्त का चमत्कार है, हमारे मन, बुद्धि से अगम्य है, वहाँ जो सृजन शक्ति एवं पालन शक्ति है, वह उस अनन्त की 'आज्ञा' है। यह सारा 'चमत्कार' आज्ञा का है, पर

---

१. हुकमु न कहिआ जाई।। [जपुजी]

आज्ञा भी अकथनीय है इसका कथन नहीं हो सकता। जैसे 'आज्ञा करने वाला' अकथनीय है वैसे ही 'आज्ञा' अकथनीय है। उसी आज्ञा ने यह सभी आकार किये हैं।[१]

सारांश यह कि सतगुरू ने दर्शन में एक और नुकता डाला कि उस अनन्त में उसके 'सारे के सारे' को उसके 'स्वरूप' को एवं 'क्रिया' को, सारे को अगम्य मानो, अपनी बुद्धि की गमता से परे मानो! यह भूल क्यों करते हो कि उसके 'स्वरूप' को तो अगम्य कहते हो, पर उसकी 'आज्ञा' को अपनी आज्ञा का स्तर प्रदान करके विकारी बना देते हो। उसकी आज्ञा भी अगम्य है, अविकारी है, अरूप है। वह सत्य है, उसकी आज्ञा भी सत्य है:–

'सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु'।

अर्थात जिस तरह वह आप केवल 'सच्च' है, इसी तरह उसकी 'आज्ञा, उसकी करनी, उसका संकल्प, उसका विचार' सभी सच्च हैं, विशुद्ध सच्च हैं। तू ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करते समय उसे 'सच्च' कहता है, पर जब उसकी आज्ञा हुक्म का ज़िकर करता है तो उसे सच्च क्यों नहीं कहता? उसे अपनी आज्ञा की भाँति तृष्णा की वस्तु क्यों वर्णन करता है। 'आज्ञा करने वाला' भी 'सच्च' है, 'आज्ञा' भी 'सच्च' है। 'आज्ञा करने वाले' 'आज्ञा' सबका स्वरूप केवल त्रिकाल बंधन रहित सच्च रूप है। जो सच्च है, वह विकारी नहीं कहा जा सकता।

दार्शनिक की समस्या का समाधान हो गया। अब सतगुरू फकीर से कहते हैं कि तू अपने ईश्वर में निर्माणता, पालन का गुण, एवं दया प्रेम को अपने कर्मों से क्यों समानता देता है। तेरा अंत है और वह अनंत है, बर्तन को कुम्भकार का क्या पता?[२] तू कह, वह कर्त्ता है, पालक है, दयालु है, प्यार करने वाला प्रभु है, तू उसे जन्म मरन वालों की भाँति क्यों समझता है? कह दे वह दयालु है, पर साथ ही कह दे कि यह सब कुछ उसमें कैसे और किस ढंग का है इसे मैं नहीं जान सकता। मैं यह समझता हूँ कि सभी गुण उसमें निवास करते हैं पर मेरी तरह उसके गुण परिणामी नहीं। उसमें ये सब-कुछ किसी अन्य प्रकार का है। वहाँ मेरी बुद्धि पहुँच नहीं सकती। गाय बछड़े से प्यार करती हुई उस प्यार को नहीं समझती, जो प्यार, एक शहीद अपने देश के लिए अपना बलिदान देता हुआ कर जाता है। गाय में प्यार है, पर गाय सुरत में नीच होने के कारण शहीद के प्यार को नहीं समझ पाती। यह कैसे हो सकता है कि एक मटकी अपने निर्माता कुम्भकार की 'चेतन प्रीति शक्ति' को समझ सके। इसी तरह तेरे प्रभु की अगम्य शक्तियों का खेल अगम्य है, तेरे देशकाल वाले तजुर्बों वाले ज्ञान से भिन्न है। तेरा प्रभु गुणों का सागर है, दया का सागर है, प्यार पुंज है, दयालु है, पर हे अरूप, रेखा रहित, अनंत'। अब देखिये फकीर का ख्याल ऊँचा हो गया। जो दार्शनिक के विचार में भूल थी, वह दूर हो गई, दोनों के बीच में एक पुल बँध गया। दर्शन और धर्म मिलकर चलने लगे, गुरू नानक देव जी का धर्म सर्वकालीन धर्म बन गया।

अब देखिये सतगुरू जी का वास्तविक ढंग। दार्शनिकों ने केवल यह निश्चय किया कि वाहिगुरू देशकाल आदि से परे है और यह देशकाल में है और हमारा उसमें मेल इस

१. हुकमु न कहिआ जाई।।
हुकमी होवनि आकार।

२. 'करते की मिति न जानै कीआ'।। [गुरू अर्जुन]

दूरी ने रोक रखा है, पर सतगुरू नानक ने बताया कि नाम, लौ और आज्ञा का अमल धारण करो, काल, देश, निमित्त तीनों उपाधियों को मिटाकर तुम अनंत के द्वार पर जा पहुँचोगे।

'नाम' के साथ 'काल' (Time) की कैद टूटती है; 'लौ' से 'देश' (Space) की उपाधि दूर होती है। 'आज्ञा' द्वारा 'नपित' (Casuality) का बंधन टूटता है। इस अमल को धारण करने से दार्शनिक उस अवस्था में वास्तविक रूप से पहुँच जाता है, जिसका पहले बुद्धि द्वारा अनुमान लगाता था। हाँ, जहाँ पर फकीर भक्ति द्वारा पहुँचता है।

यदि फकीर यही कर्म करेगा तो उसकी सारी भक्ति हो गई। प्रेम धारण करके यदि नाम जपे तो वह अपने अंदर अपने पूज्य का प्यार उत्पन्न कर रहा है, क्योंकि तुम जिसका नाम जपोगे, उसे तुम्हारा मन वास्तविक रूप से याद कर रहा है, जिसे तुम सदैव स्मृति में रखोगे, उसके साथ तुम्हारा प्यार हो जायेगा, क्योंकि जब तुम्हारा प्यार किसी से हो, वह तुम्हें भूलता नहीं और यदि तुम किसी को भुलाओ न, स्तुति द्वारा उसे याद ही रखो तो तुम्हारे अंदर उसके लिये प्यार उत्पन्न हो जायेगा। सभी प्रकार की भक्ति, उपासनाओं का मूल तो प्रेम है, प्रेम का एक रूप नाम है, स्मृति है, अतः सतगुरू जी ने फकीर से कहा:–

'गुरा इक देइ बुझाई।।
सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई'।। [जपुजी]

फिर सतगुरू ने सिक्ख से कहा–वाहिगुरू का ध्यान लगा। अपने अन्दर जगत के चित्र मत खींच। जैसे दर्पण में से प्रतिबिंब जाकर अपने कोई चित्र नहीं खींचता, वैसे ही जगत में बिचरते हुए तेरे हृदय पर कोई वस्तु अपना प्रभाव न डाल सके। बस दर्पण में से गुज़रने की भाँति हर चित्र गुजर जाये, हृदय के दर्पण में एक प्रभु के अस्तित्व का प्रतिबिंब पड़े, इस ढंग द्वारा प्यार और बढ़ा। जिसकी स्मृति एवं अस्तित्व का प्रतिबिंब अन्दर आ गया, वह प्रियतम बन गया, उसके आगे बैठकर कीर्तन कर, उसी की स्तुति कर, उसी के आगे विनय कर।

प्यार में प्यारे से कभी रूठा नहीं जाता जो दुख एवं सुख तुझे प्राप्त हो उसे प्रभु की आज्ञा समझ। प्रियतम के साथ कभी अशान्त, नाराज, रुष्ट न हो, अन्यथा प्रीत का तार टूट जायेगा, यदि तू आज्ञा में रहेगा तो नाम द्वारा चित्त की शुद्धि एंव एकाग्रता बनी रहेगी और जो उल्लास आया है, वह कायम रहेगा। अतः अब 'नाम' (स्मृति) अस्तित्व का प्रतिबिंब एवं 'सहज ध्यान, आज्ञा' यह तीनों ही आ गये, पूर्ण लौ लग जायेगी। लौ लगी और अहं कट गया, माया भाग गई, फिर वाहिगुरू में समा गया। वही नाम, सहज ध्यान, आज्ञा दार्शनिक को अपने केन्द्र से, फकीर को उसके नुकते से वास्तविक रूप से 'अनंत' में ले गई।

२. संन्यासी एवं गृहस्थी

उस अगम्य शक्ति से उतरकर (जिसके चमत्कार में यह सारा प्रसार दिखाई दे रहा है, जो प्रत्येक वस्तु की बुनियाद में है, जो सूक्ष्म आधार है ओर जो सब को चलाने वाला है, जिसका अस्तित्व प्रत्येक मनुष्य में है उसके अंतस में से पड़ा झलकता है) मनुष्य को मनुष्य के साथ वास्ता पड़ता है। अर्थात् वाहिगुरू के संबन्ध से उतरकर मनुष्य का दूसरा संपर्क मनुष्य के साथ अर्थात् सृष्टि से होता है, यह संपर्क ही वास्तव में समाज की बुनियाद है।

पूरब एवं पश्चिम में धर्म की दृष्टि से समाज के संबंधों में भिन्न-भिन्न विचार चलते रहे हैं।

भारत में जहाँ दर्शन और धर्म ने सबसे अधिक उन्नति की है, सर्वोच्च विचार 'संन्यास' का है कि पूर्ण सुख और टिकाव की प्राप्ति के लिये सबसे अलग हो जाना और सारे संबंध तोड़ देने जरूरी हैं। चाहे कोई साधन हो चाहे उसका कोई भी नाम हो पर सबकी सैद्धान्तिक बात यह संन्यास है और इसका फल वास्तविक तौर पर यह हुआ कि उच्च विचारों वाले, धर्म वाले भले पुरुष समाज में से निकल जायें। मलाई तो जंगलों को चली जाये और पीछे थोथा दूध रह जाये, इससे तो अपने आप निम्न वर्ग का समाज शेष रह गया, क्योंकि समाज का कमाल इसके कुशल पुरुषों के इसमें रहने पर भी आधारित है। यदि भले पुरुष वनों को चले जायें तो पीछे रहने वाले साधारण पुरुष दुखों का शिकार बनेंगे।

एक दो शताब्दियों से पश्चिमी देशों में जो विचार पले हैं उन्होंने धर्म एवं सामाजिक शिक्षा की दृष्टि से यह बात सिखलाई है कि पुरुष का 'धर्म', 'प्यार' एवं 'कर्तव्य' यह है कि मानवता (Humanity) मानव मात्र की सेवा करे। समाजा के सुख को अधिक से अधिक इच्छा यह नैतिकता है; समाज के सुख में न्योछावर होना, यह प्रेम की अवधि है, समाज के सुख में प्रयत्न करना, यह पदार्थिक एवं परस्पर सुखदाई दशा पैदा करने की शिक्षा है और कला है और यह मनुष्य के जीवन के वांच्छनीय फल है। यह कुछ है जो इस समय सारे सभ्य संसार में आदर्श बन रहा है।

क्योंकि इस आदर्श में निकट का सुख है, इसलिए यह मनों को अच्छा और प्रिय लगता है। भारत में यह विचार संन्यास के विचार का विध्वंस कर रहा है। लोग संन्यास के विचार को आत्महत्या कर रहे हैं और बता रहे हैं कि भारत के समाज को संन्यास के विचार से हानि पहुँची है। परन्तु गुरू नानक देव के सर्वकालीन धर्म को यह नया आया हुआ परदेशी विचार कोई आघात नहीं लगाता, क्योंकि उन्होंने आज से लगभग कोई पाँच सौ वर्ष पूर्व जब यूरोप भी समस्यावाद के झगड़े में रक्त की नदियाँ बहा रहा था, इस विषय को ठीक कर दिया था। देखिए जब सुमेरू पर्वत पर गये तो सिद्धों से वार्तालाप हुआ तो आपने उनके संन्यास के लिये घोर हानिकारक बताया था और यों कहा था:-

[उस समय के समाज की दशा का चित्र है]

कल आई कुते मुही खाज होआ मुरदार गुसाई।।
राजे पाप कमांवदे उलटी वाड़ खेत कऊ खाई।।
परजा अंधी गिआन बिन कूड़ कुसत मुखहु आलाई।।
चेले साज वजाइंदे नचण गुरू बहुत बिधि भाई।।
सेवक बैठण घरां विचि गुर उठ घरीं तिनाड़े जाई।।
काजी होए रिशवती वढी लैके हक गवाई।।
इसत्री पुरखै दाम हित भावें आइ किथाऊँ जाई।।
बरतिआ पाप सभस जग मांही।। [वारा भाई गुरुदास]

भारत के समाज की यह दशा बताकर यह भी बताया है कि स्त्री पुरुष का प्यार तो पैसे का प्यार रह गया है, राजा पाप करते हैं, शासक भ्रष्टाचारी हैं, समाज में से नैतिकता का पतन हो गया है। यह कहकर गुरू जी ने इस सारी दशा का उत्तरदायित्व उन्हीं पर थोपा है और कहा है:–

'सिध छप बैठे परबती कौण जगत कऊ पार उतारा'। [भाई गुरुदास]

जिनमें सिद्धि अर्थात् गुणों की पूर्णता थी, अर्थात् भले पुरुष जब धर्म के पीछे लग कर त्याग को अनिवार्य समझकर पर्वतों पर जा बैठे तो पीछे दुर्दशा तो होनी ही थी। जब वे संन्यास धारण कर गये तो पीछे जो साधारण एवं गुणहीन लोगों का समाज रह गया उसका पतन हो गया।

संन्यास की यह हानि सतगुरू जी ने तब ही बता दी थी, पर संन्यास में एक गुण भी था, वह यह कि अतंस का तृष्णा से उठकर लौ में जाकर निवास करना। इस लाभ को सतगुरू जी ने रख लिया, हानि को दूर करके वह समाज उत्पन्न किया जिसमें भारत का प्राप्त किया हुआ 'धर्म' वाला ओज भी कायम रहे और सामाजिक दशा ऐसी ऊँची हो जाये जिसका आदर्श यूरोप में अब आकर उत्पन्न हुआ है। 'केवल सामाजिक सुख' जीवन का अंत नहीं, लक्ष्य नहीं, पर जीवन के वास्तविक आदर्श की प्राप्ति में समाज का पतन होने देना उस आदर्श की पूर्णता के मण्डल को तंग करते चले जाना है, जिससे अन्त में आदर्श ही नष्ट हो जाये।

सतगुरू नानक देव जी ने 'संन्यास' का कारण खोजा। वह यह था कि चित्त की वृत्ति को ब्रह्माकार करने के लिये लोगों का संपर्क बाधा डालता है, प्राय: पाप प्रधान है और जगत में निवास करते हुए पाप के प्रतिबिंब मनों पर पड़ते हैं और वे चित्त को टिकने नहीं देते, सतगुरू ने यह सीधी बात सिखाई कि धर्मी को पापों की ओर से बाधा पड़ती है, सारे समाज से नहीं, अत: खोटे पुरुषों की संगति नहीं करनी चाहिये, भले पुरुषों की संगति करनी चाहिए और समाज में बैठे रहना चाहिये, उसका त्याग करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इससे आपने अपने सत्संग की नींव डाली कि धर्म का अवलंब लेने वाले पुरुष को जंगलों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं, यहाँ ही बुरों से बचकर भले पुरुषों की संगति में रहना यही काफी संन्यास है। इससे भले पुरुष समाज को रिक्त नहीं कर गये ओर सभी के बीच ही रहे। पर एक दूरी स्थापित हो गई कि भले पुरुष बुरों से बचने का यत्न करेंगे और बुरे इसमें अपमान समझकर उनके साथ दुर्व्यवहार करेंगे। निन्दा, ईर्ष्या, दुर्व्यवहार। इसकी औषधि सतगुरू जी ने यह बताई है कि भले पुरुषों को भले पुरुषों की सेवा करनी चाहिए और बुरों को क्षमा, धैर्य और सत्य का उपदेश देकर भली ओर लगाने की सेवा करनी चाहिए। इस सबका फल यह निकला कि यह भले पुरुष समाज में रहें, भले आपस में मिलकर सुखी हुए और अच्छे समाज का निर्माण हुआ और उन्होंने बुरों को ऊँचा करने का यत्न किया और घृणा न की, उनके दुख सहन करके भी उन्हें भला बनाया तो समाज का स्वर सुरीला होता गया। अर्थात गुरू नानक देव जी ने गुरुमुख पैदा किये जिन्होंने समाज में ही रहकर गुरू के सिक्ख एवं गुरुमुख पैदा किये।

संन्यास का विशेष सुख यह है कि मनुष्य के सामने न तो सांसारिक रसों की परीक्षा आई, न वह फंसा, पर सतगुरू ने जिस सत्संग का निर्माण किया उसमें इस गुण का ध्यान

रखा गया कि जब सत्संग में 'सज्जनता क्या है' इस बात का प्रतिदिन पता चलता रहेगा और परीक्षाएँ भी प्रतिदिन होंगी, तब मनुष्य उन परीक्षाओं के सामने बाधा डाल सकेगा। कब गिरेगा, कब जीतेगा, यदि गिरेगा तो सत्संग में से उपदेश, प्यार की झिड़की, सहानुभूति की सहायता प्राप्त होगी और वे परीक्षाओं एवं पापों का मुकाबला करता हुआ अन्त में प्रभु का मल्ल हो जायेगा और बुराई पर विजय प्राप्त करेगा, उसकी यह विजय उसका स्वभाव बन जायेगी, अब वह उसमें निवास करता हुआ भी आघात सहन नहीं करेगा। यह लाभ पूर्ण संन्यास वाले लाभ की अपेक्षा बड़ा होगा, क्योंकि इसमें मानसिक शक्ति उन्नति कर जायेगी, किसी परीक्षा के सामने यह नहीं गिरेगी, चाहे इसमें समय व्यय होगा, पर मन की शक्ति केवल त्याग में, आबादी से दूर रहने से त्यागी हुए, संन्यासी के मन की अपेक्षा अधिक पक्की होगी। अतः इस ढंग द्वारा संन्यास का पूर्ण लाभ 'लौ एवं मन की स्वच्छ परिपक्वता' सत्संग में से ही प्राप्त हो जायेगी और वह गुरुमुख बनकर समाज में निवास करेगा और उसकी सुगन्धि द्वारा उसी जैसे और पैदा होंगे और समाज को लाभ प्राप्त होगा।

पाश्चात्य विचारानुसार कि समाज ही सभी गुणों का अन्त है इसमें एक भूल वाली बात है कि मनुष्य के अन्दर की समझ और शक्ति अपने आप और अपने वाहिगुरू से भेंट की उन्नति से वंचित रह जाती है, अर्थात् 'देखने वाले' वाहिगुरू से पृथक केवल 'दृष्टमान' में ही रह जाती है।

सतगुरू नानक ने इस कमी का पूर्ण प्रबन्ध अपने धर्म में किया है। उन्होंने वाहिगुरू एवं उसकी आज्ञा को समझने पर सबसे अधिक बल दिया है और 'गुर कै सबदि सलाहीऐ अन्तरि प्रेम पिआरु'[१] वाली बात को उच्च जीवन का आवश्यक भाग बनाया है और इस अन्तस के कमाल का आदर्श स्थापित करके फिर समाज में रहना सिखाया है। हृदय में प्रभु का प्यार और उसकी आज्ञा की टेक हो, सहज में जीवित रहे और समाज में निवास करे, भले पुरुषों की संगति में रहे, दुष्टों को भले समझकर उनकी संगति में न रहे, पर उन्हें सुधारने एवं भले बनाने में सामर्थ्यानुसार काम करे, उनसे घृणा न करे और नियम को धारण करके जगत में निवास करे।

धौलु धरमु दइआ का पूतु॥
संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति॥

धर्म का व्यवहार—विचार में, वचनों में, करनी में रहे। घृणा करना, निन्दा करना, छीना-झपटी करना, दुख देना और अन्याय आदि से सतगुरू जी ने वर्जना की है।

यदि हरेक पुरुष दूसरे के साथ धर्म का व्यवहार करे तो सभी सुखी हो जायें। मनुष्य न तो किसी का 'अधिकार' छीने और न ही 'कर्तव्य' को भूले, यह धर्म है। पर इसमें जब लोगों की ओर से अपने अधिकार पूरे न हों तो दुख होता है और फिर बदला लेने की

---

१. राग मलार वार पौ : १९।

भावना पैदा हो जाती है। इसलिए सतगुरू जी ने कहा है कि इस धर्म में 'दया' को सम्मिलि करो और 'संतोष' को मिलाओ, फिर संसार पर (सूत) 'संतुलन' स्थापित हो जायेगा।

पर जब तुम दूसरों के साथ धर्म का व्यवहार करते हो, तब यह ज़रूरी नहीं कि वे भी तुम्हारे साथ उसी प्रकार का व्यवहार करें, वे प्राय: अधर्म का व्यवहार करेंगे, दुख देंगे, तब तुम्हारे आगे दो प्रकार की कठिनाइयाँ आयेंगी–एक तो तुम व्याकुलता में पड़ोगे, अंदर की एकाग्रता टूटेगी, आवश्यकताएँ, कमियाँ और दुख हृदय को हिला देंगे। दूसरा दुख देने वालों को 'दुख देने की' भावना तुम्हारे अन्दर भी फुरेगी, क्योंकि 'जैसा कोई करे वैसा ही करवा ले' यह न्याय है। सतगुरू जी ने बताया कि नहीं, अन्दर तो संतोष की वृत्ति धारण करो, अर्थात् जैसी दशा स्वभाविक ही बन गई उसके कारण अन्दर व्याकुल न हो, व्याकुलता तृष्णा, घबड़ाहट उत्पन्न न होने देना, यह सन्तोष है और बाहर जिन्होंने दुख दिया है उनके साथ दया का व्यवहार किया जाय, इस तरह दया और सन्तोष को इकट्ठे करके प्रयोग में लाने से समाज में सन्तुलन स्थापित हो जायेगा। इस तरह का सामाजिक आदर्श एक अलौकिक आदर्श है। देखिए:–

गुरा इकु देइ बुझाई॥

सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई॥ [जपुजी]

इस तुक में दोनों आदर्श एक स्थान पर लाकर बता दिये हैं। (१) एक वाहिगुरू दाता है, उसे कभी मत भूलना, श्वास-श्वास पर अंदर आत्मा में उसका स्मरण करना। अंतस का निरंतर स्नेह अर्थात् अंतस का निरंतर झुकाव और लगाव अनन्त के साथ रखना। प्यार एवं उल्लास वाली ऊँची एवं उच्च आदर्श में मग्न लग्न वाली वृत्ति जब प्रतिक्षण अंदर में निवास करती है तो वह वाहिगुरू प्रिय वस्तु होकर अंदर निवास करता है और उसके प्यार में उसकी आज्ञा चलती दीख पड़ती है। (२) पर वह दाता क्या केवल मेरा ही दाता है? नहीं, वह सभी जीवों का 'एकमात्र' दाता है, वह दाता सभी का दाता है और सभी जीव उसी के हैं। इस एक के सभी होने का साझापन, समाज का दैवी गुण स्पष्ट हो गया। अब व्यवहार इस प्रकार होगा कि यदि मैं किसी भाई की कठोरता पर संतोष किये रखता हूँ तो अपने अंदर अपने प्यारे की स्थापना करने के लिये करता हूँ, क्योंकि यदि मैंने अपनी वृत्ति में घबराहट दिखाई तो, अंदर प्रियतम वाहिगुरू की स्मृति नहीं रहेगी, वहाँ पर आसुरी सम्पति घबड़ा कर आ जायेगी। यदि मैंने बाहर निर्दयता का व्यवहार किया और सभी जीवों को उस प्रभु के जीव न समझा तो मैंने इस प्रकार का व्यवहार रखा जिससे दुख उत्पन्न हुआ और पहुँचा। मेरे अंदर जो टिकाव, सुख, उल्लास, रस आदि रहता है, वह चला जायेगा। इसलिए आवश्यक हुआ कि मैं अपने प्यारे दाता की आज्ञा को पहचानूँ, उसकी लौ में निवास करूँ और दूसरे लोगों के किसी प्रकार के अन्याय और बेअदबी तथा बुरे प्रभाव मेरे अंदर असंतोष एवं निर्दयता उत्पन्न न कर दें।

मैं अन्दर आत्मा में वाहिगुरू को न भूलूँ। मैं उसको सभी जीवों का एकमात्र दाता समझूँ। तब सभी जीवों में मेरा दया का व्यवहार होगा 'तऊ नानक सरब जीआं मिहरंमति।'

इस उत्तम आदर्श में मेरे अंतस की दशा उज्जवल, एकाग्र एवं रसभरी हो गई और

मेरा व्यवहार अर्थात् समाज में मेरे अस्तित्व ने समाज को कमाल तक पहुँचने के लिये सहायता की।

वाहिगुरू में मेरा पिता, पुत्र का सा प्यार हो गया और सभी जीवों में अपने पिता, दाता की देन समझकर भाईओं की सी क्षमा एवं दया वाला व्यवहार किया। सतगुरू नानक देव जी ने इस आदर्श में 'संन्यास के आदर्श' के गुण एवं 'समाज के आदर्श' के गुणों का संगम है और दोनों के अवगुणों का त्याग है। अत: पश्चिम की ओर से आया हुआ समाज का विचार गुरू नानक देव सर्वकालीन के धर्म आदर्श को किसी तरह भी हिला नहीं सकेगा, न ही उसके साथ टक्कर लेगा, अपितु यह आश्चर्य उत्पन्न करेगा कि जब संसार पर राय के मतभेद पर रक्त की नदियाँ बह रही थीं, तब इस अकाली ज्योति गुरू नानक ने धार्मिक सहारा सिखाया और समाज का ऊँचे से ऊँचा आदर्श स्थापित किया और संन्यास के लाभ को भी जाने नहीं दिया। बल्कि खोज से पता चलता है कि दूसरे धर्मों के साथ क्षमा प्रत्येक मत में से सच्च एवं सुख को ग्रहण करने और द्वेष न धारण करने की बुद्धि सबसे पहले जगत को, गुरू नानक देव जी ने सिखाई है।

यदि व्यवहारिक पक्ष की ओर आयें तो गुरू नानक जी ने 'भाई' शब्द इस समाज के आदर्श का केन्द्र बनाया था। 'भाई' एक उपाधि नहीं, वह तो सच्चे समाज का केन्द्र है, हरेक व्यक्ति जब भाई-भाई है तो समझ लीजिए कि वह समाज कितना ऊँचा है। इसी प्रकार परमेश्वर की आराधना में हरेक व्यक्ति अपने आप भजन भक्ति सहर्ष करे, पर साथ सभा का नियम भी स्थापित किया कि सभी मिलकर भी भक्ति करें। जिस तरह कि 'आसा दी वार' नामक वाणी के कीर्तन की सभा, 'सोदर रहिरास' नामक वाणी के कीर्तन की सभा आदि। इस तरह सभा लगाकर भक्ति करना (कथा, कीर्तन, पाठ आदि करना) समाज एवं धर्म का व्यवहारिक रूप है, जिसके कारण समाज नैतिकता एवं लौ के नियमों पर चले।

३. विज्ञानी एवं ब्रह्मवेत्ता

संसार में अब बुद्धि एवं समझ उन्नति पर हैं, पहले भी बुद्ध जी के समय और बाद में बुद्धि तीव्र थी, ललित कलाओं ने उन्नति की थी, दर्शन ने छलाँगे लगाईं थीं, कानून बने थे, विलासता की सामग्री उन्नति कर गई थी, 'विज्ञान अथवा दृष्टमान पदार्थों का ज्ञान' भी आया था, पर किसी समय में विज्ञान की उन्नति के ऐश्वर्य का अभी यह पता नहीं चलता कि इस औज पर विज्ञान कभी पहुँचा हो जिस पर अब पहुँच चुका है।

विज्ञान–विद्या को ही कहते हैं, पर यह दृष्टमान की विद्या है और इस विद्या का विशेष लक्षण यह है कि यह प्रयोग पर आधारित है जो 'जानी जा सके' और 'प्रयोग द्वारा बात को सिद्ध किया जा सके'। विज्ञान इस समय संसार की सेवा कर रहा है, पर यह केवल खोज, पड़ताल, परीक्षा और अपने प्रचार में ही नहीं चलता, यह चलता हुआ दूसरों के साथ भी कन्धा छीलकर चलता है। धर्म के विचारों पर भी यह आघात करता है और दर्शन को भी धक्के देता है और कभी अपने अस्तित्व को भी, जो कोई एक सौ वर्ष पहले एवं इससे भी कहीं पहले था, उधेड़ता सीधा चलता है।

जिन धर्मों में इस तरह के विचार थे कि वे गलत हैं, जैसा कि "पृथ्वी के नीचे मछली है, एवं बैल है, या सांप है" ऐसी बातों पर विज्ञान ने आघात किया है कि पृथ्वी

के नीचे कुछ नहीं और यह किसी ऐसे स्तम्भ के सहारे नहीं खड़ी हुई। इस तरह यदि किसी दर्शन में गुब्बारे में वायु भरकर तोली और तराजू काफी कोमल न होने के कारण तोल का पता न चला तो वायु को बेतोल कह दिया, तो उसे आज विज्ञान ने ठुकरा दिया है। परन्तु क्या विज्ञान इस प्रकार की अठखेलियाँ गुरू नानक जी के विचारों के साथ भी करता है? हम देख चुके हैं[१] या नहीं। गुरू नानक देव जी ने विज्ञान को अपना आदर्श नहीं बनाया था, अर्थात् दृष्टमान पदार्थों अथवा अदृष्ट पदार्थों पर किसी तरह इन्द्रियों द्वारा भासे जाने वाले पदार्थों की खोज पड़ताल प्रयोग की प्रयोगशाला उन्होंने नहीं खोली थी। वे इन विद्याओं की खोज करने वाले पदार्थों को जानने वालों, शरीर के भीतर बैठ कर देखने वाले, 'अन्तस' की विद्या के गुरू थे और उन्होंने यही विद्या सिखाई थी, परन्तु इस विद्या की बातें करते हुए लगे हाथ कई पदार्थों की चर्चा आ जाती है और उनके गुण, स्वभाव एवं विस्तार के बारे में मुँह से निकल जाता है। अत: ऐसे अवसरों पर पदार्थों की विद्या (ओबजैक्टिव साईंस) के किसी मामले की चर्चा आयी है, तो हम क्या देखते हैं कि गुरू नानक जी के विचार बिल्कुल सत्य हैं। जो ज्ञान विज्ञान को इस शताब्दी के लगभग प्राप्त हुआ है, वह स्वभाविक ही गुरू को उस समय प्राप्त हो गया था, अर्थात् वे थे तो दृष्टा (सबज़ैक्टिव) की विद्या के गुरू, पर यदि कभी लगे हाथों उनके विचार एवं अनुभव दृष्टमान की (ओबजैक्टिव) विद्या के संबंध में प्रकट हुए, तो वे बिल्कुल ठीक एवं सत्य थे। यह बात चकित कर देने वाली है कि विज्ञान के लगभग अंधकार वाले समय में उस 'दृष्टा की विद्या' के गुरू को 'दृष्टमान की विद्या' के सही अनुभव बिना तजुर्बे एवं प्रयोगशाला और पुस्तकों और शिक्षितों के कैसे ठीक-ठीक पता थे? उदाहरण के लिये वे बताते हैं:–

(१) पृथ्वी के नीचे कोई बैल नहीं है और यह विचार ग़लत है।

धवलै उपरि केता भारु॥ [जपुजी]

(२) सूर्य को एक स्थान पर खड़ा हुआ नहीं बताते, कहते हैं कि यह भी चलता है:–

'भै विचि (में) सूरजु भै विचि चंदु कोह करोड़ी चलत न अंतु॥' [वार आसा म: १]

'पाताल एवं आकाश सात बताए जाते थे, पर गुरू जी अगणित बताते हैं।

'पाताला पाताल लख आगासा आगास'॥ [जपुजी]

(३) सूर्य और चन्द्र एक ही नहीं बताते, आप कहते हैं, 'केते इंदु चन्द सूर केते'।

यह एक दो विचार उदाहरणार्थ यहाँ लिखे हैं।

इनसे हमारा यह अभिप्राय नहीं कि गुरू जी विज्ञान के प्रयोग करते थे। नहीं, वे तो किसी अन्य विद्या के गुरू थे। उनकी विद्या मनुष्य में, 'किस तरह जीवन सुखमय व्यतीत हो और अपने आशय को पूरा करने और शरीर का त्याग करने के पश्चात् उन्नति के मण्डल तक पहुँच पाये' की गमता पैदा करती है।

यह विद्या, अर्थात् विज्ञान बढ़ा और इसने कई सुख भी पैदा किये हैं, पर इसने अंतस के स्वभाव को नहीं बदला। यदि अंतस पहले स्वार्थी था तो अब और अधिक स्वार्थी बन

---

१. देखिए 'सभ से वडा सतिगुरू नानकु' वाली कथा, जो आगे आयेगी।

गया है और अपने लिये एवं समाज के लिये या एक जाति दूसरी जाति के लिये हानिकारक प्रयत्नों में ही तत्पर है। यद्यपि उच्चादर्शों में वृद्धि है, पर प्रयोग में मनुष्य अधिकतर पशुवृत्ति के स्वादों एवं रसों को ओर से हटा नहीं। सतगुरू जी का आदर्श यह था कि यह बाहर की विद्यायें अवश्य ही प्रफुल्लित हों, पर पहले अंतस का पशुपन मनुष्यपन में बदले और फिर देवपन में जाये, फिर इसकी सारी पदार्थ विद्या उस आशय को परे हटायेगी, जिसके लिये यह जीवन है और जिसके लिये यह संसार है। इसलिये वे सारी आयु भर अपनी विद्या सिखाते रहे, पर उसकी शिक्षा में उन्होंने एक विद्या (विज्ञान) के बारे में इस तरह के विचारों का ऐसा त्याग नहीं किया कि विज्ञान आज उन पर आक्रमण करके कह सके कि उनके विचार दृष्टमान पदार्थों के संबंध में ग़लत है। सतगुरू जी के विज्ञान संबंधी विचार सत्य निकले हैं और विज्ञान से पूर्व सत्य निकले हैं।

विज्ञानवेत्ता जब अपने मण्डल का त्याग करके आत्मा के अस्तित्व, प्रभु के अस्तित्व, मृत्यु के पश्चात जीवन है अथवा नहीं है, में जाते हैं तो वे अपने मण्डल का त्याग कर जाते हैं, उस दृष्टमान की विद्या में से निकलकर 'दृष्टा की विद्या' में चले जाते हैं, पर अपने साथ अस्त्र, शस्त्र, जन्त्र उसी 'दृष्टमान की विद्या' के ही ले जाते हैं और इस तरह कई बार ग़लत फ़ैसला कर देते हैं, पर यहाँ पर भी गुरू नानक देव जी के विचार अटल खड़े होते हैं।

उदाहरण के लिये जगत की उत्पत्ति के धार्मिक सिद्धान्त को विज्ञान उड़ा देता है, चाहे अभी विज्ञान ने इस पक्ष में काफी उन्नति नहीं की, तथापि गुरू नानक देव जी जगत उत्पत्ति के कारण को किसी पदार्थक ज्ञान में ही छोड़ देते और न ही कोई सिद्धान्त बनाते हैं। वे बताते हैं कि इसका कारण 'अनन्त' में है, उसका कोई 'चमत्कार' है, जिसका नाम उन्होंने 'आज्ञा' रखा है और उसे 'अगम्य' बताते हैं, अत: वे विज्ञानवेत्ता को बताते हैं कि जैसे तुम अग्नि को जानते हुए भी नहीं जानते कि यह क्यों जलती है, क्यों जलाती है, इसी तरह पदार्थों के संयोग, उन्नति, संचरण, विकास के कानून तो तुम जानो, परन्तु तुम अनन्त की 'आज्ञा' के नियम को नहीं जान सकते, वह दूसरी विद्या है और वहाँ प्रयोगशाला की मेज़ और तजुर्बे का मण्डल (खेल) नहीं, पर मनुष्य का अन्तस आप ही प्रयोग करने वाला है और उसका स्वत्व ही तजुर्बे की मेज़ है और स्वत्व का डायल ही लखाने वाला है।[१] अर्थात् वह ज्ञान एवं उस विद्या के क्षेत्र[२] और क्षेत्रज्ञ[३] एक ही है।

कई बार विज्ञान कहता है कि 'ईश्वर है तो नहीं', सतगुरू नानक कहता है: हे भले पुरुष! अपनी विद्या की सीमा में रह। तू 'प्रकृति' की खोज में है, वह तेरी प्रकृति की विद्या के नियमों से ऊँचा है, वह कर्तार है। सतगुरू प्रकृति के निर्मात का हिसाब[४] यों बताते हैं:–

१. आपीनै आपु साजिओ आपीनै रचिऔ नाऊ।।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ।। [वार आसा म: १]

२. Field of Knowledge.

३. The Knower.

४. Category.

'कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु॥
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु॥
कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु॥
कुदरति खाणा पीणा पैनणु कुदरति सरब पिआरु॥
कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान॥
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु॥
कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु॥
सभ तेरी कुदरति तू कादिरु करता पाकी नाई पाकु॥
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु॥२॥ [वार आसा महला १]

सुनने में, देखने में, प्रतीति में आने वाला सारा समुदाय प्रकृति की सूची में है। आकार सारा प्रकृति है। हे जीव! तेरे सभी विचार (मन, बुद्धि) (Intellect) विद्या की पुस्तकें, सभी प्रकृति हैं। यह सारी प्रकृति की रचना की हुई है, इसका एक और निर्माता है, जो इसके नियमों के अधीन नहीं, उनसे ऊँचा है, उनसे मुक्त है, वह कर्तार अपनी एक शक्ति 'आज्ञा' में इस सारी का सृष्टा है और इसके साथ उसी 'आज्ञा' से व्यवहार करता है। इस प्रकृति में वह बसा हुआ[१] भी है, पर वह कर्तार होकर व्यवहार करता है और उसके व्यवहार का नाम 'आज्ञा' है और वह व्यवहार करता हुआ एक ही है, वह प्रकृति के सभी नियमों (Laws) से मुक्त है, परे है, उच्च है और उन पर उसका नियंत्रण है।

उसके ज्ञान के लिए तेरी बुद्धि काम नहीं कर सकती, यह तेरी बुद्धि प्रकृति का एक भाग है, यह कर्तार को नहीं जान सकती। यदि तुझे उसे जानना है तो हमारी विद्या में आ। फिर सतगुरू 'विस्मय' का ढंग बताते हैं, जिसके द्वारा प्रभु को लखा जाता है। जिसके द्वारा कर्तार का अनुभव साक्षी ढंग (Subjective Method) द्वारा प्राप्त होता है, विस्मय अवस्था को समझने के लिए हम एक उदाहरण एवं व्यवहार का प्रयोग बताते हैं। जब भी आप कोई सुन्दर पदार्थ एकाएक देखें, उस समय बेसुधी की एक झलक-सी पड़ती है, जो कि अल्पकालीन है, मानो उसी क्षण मन की शक्ति, सोचने, जानने, प्रतीत आदि की–रुक जाती है। उस समय क्या होता है? उस समय अंतस अनन्त से टकराता है, ठोकर खाते ही आप फिर पीछे हटता है तो शीघ्र फिर से काम करती है और कहती है 'वाह! वाह!' और वाह वाह कहकर और कुछ भी नहीं बता सकती। पर उस डुबकी का अनुभव किसी 'स्वाद की स्मृति' में प्रतीत करती है, जो आपे को अनन्त में मिला था और जिसका स्पर्श आपे ने बुद्धि को आकर लगाया था। गुरू जी बताते हैं कि अपना विचार सोच से, जो प्रकृति का एक भाग है, ऊँचा उठा और विस्मय में आ, विस्मय तुझे अन्दर के आपे की ओर ले जायेगा, हाँ इस प्रकार अपने अन्दर आकर, अपने अंतस में टिककर, अन्दर से जब विस्मय से लीनता में जायेगा तो तुझे अनन्त के स्पर्श का तजुर्बा प्राप्त हो जायेगा। यदि तू इसका

---

१. बलिहारी कुदरति वसिआ॥
पुनः इहु जगु सचै की है कोठरी सचे का विचि वासु॥ [वार आसा म: १]

ढंग सीखना चाहता है तो स्मरण में आ, जिस द्वारा लौ लगेगी। इस लौ में 'अनन्त' के स्पर्श के हिलोर आया करेंगे। जब तुझे कर्तार की सूझ हो जायेगी, तो फिर तुझे दृष्टमान के पदार्थों में भी उसके विस्मय की झलक दिखाई पड़ेगी। जैसे लोग संतरे में संतरा देखते हैं, पर हे विज्ञानवेत्ता! तुझे इसमें (साइट्रिक ऐसिड) नींबू का खट्टापन बैठा हुआ दीख पड़ता है? संतरे में से नीबू का खट्टा अलग करके देखने के लिए रसायण विद्या की आवश्यकता है। व्यापक वाहिगुरू की झलक के लिये पहिले स्तुति श्लाघा और नाम की अनुभवी विद्या की जरूरत है। सारांश यह कि श्री गुरू ग्रन्थ जी में गुरू जी इस विद्या की केवल समस्या मात्र ही नहीं देते, बल्कि अमली तजुर्बे में आने वाले उसूल भी बताते हैं, जिनके विस्तार की यहाँ आवश्यकता नहीं। मृत्यु के पश्चात जीव के रहने के बारे में सतगुरू जी स्पष्ट रूप से पता देते हैं। पश्चिम में भी अब खोज पड़ताल इस ओर रुख कर रही है और कई बड़े विज्ञानवेत्ता भी इसके अस्तित्व के बारे में पुस्तकों में लिखा रहे हैं।

अत: गुरू नानक देव जी के अनुभव को अपने 'सत्य' के आधार पर होने के कारण ज्यों का त्यों जगत आधार होने का अचल पद प्राप्त है। पाँच शताब्दियों में दर्शन, सामाजिक विद्या एवं विज्ञान में बहुत से परिवर्तन आए हैं, परन्तु उनका अनुभव ज्यों का त्यों सच्च पर टिका हुआ नवीनतम खड़ा है। सतगुरू नानक का अनुभव सर्वकालीन है और गुरू नानक सर्वकालीन सतगुरू हैं।

अत: सतगुरू जी ने पदार्थक विद्या एवं आत्म विद्या के स्थान स्पष्ट रूप से बताए हैं, जो दीखता भास्ता हुआ जाना जाता है, विचार सहित सभी प्रकृति है, विज्ञान एवं विद्या को इसी की खोज करनी है, यह करे। सतगुरू स्वयं इसके बारे में ठीक विचार प्रकट कर गए हैं और गलत विचारों को काटकर मानो अपनी नींव डाल गए हैं, पर साथ ही क्ष्सकी यह भूल दूर कर गए हैं कि यह विद्या कर्तार की विद्या को जान सके। मनुष्य की बुद्धि को उन्होंने 'प्रकृति' का भाग बताया है, यह कर्तार को वैसे नहीं जान सकती, जैसे कि वह दृष्टमान को जान सकती है। कर्तार को जानना दृष्टा का अनुभव करने के तुल्य है, जैसे दृष्टि द्वारा जगत को देखा जाता है, पर दृष्टि को दृष्टमान करके अन्य दृष्टमान पदार्थों की भाँति नहीं देखा जा सकता। दृष्टि को दृष्टापन के रंग में लखा जाता है। अत: सर्वदृष्टों वाहिगुरू को जानने के लिए उनका बताया हुआ व्यवहारिक ढंग स्तुति स्मरण आदि को धारण कीजिए और लौ में जाइए। वहाँ 'सिद्ध एवं सुध' एक अन्य बुद्धि चमक दिखाएगी; जिसके द्वारा आपे में आपे का दृष्टा स्वरूप, साक्षी स्वरूप, दृष्टा, ज्ञाता रूप का अनुभव होता है और शिक्षित अथवा अशिक्षित को अन्तस का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यह ज्ञान दृष्टमान ढंग का नहीं। यों गुरू नानक के बताये हुए विचार मण्डल में अन्तरंग एवं बहुरंग विद्या हाथों हाथ चलती है और आपस में टकराती नहीं।

४. गीत[१]

[माता तृप्ता जी की एक पड़ासन बाहर से तेजी से आई और कहने लगी]

अरी माता तृप्ता! जाकर पुत्र को जगा। वह पाँव पर पाँव रखकर जाल की घनी छाया में सो रहा है। उसकी भैंसें खेत में चली गई हैं और खेत को चाव से खा रही हैं।

माता तृप्ता (दासी से)--अरी दौलते! भागकर जा और जाकर नानक को जगा दे। शीघ्रता से जाकर उसे जगा दे, कहीं, हमें हर्जाना न भरना पड़ जाये।

दीदी नानकी (माँ से)--भाई प्रभु के रंग में रांता है, वह सो नहीं रहा, मैं बलिहारी जाती हूँ। हे माँ! उस सौन्दर्य का प्रभु स्वयं रक्षक है, विघ्न का तो कोई स्थान नहीं।

(दौलतां दासी से)--अरी दौलते! तू भय से मत भाग। घबड़ाकर मत भाग! भाई को उसके प्यारे से मत बिछोड़, मिले हुओं में अन्तर मत डाल। तोड़ना तो सहल है पर जोड़ना कठिन है, मिले हुओं का मिलाप बना रहे। भाई को छेड़ना मत, केवल तू देखकर आ, जाकर सच्ची खबर ला।

(दौलतां वापिस आकर)--रायबुलार के पास भीड़ हुई है, उसकी कचहिरी के स्थान पर लोग एकत्र हैं। नानक भी वहाँ है और खेत का स्वामी भी है, वह कृषक न्याय माँग रहा है। राय के दूत देखकर आये हैं, कहते हैं, 'राय जी! बलिहारी हैं, खेत हरा भरा लहलहा रहा है, वहाँ पर तो तृण का भी नुकसान नहीं हुआ। शिकायत भी झूठी है और कृषक भी झूठा है, 'हे परगने के राजा, तू सुन'। कृषक ने कहा, 'भैंसों के बड़े चाव से भरपेट खाया है, पर हे राय मुझे लगता है कि नानक कोई अवतार है'। तब राय ने नानक की ओर देखा और नानक ने यह वचन कहे, 'प्रभु स्वयं प्रतिपाल करता है और वह हरि राजा स्वयं पैज रखता है। हे राय जी! यदि तुम उसके हो जाओ, तो वह भी तेरा हो जायेगा।'

❑ ❑

१. यहाँ पर गीत का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है।

९५ सबसे बड़ा सतगुरू नानक

(सभते वडा सतगुरू नानक)

"सभ ते वडा सतिगुरू नानक जिनि कल राखी मेरी"॥

काफी समय की बात है (लगभग १९०५ ई० में) एक विवाह के समय स्वर्गवासी सन्त सवाया सिंघ जी हमारे घर आये थे, सत्संग की बातें करते हुए आपने कहा, 'गुरू नानक देव जी पर थोड़ी सी दया किया कीजिए' उनका यह वाक्य सुनकर सभी चौंक उठे, पर वह आप ही किसी के कुछ पूछने से पहले बोल उठे और कहने लगे कि हैरान मत होवो, मैंने अपमान के वाक्य नहीं कहे, पर सृष्टि के लाभ के लिए अत्यन्त आवश्यक वाक्य कहे हैं जो सतगुरू के प्रति सत्कारपूर्ण हैं। देखिए एक डॉक्टर है, जो प्रतिदिन अनेकों रोगियों की चिकित्सा करता है, अब यदि प्रत्येक रोगी डॉक्टर के कहे अनुसार ठीक समय पर दवा खाता है, उसकी बताई हुई खुराक खाता है और हर तरह से पथ्य परहेज रखता है, तो वह शीघ्र ही ठीक हो जाएगा।

इसी तरह कोई रोगी डॉक्टर का जितना कम समय लेता है, उतना ही डॉक्टर बहुत से रोगियों को मदद दे सकता है। यों डॉक्टर अपने कर्तव्य को अधिक रूप से पूरा कर सकता है। दूसरी ओर सोचिए कि वह एक रोगी है जो परहेज नहीं रखता, दवा दारू ठीक तरह से नहीं खाता, वह जल्दी ठीक नहीं होता, उस पर डॉक्टर को अधिक समय व्यय करना पड़ता है और इस तरह वह डॉक्टर का समय व्यर्थ ही खर्च करता है और इस समय के यों ही बरबाद होने के कारण डॉक्टर कम रोगियों की देखभाल कर सकता है। अब बताइए परहेज रखने वाला रोगी डॉक्टर पर कृपा करता है अथवा नहीं? जो डॉक्टर का समय बचाता है जिसे डॉक्टर अन्य रोगियों पर लगता है? अब इसी दृष्टान्त को लीजिए और गुरू नानक देव जी के चरणों पर घटाइए। आप सच्चे डॉक्टर हैं और उनका विरद हैं:–

"सगल समूह लै उधरे नानक...।"

सोचिए, जिस सच्चे वैद्य का यह विरद है कि उसने सबका उद्धार करना है, उसके सामने कितना भारी काम पड़ा है। हम उस सच्चे वैद्य के एक रोगी की भाँति हैं, हमें उसने 'संसार रोगी' समझकर 'नाम औषधि' दी है। अब यदि हम इस औषधि को पथ्य परहेज रखकर खाते हैं तो यह बात निश्चित है कि हम शीघ्र ही स्वस्थ होंगे। यदि हम पथ्य परहेज़ नहीं करते तो रोग काफी समय के पश्चात हटेगा और गुरू नानक देव जी, जो कि हमें स्वस्थ करने का प्रण कर चुके हैं, हमें अपने चिकित्सालय से निकालेंगे तो नहीं, हमारे साथ और प्रयत्न करेंगे, यों हम पर अधिक समय लगायेंगे। अत: हम अपने लिये फालतू समय लेकर गुरू जी के सृष्टि-उद्धार के काम में बाधा डालेंगे। वे सबका उद्धार करने का

प्रण कर चुके हैं, इसलिए अधिक समय तक चिकित्सा में लगे रहेंगे। पर यदि हम गुरू नानक जी का कम से कम समय लें तो वे उस समय को दूसरों के सुधार में लगाकर अपने कार्यों को सुगमता से और शीघ्रता से करेंगे। अब बताइए हम उनके समय बचाने में उन पर कृपा नहीं करते? यह कहकर वे इस तरह मुस्कराये जिस तरह लाड़ले भक्त लाड़मय प्यार में मुस्कराया करते हैं।

पाठकों को भूल न लगे, सिक्ख मत में पूर्ण भरोसा रखने वाले पूर्ण संत सवाया सिंघ जी का तात्पर्य यह था कि गुरू नानक सच्चा वैद्य है और इतना बड़ा है कि सारे जगत की मुक्ति उनको ही करनी है, हाँ, 'सभ ते वडा सतिगुरू नानक', है गुरूवाणी यही कहती है और यही प्रत्येक सिक्ख का विश्वास है।

संसार में अलग-अलग समय पर और अलग-अलग देशों में कई महापुरुष आये हैं और अपने अपने प्रकाश एवं आवश्यकतानुसार मार्ग दिखा गये हैं। सबसे अंत में श्री गुरू नानक, गुरू गोबिंद सिंघ जी आये। प्राय: पूछा जाता है कि गुरू नानक अपने से पहले आये महापुरुषों से बड़े हैं एवं छोटे? यदि गुरूवाणी से पूछा जाय तो इसका उत्तर मिलता है:-

"सभ ते वडा सतिगुरू नानक"।

अदेश में तो वाहिगुरू ज्योति स्वरूप की शिक्षक ज्योति 'गुरू ज्योति' है। संसार में जितने शिक्षक आये हैं सभी उसी ज्योति की आज्ञानुसार आये हैं, जिसका नाम 'गुरू' है जो अदेश से महापुरुषों में 'उद्धार करने' की शक्ति भरकर भेजती एवं नेतृत्व करती है। वह 'गुरू ज्योति' जब जगत में आप आकर प्रकट हुई तो 'गुरू' पद के साथ माता-पिता के दिये नाम 'नानक' के साथ हम में प्रसिद्ध हुई, परन्तु संसार में उनकी कथनी, कर्तव्य और असली दशा से उनकी बड़ाई कैसे प्रतीत होती है, हमें सत्कार भरे विचार की आवश्यकता है, जिसके लिये हम हरेक महापुरुष के गुणों का विचार करते हैं:-

'जे गुण होवनि साजना मिलि साझ करीजै॥
साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगुण चलीऐ॥ [सूही छंत म: १]

इस नियमानुसार हमें आज मानवीय दृष्टि से देखना है कि 'सभ ते वडा सतिगुरू नानकु' कैसे सिद्ध होता है[१]:-

१. गुरू नानक देव जी और बुद्ध

१. संसार में सबसे अधिक प्राणियों के सिरताज इस समय भी बुद्ध जी हैं। आप लगभग अढ़ाई हजार वर्ष पूर्ण भारत में प्रकट हुए थे। आपका इखलाक अर्थात सदाचारी जीवन इतना ऊँचा है कि विचारवानों का विचार है कि ईसाई मत तथा अन्य बड़े-बड़े धर्मों को बुद्ध जी के धर्म से रोशनी मिली है। बुद्ध जी के उपासक चाहे हिन्दुस्तान में अब इतने

---

१. गुरू अर्जुन जी ने बसन्त राग में सभी भक्तों के गुण एवं व्यवहार बताते हुए अन्त में कहा है- 'गुर नानक देव गोविन्द रूप' जिसके द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि सभी भक्तों की अपेक्षा गुरू जी को उच्च एवं विलक्षण करके बता रहे हैं।

कम हैं कि मानो उनकी संख्या न होने के बराबर है[१] पर हिन्दुस्तान को इस बात का गौरव है कि उन्होंने ऐसे ऊँचे सुधारक को जन्म दिया, जिन्होंने सदाचार का पाठ पढ़ाया। कर्म सिद्धान्त के बारे में जितना इन्होंने स्पष्ट बताया है, वह बहुत ही ऊँचा है, पर यहाँ पर ही समाप्ति है। इनके मतानुसार:–

"जो ठीक मार्ग (अर्थात् बुद्ध मत) पर चलता है उसके लक्षण ये हैं:–

ईमानदारी में वह प्रसन्न है, जिन बातों का त्याग करना है उनके तनिक भी करने में वह खतरा देखता है। वह सदाचार के उसूलों में अपने आपको सुशिक्षित करता है। वह अपने वचनों एवं करनी में पवित्रता के साथ अपने आपको घेरता है। वह अपनी आजीविका आरम्भ से ही पवित्र ढंग से चलाता है, नेकी उसका आचरण है, उसकी इन्द्रियों के किवाड़ों पर पहरा रहता है। अपने आप में विचारवान और संयम वाला होता है, वह आरम्भ से ही प्रसन्न है"। [गास: अ: बु: पं: १२१–१२२]

इसका अर्थ यह है:–सदाचार की सभी आज्ञा, वचनों एवं कर्मों में पवित्रता, पाँचों इन्द्रियों के द्वार पर रखवाली और मत पर नियन्त्रण होना, यही पूर्ण बुद्ध धर्म है।

यह सुन्दर सदाचार है; इखलाक है, मन को उन बातों से जो इसे मैला करती हैं मोड़ना और रोकना है। इससे गुरू नानक देव जी को कोई असहमति नहीं। शुभ कर्मों एवं सदाचार की शिक्षा गुरू नानक देव जी की बुद्ध की अपेक्षा कम नहीं, बल्कि अधिक ही चमकती है। सतगुरू जी ने कहा है:–

'मंदा (बुरा) मूल न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ'॥ [वार आसा म: १]

आसा दी वार, पट्टी, दखणी ओअंकार, सारांश यह है कि सारी वाणी मे आचरण के उच्चादर्श आते हैं और अंत में कह दिया है[२] "हऊमैं करतिआ नह सुखु होइ"। सारा आचरण सिखलाकर बता दिया कि यदि इसमें 'अहं' है तो सुख इसका फल नहीं होगा। अब सभी शुभ कार्य अहं के आश्रय होते हैं। अहं सुखदाई नहीं, अत: केवल शुभ कर्म ही सुखदाई नहीं। इसलिये सदाचार के ऊपर और आचरण की आत्मा, 'परमेश्वर' के साथ संबंध बताया और 'नाम' उसका साधन बताया। यों आचरण की शिक्षा से आगे रूहानी मण्डल में प्रवेश का मार्ग बताया।

कर्म की पवित्रता के साथ 'गुरू' बताता है कि केवल यही कुछ काफी नहीं है, हमारे भीतर भी आत्मा है और आत्मा की उन्नति की आवश्यकता है, हम में केवल 'बुद्धि' ही नहीं, पर इससे आगे कुछ और भी है, हम में केवल विचार ही नहीं, पर उच्च वलवले भी हैं।

---

१. हिन्दू जाति ने हिन्दू में से बुद्ध धर्म को बहुत निर्दयता से समाप्त किया, पर अब फिर बौद्ध बढ़ने लगे हैं।

२. सदाचार के विचार में गुरूवाणी में तो यहाँ तक वाक्य आये हैं–

'नर अचेत पाप ते डरु रे।'

अचेत पापों की ओर से भी डरना कि कहीं ये ही हम से न होते रहें ओर पता भी न लगे। मन का कितना अधिक ध्यान कर्मों की पवित्रता की ओर दिखाया है कि अचेत पाप भी न किए जायें। कितनी उच्च एवं स्वच्छ पवित्रता का आदर्श है।

मस्तिष्क है और हृदय भी है। हाँ हम में 'विस्मय' भी उत्पन्न होता है। केवल पाँच इन्द्रियों के रस ही हम में नहीं है, जिन्होंने हमें बंदी बना रखा है, एक अन्य रस भी है जो इन पाँच से मुक्त करा देता है। यह रस उस समय उत्पन्न होता है जिस समय आत्मा किसी तरह आपे में एकाग्र होती है और किसी उच्च (अपने पिछले महान रस रूप) जीवन में डुबकी लगाती है। इस आत्मिक जीवन का सर्वोच्च आदर्श एवं सहल से सहल ढंग सतगुरू जी ने सिखाया है कि पवित्र होते हुए शरीर, मन एवं आत्मा के साथ 'अपने अंतस के जीवित जागृत' को 'असीम' के साथ किस प्रकार और किस विधि निरंतर लगाव में रखना है कि जिसके साथ यह उससे जीवन दाता, रसदाता, आनन्ददायक लहरें पाकर प्रफुल्लित, खिलता और मस्त होता रहे।

२. बुद्ध जी ने 'वाहिगुरू' जी की ओर से चुप्पी धारण की, सतगुरू नानक ने न केवल चुप्पी ही खोली, पर उस प्रियतम की कोयल की कूक की भाँति ईश्वरीय राग में गायन भी किया। गिनती के लिये नहीं, लेखा बताने के लिये नहीं, निरे हिसाब दार्शनिकों और निरे लेखा करने वाले दार्शनिकों की भाँति संख्या बताने के लिये नहीं और न ही हिसाब में रहकर टोहने वाले आस्तिक की भाँति ही। हाँ वे बोले, वे बोले अचल निश्चय में, प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न हुए भरोसे एवं निश्चय में और साथ ही भरे हुए प्यार एवं उमड़ रहे प्रेम में। हाँ वे अप्रत्यक्ष एवं प्रत्यक्ष दर्शन में गाये और उन्होंने दैवी संगीत गाये:–

"सरब जोति तेरी पसरि रही।
जह जह देखा तह नरहरी"।।[१] [सूही म: १]

यों मानव के बुद्धि वाले एवं अकली हिस्से को उच्च आचरण देते हुए "उच्च वलवलों तरंगो वाले भाग" को आपने सम्पूर्ण आत्मिक आधार देकर मनुष्य की सम्पूर्ण आवश्यकता पूरी की। ठीक, आचरण की पवित्रता प्रदान की, पर साथ अंतम को भक्ति एवं प्यार भी प्रदान किया। यों मानव माया एवं तृष्णा के हाथों मुक्त होकर वास्तविक निर्वाण में पहुँचा। जिसका रूप गुरू जी ने बताया है कि जीव तत्त्व वाहिगुरू तत्त्व में जा मिला:–

तंतै कऊ परम तंतु मिलाइआ नानक सरणि तुमारी"। [सो: म: १]

३. पवित्र मन वाले बुद्ध जी जिसे 'तथगता' अर्थात पूर्ण, संपूर्ण कहते थे, पर गुरू नानक देव की आत्मिकता उनसे कहलवाती थी कि केवल आचरण में बिल्कुल संपूर्ण होना इस शरीर एवं मन के लिए असम्भव है। रूहानियत के रस के बिना, विस्मय में निवास किए बिना, निरंतर बेअन्त के अंग से लगे बिना संपूर्णता कहाँ? आचरण ऊँचा करके, अहं को बीच में से निकालो, पर प्रेम भक्ति द्वारा अंदर से सदैव साईं के साथ जुड़कर जीवन व्यतीत करो। गुरू जी ने आज्ञा की, ठीक कहा, 'विणु गुण कीते भगति न होइ'। पर साथ

१. 'ब्रह्म' के प्रश्न पर बुद्ध जी ने एक बार 'किसी ने देखा है'? कहकर जिज्ञासु को चुप कराया, पर देखिए देखने वाले गुरू नानक साक्षात दर्शन का डंका बजा रहे हैं। पंचम गुरू (श्री अर्जुन देव) जी का कथन है:–
"बेद कतेब संसार हभाहूँ बाहरा।।
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा"।। [आसा म: ५]

ही बताया, 'सभ गुण तेरे मैं नाही कोइ"। हाँ साईं के साथ संयोग होने से ही संपूर्ण अहं छूटती है। इसलिये अनेक बार सतगुरू जी ने अपने आपको नीचा कहा है, यह नीच कहना अपने आपको किसी गणना में नीच कहने के तुल्य नहीं, यह अहं की निवृत्ति है।

जिसका पता नीचे लिखे आपके वाक्य से चलता है:-

"होंदा फड़ीअगु नानक जाणु॥
ना हउ ना मै जूनी पाणु[१]**॥** [वार मलार म: १]

अहं से निकले हुए आत्मरंग में गहरे रंग से रंगे हुए और रंग रहे, गुरू नानक ने अपने आपको नीच, कहने का कारण अहं का अभाव बताया है। गुरू नानक में रंचक मात्र भी अहं नहीं, लेशमात्र भी अविद्या नहीं। अविद्या का अंश बड़े-बड़े बीत रागों में रहता है। इससे पूर्ण मुक्ति महान कठिन है। यही अपने आपको 'पूर्ण' पद आदि कहलाता है। पर इससे पूर्ण रूप से स्वतंत्र गुरू नानक देव जी का कथन है:-

होंदा फड़ीअगु नानक जाणु॥
ना हउ ना मै जूनी पाणु॥" [म: अ: म: १]

जो 'मैं हूँ' की प्रतीत मात्र में है अर्थात् जो अहं में है, वह पकड़ा ही जा सकता है, मैं इसमें नहीं हूँ।

(आगे चलकर इस पर और विचार आयेगा)

यदि भीतर से विचार करें तो बुद्ध का अर्थ है 'जिसने शिक्षा प्राप्त करके प्रकाश प्राप्त किया है', पर 'गुरू' का अर्थ है, 'प्रकाश का दाता'। इतिहास में भी यही आया है, 'बुद्ध जी' शाक्य मुनि थे, उन्होंने परिश्रम करके 'बुधि' प्रकाश प्राप्त किया था, पर गुरू नानक देव जी जन्म से ही गुरू=प्रकाश दाता थे[२]। भाई गुरुदास जी लिखते हैं, 'पहिलां बाबे पाइआ बखस दर पिछों दे फिरि घाल कमाई"। 'जपुजी' नामक वाणी में बुद्ध जी का ठिकाना ज्ञानखंड (ज्ञान की दशा) में बताया है, यथा:-

"केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस"। [जपुजी]

---

१. एक स्थान पर आपने पता दिया है:-

"जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस"।

गुरू नानक जी अपने लिए जो नम्रता का स्थान बताते हैं, वहाँ पर वाहिगुरू की कृपादृष्टि का निवास होता है। दया दृष्टि का निवास अहं के अभाव वाले स्थान पर होता है।

२. देहरादून वाले डाक्टर खुदादाद जी कहा करते थे-'Buddha attained Buddhahood, Guru Nanak was born Buddha,' अर्थात् बुद्ध जी ने बुद्ध पद प्राप्त किया, गुरू नानक देव ने जन्म से ही बुद्ध पद प्राप्त कर लिया था। जितने भक्त, ऋषि, मुनि, हादी, पैगम्बर अवतार आये, सभी ने संसार में आकर शिक्षा प्राप्त की, उपदेश लिए और फिर कर्म करके उच्च पद पर पहुँचे, परन्तु गुरू नानक जी ने बाल्यावस्था से ही उस ज्ञान का, जो आप धुर से लाए थे, प्रकाश करना आरम्भ कर दिया और वाणी उच्चारण करनी आरम्भ कर दी, जिससे स्पष्ट है कि गुरू जी ने अवतार ही प्रकाश देने के लिए धारण किया था।

२. गुरू नानक देव जी और ईसा जी

१. ईसा जी बुद्ध जी के बाद संसार में आये, बुद्ध के पश्चात् संख्या की दृष्टि से इनके उपासकों का दूसरा स्थान है। आप तीन वर्ष जगत में बोले, आचरण सिखाया, लगभग बुद्ध जी की भाँति, कर्म के सिद्धान्त बड़े अच्छे ढंग द्वारा 'पड़ोसी से अपने जैसा प्यार करो' के रंग में सिखाया, बुराई के बदले में नेकी करनी सिखाई, ईश्वर भी बताया जैसे पहले सेमटिक (Semitic) अवतार इब्राहीम मूसा आदि सिखाकर गये थे। 'निश्चय' (Faith) का उपदेश भी दिया, बाद के सेमटिक[१] अवतारों की अपेक्षा 'निश्चय' के प्रकाश में उच्च मत प्रदान किया।

गुरू नानक देव जी, लगभग १५०० वर्ष पश्चात आये। आचरणिक जीवन में गुरू नानक ने उच्चादर्श वाले बुद्ध से भी तेज़ प्रकाश डाला है, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं। ईसा जी के मत में ईश्वर है पर वह व्यक्ति के किये हुए कर्मों का पीढ़ियों तक बदला लेने वाला एक गैरती या अनखीला मालिक है। परन्तु गुरू नानक के मतानुसार उस प्रियतम अनंत एवं असीम के लिये इस तरह का बदला लेने वाली भावना का अभाव है:–

अहिकरु करे सु अहिकरु पाए।
कोई न पकड़ीऐ किसै थाइ॥ [आ: म: ५]

जो हाथ कोई कर्म करे, वही उसका फल भुगते, यह आचरण सम्बन्धी आदर्श कितना ऊँचा है, बड़े सतगुरू जी ने सच्चा न्याय बताया है। फिर देखिये पवित्रता का आदर्श अचेत पापों से बचने का कितना ऊँचा है।

२. कर्म मुक्ति के लिए असमर्थ है, ईसा जी ने प्रतिपादन किया है और विश्वास इस बात पर सिखाया है कि मैं सब जीवों के पापों के बदले सूली पर चढ़ता हूँ, मुझ पर निश्चय रखो, मैं मुक्त करूँगा। यह निश्चय पौलूस रसूल ने ईसाई मत का ऊँचा नियम बताया है। गुरू नानक ने 'निश्चय' को माना है। पर परमेश्वर जी का अस्तित्व और उसके प्यार के निश्चय को निश्चय माना है। जैसे एक के पाप का बदला उसकी निर्दोष संतान से नहीं माना वैसे ही किसी के पापों की जगह किसी के दण्ड पाकर तरने को नहीं माना। हाँ गुरू जी ने निश्चय सिखाया, पर निश्चय उस अनन्त में, उसके अस्तित्व एवं प्यार में सिखाया इस निश्चय से तत्त्व ज्ञान, पूर्ण पद वाली आगे की प्राप्ति बताई। पंचम गुरू ने गुरू नानक देव के मन्तव्य को इस प्रकार बताया है:–

जाकै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ॥
ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ॥ [सुखमनी म: ५]

जब निश्चय आ गया तब प्रभु की दया पूरी हो गई, निरंतर सुरत उसमें लग गई, यह लगे रहना एक दया हो गई है। यह प्रत्यक्ष अनुकंपा है, उद्धार अनुग्रह नहीं, आने वाला नहीं, प्रत्यक्ष अनुग्रह।

३. ईसा जी ने प्रार्थना सिखाई, मनुष्य के मन के वलवलों को प्रीतिभोज दिया, पर प्रार्थना आठवें दिन रविवार को आई। सात दिन तो सांसारिक धन्धे ले गये, आठवें दिन

१. इब्रानी अरबी, असिरियिन आदि जातियाँ।

प्रार्थना की बारी आई। गुरू नानक देव ने आठवें दिन को पवित्र और पृथक करने के स्थान पर, आठों पहर में से सवेरे का पहर पवित्र बताया और साईं के साथ एकाग्र होने का ढंग सिखाया है और कहा है:–

अंमित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु[१]॥ [जपुजी]

पुनः– **सबाही सालाह जिनी धिआइआ इक मनि॥** [वार माझ म: १]

पर यहीं पर ही समाप्ति नहीं की, बल्कि आज्ञा की कि अमृत वेला तो नाम जपने अरं प्रभु की स्तुति परिपक्व करो, जो दिन का आरम्भ है, पर आठवें पहर ही नहीं, बल्कि:–

सती पहरी सतु भला बहीअै पड़िआ पासि॥
ओथै पापु पुंनु बीचारीअै कूड़ै घटै रासि॥ [माझ की वार म: १]

फिर गुरू जी ने आज्ञा दी:–

'सभे वेला वखत सभि, जे अठी भउ होइ।।[२]

हाँ जी काम-काज करो, गृहस्थी रहो, पर भाई अंतस के जीवन कण के किनारे को निरंतर अरदास में अपने स्रोत, चश्में अनंत (वाहिगुरू) के साथ लगाये रखो, अनन्त के साथ वह संयोग रखो जो कभी न हटे। निरंतर संयोग रखो, निरंतर अरदास करो, गुरू जी ने कहा है:–

अनदिनु जपतु रहउ तेरी सरणाइ॥ (गऊड़ी म: १)

कहा ही नहीं, गुरू नानक ने 'बलिहारी गुरू आपणे दिऊहाड़ी सदवार' होकर दिखाया, करके बताया। गुरू नानक का बहत्तर वर्ष का जीवन निरंतर अरदास का जीवन है। फिर गुरू नानक ने लहणा को गुरू बनाकर दिखाया, जिसमें क्षण प्रति क्षण ठाकुर का नमस्कार बस गया[३]। भाई बुड्ढ़ा, घेहो, सैदा, मरदान, रायबुलार, दीदी नानकी, मनसुख, भगीरथ, शिवनाभ, झंडा बाढ़ी, लालो, प्यारे लाल बनाकर दिखाये जो निरंतर (वाहिगुरू) अनंत के साथ सुरत लगा कर, लौ लगाए रखते, संसार के राज से लेकर कीले घड़ने तक के कामों को भी पूरा करते थे। ये जगत के काम भी करते थे पर सदैव प्रभु के साथ प्रतिक्षण को सफल करते थे।[४]

---

१. अमृत वेला में ईश्वर के गुण चेते करने में लगे और उसका नाम स्मरण करते-करते प्रेम में जीवित हो उठे।

२. तीसरे गुरू जी ने सिरीराग में कहा है, 'जे वेला वखत वीचारीअै ता कितु वेला भगति होइ'। अर्थात् आठ पहर अन्दर से लगे रहकर सफल करो।

३. पीछे जा चुके प्रसंगों में लौ लगने के समाचार आ चुके हैं, विशेष रूप से 'भाई झण्डावाढ़ी' की कथा पढ़िए।

४. 'ऐमरसन' अमेरिका में एक सुप्रसिद्ध सज्जन पुरुष हुए हैं। आपने इस अन्तःकरण के असीम प्रभु के संयोग वाले रस का कुछ अनुभव किया है, पर इसी बात पर शोर मचाते हैं, 'बताइये यह लगाव किस तरह निरन्तर हो जाए'।। गुरू नानक ने यह लगाव निरन्तर करके दिखाया है। काश! ऐमरसन को गुरू नानक का पता चल जाता। ऐमरसन, कारलाईल और गरू जी के उपदेशों द्वारा प्रकाश लेकर यूरोप,

४. ईसा जी ने जगत से प्यार किया, जगत को बचाने के लिए आप बोले। आपने पापियों के लिए यों कहा:–

'वार द्वार मैं हूँ, मेरे द्वारा जो कोई अन्दर जायेगा, वह मुक्त होगा'।

यह 'मैं एवं मेरे' उस उच्च सृष्टि प्यार के समय दो प्रतिबिम्ब साथ-साथ चलते गये। हिन्द के बुद्धिमान पुरुष इसे लेश अविद्या कहते हैं जो महापुरुषों के साथ भी परछाई की भाँति रहती है, पर देखिए गुरू नानक भी सृष्टि के प्रेम में आया, उसने भी सृष्टि के भले के लिए सोचा, पर क्या किया? वाहिगुरू के सामने अरदास की, कहा:–

'जेते जीअ तेते सभि तेरे विणु सेवा फलु किसै नाही'॥

हे वाहिगुरू सारे जीव तेरे हैं, पर सेवा के बिना सफल नहीं हो रहे। यह देखकर अरदास करते है:–

कहै नानकु जीवालै जीआ जह भावै तह राखु तुही। [आसा म: १]

अर्थात्–जीवों को जीवित कर (हे वाहिगुरू) जैसे तुझे अच्छा लगे वैसे ही तू इनकी रक्षा कर।

इस अरदास में गुरू जी ने अहं को नहीं आने दिया। वाहिगुरू पर ही सब कुछ छोड़ दिया है कि जैसे तू इसकी रक्षा कर।

इसी विचार को फिर तीसरे गुरू जी ने इस प्रकार उच्चारण किया:–

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा (कृपा) धारि॥

जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि॥ [बिलावल वार म: ३]

हे वाहिगुरू! सृष्टि जल रही है, कृपा करके क्षमा कर, उद्धार कर, पर मैं नहीं कहता कि मेरे किसी प्रयत्न से, क्योंकि मैं तो हूँ ही नहीं, 'ना हउ ना मैं जूनी पाणु'। तू रक्षा कर और जिस ढंग से तेरी इच्छा हो, रक्षा कर, पर हे दाता! रक्षा कर। यह पूर्ण निष्काम प्रेम का आदर्श है। इस अरदास वेले; 'मैं मेरी' (अहं) की लेश मात्र अविद्या परछाई बनकर साथ नहीं गई।

५. ईसा जी ने, कहा जाता है कि सृष्टि की भलाई के लिये सूली पर बलिदान दे दिया। ठीक भी है कि कट्टड़पंथियों (शरहवालों) के हाथों 'निश्चय एवं प्यार' के उपदेश देने के लिए आप ने सूली सहन की। संसार के मृतक बुद्धिमान शरह के खोखले बोझा ढोने वाले, प्रेम हीन धर्मी, दिखावे के शुभकर्मी सदा प्यार वालों, परमेश्वर के भक्तों को सताते ही आये हैं, वैसे ही ईसा जी भी सूली पर चढ़ाये गये। सतगुरू नानक ने संसार की ओर से अनेकों सूलियाँ सहन कीं। सूली द्वारा तो मनुष्य एक बार मृत्यु प्राप्त कर लेता है, पर परमेश्वर के प्रेमियों को, भूखों को, बीस रूपयों का भोजन खिलाकर पिता की विपत्ति सहन करना, शिकायतें और तेज तमाचे सहन करना; फिर लोगों द्वारा कुराहीआ (उल्टे मार्ग

अमेरिका में नवीन विचारों के कई व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं, जैसे कि ट्राईन जे॰ ऐलन आदि। उन्होंने उनकी अनन्त की लहरें एवं गटे के विस्मय भरे उत्तम विचार लिखे हैं।

ट्राईन के निरन्तरता का उत्तम रीति के साथ वर्णन किया है। यदि इन लोगों को कभी गुरू नानक के विचार ठीक प्रकार से अनुदित होकर प्राप्त होते तो इनके अनेकों संशय निवृत हो जाते।

पर चलने वाला) कहलवाना, भूत एवं वैताल एवं दिवाना आदि, छुरे से भी तेज़ वाक्य सुनकर फिर कहने वालों का भला करना, रूहानियत के प्रचार के बदले इब्राहीम लोधी की कैद में पड़ना, बाबर की बेगार में आना, कौडे जैसे राक्षस तथा दुराचारी का उद्धार करने को जाना और उसके गर्म कड़ाह का कष्ट सहना, सृष्टि के फकीरों को बंदीखाने से छुड़ाने के लिये एक घोड़े के मूल्य के बदले दास बनकर बिक जाना, ये शारीरिक एवं मानसिक कष्ट थे जो ७१-७२ वर्ष की आपकी आयु को सूली का जीवन बना गये, पर आपकी बेअंत वाहिगुरू के साथ लगन, हरेक घड़ी की एकता, उन्हें इस प्रकार ऊँचा रखती थी कि कोई भी विपत्ति उन्हें एक क्षण के लिये भी घबराहट एवं अविश्वास में नहीं लाती थी। वे संसार की अग्नि में चलते थे, पर 'खुनक नाम खुदाइआ' के कारण आप कभी भी तपते नहीं थे, संसार ने वे सूलियाँ आपको दीं जिनसे आपको कहना ही पड़ा:-

नानक दुनीआ कैसी होई॥
सालकु मितु न रहिओ कोई॥
भाई बंधी हेतु चुकाइआ॥
दुनीआ कारणि दीनु गवाइआ॥ [सलोक वारां ते वधीक मः १]
जे को सतु करे सो छीजै तप घरि तपु न होई॥
जे को नाउ लए बदनावी कलि के लखण ऐई॥ [राः असः मः १]

देखिए सूली का जीवन प्रति पल व्यतीत करते-करते आप भरोसे एवं वाहिगुरू की निरंतर लग्न के सिंहासन पर विराजमान होकर बताते हैं:-

हरि सा मीतु नाही मै कोई॥
जिनि तनु मनु दीआ सुरति समोई॥
सरब जीआ प्रतिपालि समाले सो अंतरि दाना बीना हे॥१॥
गुरु सरवरु हम हँस पिआरे॥
सागर महि रतन लाल बहु सारे॥
मोती माणक हीरा हरि जसु
गावत मनु तनु भीना हे॥२॥ [मारू मः १]

यह 'गुरू नानक विश्वास' तथा गुरू नानक जीवन' है, उस बेअंत 'वास्तविकता', अकथनीय 'यथार्थ' तथा अगंम 'सच' में प्रति क्षण की 'टेक'-जीवित रसभरी एवं प्रेम भरी 'टेक'-गुरू नानक जीवन है, जो सूलियों को सुख की शैय्या बनाती रही और गुरू नानक के इस निरंतर प्रेम ने इस अरदास की वेला न आने दी कि गुरू नानक घबड़ा जाये और यह कहे कि मेरे सामने से विष का प्याला हटा ले। हर दुख सुख के समय उनकी यह अरदास रही:-

जिउ भावै तिउ रखु तूं मैं तुझ बिनु कवनु भतारु॥३॥ [सिरी रागु मः १]

पुनः- **नानक नामु न वीसरै जिउ भावै तिवै रजाइ॥** [सिरी रागु मः १]

३. श्री गुरू नानक देव जी और श्री राम-कृष्ण जी

१. ईसायियों की अपेक्षा संख्या में कम हिन्दू हैं। हमारे हिन्दू भाई श्री राम जी को १४ और कृष्ण जी को १६ कला सम्पन्न मानते हैं। अत: कृष्ण जी उनके मतानुसार अधिक आदर्श हैं। कई खोज करने वाले संदेह करते हैं कि न जाने कृष्ण जी सचमुच कभी हुए भी कि नहीं, पर हमें यहाँ इस चर्चा से कोई वास्ता नहीं। हमें श्री कृष्ण जी के आदर्श से प्रयोजन है। कृष्ण जी के नाम पर गीता नामक धर्म पुस्तक सदाचार एवं दर्शन की एक सत्कार योग स्मृति विद्यमान है और इसका निष्कर्ष 'धर्म' है। अपने धर्म पर परिपक्व रहना, उसके लिए भाई, चाचे, ताऊ, शिक्षक सभी का वध ही क्यों न हो जाये, चाहे इसका फल दुख हो एवं सुख, तू उस धर्म से, जो तेरा है, पीछे मत हट। मनुष्य का आदर्श जीवन यही है। गीता में कृष्ण जी ने योग, भक्ति, वेदान्त सभी प्रकार के उपदेश दिये हैं। सभी सिद्धान्त एक करके दिखाए हैं, विरोधी विचारों को मिलाकर दिखाया है और एक महान योग्यता वाला काम किया है। परन्तु मुख्य सिद्धान्त उसमें यह है कि 'धर्म मुख्य' है। कृष्ण जी में राजसी गुण भी विद्यमान थे, भक्ति के विचार भी थे, छ: शास्त्रों का ब्राह्मणी निष्कर्ष भी उनके पास था, पर उनका सर्वोच्च गुण एवं आदर्श 'धर्म' सर्वोच्च है।

२. रामचन्द्र जी की, गीता की भाँति कोई रचना हमारे पास नहीं है, पर पिता का वाक्य सत्य रहे, चाहे राज्याधिकार छिन जाए, पर यह धर्म पूर्ण हो। यह उनका आदर्श था। पत्नी हरी गई, चाहे वनमानसों से सहायता लेनी पड़े, चाहे बाली का वध करवाकर सेना इकट्ठी करनी पड़े, पर पत्नी को अवश्य ही मुक्त कराना है, यह परम धर्म है, इत्यादि। श्री राम के काम 'धर्म सर्वोत्तम' के ही नमूने हैं। राम जी में भक्ति भावना है, लोगों को आकर्षित करते हैं और उनसे प्यार भी करते हैं, पर माता-पिता की आज्ञा-पालन में भाईयों के साथ आदर्श का व्यवहार करते हैं, प्रजा का ठीक ढंग से पालन करते हैं, वे समस्त जीवन में धर्म का ही एक आदर्श हैं, पर धर्म की कुशलता कृष्ण जी में है, हाँ मर्यादा पुरुषोत्तम होने में श्री राम जी अगुआ हैं।

हमरे इन दोनों महापुरुषों का इकट्ठा वर्णन किया है, क्योंकि दोनों ही हिन्दू मण्डल के अवतार एवं आदर्श हैं। इस समय का हिन्दू धर्म इन दोनों केन्द्रों के इर्द गिर्द घूम रहा है, दोनों का आदर्श धर्म है।

धर्म का अर्थ:–धर्म पद का धातु 'धृ' से बनता है, अर्थ है:–पास होना, रखना, धारण करना, नियुक्त करना आदि।

(क) धर्म का अर्थ है:–किसी की वह वृत्ति जिसमें वह सदैव रहे, प्रकृति स्वभाव, जैसे आँख का धर्म है देखना। (ख) धर्म–जो सबको सहारा दे। (ग) शास्त्रोक्त वे कर्म जो परलोक के लिए किए जाएँ जैसे यज्ञ, व्रतादि। (ध) विधि पूर्वक कर्म काण्ड करने। (ङ) एक दूसरे को आपस के व्यवहार का उचित ढंग। वर्णाश्रम के लिये करने योग्य काम

१. गुरू अर्जुन देव जी कितना भयंकर बलिदान 'सहन किया' पर देखिए 'भीड़ पई चित अवर न आणी' और 'सुख सम्पट विच रैण विहाणी' की साक्षी भाई गुरुदास जी भर रहे हैं। नौवें गुरू जी तलवार का वार सहन किया, दशम गुरू जी ने खंजर सहन किया और प्रभु की आज्ञा में प्रसन्न रहे।

करना जैसे क्षत्रिय का धर्म है युद्ध करना। (च) परन्तु कुमारी ऐनीबीसेंट ने गीता के अंग्रेजी अनुवाद करने के समय धर्म का अर्थ ड्योटी (Duty) किया है। यूरोपीय भाषाओं में ड्यूटी का अर्थ केवल धर्म मात्र अथवा कर्तव्य मात्र नहीं बल्कि उनमें यह एक उच्चादर्श बन चुका है। ड्यूटी ही मानो उन लोगों का धर्म बन चुका है। गीता के शब्द धर्म ने ड्यूटी में अनुदित होकर पाश्चात्य वासियों पर गीता के अर्थ भाव का ऐसा अनुकूल प्रभाव डाला है कि जिसने गीता का मूल्य और भी बढ़ा दिया है। अब धर्म पद पर नया अर्थ उनमें ड्यूटी पद के आदर्श के साथ मिल जाने के कारण गीता का आदर्श हिन्दुओं में भी वही हो गया है जोकि पश्चिम मे ड्यूटी पद के साथ बंधा हुआ है। इसलिए अब उन्हीं अर्थों में इस आदर्श को लेकर हम चलते हैं। कृष्ण जी के धर्म का आदर्श गुरू नानक में अपनी उस कुशलता पर है, कम नहीं, तनिक सा आगे है। परन्तु गुरू नानक देव जी में उस ड्यूटी के पालन की कुशलता, व्यवहार से पृथक ड्यूटी की 'किसम की पहचान करने' और 'चयन कर लेने' में गीता से कही ऊँची निकल गयी है। श्री कृष्ण जी का कर्तव्य का उपदेश सदाचारक उपदेश है। श्री गुरू नानक देव जी का कर्तव्य का उपदेश नैतिकता की कुशलता और आत्मिक कुशलता दोनों में शिखर पर है। विचार कीजिए:—सुन्दर श्री गुरू नानक पुत्र है, भाई है, पति है, पिता है और इन सभी सम्बन्धों में अपने नैतिकता के कर्तव्यों को पहचानता है, पर लगता यों है कि इस कर्तव्य को भूलकर साधु होकर जगत से भागकर चला गया है। पर उस आत्मिक तलवारधारी की कुशलता देखिए कि वह इस पुत्र, भाई, पति, पिता के अपने कर्तव्यों के घेरे में, मोह के फैलाए हुए जाल में, मानव शरीर में निवास करते हुए देश में आत्मिक एवं सदाचार के पतन के अन्धकार के होते हुए अपने 'कर्तव्य' को पहचानता है, इस पहचान एवं चयन में 'कर्तव्य सर्वोच्च' को आत्मा में पहचानता और प्रयोग करके दिखाता है, इस चयन में ड्यूटी की दृष्टि से कुशलता की सिरोमणि कुशलता दिखाता है। जिस समय:—

"बाबा देखे धयान धरि जलती सभि पिृथमी दिसि आई"।

और शीघ्र ही निर्णय करता है कि मेरा कर्तव्य है इसकी रक्षा करना और निर्णय करते ही करके दिखाता है और हम क्या देखते हैं कि गुरू नानक:—

'चड़िया सोधण धरति लुकाई'।

सृष्टि की जलन दूर करने, सृष्टि का अन्धकार दूर करने, सृष्टि को मुर्दापन की दशा से निकालने, सोचों, वहमों, भ्रमों से बाहर निकालने, कलेजों में 'बेअन्त वाहिगुरू' के साथ जीवित रखने वाला विरह एवं भरोसे वाली लगन देने के लिए बाबा अपने लिए कर्तव्यों के सिरोमणि कर्तव्य–आत्मिक कर्तव्य–का चयन करता है और बताता है कि कर्तव्य सर्वोत्मुखि है और रूहानी कर्तव्य सांसारिक एवं सदाचारी कर्तव्यों की अपेक्षा ऊँचे हैं। हाँ, रूहानीअत के कर्तव्य सदाचारी कर्तव्य से अधिक कुशलता वाले कार्य हैं। अत: गुरू जी ने कर्तव्य के चयन तथा कर्तव्य के पालन में बहुत ही कुशलता दिखाई है। इतना बलिदान, इतनी कठिन यात्राएँ और उनमें अनेकों कष्ट सहन किये, पर 'सृष्टि के उद्धार' के कर्तव्य का पालन किया। आपने रूहानीअत का प्रचार किया, मृतक मनों को जीवित किया, 'बेअन्त' प्रभु के साथ एक स्वर किया। इस

कर्तव्य को पूरा करने के लिए गुरू जी इस समय के प्रसिद्ध जगत् में लगभग प्रत्येक स्थान पर गये हैं[१]।

उस समय न तो रेल थी, न तार, न पक्की सड़कें, न रक्षा के कोई साधन, वण चोरों से भरे रहते थे, पैदल चलना पड़ता था, पर वह कर्तव्य को पहचानकर उसे पूर्णता के शिखर पर ले जाने वाला पाँच बार अपने दैवी कर्तव्य का पालन करने के लिए चलता है। कुर्रम, अफगानिस्तान, ईरान, बग़दाद, मक्का, मिस्र से परे तक, काश्मीर, तिब्बत, चीन, आसाम, मनिपुर, पूरवी टापू एवं श्रीलंका तक, जगन्नाथ, वाराणसी, गंगा, रामेश्वर, विंध्याचल, सिंधु, बलोचिस्तान एवं सारे हिन्द में फिरता है, सिंहलद्वीप में जाता है और अपने सच्चे पिता के बताए हुए कर्तव्य 'सृष्टि को सृष्टा के साथ जोड़ने के लिए' फिरता है और जोड़ता है।

३. इधर नैतिक कुशलता में भी कर्तव्य के भाग को देखिए–किस तरह उसका पालन करता है और वापिस लौटकर माता पिता को, जो उसे 'पितृ भक्ति' के कर्तव्य से भागकर चला गया समझ रहे थे, दैवी न्योता देता है, वे अब देखते हैं कि ओह! यह 'हमारा नानक' तो हमारा पुत्र नहीं था, यह तो ईश्वर का पुत्र था और इसको तो सृष्टि का उद्धार करना था। हम तो भूल में ही पड़े रहे जो इसे इसके उच्च धर्म (ऊँचे कर्तव्य) की ओर से हटाते रहे। अब जब यह ज्ञान प्राप्त हो गया है तो गुरू उनके अन्दर वाहिगुरू प्रेम का कण डाल देता है, जीवनदान प्रदान करता है।

माता पिता की आज्ञा का पालन करना एक कर्तव्य था। राम जी ने आज्ञा का पालन किया, चाहे उसमें पिता वियोग के कारण परलोक में जा बसे। अर्जुन ने कर्तव्य की आवाज को 'माना', चाहे उस युद्ध में उसके नजदीकी से नजदीकी उसकी तलवार से मौत के घाट जा उतरे। गुरू नानक देव जी ने पिता की आज्ञा का पालन किया, किस प्रकार ईश्वर रूप होकर पिता के आगे सीस झुकाकर ख़रे सौदे वाला क्रोध सहन किया, पर जब सच्चे पिता की आज्ञा के पालन का समय आया तब आपने पिता की आज्ञा के पालन की अपेक्षा उससे अधिक ऊँचे कर्तव्य को पहचाना। प्रभु की सृष्टि को तारने की आज्ञा जब वेईं नदी में मिली तो धन धाम, पत्नी, पुत्र, माता पिता सब का त्याग करके ईश्वरीय कार्य करने के लिए चल दिए। प्रत्यक्ष रूप से तो ऐसा लगता है कि पिता की ओर जो कर्तव्य था वह कम्पन खा गया है, अब साधु बनकर चल दिए हैं, माता पिता से नाता तोड़ दिया है, पर देखिए जब अपने अदेशी कर्तव्य का पहला दौर लगाकर आते हैं तो आकर माता-पिता से मिलते हैं। भगवे वस्त्र पहनने की लल्जा कोई पर्दा नहीं बनती। वे अपने पितृ कर्तव्य को जानते पहचानते हैं। उनकी सच्ची सेवा करते हैं। हाँ, उन्हें जीवनदान देते हैं, वाहिगुरू के प्रेम में ले आते हैं। वे दोनों अब आत्म जागृति में आकर पुत्र को देव गुरू रूप देखते हैं और पुत्र जानकर सेवा करवाने से झिझकते हैं। वाहिगुरू की ज्योति को उसमें देखते हैं और परम-सुखी हो जाते हैं। बहन को तो प्रभु की ओर से पहले से ही ज्ञान हो गया था क़ि उसका भाई तो अदेशी सौंदर्य है। जब कभी भी बहन याद करती, कोमल एवं अदेशी भावों एवं आत्मिक तरंगो का सत्कार करने वाला गुरू नानक, तुरंत ही दर्शन देता है। नैतिक एवं

१. तट तीरथ हम नव खण्ड देखे हट पटण बाजारा।। [गउ: म: १]

आत्मिक कर्तव्य की कितनी कुशलता है। हाँ, जी जब परदेस जाने लगे थे तो क्या दृश्य था? पत्नी रोती है, कहती है बच्चे अभी अनजान हैं, आप जा रहे हैं, मैं किस के आश्रय जीवित रहूँगी? तो उत्तर में आप कहते हैं मुझे अपने स्वामी की नौकरी करनी है, तेरी रक्षा वही करेगा। पत्नी एवं अनजान बच्चों का त्याग करके सर्वोच्य कर्तव्य के लिए चले गए। पर जब अन्त में कर्तारपुर में आ निवास किया, तो पत्नी को भी प्रभु के सौंदर्य का भाग प्रदान किया, पुत्रों को वाहिगुरू में लगाया, जिनका उदासी संप्रदाय आज तक चला आ रहा है। इस बात की ओर से रंचक मात्र संकोच नही किया कि अब पत्नी को, जो कि मायके में अत्यन्त दुखी है शरण दने से भेखधारियों में हँसी उड़ेगी। उस निर्भय, सच के उपासक ने पत्नी एवं बच्चों को शरण दी। कोई साधु भगवे वस्त्र पहनकर पत्नी एवं पुत्र को शरण देने का साहस नहीं करेगा, लोक लज्जा बाधा डालती है, पर सच्च पर निधड़क होकर चलते रहने वाले गुरू बाबा जी ने अपने कर्तव्य का पालन करते समय किसी प्रकार का कोई भय नहीं माना। भाई गुरुदास जी बताते हैं कि योगियों ने उलाहना भी दिया था कि जगत् का त्याग करके साधु बनकर फिर क्यों सांसारिक रीति चलाई है, पर उस विशुद्ध सच के स्वामी ने कोई परवाह नहीं की। आपका प्रत्येक व्यक्ति के साथ व्यवहार में कर्तव्य की नैतिक कुशलता भी कितनी अद्भुत है।

४. कृष्ण जी गीता में 'मैं' करके बोलते हैं 'मेरी एक मात्र शरण ले ओर सभी धर्मों का त्याग कर', 'सृष्टि के उद्धार हेतु कृष्ण जी अरदास नहीं करते, अपनी शरण ही एक मात्र औषधि बताते हैं। ब्रह्म को मानते हैं, भक्ति भी सुदृढ़ कराते हैं, पर सृष्टि प्रेम में "मैं" का भाव साथ-साथ चलता है, यह मैं और इसका बोल इस स्थान पर निन्दनीय नहीं, पर केवल विचार मात्र के लिए यह बात विचार योग्य है कि गुरू नानक देव जी इस परीक्षा से भी अतीत उच्च आकाशों में गति रखते हैं, वाहिगुरू के साथ आठों पहर अभेद हैं, बीच में कोई अंतर नहीं, तदनुरूप हैं। हाँ वाहिगुरू की मैं और आपकी मैं एक स्वर हैं, यदि उनकी मैं बोलेगी तो उसमें अनन्त का तार ही बोलेगा 'मैं' और यदि अनन्त का तार मैं गूंजेगा तो गुरू नानक की मैं बोलगी, पर देखिए, अहं की अतीतता की कुशलता, मर्यादा पुरषोतम, भक्ति के शिखर, प्रेम का सत्कार कि उनका तार 'तू' ही बोलता है। अर्थात्–

न रिजकु दसत आ कसे॥
हमारा एकु आस वसे॥
असति एकु दिगर कुई॥
एकु तुई एकु तुई॥५॥ मः १
परँदए न गिराह जर॥
दरखत आब आस कर॥
दिहंद सुई॥
एक तुई एक तुई॥६॥ मः १
नानक लिलारि लिखिआ सोइ॥
मेटि न साकै कोइ॥

कला धरै हिरै सुई॥
एकु तुई एकु तुई॥७॥ [माझ वार म: १]

हाँ, उनका तार 'तुई तुई' बोलता है। सृष्टि को अपनी मैं की गोद में नहीं डालते, मैं तो भुलावा दे जा सकती है, सृष्टि को "तुई" "तुई" की गोद में डालते हैं, इसमें अहं बेबुनियाद रहता है। देखिए जब जगत का दुख देखते हैं तो यह नहीं कहते कि 'द्वार मैं हूँ' 'एक मेरी शरण लीजिए' बल्कि उस वाहिगुरू के आगे प्रार्थना करते हैं:–

"कहै नानकु जीवाले जीआ जह भावै तह राखु तुही"।

जगत की पीड़ा को हरना चाहते हैं, पीड़ा हरने के लिए समस्त आयु जगत में फिरते रहे हैं, जब कर्तारपुर में आ निवास किया है तब भी पीड़ा हरने को ही चिकित्सल्य चलाई है, पर सदैव वाहिगुरू में अभेद रहने वाले दाता जी उसी के आगे प्रार्थना करते हैं और किस तरह अहं अतीतता सहित प्रार्थना करते हैं:–

'...........जह भावै तह राखु तुही'[१]।
लिखा है, 'आपि नराइणु कला धारि जग महि परवरियउ'
तथा
'गुरू नानक देव गोविन्द रूप'।

गुरू जी उस ज्योति स्वरूप की ज्योति और उसमें अभेद के साथ मिले हुए थे। आप की प्रार्थना और 'मैं' की आवाज़ न निकालना यह नहीं बताता कि आप नीचे थे और प्रभु ज्योति के साथ अभेद नहीं थे और वे इस प्रकार की आत्मिक ढींग नहीं मार सकते थे। नहीं, आपका जीवन पूर्ण रूप से अहं रहित था और जब मन एवं इन्द्रियों द्वारा 'मैं' की आवाज़ निकाली जाए तो 'अहं' सहसा साथ मिल जाता है अत: सतगुरू जी ने सदैव अहंकार से रहित होकर आवाज़ दी है और यही नियम रखा है:–

तुझ ते बाहरि किछू न होइ॥
तू करि करि देखहि जाणहि सोइ॥१॥
किआ कहीऐ किछु, कही न जाइ॥
जो किछु अहै सभ तेरी रजाइ॥१॥रहाऊ॥
जो किछु करणा सु तेरै पासि॥
किसु आगै कीचै अरदासि॥२॥
आखणु सुनणा तेरी बाणी॥
तू आपे जाणहि सरब विडाणी॥३॥
करै कराए जाणै आपि॥
नानक देखे थापि उथापि॥४॥१॥ [भैरऊ म: १]

---

१. गुरू अमरदास जी ने कहा–
जगत जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि॥
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि॥ [बिला: वा: म: ३]

४. गुरू नानक देव जी तथा गौरंग, रामानुज, वल्लभ आदि

१. गुरू नानक देव जी का और इन महापुरुषों का इकट्ठा विचार करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह सज्जन स्वयं एवं इनके उपासक इन्हें श्री राम-कृष्ण जी के भक्त मानते हैं, पर अवतार नहीं मानते। हम इनका वर्णन यहाँ पर इसलिए कर रहे हैं कि उपनिषदों के समय के पश्चात और बुध धर्म के पतन तक हिन्द का धर्म, यदि सच पूछें तो केवल एक सदाचार का धर्म ही था, जिसका कमाल बुद्ध जी दिखा चुके थे। बाद में हिन्दू धर्म विशेषतया तांत्रिक रंगों में ही देखता रहा:—कहीं पर शाक्त और कहीं पर शैव मत के नाम पर, कहीं पर योगियों के प्रचार में और कहीं पर किसी अन्य ढंग से। इसके पश्चात फिर भक्त आए। इन भक्तों महापुरुषों ने भक्ति का रंग देकर इस समय का हिन्दू धर्म बनाया। इन भक्तों ने ताँत्रिक विचारधारा की ओर से हटाया, हठयोग की ओर से भी रुख पलटाया, केवल बुद्धि के आधार पर चलने वाले एकपक्षीय दर्शन के झुकाव को वलवले की ओर झुकाया, प्रेम को प्रकट किया। परन्तु इनका (और इनकी अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता के देश की ओर गए बाद में आए, कबीर, नामदेव, रविदास, पीपा, सैण, सधना, वेणी[१] इत्यादि भक्तों का) काम इसी प्रकार का है जिस प्रकार इन्होंने गुरू नानक के आगमन के लिए मार्ग तैयार किया है[२]। ऊँच नीच का विचार इन भक्तों ने कम किया। वर्णाश्रम को, जो कि हिन्दू धर्म की रीढ़ की हड्डी है, दुर्बल कियां, प्यार फैलाया। भक्तों ने ही द्वैत और फिर द्वैत अद्वैत की विचारधारा चलाई। संक्षिप्त रूप से यह कह देना काफी है कि इन सज्जनों ने नैतिक संसार में आत्मिकता का बीज बोया और बुद्धि के साथ वलवले का संयोग करके उच्च मार्ग खोला, पर इसे कमाल के शिखर पर पहुँचाने का श्रेय गुरू ज्योति को गुरू नानक रूप में प्राप्त हुआ। इस पक्ष में गुरू नानक देव जी की आत्मिकता का कमाल हम कुछ तो पहले बता चुके हैं और कुछ 'मुहम्मद जी' वाले लेख में बताएंगे।

२. भक्तों की भक्ति में आदर्श श्री कृष्ण जी एवं श्री रामचन्द्र जी की सगुण मूर्ति थी ओर उपासना मूर्ति पूजा से आरम्भ होती थी। श्री गुरू नानक देव जी ने आरम्भ से ही एक अकाल पुरुष की उपासना सुदृढ़ करवाई और महापुरुषों का स्तर पृथक बताया जो वाहिगुरू के साथ भ्रम में डालने वाला न हो। हाँ जी गुरू नानक ने स्वच्छ एवं उच्च एकत्व का झण्डा फहराया। मूर्ति पूजा को पतन की ओर ले जाने वाला एवं व्यवहार में निम्न प्रभाव पैदा करने वाला कर्म समझकर उससे मनाही की, उसके स्थान पर सत्संग जीवित जागृत, ईश्वरीय लगन वाला, कीर्तन के हिलोर वाला, प्रेम के यौवन वाला सत्संग उत्पन्न कर दिया। कठोर तपों और तमोगुणी हठों के स्थान पर वाहिगुरू का कीर्तन प्रदान किया। वाहिगुरू के नाम की साधना के साथ सहज समाधि एवं लौ का आदर्श स्थापित किया।

३. भक्तजन कीर्तन किया करते थे, पर उनका कीर्तन साईं के आगे नृत्य-संयुक्त था, पर यह 'नृत्य संकीर्तन' लोगों को सांसारिक नृत्यों में ले गया। गुरू नानक देव जी ने

१. कई खोजकों का विचार है कि यह सारे अथवा इनमें से कई भक्त गुरू नानक देव जी से मिलकर गए हैं।

२. इसे सविस्तार समझने के लिए देखिए आमुख टीका श्री जपुजी साहब कृत्य श्री शंकर दयाल उदासी साधु फैज़ाबाद निवासी।

अंगुली उठाकर मना कर दिया[१]। उन्होंने शरीर के नृत्य को, 'नचणु कुदणु मन का चाऊ' कहकर् उसके लिए मना किया।

"वेखै लोकु हसै घरि जाइ॥
रोटीआ कारणि पूरहि ताल॥
आपु पछाड़हि धरती नालि॥
गावनि गोपीआ गावनि कान॥
गवनि सीता राजे राम"॥

इस तरह कीर्तन को पतन की ओर ले गए–

"उडि उडि रावा झाटै पाइ"॥

कहकर वर्जना की है और कहा है:–

"नानक जिन् मन भऊ तिना मनि भाऊ[२]॥ [आसा दी वार म: १]

४. इसी प्रकार सबसे बड़ी बात जो गौरंग, वल्लभ, रामानुज, रामानन्द तथा अन्य भक्तों की शारीरिक संन्यास की दूरी की थी। श्री गुरू नानक देव जी ने गृहस्थ में रहने, गृहस्थ में रहकर कर्तव्य का पालन करने, कमाई करनी, श्रम करना फिर उसमें से बाँटकर खाना, देकर प्रसन्न होना, गृहस्थ में रहते हुए उसमें लिप्त न होना, प्रत्येक घड़ी मन की लगन 'बेअंत' में लगाए रखनी, यह सुमति प्रदान की। इसीलिए गुरू नानक देव जी द्वारा निर्मित ईश्वरीय मनुष्यों की एक जीवित जाति बन गई, जिनकी गृहस्थ, नैतिकता, आत्मिकता, वीरता एवं सभी कर्तव्यों की कीर्ति जगत् में फैल गई। गुरू नानक ने 'गृहस्थ संन्यास' का व्यवहारिक ढंग यह बताया कि पदार्थों का त्याग करके वनों में मत जाओ, गृहस्थ में ही रहो, पदार्थों के दाता के साथ जुड़े रहो और सदैव दसके कृतज्ञ बने रहो। इस कृतज्ञता की वृत्ति में ही व्यवहारिक संन्यास है। त्याग तो बुद्धि का होना चाहिये, यदि बुद्धि के बंधन छूट जाएँ तो मानो संन्यास अंदर आकर निवास कर गया। यदि शारीरिक त्याग की आवश्यकता हो तो शरीर का त्याग दान में समझो। अर्थात् जो कुछ तुम कृत्य द्वारा कमाते हो, उसे दूसरों में बाँट कर खाओ। यदि धन के त्याग की इच्छा हो तो उसका त्याग कर दो, पर जगत की पीड़ा हरने में उसे सफल करो।

यहाँ भी दाता का कमाल है। दान देना तो सब ने 'शुभ कर्म' बताया है, पर गुरू नानक देव जी ने कृत्य करके कमाई करनी और फिर उसमें से देना प्रभु के ज्ञान के साधनों में से एक उत्तम साधन बताया है:–

घालि खाइ किछु हथहु देइ॥
नानक राहु पछाणहि सेइ॥ [सारंग वार म: १]

१. श्री गुरू अमरदास जी ने कहा है कि शरीर की अपेक्षा,
'नाचु रे मन गुर कै आगै॥ [गूजरी म: ३]

२. पंचम गुरू की कथन है:–
"निरबाण कीरतनु गावहु करते का निमख सिमरत जितु छूटे॥ [सूही म: ५]
पुन:–"कीरति प्रभ की गाऊ मेरी रसना"॥ [कानड़ा म: ५]

गुरू नानक ने गृहस्थ में रूहानी 'अनंत में निरन्तर मन के लगाव' को स्वयं करके दिखाया, श्री पावन लहना जी में भरकर उनके द्वारा कमाल करके दिखाया, बाद में भाई बुड्ढा जी, भाई लालो जी आदि सिक्खों में प्रवाह चलता रखकर और निरंतर प्रवाह चलाकर दिखा दिया।

इधर कल्याण मार्ग चला, उधर इन ही पुरुषों की एक जीवित एवं प्रफुल्लित सबल जाति का निर्माण हो गया। भक्तों के नामलेवा एवं संप्रदाय तो अब भी हैं, पर वे जातियां नहीं बन पाईं। पर गुरू साहब के समस्त प्रचार का फल एक बहुत ही माननीय जाति का निर्माण कर देने में सफल हुआ। यह बात तो पाश्चात्य लेखकों ने भी स्वीकार की है और दिखाई है।

यथा कनिंघम लिखता है:--

"रामानन्द एवं गोरख ने धर्मों की समानता का प्रचार किया। चैतन्य ने यह जाति-पाति के भेदभाव मिटाने वाला निश्चय दुहराया। कबीर ने जनता को उसकी ही भाषा में प्रमाण दे देकर मूर्ति पूजा हटाई, वल्लभ जी ने यह शिक्षा दी कि साधारण साँसारिक कर्तव्यों के पालन के साथ ही संपूर्ण भक्ति प्राप्त हो सकती है। पर भास्ता है कि ये भले एवं बुद्धिमान पुरुष, जीवन की असारता से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि मानव की सामाजिक दशा का सुधार एक निम्न सा विचार है। इनका बड़ा लक्ष्य पुजारियों से एवं मूर्तिपूजा की स्थूलता एवं कट्टरता से मुक्त कराना था। इन्होंने संतोषी एवं त्यागी पुरुषों की मण्डलियाँ बनाईं और परलोक के सुखों के विचारों में अपना सर्वस्व लगा दिया। पर ये यों नहीं कर सके कि अपने अनुयाईयों को सामाजिक एवं धार्मिक बातों से, जो पतन की ओर ले जाने वाली थीं, मुक्त करा सकें, जिससे शताब्दियों की दुर्गन्ध से मुक्त होकर एक नवजाति का निर्माण हो सके। बल्कि उन्होंने साम्प्रदायिकता पूर्ण की, इसके अतिरिक्त कि वे जातीयता की बीज बोते, उनके सम्प्रदाय अब तक उसी दशा में है, जिस दशा में वे इन्हें छोड़कर गए थे। पर यह बात गुरू नानक देव जी के लिए ही सुरक्षित रखी गई कि सुधार के सच्चे नियमों को ठीक प्रकार से पहचाने और अपने ऐसी विशाल नींव डाली, जिसके कारण उनके उत्तराधिकारी गुरू गोबिन्द सिंह जी ने अपने देशवासियों के मन एक 'नवीन जातीयता' के साथ प्रज्वलित कर दिये और इस समस्या को व्यवहारिक पहरावा पहना दिया कि छोटे से छोटा व्यक्ति बड़े से बड़े व्यक्ति के समान है। यह समानता जिस प्रकार जाति में है इसी प्रकार धर्म में है। जिस प्रकार धार्मिक आशाओं में उसी प्रकार नैतिक अधिकारों में एक जैसी है"। अर्थात् एक जीवित जाति का निर्माण कर दिया। [पृष्ठ ४०]

५. गुरू नानक देव जी तथा वैदिक ऋषि

जयदेव से पूर्व या यों कहें कि पाँचवी शताब्दी से पूर्व भारत के याज्ञवल्क्य जैसे महापुरुषों का कमाल और छः शास्त्रों और गीता का कमाल एक बुद्धि मण्डल का कमाल है। इन से उत्पन्न हुए इखलाकी दर्शन का कमाल बुद्ध जी के जीवन समय में हो गया।

योग में हम शारीरिक अंगों की क्रियाओं पर अधिकार के साथ आत्मिक रंग देखते हैं, पर भक्ति को सरसरी तौर से लगे हाथों वर्णन किया हुआ देखते हैं, उसका कमाल नहीं देखते।

परन्तु वैदिक ऋषियों में, जो इनसे कई हज़ार वर्ष पहले हुए, एक अन्य सुन्दरता देखते हैं। जब अभी दर्शन वाली छानबीन वाली तीव्र बुद्धि आई नही थीं, मस्तिष्क अभी नैतिक एवं दार्शनिक सूक्ष्मताओं मे नहीं गए थे, जब अंतरवृत्ति योग के चमत्कारों का ज्ञान नहीं हुआ था और जब लगभग सारा संसार मूर्तिपूजा, वृक्ष पूजा, मृतकों की आत्माओं की पूजा में, भय एवं भ्रम में ग्रसा पड़ा था; उस समय सीधा सादा गृहस्थी निश्छल, वीर आर्य पुरुष पंजाब की नदियों के किनारे पर दूध पीकर मस्त हो रहा है, उस समय उसका बलिष्ठ शरीर ओर निरोग हृदय सूर्य के प्रकाश को देखकर प्रभु स्तुति करने लगता है, चन्द्र को देखकर गीत गा उठता है। वायु एवं अग्नि के चमत्कारों को देखकर गीत रचना करता है। सारांश यह कि प्रकृति के चमत्कार उसमें आश्चर्य पैदा करते हैं और वह इनकी स्तुति करता ओर किसी स्वाद में चला जाता है। इसे अभी शंकर की आत्मा एवं उपनिषदों के ब्रह्म का पता नहीं, पर दृष्टमान की चमक से और प्राकृतिक सौंदर्य के चमत्कार से यह किसी विस्मय प्रकार के रस में आकर झूमता एवं वैदिक गीत बनाता है, इसे (objective yog) दृष्टमान से योग प्राप्त होता है। अपनी आश्यकता के समय यह चमत्कार के पीछे झाँकने लगता है, अग्नि के पीछे अग्नि देवता, बादलों वर्षा के पीछे इन्द्र देवता और सरस्वती नदी के पीछे 'वाच' देवी के स्वप्न लेने लगता है और फिर उनके आगे प्रार्थना करता है। मानो प्राकृतिक चमत्कारों के पीछे इसे कुछ भ्रम सा होता है कि कोई अन्य शक्ति इसके पीछे छिपी हुई है, चाहे वह उस शक्ति को 'एक' अकेला नहीं समझता और प्रत्येक के पीछे पृथक शक्ति अपनी अपेक्षा बलवान पर अपने जैसे शारीरिक भावों (passions) वाली शक्ति का अनुमान सा लगाता है, पर इस तरह इसकी शनैः-शनैः अनंत की ओर भोली-भोली दृष्टि पड़ रही है और फिर देखिए यह यहाँ तक चली गई है कि 'एक' के विचार भी आने लगे हैं और व्यापकता के स्वप्न भी आ गए हैं। यहाँ तक कि वेदों के समय की निश्छल, भोली, सच्ची एवं बनावटी धर्मों एवं झूठी लज्जा से ऊच्ची युवतियाँ भी पंजाब के वृक्षों के नीचे नाच करती और उस अनंत की 'सुगंधि रूप' कहने लगी है:-

हे सुगन्ध रूप तीन काल दर्शी!
हमारे पतियों को जानने वाले!
हमारे योग्य वर को मिला दे[१]।

पंजाब के पुराने पंजाबी, हमारे पूर्वज, जिन्होंने इसी प्यारी धरती में प्रकृति के चमत्कारों से रस एवं सत्कार वाले भय में आकर उन चमत्कारों के ही गीत गाये हैं निन्दनीय नहीं है, अपितु इस करके सत्कार योग्य हैं कि उन पर प्रकृति का चमत्कार आश्चर्य एवं स्तुति (Admiration) का प्रभाव उत्पन्न करता था और वह किसी आश्चर्य में एवं विस्मय के प्रकार के किसी रस में जाते थे। यह एक अध्ययन का कार्य है कि वे दृष्टमान

१. त्वयं वकं यजाम हे सुगन्धि पति वेदनं। [यजुर अंक ३, मंत्र ७]

चमत्कारों से उपनिषदों के ब्रह्म तथा धारणा, ध्यान, समाधि के 'दृष्टा' के योग तक पहुँचे। क्योंकि इन महापुरुषों पर, जो इस समय में हुए, बहुत मान किया जाता है और हमारे ऊपर कहे गुणों के लिए एवं हमारे पूर्वज होने के कारण वे इस प्रकाश में सम्मान योग्य हैं भी, पर हम आपको बताते हैं कि इस ओर भी गुरू नानक देव जी कमाल पर खड़े हैं। दृष्टमान प्राकृतिक चमत्कारों एवं सौंदर्य से जो रस उत्पन्न होता है, गुरू नानक देव जी का उसमें भी कमाल है। गुरू नानक देव जी प्रकृति को देखते ही नहीं, प्रकृति के पूर्ण रूप से साक्षी हैं और हिन्द में 'प्रकृति' की दुहाई सर्व पूर्व इसी दाता जी ने दी है।

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भऊ सुख सारु॥
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब अकारु॥
कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु॥
कुदरति खाणा पीणा पैनणु कुदरति सब पिआरु॥
कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान॥
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु॥
कुदरति पऊणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु॥
सब तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु॥
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु॥२॥[१] [वार आसा म: १]

प्रकृति की सामग्री से सौंदर्य की झलक दिखाई पड़ती है जिससे (Admiration एवं Adoration) आश्चर्य एवं स्तुति का भाव जागृत होता है और यदि सौभाग्यशाली हों तो विस्मय की दशा में ले जाता है। श्री गुरू नानक देव जी उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं:–

विसमादु नाद विसमादु वेद॥
विसमादु जीअ विसमादु भेद॥
विसमादु रूप विसमादु रंग॥
विसमादु नागे फिरहि जंत॥
विसमादु पऊण विसमादु पाणी॥
विसमादु अगनी खेडहि विड़ाणी॥
विसमादु धरती विसमादु पाणी॥
विसमादु सादि लगहि पराणी॥
विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु॥
विसमादु भुख विसमादु भोगु॥
विसमादु सिफति विसमादु सालाह॥
विसमादु उझड़ विसमादु राह॥
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि॥

१. यह प्रकृति का ब्योरा बताया है।

वेखि विडाणु रहिआ विसमादु॥
नानक बुझण पूरै भागि॥१॥ [वार आसा म: १]

हाँ जी गुरू नानक देव जी को प्रकृति के प्रकाश एवं इसके आश्चर्य भरे रंग आश्चर्य में ले जाते हैं, इन्हें देखकर आप आश्चर्य चकित होकर विस्मय में मग्न हो जाते हैं। गुरू नानक हैं न पुरातन पंजाबी निश्च्छल प्रकृति के दर्शनों में ऊँचे खड़े हुए और कैसे अचूक! वे पुरातन सत्कार योग्य पंजाबी तो चमत्कारों से आश्चर्यचकित होकर उनकी पूजा में लग जाते थे, पर गुरू जी उस पड़े हुये आश्चर्य से अपने भीतर विस्मय में लीन होकर दृष्टा पद में वेईं नदी में डुबकी मार जाते हैं। दृष्टमान सौंदर्य की झलक से भी दृष्टा में–उस बेअंत में–जा विलीन होते हैं, जिसके साथ आठों पहर जुड़े रहना, गुरू नानक के कमाल, कमालों का सिरोमणि कमाल करके दिखाया है। पुरातन पंजाबी युवक कुल का मुखिया, आप पुरोहित, आप ही सरदार प्रकृति के पदार्थों (सूर्य, चन्द्र, धरती, वायु, अग्नि, जल) के आगे झुक रहा है, इनके पीछे कोई शक्ति का अनुभव करता है, पर निर्माता को प्रकृति के अंतर्गत, प्रकृति से बाहर, प्रकृति के आसपास खोज नहीं सकता, पर गुरू नानक सच्चा पंजाबी, पंजाब की धरती का भी सर्वोच्य मान, इसी सौंदर्य की झलक से रंग में आया प्रकृति के पर्दे के पास कर्तार को देखता है:–

सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु॥ [वार आसा म: १]

हाँ जी, गुरू नानक कर्तार को प्रकृति के सिर पर प्रकृति से पृथक ही नहीं देखते, पर प्रकृति में भी देखते और प्रकृति की व्यापकता की भाँति प्रत्येक रोम-रोम में निवास करता हुआ देखकर कहते हैं:–

"बलिहारी कुदरति वसिआ"[१]

'हे प्रकृति में बसे हुए' बेअंत! मैं तुझ पर बलिहारी हूँ।

हाँ, जी प्रकृति पर कर्तार, प्रकृति में कर्तार एवं प्रकृति उसकी आज्ञा में बंधी तीनों रंगों को देखते हुए गुरू नानक को तीन तो नहीं दीखते, एक ही दीखता है:–

"नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु"।

'तांक ही तांक'–एक ही एक–दीखता है। कैसा पवित्र एकत्व है, कैसी आदर्श पूर्ण शिखर पर पहुँची हुई एकता की दृष्टि, कर्तव्य एवं शिक्षा है "दृष्टमान से योग"[२] एवं 'दृष्टा में योग'[३] दोनों ही एक स्थान पर गुरू नानक में कमाल पर हैं।

रचना का उल्लास– यहाँ हमने गुरू नानक के कमाल की एक और बात कहनी है कि प्रकृति के प्रकाश में आपने एक अन्य वस्तु देखी और मनुष्य का ध्यान उस ओर दिलवाया है। वह है 'रचना का उल्लास'।

जगत को सबने दुख रूप कहा है। पर इसमें एक उल्लास भी निवास कर रहा है। उस ओर ध्यान गुरू नानक देव जी ने दिलवाया। जब सांख्य जैसे शास्त्रों में जगत को 'दुख

१. इसी प्रकार दूसरे गुरू जी ने कहा–
"इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु।" [वा: आ: म: २]
२. Objective yog।
३. Subjective yog।

रूप' एवं अरबी फारसी के साहित्य में जगत को, 'दारूल मिहन' पढ़ा जाता है, अथवा चारों ओर दुख ही दुख देखा जाता है कि सारा संसार दुखी है तो चित निराशा में चला जाता है और मनुष्य की दृष्टि 'रचना में उल्लास' की ओर से बंद हो जाती है। इससे बुद्ध जी जैसे महापुरुषों का विचार भी रुका रहा, पर सतगुरू जी ने जब कहा कि 'नानक दुखीआ सभु संसार'। वहाँ पर साथ ही उसका प्रयन्त भी बतलाया, 'मंने नाऊ सोई जिणि जाइ'। फिर इससे पृथक अपनी वाणी में इस 'रचना के उल्लास' की ओर दृष्टि करवाई है[१]। जिससे मन उस निराशा एवं पतन की ओर जाने से बचकर प्रकृति की प्रफुल्लिता में आकर खिलता है और भीतर प्रगति की नींव बँधती है। सतगुरू जी ने अपने निरवान साधु को परमेश्वर का भक्त कहा है और उसमें 'विगास' प्रसन्नता का निवास बताया है:–

'नानक भगता सदा विगासु'॥

'रचना में उल्लास' 'प्रकृति में चाव' का स्पर्श लगाने का रंग गुरू जी ने देखा और उसे अपनी वाणी में गायन किया। जिसका उदाहरण इस प्रकार है:

सभ दुनीआ सुबहानु सचि समाईऐ"॥ [वार माझ म: १]

पुन:– **'दहदिसि साख हरी हरीआवल............'**[२]॥ [तुखारी छन्त म: १]

सायंकाल हुआ तो आप तारों से भरपूर गगन को देखकर उस दृश्य में कर्तार की आरती का उत्साह देखते हैं और इस सुन्दर भाषा में, 'गगन मैं थालु' की आरती उच्चारण करते हैं।

वर्षा लगी देखकर आप कहते हैं:–

'बरसै अंमितधार बंद सुहावणी'।

गुरू अर्जुन देव जी ने कहा है:–

नानक बिजुलीआ चमकंनि घुरनि घटा अति कालीआ॥
बरसनि मेघ अपार नानक संगमि पिरी सुहन्दीआ॥ [मारू वार म: ५]

बसंत ऋतु आई देखकर उच्चारण करते हैं:–

माहा माह मुमारखी चड़िआ सदा बसंत॥

पुन:– **रुति आई ले सरस बसंतु माहि॥** [बसंत म: १]

पुन:– **आये भवरा फूल बेलि॥**
आपे संगति मीत मेलि॥१॥
ऐसी भवरा बासु ले॥
तरवर फूलै वन हरे॥

---

१. 'सभ दुनीआं सुबहानु' गुरू नानक देव जी ने उच्चारण किया है।

२. गुरू अंगद देव जी ने उच्चारण किया है:–
चऊथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाऊ॥ [वार माझ म: २]
पंचम गुरू अनुसार:–
चिड़ी चुहकी पहु फुटी वगनि बहुतु तरंग॥
अचरज रूप सन्तन रचे नानक नामहि रंग॥ [गऊड़ी की वार म: १]

इस प्रकार प्राकृतिक विकास से विकास का स्पर्श लेकर उल्लास में रहने के संकेत स्थान-स्थान पर गुरूवाणी में आए हैं।

परन्तु इसके साथ रहस्य यह सिखाया है कि यदि कर्तार के साथ अंतरात्मा में मिले रहो तो बाहर प्रकृति में भी उल्लास एवं उल्लास का दाता प्रदिप्त दीखेगा। अंदर टिकाव वाले को प्रकृति उल्लास की वर्षा बरसा रही है।

चेतु बसन्तु भला भवर सुहावड़े॥
बन फूले मंझ बारि मैं पिरु घरि बाहुड़ै॥ [तुखारी छंद म: १]

६. गुरू नानक एवं ज़ोराष्ट्र

ईरान में ज़ोराष्ट्र एवं चीन में ताऊ एवं कनफ्युकस आदि महापुरुष हुये हैं। ज़ोराष्ट्र के बारे में विचार है कि वे कई हुये हैं। कई तो समझते हैं कि मूसा के समय[१] पहला श्री ज़ोराष्ट्र हुआ और कई आज से कोई तीन हज़ार वर्ष पहले हुआ मानते हैं। कई उसे ट्रोजन युद्ध से पाँच छ: हज़ार वर्ष पहले हुआ बताते हैं, प्रत्येक दशा में पलातूस एवं अरस्तु ने, जो उसका वर्ण किया है, इसलिए ज़ोराष्ट्र उनसे पहले हुआ तो सिद्ध हो गया। ज़ोराष्ट्र जी की आज तक पारसी लोग अपना आदर्श महापुरुष मानते हैं। इनकी रचित अथवा संपादित धर्म पुस्तक 'ज़ैद अवस्था'[२] है, जिससे पता चलता है कि ज़ोराष्ट्र जो एक ऐसी 'शक्ति' को सदैव विद्यमान मानते हैं, जिससे वे "जरुआना अकारना" कहते हैं। इसका अर्थ है 'असीम समय'। इस 'जरुआना अकारना' ने जो महाबलि रचे, एक आहरमज़द (नेकी उत्पन्न करने वाला एवं रक्षा करने वाला) इसने प्रकाश पैदा किया। दूसरे 'आहरमन' (बुराई उत्पन्न कराने वाला) इसने अन्धकार उत्पन्न किया। ज़ोराष्ट्र के मतानुसार अग्नि-पूजा सम्मिलित है, संभव है कि आहरमज़द के प्रकाश कर्ता होने के नाते इस प्रकाश के देवता की पूजा की जाती है, परन्तु खोज यह बताती है कि ज़ोराष्ट्र का मत अग्नि पूजा का नहीं था, तूरानियों में से माँगी द्वारा अग्नि पूजा इसमें आई और इसके मत का भाग बन गई।

आजकल भारत में कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि व्यास जी ज़ोराष्ट्र से मिले थे और उन्हें समझाया था कि 'जरुआना अकारना' की उपासना का प्रचार कीजिए और 'आहरमन' का मसला कि वह भी एक वजूद है—मत फैलाओ। पर उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया था, परन्तु इस बात की प्रामाणिकता के लिए खोज की आवश्यकता है। इस मत का वास्तविक अंतर वाला विचार यह 'आहरमन' का विचार है जो बाद में यहूदियों में गया और उनसे ईसाईओं एवं मुसलमानों ने ले लिया, जिन्होंने आहरमन का नाम अजाज़ील एवं शैतान भी रखा है। श्री गुरू नानक देव जी ने बुराई को एक प्रेरक, लुभाने वाली परीक्षा तो माना है, पर प्रभु की बराबरी करने वाले शैतान बुराई का स्वामी नहीं माना, और अपने नफस को अथवा अपनी भूल को बुराई का कारण बताया है। शैतान के विचार की भाँति भारतीयों ने कलियुग को देहधारी माना है। इस बुराई के आकार को गुरू जी देहधारी नहीं

---

१. इस हिसाब से आप ईसा जी से चौदह शताब्दियाँ पहले हुए।

२. यह २१वीं थीं परन्तु अब तीन ही प्राप्त हुई हैं।

मानते और कहते हैं कि वही धरती है, वही चन्द्र और तारे हैं, कलियुग किसी देश एंव तीर्थ स्थान पर आया नहीं देखा गया, कहीं पर कोठा बनाकर बैठा नहीं हुआ। फिर कहते हैं, 'आख गुणां कलि आईअै' मनुष्यों के गुणों रूपी कलियुग आया है। लोगों के आचरण बुरे हो गए हैं, यह अवगुण रूप कलियुग है[१], यह शैतान है। ऐसा करने में उन्होंने दर्शन का सर्वोच्च आदर्श दिखाया है और आध्यात्मिक सत्य प्रकट किया है। एक काल्पनिक शैतान भय एवं प्रभु की बराबरी करने वाला और हमारे लिए बहाने का स्थान कि पाप तो स्वयं करें और माथे उसके मूढ़ें, इस भूल से बचाया है। गुरू नानक देव जी ने सिखाया है कि अपने अंतस की जीवन-कण निरंतर बेअंत वाहिगुरू के साथ लगाव में रहे, उससे पृथक कभी न हो, यों इसमें बल पराक्रम, आनन्द रस सुखों की वृद्धि होती है और इस अपने बलवान कण को बलवान बनाने के लिए उस साम्रगी की आवश्यकता नहीं कि जो भय और भ्रम उत्पन्न करें अपितु इस स्वतन्त्रता, सफलता एवं उन्नति करने में बाधा डालें।

इस विचारानुसार तो ज़ोराष्ट्र मुसलमान और ईसाईयों के साथ जाकर मिलता है, बल्कि यह विचार तो सबने ज़ोराष्ट्र जी के मत से ही लिया है पर अग्नि पूजा में यह मत वेदक मत के अग्निहोत्र के साथ मिलता है। गुरू नानक जी ने अग्नि के स्थान पर अग्नि के कर्ता की पूजा एवं शैतान के स्थान पर नफस को मारने की सुमति दी है। शेष सदाचार एवं परमेश्वर की अराधना में गुरू नानक जी का कमाल हम पहले बता ही चुके हैं।

७. गुरू नानक जी एवं ताऊ लाऊटस कनफ्यूकस

ताऊ, किसी मनुष्य का नाम नहीं। यह एक मत है जो कि ईसा से काफी समस पूर्व पहले चीन जैसे मनुष्यों से भरे हुए देश में चला। इसके प्रचारक श्री 'लाऊटस' हुए हैं। ताऊ का अर्थ है पंथ, पर बाद में ताऊ के अर्थ 'कर्त्ता, अदृश्य एवं अमर' बन गए। लाऊटस की शिक्षा का निष्कर्ष यह है कि भलाई अन्त में बुराई पर विजय प्राप्त करेगी। यदि इस प्रकार के मतों को तथा आदि हिन्द की तपस्या को देखें तो शरीर, स्वच्छता, शरीर का मार्जन ही धर्म समझा गया था। स्नान करना, सेवा, व्रतादि और आसनों के व्यायाम आदि शारीरिक नीरोगता के साधन ही धर्म समझे जाते थे। कुछ इसी प्रकार की दशा इन चीनी मतों की थी। यदि कुछ आचरणिक झुकाव था तो यह कि बुराई की अन्त में पराजय होगी। गुरू नानक देव जी ने शारीरिक स्वच्छता बताई, स्नान भी अमृत वेला में ठहराया। पर शारीरिक स्वच्छता के लिए उच्च सदाचारी एवं सदाचारिक आधार पर आश्चर्यजनक रंगों एवं प्रेम-भक्ति द्वारा वाहिगुरू से संयोग के आदर्श को शारीरिक क्रियाओं से भिन्न करके ऊँचा उठाकर ले गए और ऊँचे शब्दों में कहा:-

"कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सच रही"।

कनफ्यूकस जी भी ईसा से ५५१ वर्ष पूर्व चीन में हुए थे। आपने देश की सेवा भी की है और धर्म भी सिखाया, आपके मत का निचोड़ और सर्वोच्च विचार बहुत आगे नहीं

---

१. देखिये रामकली म: १ "सेई चन्दु चड़हि से तारे।"

जाता। किसी ने कनफ्यूकस से कहा था कि अपनी समस्त विद्या का एक अक्षर में वर्णन कर तो उन्होंने कहा 'आदान प्रदान' अर्थात् 'जो व्यवहार तुम चाहते हो कि तुम्हारे साथ न हो वह दूसरे लोगों के साथ मत करो', परन्तु इनके समय ही चीन मे 'लाटजू' नामक एक अन्य महापुरुष हुए हैं, उनका मत भी इस तरह की सीमा में रहा, पर उनका सदाचार कनफ्यूकस से आगे चला गया था, क्योंकि उन्होंने 'आदान प्रदान' के स्थान पर वह शुभ मति सिखलाई थी कि 'बुराई के बदले नेकी करो'।

उपरोक्त सभी महापुरुष उस प्रकार के सदाचार के शिक्षक थे, जिनका कमाल बुद्ध जी में हुआ, जिसका वर्णन हमने पहले किया है और हमने बताया है कि 'गुरू जी' उसके कमाल को भी शिखर तक कैसे लेकर गए और अध्यात्मिक कमाल को साथ मिलाकर कैसे भक्त के सर्वोच्च 'पूर्ण शिक्षक' अर्थात् गुरू हुए हैं, जिनमें 'वास्तविक सदाचार' एवं 'आत्मिकता' शिखर पर पहुँच गई थी।

८. श्री दया नन्द जी

इनका वर्णन करते हुए हमारे हाथ काँपते हैं, क्योंकि इन्होंने संसार के महापुरुषों के सत्कार के विरुद्ध हवा चलाई है और सत्कार योग्य व्यक्तियों को भला बुरा कहने से नहीं हटे। यूरोप में जब अपमान चर्म सीमा तक पहुँच गया था और विज्ञान एवं दर्शन के नाम पर महापुरुषों के गुणों की निन्दा की जाती थी, तब प्रकृति ने क्या देखा कि नाश होने पर है, उस समय इंग्लिस्तान में एक महापुरुष 'कारलाईल' एवं जर्मनी में महाकवि 'गिटे' जी पैदा हुए, जिन्होंने इस अपमान का विष दूर करने में बहुत ही उपकार किया। कारलाईल जी के विचार 'हीरो वर्शिप' (महापुरुषों की पूजा) नामक पुस्तक में विद्यमान हैं, जिसने एक नया प्रवाह चला दिया था, इनके सच्च एवं सच्च प्रकाश के आगे डार्विन एवं हकसले जैसे ऐगनासटक (प्रभु की ओर से मूक) लोग सत्कार सहित झुकते थे। काश पंजाब में कोई कारलाईल चक्कर लगाए जो सभी देशों में आज तक हुए महापुरुषों के सत्कार को लौटा लाये और देश उस विनाश से बच जाये तो महापुरुषों के अपमान के फलस्वरूप जातियों एवं देशों में आया करता है।

हमने दयानन्द जी का वर्णन इसलिए किया है कि आप पंजाब में आए थे और थोड़ा समय पहले ही आप हुए हैं और हमारे बहुत से पंजाबी सज्जन इनका सत्कार करते हैं। परन्तु अभी थोड़ा समय ही हुआ है, लोग, जिन्होंने उनके दर्शन किए थे, जीवित हैं। इनका अपना दावा पण्डिताई का एवं सुधारक पण्डित का था। जिस श्रेणी का हम वर्णन कर रहे हैं उस श्रेणी में यह निज को नहीं समझते थे और न ही इनके सत्कारी लोग इन्हें उस श्रेणी का मानते थे।

इनके समय तो लोग इन्हें केवल विद्वान ही मानते थे, फिर सुधारक कहने लगे, फिर ऋषि, फिर महर्षि और अब भगवान् और अन्य आत्मिक ऐश्वर्य वाली उपाधि प्रदान करते हैं। परन्तु वास्तव में बात यह है कि इनके सत्कार का अधिकार विद्या के मण्डल से बाहर नहीं जाता और अब तक इनके अपने लगभग सभी उपासक इन्हें अवतार पैग़म्बर रूहानी रुसूल का दर्जा नहीं देते, बल्कि ईश्वर आदि उपाधियाँ देने पर आपस में झगड़ते हैं।

इसलिए अन्य किसी विचार की आवश्यकता ही नहीं रहती। इनकी रचित पुस्तक में, इनके द्वारा पंजाब में दिए गए भाषणों में, इनके चलाये हुऐ संप्रदाय में जो संसार भर के महापुरुषों का अपमान किया गया है उस पर हमें एवं प्रत्येक (महापुरुषों को सत्कार सहित देखने वाले) सज्जन को उचित शोक है और सच्चे प्यार के साथ प्रार्थना है कि पंजाब में से यह भावना इनके संप्रदाय में से और यह अवगुण इनकी देख देखी ग्रहण करने वाली दूसरे संप्रदायों में से परमेश्वर हटाये और गुरू नानक देव जी का स्वर्ण अक्षरों में जड़ित यह वाक्य का प्रचार पाये:–

जे गुण होवनि साजना मिलि साझ करीजै॥
साझ करीजै गुणह केरी छोड़ि अवगण चलीऐ॥ [सूही म: १]

गुरू नानक देव जी ने वितरेक बुद्धि तो सिखलाई है पर निन्दा की ओर से बहुत ही वर्जना की है। गुरू जी ने प्रभु के साथ प्रेम-भक्ति एवं मनुष्य के साथ सबका भला सिखाया है। जहाँ तक विचार किया गया है कि गुरू नानक देव जी सबसे पहले महापुरुष हुए हैं जिन्होंने जगत को सिखाया है कि धर्म से धार्मिक कट्टरता दूर करके धर्मों का विचार कीजिए और सुमति प्रदान की कि प्रत्येक धर्म को उसके दृष्टिकोण से देखो और उसके गुणों की ओर देखो और उसके अनुयाईयों को उसके आदर्श पर अमल करने के तराजू पर तोलो। आपने यह कदाचित नहीं कहा कि मुसलमान काफिर (नास्तिक) हैं, पर आपने कहा कि 'मुसलमान कहावणु मुसकलु'। फिर मुसलमान का आदर्श बताया और सुमति यह प्रदान की कि देखो तुम इससे कितनी दूरी पर हो। निमाज़ को बुरा नहीं कहा पर बेहुजरी की निमाज पढ़ने वाले से कहा कि तू मुसलमान नहीं, इसी तरह प्रत्येक के साथ किया है। आपके इस नये व्यवहार से 'धार्मिक आश्रय' एवं धर्मों के कूत को मुकाबले से जाँच करने की प्रथा चलाई। डॉ॰ खुदादाद जी देहरादून निवासी कहा करते थे कि गुरू नानक जी के इस नियम को कायम रखने के पश्चात इस पर चलने वाले दूसरे पुरुष अबुलफजल जी हुए हैं। संभव है कि हम इसलिये अकबर सम्राट में 'धार्मिक सहनशीलता' एवं 'धार्मिक-सहनशक्ति' देखते हैं। इस धार्मिक सहनशीलता से जगत में धर्म के नाम पर घृणा, वैर एवं वध करने की कुरीति दूर होती है। इसीलिए इतिहास खोजक एवं अन्य मतों वाले गुरू नानक देव जी को शन्ति का अवतार (Prophet of Peace) कहा करते हैं।

९. गुरू नानक देव जी तथा मुहम्मद जी

अब हम मनुष्यों के उस नेता की ओर आये हैं जिनके अनुयाई हिन्दुओं की अपेक्षा संख्या में दूसरे स्थान पर हैं। मुहम्मद जी के बारे में यूरोप में एवं भारत में प्राय: अनादर फैल रहा है। इनके नाम पर इनके पश्चात् आये शासकों ने भारत में बहुत ही अत्याचार किये हैं और इन अत्याचारों के कारण इनका नाम सत्कार से दूर होता गया है, परन्तु जब इनका जीवन एवं इनका कुरान पढ़ा जाये तो लगता है कि अरब के असभ्य लोगों के आचरण के सुधार एवं आत्मिक बल भर देने में आपने अच्छी सेवा की है। ईसाई लोग तो इनके मत को अपने मत की अपभ्रंश दशा का मत ही कहते हैं। परन्तु यह सत्य है कि एक सी बातें बहुत सी हैं। इबरानी अवतार दोनों में एक ही हैं, यहाँ तक कि मुसलमान ईसा जी को भी अवतार मानते हैं। ईश्वर एवं शैतान के ख्याल भी दोनों के एक जैसे हैं,

कर्मों की लड़ी भी मिलती जुलती है, परन्तु आपस में फूट एवं नाराज़गी बहुत ज्यादा है और यह आरम्भ से ही है।

खैर! हमें इन बातों के व्योरे की यहाँ पर कोई आवश्यकता नहीं, यही जानना काफी है कि १३ करोड़ से अधिक मनुष्य 'मुहम्मद' शब्द का सत्कार करते हैं। तेरह, चौदह शताब्दियों के व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उसका अधिकार लोगों के मनों पर है। जब हम मुहम्मद साहब के जीवन की खोज करते हैं तो हम उनके समस्त गुणों अवगुणों का त्याग करके उन्हें विलक्षण बनाकर दिखाने वाला यदि किसी विशेष गुण धार्मिक पक्ष का खोजते हैं तो वह हमें मिलता है:–

"ईश्वर पर भरोसा"।

यह गुण है, जिसका एक कमाल हम उनमें देखते हैं। उनका प्रभु पर विश्वास है, केवल दिमागी निरीक्षण से उत्पन्न हुई एक अक्रिय अस्तित्व का विचार मात्र नहीं पर निश्चित रूप से निश्चित।

इनका निश्चय शिखर पर था, इन्हें प्रभु के अस्तित्व में संशय के बिना वास्तविकता का निश्चय था। वह उनका अल्लाह उन्हें संदेश भेजता है, जैसे मनुष्य का संदेश मनुष्य को आता है। वह उसी निश्चय से उस संदेश को लेते हैं। पर्वत पर अकेले बैठे हुए उन्हें देवते द्वारा निश्चित रूप से अल्लाह बोलता हुआ और उसकी आज्ञा सुनाई देती है। केशव चन्द्र सेन जी भी कहा करते थे कि हमें परमेश्वर जी का शब्द सुनाई देता रहता है[१], पर मुहम्मद जी को अल्लाह का बोलना इस प्रकार था जिस तरह मनुष्य के साथ मनुष्य मनुष्य द्वारा बोलता है। फिर यह है कि अल्लाह को वे जन्म से रहित मानते हैं, उसके अस्तित्व को अपने शरीरधारी आकार की भाँति निश्चित रूप से समझते हैं।

अब जब आप श्री गुरू ग्रन्थ साहब जी की शरण लें, तब आपको स्पष्ट दीख पड़ेगा कि गुरू नानक देव जी ईश्वर के खोजी एवं जिज्ञासु मात्र नहीं हैं। गुरू नानक देव जी को प्रभु एक जीवित जाग्रत 'वास्तविकता' है, एक रूहानी लहर देने वाला 'यथार्थ' है और इसे वे हमारी भाषा में प्रकट नहीं कर सकते क्योंकि वह बोली का विषय नहीं है। 'सत्य' एवं कभी 'सच्च' कह कह कर बताते हैं, इस 'सच्च' पर उन्हें भरोसा है कि जो दुहाई दे देकर निकलता है:–

"आदि सचु जुगादि सचु॥
है भी सचु॥
नानक होसी भी सचु॥ [जपुजी]

इस सच्च को फिर 'कर्तार' कहते हैं। कई दार्शनिक उसकी ईश्वरीयता से इन्कार करते हैं, पर गुरू जी उसे सत्ता मात्र नहीं बताते, अपितु अस्तित्व वाला एवं पुरुषत्व वाला पुरुष कहते हैं और सम्मुख खड़े होकर कहते हैं:–

१. केशव चन्द्र सेन, राजा राम मोहन राय, प्रताप चन्द्र आदि सभी बड़े ईसा जी तथा गुरू नानक देव जी के विचारों से एक खुला विचार भक्ति एवं उपासना का लेकर बृह्मो के नाम पर एक समाज के प्रचारक हुए हैं, अवतार एवं पैगम्बर नहीं। केशव जी ने तो आप गुरू नानक देव जी को बहुत ऊँचा देखा है और कहा है कि मैं गुरू नानक देव जी के जूतों का तस्मा खोलने के योग्य नहीं हूँ।

'तू' 'सच्च' है और जो तैने किया है, वह भी सच्च है।

सचे तेरे खण्ड सचे ब्रहमंड॥
सचे तेरे लोअ सचे आकार॥
सचे तेरे करणे सरब बीचार॥
सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु॥
सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु॥
सचा तेरा करमु सचा नीसाण॥
सचे तुधु आखहि लख करोड़ि॥
सचै सभि ताणि सचै सभि जोरि॥
सची तेरी सिफति सची सालाह॥
सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह॥
नानक सचु छिआइनि सचु॥
जो मरि जंमे सु कचु निकचु॥ [वास आसा म: १]

देखिए कैसा अचल विश्वास है। तू सच, तेरा किया हुआ सच पर तू अवतार देहधारी नहीं, तू जन्म मरण से रहित है, असत्य से परे है, गुरू नानक का यह प्रभु भय से परे है:-

'नानक निरभऊ निरंकार सचु एकु'॥ [वास आसा म: १]

यह सच्च अक्रिय शक्ति ही नहीं, यह जीवित शक्ति, जीवित अस्तित्व, पर अकाल (काल रहित) मूर्ति है, मूर्ति। हाँ जी, 'अविद्यमान' नहीं, भ्रम एवं कल्पना नहीं, आकार रहित नहीं, मूर्ति है, अर्थात एक आकार है, देश रहित, काल रहित, कारण रहित पर फिर 'है' एवं 'है' करके ही गुरू जी उसका यश गाते हैं, उसे हमारे ऊपर प्रकट करते हैं। दौलत खाँ लौदी एवं काज़ी निमाज़ पढ़ते हैं, गुरू नानक जी कहते हैं कि मेरे अल्ला को यह निमाज़ें स्वीकार नहीं, तुमने मन तो घोड़ों एवं बछड़ों को दे दिया है, मेरे ईश्वर को नहीं दिया। जिसे गुरू नानक 'मेरा प्रभु' कहता है, उस पर कितना प्रत्यक्ष भरोसा है और कितना निश्चित विश्वास है, उस पर।

इस प्रभु में गुरू नानक देव जी का विश्वास वाणी से प्रकट होता है। गुरू नानक देव जी का विश्वास ऐसा है कि उसे अपना पति मानकर विरह करते हैं और प्रार्थना करते हैं, दुख एवं सुख सुनाते हैं और निश्चित ढंग से उसके अस्तित्व का वर्णन करते हैं। मंतकियों की भाँति उसे सिद्ध करने के लिय केवल तर्क मात्र नहीं करते। दार्शनिकों की भाँति केवल विचार वितरेक की शरण लेकर उसके अस्तित्व के बारे में विचार करते करते 'यों सिद्ध हुआ' कि उड़ान तक के काल्पनिक मण्डल में ही नहीं रह जाते बल्कि कहते हैं, 'ईश्वर' है। आप 'ईश्वर है' से ही आरम्भ करते हैं और मध्य एवं अन्त में भी 'ईश्वर है' ही देखते हैं। वे ईश्वर को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं और आत्म विश्वास में कहते हैं-

सरब जोति तेरी पसरि रही।
जह जह देखा तह नरहरी॥१॥[1] [रामकली म: १]

गुरू जी किसी के द्वारा संदेश नहीं सुनते। पर्दे के पीछे से आवाज़ नहीं सुनते, वे प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। स्वयं अपने तजुर्बे में बिना किसी अन्य की सहायता के सीधा ही अपने अकाल पुरुष को देख रहे हैं:-

जह जह देखउ तह तह साचा॥ [गउ: म: १]

जो प्रभु पुस्तकों द्वारा सिद्ध हो सकता है, प्रकृति जिसे लक्षण होकर लखा देती है, उस प्रभु से पृथक गुरू नानक को अपना प्रभु प्रत्यक्ष दीखता है। वे नहीं कहते कि प्रभु होगा, आओ देखें; है भी कि नहीं, प्रभु हो सकता 'है'। वे कहते हैं, **'प्रभु है'** और जिधर भी हमारी दृष्टि जाती है, उसे देखती है।

वे प्रभु में अपने गुरू को देखते हैं, प्रभु में पिता देखते हैं, प्रभु में माता देखते हैं और अन्त में वाणी में प्यारा प्रियतम एवं पति देखते हैं और न्योछावार होते हैं। गुरू ग्रन्थ जी में प्रभु सचमुच की वास्तविकता है, यह कहना कि गुरू नानक सच्चा खोजी (Seeker after God) था, ग़लत है। गुरू नानक देव जी को उनका प्रभु प्राप्त था, प्रत्यक्ष था, ज़ाहिर ज़हूर और हाज़िर हजूर था। वे उसे जानते पहचानते थे और देखते थे, इस नींव पर वे उसके निश्चय में परिपक्व एवं अचॅल थे।

माता, पिता, बहिन, पत्नी, देश का राजा आदि गुरू नानक को उसके प्रभु की आज्ञा की ओर से वर्जना करते हैं। पर उन पर मोह, भय, आदि कोई वस्तु अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। गुरू नानक का निश्चित प्रभु उसे वेईं नदी में से अपने पास बुला लेता है और कहता है कि 'नानक! यह अमृत मेरे नाम का प्याला है, तू इसे पी'। '...तू जाकर मेरा नाम जप और दूसरों से भी जपा[2]।' निश्चित रूप से प्रभु ने यह आज्ञा दी है। अब गुरू नानक को परिवार अथवा संसार का कोई अन्य सुख कब बाधा डाल सकता है, प्रत्यक्ष प्रभु ने, प्रत्यक्ष ईश्वर ने आज्ञा की[3], गुरू नानक जी पुत्र एवं पत्नी को विलखता हुआ छोड़कर

---

१. इसी अटॅल निश्चय के प्रत्यक्ष दर्शनों में पंचम गुरू जी गर्जकर बोले थे:-
"वेद कतेब संसार हभाहूँ बाहरा॥
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा॥" [आ: म: ५]

२. पुरातन जन्मसाखी।

३. वाहिगुरू की ओर से बुलावा आने पर प्रत्यक्ष उसके दरबार में जाने एवे हुजूरी में से उच्च पदस्थता एवं शब्द सोहले की आज्ञा लेकर आने के बारे में गुरू जी ने स्वयं गुरूवाणी में हमारी जानकारी के लिए हमारी ही भाषा में इस प्रकार बताया है:-
हउ ढाढी वेकारु कारै लाइआ॥
राति दिहै कै वार धुरहु फुरमाइआ॥
ढाढी सचै महलि खसमि बुलाइआ॥
सची सिफति सालाहि कपड़ा पाइआ॥
सचा अंमित नाम भोजनु आइआ॥
गुरमती खाधा रजि तिनि सुख पाइआ॥
ढाढी करे पसाउ सबदु वजाइआ॥
नानक सचु सालाहि पूरा पाइआ॥२७॥ [वार माझ म: १]

अपने प्रत्यक्ष प्रभु की आज्ञा का पालन करने के लिए संसार में पाँच बार लम्बे चक्कर लगाते हैं, दूर-दूर तक जाते हैं, दुख सहन करते हैं, प्रत्यक्ष प्रभु का प्रेम सोहला सुनाते हैं। कैसा उच्च और सच्चा विश्वास है।

अब आईए उनके कमाल की ओर! 'प्रभु है' मुहम्मद जी में भी इसका पता मिलता है, पर गुरू नानक के लिए 'प्रभु है' निरन्तर लगाव था और शाश्वत निश्चय था। यह निश्चय कोई व्यस्तता, कोई नींद, कोई दुख नहीं था जो भुलाए अथवा किसी समय भूल में डाले, उठते, बैठते, सोते, मार्ग पर चलते, स्वास-स्वास में निरन्तर एक शाश्वत निश्चय था, अचल, अटूट, काल रहित, सदैव जागृत आत्मा में समाया हुआ निश्चय था। सभी अवतारों एवं पैगम्बरों में शुभ गुण विद्यमान थे, पर परमेश्वर के साथ मन को, सुरत को निरन्तर लगाए रखना, उसका हमारे मन से पृथक न होने देना, फिर गृहस्थ में रहना, कर्तव्यों का पालन करना, इत्यादि विशेषताएँ गुरू नानक में थीं। काल (Time) पर यदि विजय प्राप्त की तो इसी निरन्तरता द्वारा गुरू नानक ने प्राप्त की, यदि देश (Space) पर विजय प्राप्त की तो गुरू नानक ने निरन्तर अपने ध्यान को 'साईं है' के एक इस केन्द्र पर लगाए रखकर की और यहाँ से ध्यान को अन्य स्थान पर जाने देने की आज्ञा ने देकर की। कारण एवं कार्य के झगड़े, कारण (Cause) के झगड़े को गुरू नानक ने जीता केवल निरन्तर 'आज्ञा' में रहकर, निरन्तर वाहिगुरु के साथ जुड़े रहकर और अपने ध्यान को केवल प्रभु पर टिकाकर, प्रत्येक दशा में, प्रत्येक संकट के समय, प्रत्येक घटना को प्रभु की ओर से समझकर सहन किया। गुरू नानक देव जी का निश्चय निरन्तर निश्चय था, इसीलिए अमर निश्चय था, काल रहित निश्चय था। इस प्रकार के गुरू नानक के कमालों का कमाल धुर उच्चकोटि का कमाल था।

इसके अतिरिक्त गुरू नानक ने बुराई का ईश्वर शैतान को नहीं माना। परमेश्वर को–जैसे कि हम बता चुके हैं–पुश्त-दर-पुश्त अनख रखने वाला नहीं कहा। इसके साथ ही प्रभु को जब्बार और अनख कहहार नहीं कहा। फिर तमाशा यह है कि अपने प्रभु को तेजस्वी, कान्ति तथा तेज दोनों सौन्दर्य वाला देखा है। पर उसकी कान्ति के अन्तर्गत सच्च तथा न्याय देखा है और प्यार का पुंज होने के नाते दयालु, कृपालु, नहीं-नहीं सदैव कृपा दृष्टि द्वारा निहाल वाला कहकर पुकारा और दुहाई दी है :–

लोका मत को फकड़ि पाइ॥
लख मड़िआ करि एकठे एक रती ले भाहि॥१॥ [आसा म: १]

प्रभु माता-पिता होने के नाते पापों के लिए क्षमा करता है, जिस प्रकार लाखों मन ईंधन एक रति मात्र अग्नि से जल जाती है, इसी प्रकार उसकी हुजूरी लाखों पापों को जला देती है।

गुरू नानक ने अहं रहित होने के नाते निज को सृष्टि का सिफारिशी भी नहीं कहा। महापुरुषों के पैगम्बरों एवं अवतारों का यह भी एक प्रेम है कि हम वाहिगुरू के पास सिफारिश करेंगे, पर इसमें कभी लेश मात्र अहं रह जाता है। उच्च अटारियों पर रहने वाले गुरू नानक देव जी ने हमारे लिए इकहत्तर-बहत्तर वर्ष सूली पर जीवन व्यतीत किया, हम पर सब कुछ न्योछावर किया, प्रभु के प्यार भरोसे, श्रद्धा में पुत्रों का लाभ भी न्योछावर

कर दिया और ईश्वरीय भरोसे वाले शिष्य को सब कुछ दे दिया, यह सर्वोच्च सिफ़ारिश है, इस कमालों के कमाल–अहं के अभाव में रहकर हमारे लिए प्रार्थना की थी–

'कहै नानकु जीवाले जीआ जह भावै तह राखु तुही'।।[1]

फिर आप किस अवस्था में रहे :–

होंदा फड़ीअगु नानक जाणु।।
ना हउ ना मै जूनी पाणु।।[2] [वा: मला: म: १]

फिर क्या गुरू जी ने सिक्खों को अपनी सहायता देने से इन्कार किरके जिज्ञासु मन को निराशा में डाल दिया? नहीं, आपने कहा :–

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ।
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ।। [वार माझ म: १]

गुरू साक्षी भरेगा, तुम्हारी सहायता करेगा, पर तब जब कि तुम दुसरे का हक नहीं खाओगे। गुरू जी सर्वोच्च आचरण की शुद्धता एवं धर्म की नींव रखकर उसे आत्मिकता की ऊर्द्धवगमता में ले जाते हैं, अर्थात् ऊँचा उठाकर ले जाते हैं। मन को पवित्र करके आत्मिक मण्डल के साथ जोड़ देते हैं।

अत: जैसे शेख ब्रह्म (फ़रीद) को सतगुरू जी ने अन्त होने वाले आपे को बाँटकर निहाल किया, उसी तरह हमें सारे जगत को आपे को आपे में मिटा हुआ आपा गुरू जी ने दे दिया, 'प्रभु' दे दिया, अपना सच्चा सिक्ख दे दिया और 'शिष्यता' दे दी।

हाँ जी, गुरू जी के जीवन का विशेष कमाल, विशेष लक्षण, प्रभु के निश्चय में इस कमाल का है कि उनका निश्चय निरन्तर भक्ति, निरन्तर स्मृति, सदैव हुजूरी वास है और हमें कहा :–

हे सिक्खो! प्रभु के साथ सदैव लगे रहो, आठ दिनों में एक दिन ही नहीं, प्रतिदिन सवेरे सायंकाल को नहीं, प्रतिदिन पाँच बार नहीं, पर निरन्तर–

राति दिहै हरि नाउ मंनि वसाईऐ।। [सूही म: १]

श्वास-श्वास में अदरास कीजिए (निरन्तर हृदय का लगाव अनन्त के साथ रखकर)। प्रतिपल हवन कीजिए (उसकी स्मृति को आहुती देकर) हरमद सिजदा (प्रणाम) कीजिए (निरन्तर हुजूरी में निवास करके)।

१०. श्री गुरू नानक देव जी तथा शंकारचार्य, प्लातूस, सुक्रात, अरस्तु, काँट, शापनह्यूर आदि

१. शंकराचार्य, प्लातूस, काँट आदि, ये सभी अवतार एवं पैगम्बर नहीं, पर दार्शनिक

---

१. तीसरे गुरू जी ने कहा :–
जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि।।
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि।। [वा: विला: म: ३]

२. शेख ब्रहम (फरीद सानी) को ऐसे भक्त की खोज थी जो स्वयं अहं से रहित हो गया हो, वह आपा बाँटकर मुझे दे, 'मति होदी होइ इआणा। ताण हौदे होइ निताणा।। अणहोदे आपु वंडाए, कोई अैसा भगतु सदाए।।' इस आदर्श महापुरुष की खोज फरीदसानी शेख इब्राहीम को थी–जब गुरू नानक देव जी उसे मिले, तो शीतलता प्रदान की।

हुए हैं। ये सभी विचार (Idealism) की खोज करने वाले बुद्धिमान पुरुष थे। सुक्रात की बुद्धिमत्ता एवं जीवन व्यवहार को शुद्ध करने का आदर्श रखने के कारण सुखमय जीवन को वास्तविक रूप से बनाने की ओर विशेष रूप से झुके हुए बुद्धिमान थे।[१] इन्होंने यूनान में 'वाहिगुर एक है' के विचार का प्रचार किया और इस प्रचार के बदले उसको विष देकर मार दिया गया। प्लातूस इनके चेले थे; पर उनकी फिलासोफी (दर्शन) शंकराचार्य के साथ बहुत मिलती है अर्थात् वे विचार की खोज करने वाले बुद्धिमान (Idealistic) थे। इसी तरह अरस्तू के विचार इसी झुकाव वाले हैं। इनका तर्क, उक्ति हमारे गौतम के न्याय शास्त्र के साथ कुछ मिलता-जुलता है। इस महान दार्शनिकों को लगभग दो हज़ार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसी समय के बीच में भारत में शंकराचार्य जी हुए जो दर्शन की दृष्टि में इनकी अपेक्षा बहुत ऊँचे उठे और दूसरी ओर जर्मनी में अब काँट एवं शापन हयुर हो चुके हैं, जिन्होंने दर्शन की कई समस्याओं का पश्चिम के दर्शन शास्त्र में समाधान किया है। यह दानों भारतीय दर्शन के ज्ञाता भी थे। सर्व पूर्व उपनिषदों के विचार, दर्शन का आरम्भ हैं। तब से अब तक यह एक रोचक अध्यन है कि मानव का विचार दर्शन की ओर किस प्रकार आकृष्ट हुआ और उन्नत होता गया है? पर यह विचार इतना लम्बा है कि इसका वर्णन एक भारी ग्रन्थ का रूप धारण कर सकता है।

श्री गुरू नानक देव जी ने समस्याओं एवं विशुद्ध उक्तियों की लालटेन लेकर जगत की जटिल समस्याओं एवं कभी न खुलने वाली अड़चनों के खोलने में ही व्यस्त रहने की परिपाटी नहीं चलाई। गुरू नानक देव जी मनुष्य के आचरण को ऊँचा करते एवं अंतस को अनुभव में ले जाते थे। सच्च तो सारा ही सिखाया है, आत्मिकता सिखाई है, उनकी शिक्षा वाहिगुरू के ज्ञान का अनुभव है, उसी में दर्शन भी है, उक्ति भी है, पर नाम, प्रेम तथा भक्ति के व्यवहारिक ऊँचे वलवले हैं, फिर उन्होंने बुद्धि से आगे 'सुधि' एवं 'सिद्धि' एवं 'विस्मय' का पता दिया है। पर वहमों में पड़ना अथवा सोच-विचार में पड़कर सुरत को निर्बल करना नहीं सिखाया। फिर आप कहेंगे कि हमने क्यों दार्शनिकों में गुरू नानक देव जी का वर्णन किया है? केवल इसलिए कि किसी धर्म से तुम दर्शन एवं इसी प्रकार के विचारों को पृथक नहीं कर सकते। या तो धर्म किसी एक दर्शन पर चलता है, अथवा धर्म से दर्शन पनप पड़ता है। किसी न किसी तरह दोनों का कुछ न कुछ सम्बन्ध है, जो पृथक नहीं हो सकता। वास्तव में ठीक अर्थों में दर्शन धार्मिक अवस्था की यथार्थ समझ का ही नाम है। धर्म अथवा मज़हब है 'अमली जीवन' एवं धर्म का दार्शनिक पक्ष है ही दर्शन अर्थात् उस धर्म की सूझ। बुद्ध जी ने पवित्रता का उपदेश दिया पर उसके बीच में से उनका पृथक दर्शन बन गया। जयदेव एवं गौरंग ने कृष्ण की प्रीत में संगीतिकी हिलोरे लेकर प्रेम जीवन उत्पन्न किया, परन्तु रामानुज तथा अन्य आचार्यों ने द्वैत, दर्शन के मन्दिर का निर्माण किया। इसलिए हमें आज देखना है कि समुचित तौर पर पाँच-छः हज़ार वर्ष में जो कुछ दर्शन के नाम पर बना है, 'कांट' नामक

---

१. प्लातूम जी Idealistic दर्शनाचार्य हुए हैं। सुक्रात को Realistic (दृष्टमान सत्य है यह मानने वाले) बुद्धिमान कहना उचित है, क्योंकि वे व्यवहारिक जीवन एवं कर्मों की ओर झुकाव रखते थे। वे लाभदायक को सुन्दर कहा करते थे।

दार्शनिक ने इसकी व्याख्या एक अनोखे ढंग से की है, गुरू नानक देव जी की सुमति हमें उसके सम्बन्ध में कहाँ पर ले जाती है?

कांट का विचार यहाँ पर पहुँचा है कि हमारे मन की अपनी वास्तविक काल्पनिक दशा 'देश काल निमित्त' के साथ बनी है। अर्थात् हम किसी ऐसे विचार पर विचार ही नहीं कर सकते जिसमें समय (Time) का विचार देश (Space) अर्थात् दूरी का विचार न हो और जिसमें कारण का प्रभाव विद्यमान न हो। पहले दार्शनिकों का विचार था कि यह दृष्टमान संसार 'देश काल निमित्त' में है, पर अब 'काँट' आदि दार्शनिकों ने माना है कि देश काल निमित्त हमारे मन की प्रकृति में है। हमारा मन इनसे उपाधिधारी है। इसकी पहली दशा यही है।[१]

२. दूसरा विचार यही है कि जब हमें सौन्दर्य की झलक पड़ती है तब हमारा मन थोड़े समय के लिए अचल हो जाता है अथवा खो जाता है, अर्थात् विचारने, जानने और प्रतीति करने के अपने तीनों कामों का त्याग कर देता है, उस समय जो हमारी दशा होती है, वह एक प्रकार के रस का स्वाद होता है। इस समय अगम्य, अकथनीय, अथाह, पारब्रह्म अवस्था में हम झांकते हैं। पर यह दशा क्षणभंगुर होती है, शाश्वत नहीं होती।

३. जब तक हमारा मन देश काल निमित्त में है, तब तक प्रभु को नहीं जान सकता क्योंकि वह देश काल में आ[२] नहीं सकता। उसका विचार यह मन कर ही नहीं सकता जो देश काल बिना कोई ख्याल ही नहीं कर सकता।

अब गुरू नानक जी के प्रत्यक्ष व्यवहार करके बता देने वाले एवं पहुंचा देने वाले व्यवारिक जीवन की ओर आइये। लगता है कि उन्हें इस सब कुछ का ज्ञान था। पर व्यवहारिक आत्मिक ढंग से था और प्रत्यक्ष था। किन्तु उन्होंने उस प्रभु को जो सौंदर्य की झलक से हम में समाधि अवस्था एवं 'देश काल निमित्त' से ऊँची अवस्था उत्पन्न करता है 'विस्मय' के अंतर्गत वर्णन किया है। यहां विस्तार उचित नहीं, श्री गुरू ग्रन्थ साहब एवं भाई गुरुदास जी की वाणी में इस दशा की अवस्थाओं का भी वर्णन किया है। विस्मय एक उच्च दशा है, जिससे हमें उस पार का अनुभव, उसका स्पर्श एवं उससे लगाई डुबकी का पता मिलता है। हमारे विचारानुसार जगत में पहले बुद्धिमान गुरू नानक देव जी हुए हैं जिन्होंने आज से साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व 'विस्मय' का अनुभव करके इसका वर्णन किया है।

फिर तर्क वितर्क की चर्चा एवं देश काल निमित्त के विचार के विस्तार का तो वर्णन नहीं किया। परन्तु व्यवहारिक ढंग जो गुरू नानक जी ने प्रभु प्राप्ति का बताया है वह दर्शन के इस दृष्टिकोण से 'देश काल निमित्त' से मुक्त करके आत्मा को निज घर में ले जाने वाला है। दर्शन कहता है कि यदि विस्मय की दशा निरंतर हो जाये तो 'देश काल निमित्त' हमारे मन से दूर हो जाये अथवा यह मन अ+मन हो जाये तो हमारा अन्तस का जीवन कण 'अनंत' में पहुँच जायेगा। अब लीजिए तीनों बातें एवं गुरू नानक जी के तीनों कमाल।

---

१. Apriori.

२. 'देशकाल अन्य अवच्छिन्न (शंकराचार्य) एवं सर्व विक्रिया रहित। [वह: उपनिषद]

काल–एक के पश्चात् दूसरी बात का घटना हमें काल का पता देता है। (घटनाओं का क्रम एक के पश्चात् दूसरी का घटना–का नाम काल है)। अब यदि एक बात निरंतर चले और मन दूसरी बातों के घटने से हटता-हटता एक ही लगन में प्रत्येक वेला में आ जाये तो काल का ज्ञान 'भूत, भविष्य' से निकलकर एक 'वर्तमान' में प्रवाहित हो जायेगा[१]। प्रत्येक्ष क्षण में वाहिगुरू में विचार का रहना, उस क्षण को जो एक 'केन्द्र' है, निरंतरता द्वारा दृढ़ करता है। जब विचार एक 'नाम' में है, तब जो क्षण व्यतीत हो गया है, उसमें जायेगा ही नहीं और प्रत्येक क्षण जो 'वर्तमान' बन गया है, उसमें वाहिगुरू से ध्यान को उखड़ने नहीं देगा तब भविष्य में जाने से रुकेगा? और भविष्य का प्रत्येक क्षण 'अब' बनता जायेगा, इस तरह 'वर्तमान' में नाम टिका देगा। हमारा वर्तमान 'सदैव वर्तमान' बन जायेगा। नाम में स्थित अभ्यासी का काल का विस्तार इस सदैव वर्तमान, इस Eternal now में आकर टिकेगा। यह टिकाव एक केन्द्र पर टिक जायेगा। अर्थात् काल एक बिन्दु पर रह जायेगा, यह बिन्दु होगा तो एक काल, पर अकाल का सा होगा।

बिन्दु वह वस्तु है जो है तो सही, पर उसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई (Magnitude) कोई भी नहीं है। सिद्ध हुआ कि नाम का साथ काल के विचार, एक ऐसे बिन्दु पर आकर टिकेगा जो होगा भी, पर न होने जैसा।[२]

देश–उसी तरह 'देश' (Space) वह है, जिसमें दृष्टमान पदार्थ जो एक दूसरे से परस्पर दूरी रखते हैं, उन्हें जाना जाये। यह दृष्टमान अंतरिक्ष अथवा दूरी, एक पदार्थ से दूसरे में जो अंतर है, वह देश है। (वस्तुओं का क्रम, उनके परस्पर स्थान के अनुसार का नाम देश है)।

गुरू जी ने दूसरा साधन ध्यान बताया है, ध्यान अभ्यासी को एक केन्द्र पर टिकाता है। जब मन प्रत्येक क्षण एक नाम जपता है और 'वाहिगुरू है' इस एक केन्द्र पर ध्यान टिकाता है, तब विचार देश (Space) के समस्त विस्तार से एक बिन्दु पर जमता जाता है। जब संपूर्ण रूप से एक बिन्दु पर टिक जाता है, तब देश (Space) का विचार हमारे विचार में से मानो देश रहित हो जाता है। वह बिन्दु है तो देश का पर न होने जैसा। सिद्ध हुआ कि ध्यान द्वारा विचार देश (Space) के ऐसे बिन्दु पर आकर टिकेगा जो होगा भी और नहीं भी होगा।

---

१. वर्तमान समय में आइनस्टाइन एक गणित की विद्या के कमाल के बुद्धिमान ने काल को देश की चतुर्थ दिशा वर्णन किया है। प्रकृति को उस जैसे अन्य बुद्धिमानों ने देश (Space) का मोड़ (Curvature) बताया है। आश्चर्य की बात नहीं कि चतुर्थ दिशा तथा इस से आगे कि दिशाओं के जगत को अनुभव करने का कोई भीतरी यन्त्र मनुष्य में उन्नति करके इस तरह जागृत हो उठे, जिस तरह पुशबुद्धि से ऊँची बुद्धि का यन्त्र मनुष्य में से उत्पन्न हुआ था।

२. यदि एक फुट लम्बी वस्तु को आधा करें, इसके आधे को लेकर फिर उसका आधा करें, अब जो आगे से आगे वाले भाग का आधा भाग लेकर उसका आधा करते चलें तो यों करते-करते कहीं पर जाकर देखोगे कि शेष आधा क्या रह गया है? वह होगा तो ठीक पर न होने जैसा। तुम उसको हाथों द्वारा आधा नहीं सकोगे, पर कागज़ पर हिसाब लगाकर उसके आधे को आधा करते चलोगे, अत: वह होगा भी और नहीं भी होगा।

इसी तरह हम प्रत्येक वस्तु में कारण एवं कार्य का क्रम जानते हैं। एक कारण का विचार हमारे मन के स्वभाव में है (वस्तुओं का क्रम अपने कारण कार्य के अनुसार नमित्त है)।

गुरू जी ने तीसरा साधन प्रभु की आज्ञा का बताया है। जो अभ्यासी प्रत्येक कार्य एवं प्रत्येक घटना के कारण के अन्त तक जाता है और उसे अनंत की लीला समझता है। यों अनन्त की आज्ञा के एक बिन्दु पर उसका टिकाव होता है। साथ ही जो नाम तथा ध्यान का अभ्यास कर रहा है उसे जो कुछ घट रहा है वह धुर से घटता हुआ दीखता है, यों वह टिकता-टिकता प्रत्येक बात के घटित होने पर आज्ञा के एक बिन्दु पर टिक जायेगा। यह आज्ञा का बिन्दु अपने आप में असीम होगा, पर न होने का सा।

अब जो अभ्यासी स्वाभाविक नाम से ध्यान एवं आज्ञा द्वारा 'देश काल नमित्त' की ओर से एक बिन्दु पर टिक गया है, वह 'देश काल निमित्त' के मानो मण्डल की सीमा पर पहुँच गया है, जिससे आगे वह है जो 'द्वन्द्व अतीत' है अथवा जिसे 'परम परे की दशा' कहिए अथवा ब्रह्म (Absolute) कहिये। यहाँ से आगे अब हमें पारब्रह्म के किसी चमत्कार ने ले जाना है। हम ऐसे ठिकाने पर पहुँचे हैं जोकि हमारे मण्डल की सीमा है, अब एक कदम पर हमें अनंत (वाहिगुरू) में पहुँचना है, पर अब बेअन्त में से कुछ अकथनीय वृतान्त का प्रयोग करना है, इस अकथनीच वृतान्त को एक गुरू नानक ने 'नदर' (कृपादृष्टि) कहा है।

दृष्टान्त के लिए–जब पानी उबालें तो यह २१२ अंश होता है, पर अभी यह पानी द्रव (Fluid) ही है। निराकार वायु के से रूप 'वाष्प' (भाप) में परिवर्तन नहीं हुआ। अर्थात् गैस की भांति नहीं बना। वह कौन-सी शक्ति आये जो इसे वाष्प बना दे। उसका नाम बुद्धिमानों ने 'गुप्त गर्मी' (Latent heat) रखा है, क्योंकि जब वाष्प का पारा लिया जाये तो २१२ ही होता है। कोई अधिक गर्मी नहीं होती, पर कोई कारण है जो द्रव पानी को वायु रूप वाष्प में पलट देता है,[१] यह तर्क नहीं है एक दृष्टान्त है। कुछ इसी तरह "देश काल नमित्त" के मण्डल की सीमा से अनंत में जो पलटा प्राप्त होता है वह किसी अनन्त के चमत्कार पर निर्भर होता है, और उसका नाम 'अनन्त की नदर' है। अर्थात् देश काल नमित्त' एवं 'नाम, ध्यान, आज्ञा, के साथ इस 'अंत एवं सीमा वाली सृष्टि' की हम सीमा पर पहुँचते हैं और आगे अनन्त की अकथनीय 'दृष्टि' हमें अनन्त में ले जाकर अकाल जीवन, अदेश जीवन, अबिचल जीवन में पहुँचाकर गुरू अर्जुन जी के कथनानुसार:–

"थिति पाई चूके भ्रम गवन"[२]॥ [सुखमनी]

में निवास देती है।

दर्शन के दृष्टिकोण से सर्वोच्च गुरू नानक देव जी ने अपने व्यवहारिक धर्म में हमें

---

१. इसी प्रकार अति शीतल जल ३२ अंश होता है, पर इसी अंश पर जाकर वह बर्फ बन जाता है। पानी 'द्रव' है, बर्फ 'ठोस' है, तापमान एक सा है। जिस कौतुक ने ३२ अंश पानी को ठोस बर्फ बनाया है, उसे भी लेटैंट हीट ही कहते हैं।

२. गुरू नानक देव जी ने कहा है :–
"आवण जाण रहे चूका भोला राम।" [तुखारी मः १]

वे साधन सिखाए हैं जिनके द्वारा आजकल के दर्शन की खोज द्वारा प्राप्त टिकाने[१] पर पहुँच हो जाती है। दार्शनिकों ने 'जाना' कि यों है :–गुरू नानक ने बाँह पकड़ी, अगुआई की और वहां पर पहुँचा ही दिया और कहा "बेटो! यह है" और 'यहां पर है' और 'अभी है'।

११. श्री गुरू नानक देव जी और बर्गसन

पशिचम के दार्शनिकों में से आजकल बर्गसन नाम का दार्शनिक फ्रांस में है, जिसके विचार की उड़ान बहुत ऊपर की ओर हुई है। जिनकी आंखें न्याय की सांकल की जकड़ के होते हुए भी योग निद्रा की ओर मुंद गई हैं। हां जी दर्शन के इतिहास में यह पहली बार है कि एक विचारवान पुरुष ने मन्तक तथा विचार की ओट को दुर्बल समझा है। बर्गसन का विचार कांट के इस सिद्धान्त के साथ मिलता है कि अपनी बुद्धि द्वारा पुरुष वास्तविकता को (ईश्वर को) नहीं देख सकता। कांट ने इसीलिए ईश्वर को बुद्धि का विषय नहीं माना, वह अपने इस विचार के बारे में लगभग इस स्थान पर पहुँच गये थे कि प्रभु दर्शन की खोज से ऊपर है।

बर्गसन का विचार है कि हमारे अन्दर खोज का दोहरा सामान है, एक बुद्धि (Intellect) द्वारा, दूसरा सहज ज्ञान (Intuition) द्वारा। इन दोनों के सहयोग के बिना वास्तविकता पल्ले नही पड़ सकती, क्योंकि वास्तविकता के भी दो पक्ष हैं, एक पदार्थ (Matter) मादा दूसरा जीवन (Life)।

विज्ञान के सभी सिद्धान्त बुद्धि की खोज का परिणाम हैं, बुद्धि जो कि प्रत्येक पदार्थ पर मंतक का प्रकाश पा-पा कर तथा विचार (Reason) की कसौटी पर घिसा-घिसा कर सिद्धान्त निकालती है, उसके सिद्धान्त केवल 'पदार्थ सिद्धान्त' हैं। बुद्धि के नश्तर के नीचे केवल माँस और हड्डियों की विद्या उत्पन्न होती है, जीवन की नहीं। जीवन की चाल का रहस्य इसकी समझ से ऊँचा है। बुद्धि अनाड़ी है और जीवन की नाड़ी के ऊपर इसकी अंगुल आ ही नहीं सकती। जीवन की उड़ान एक दूसरी वस्तु है। बुद्धि के लिए यह अन्य वस्तु है, क्योंकि बुद्धि पदार्थ (Matter) की बनी है और इसका विषय (प्रकृति) है, जो वस्तु इसकी पकड़ में आ जाए वह मैटर (प्रकृति) है। क्योंकि उसे सम्पूर्ण वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता, अत: इसे काट-काटकर एक-एक टुकड़े का अध्ययन करना है। इसकी काटने वाली छुरी के नीचे जीवन का प्रवाह रुक जाता है। जीवन है ही प्रवाह रूप, इसका रुकना ही इसका अन्त है, पर वास्तव में यह असीम है यह रुकता नहीं। बुद्धि की दृष्टि से यह रुकता है पर यह उस अन्धकार में जाकर छिप जाता है जो बुद्धि के दिए के बिल्कुल नीचे है। जीवन का प्रवाह एक परिवर्तन की उड़ान है एक बाढ़ का बढ़ा हुआ रूप है, एक अगम्य चाल है जिसके आगे बाधा नहीं लगाई जा सकती, जो किसी अपूर्णता से पूर्णता की ओर चल रही है, किसी न-निर्माण से किसी निर्माण की ओर, किसी केन्द्र से निर्माता विस्तार की ओर, बुद्धि को इसकी समझ नहीं आ सकती। इसका ज्ञान किसी

---

१. यह टिकाना वाहिगुरू है।

रहस्य के समझने की ओर बेहोश का संकेत मात्र प्राप्त हो सकता है। इस होश का नाम बर्गसन ने सहज ज्ञान (Intuition) रखा है। पर यह कुछ वही चेतना है जिसे हमारे धार्मिक सिक्ख साहित्य में 'सुधि' कहा गया है। बर्गसन का सारा ज़ोर इस बात पर लगा है कि यदि इसकी वास्तविकता के दर्शन करने हैं तो 'सुधि' की बेहोश होश अपने में पैदा करनी चाहिए, उसका विचार है कि दर्शन की सारी खोज बुद्धि के साथ नहीं बल्कि 'सुधि' के साथ होनी चाहिए।

यह 'सुधि' किस तरह भीतर उत्पन्न हो, बर्गसन को इस बात का पता नहीं चला। उसने संकेत मात्र कहा है कि 'सुधि' (Intuition) का ज्ञान 'दृष्टमान' की विद्या के साधन द्वारा प्राप्त हो सकता है[१]। यहाँ से स्पष्ट है कि बर्गसन की 'सुधि' बुद्धि की ही साथी है, पर है तनिक उच्च। बर्गसन को आत्म-विषय वाली बुद्धि की एक झलक मात्र पड़ी है, पर वह उसे विस्तार सहित वर्णन नहीं कर सका। इस बात में भी कमाल गुरू नानक देव जी का है, जिन्होंने बर्गसन से चार पाँच शताब्दियाँ पहले इस बात का पता दिया है, यथा–

'सभे बुधी सुधि सभि सभि तीरथ सभि थान'।। [वार सारं: म: १]

केवल पता ही नहीं, इसका ढंग भी आपने बताया है :–

मंनै सुरति होवै मनि बुधि।।
मंनै सगल भवण की सुधि।। [जपुजी साहिब]

इस सुधि के लिए मार्ग मानने का, विश्वास का, भरोसे का है। किसे मानने का? 'नाम' स्मरण का।

"ऐसा नामु निरंजुन होइ।।
जेको मंनि जाणै मनि कोइ"।। [जपुजी साहिब]

फिर अपने इसका टिकाना बताया है कि वह कहाँ की वस्तु है।

यथा :– **'तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि'।।** [जपुजी साहिब]

यदि वास्तविकता को देखने के लिए यह बात आवश्यक है ("If then anywhere there is possible for us a view of reality in its purity it will be in the inward view that we may obtain of this privileged object.")[२] गुरू साहब इस बात का

१. The Intuition may be gained after a long companionship with the external manifestations of reality as these are systematized in the physical sciences, and again, that many different images borrowed from very different orders of things may, by the convergence of their action, direct consciousness to the precise point at which by certain intuition is to be had.
["Critical Exposition of Bergson's Philosophy" by Stewart, page 284]

२. श्री गुरू ग्रन्थ जी में 'सुध' पद को 'सिधि' भी लिखा है :–
यथा :–कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी बुधि बदली सिधि पाई।। [गउ: कबीर]
जन्मसाखी में भी संकेत है, मरदाना ने पूछा है कि क्या वाहिगुरू बुद्धि द्वारा मिलता है तो गुरू जी ने कहा: मरदाना। यह बुद्धि पर्दा है और इस बुद्धि से आगे एक अन्य उत्पन्न होती है, वह संयोग कराती है।

३. 'अर्थात् अंतर्मुखँ दृष्टिपात करने से इसका संभव है, "The Philosophy of change" by Carr, page 26.

निर्णय, बिना किसी दर्शन के, सिद्धान्त के, पहले ही कर गए हैं, अपने कहा है :–

अन्तर की गति जाणीऐ गुर मिलिऐ संक उतारि। [सिरी राग म: १]

और अन्तर्दर्शी होने के लिए गुरू जी ने अर्थात् गुरू नानक ने सुखैन मार्ग यों बताया है:

'अहिनिसि अन्तर रहै लिवलाइ'।।

जिस समय वाहिगुरू जी का ध्यान और उनका नाम समरण मन को देश की कैद में से निकालकर ऊपर को उठाता है तो यह लौ में पलटने लगता है, लौ एक संगम है, जिस में नाम एवं नामी मिल जाते हैं। इस त्रिवेणी का स्थान आठ पहर की 'सुध' (Intuition) की प्राप्ति है, जिसकी झलक किसी-किसी दार्शनिक ने देखी तो है, पर पूरी तरह प्राप्त नहीं हुई और इसके मिलने से क्या होता है :–

आपु पछाणि रहै लिव लागा।।
जनमु जीति गुरमति दुखु भागा।। [ब: म: १]

अर्थात् वाहिगुरू में लौ लगते आपे की पहचान हो जाती है, जन्म जीत लिया जाता है और दुख दूर हो जाते हैं। अर्थात् परम पद की प्राप्ति हो जाती है।

१२. गुरू नानक जी तथा विज्ञान

संसार में इस नाम के अन्तर्गत मनुष्य के दुष्टमान के ज्ञान ने बड़ी उन्नति की है। यह सारी उन्नति दृष्टमान अर्थात् दुष्टमान पदार्थों के संबंध में है। विचार कीजिए, यह जो दृष्टमान पदार्थ हैं, इनका दृष्टा भी कोई मानवता में ही है। जिसकी दूरबीन सृष्टि ने प्रत्येक पदार्थ विज्ञान खोज ने निकाला है। यदि दृष्टमान पदार्थों में से प्रत्येक का एक विज्ञान है, तो 'दुष्टा' का अपना विज्ञान भी चाहिए। अब इस ओर गुरू नानक देव जी का कमाल यह नहीं कि हम भी किसी की देखा-देखी करके कहें कि श्री गुरू ग्रन्थ साहब में गुरू जी रेल, तार, चुम्बक पत्थर सिखा गये हैं। यों कहें तो हम उनकी बुजुर्गी को दूसरे दर्जे तक ले जाते हैं। उनका कमाल यह है कि विज्ञान के उस समय एवं बाद में प्राप्त हुए सिद्धान्तों के साथ उनके विचारों का, जहां कहीं साधारण रूप से वर्णन आया है, विरोध नहीं है। उन्हें प्रत्येक वस्तु के शुद्ध विचार प्राप्त थे।

उदाहरणत: उस समय सारा भारत पृथ्वी के नीचे 'बैल' एक कछुए एवं इसी प्रकार के कई विचारों को मानता था, पर गुरू नानक देव जी को ठीक विचार प्राप्त थे कि पृथ्वी के नीचे बैल आदि कुछ भी नहीं।[१] उस समय सात आकाश एवं सात पाताल की संख्या का पता था, पर गुरू नानक को लाखों तथा लाखों पातालों का ठीक विचार प्राप्त था।[२] उस समय सूर्य, चन्द्र एक-एक का पता था, गुरू नानक देव जी को 'केते इंद चंद सूर केते' का ज्ञान था, साथ ही आप जानते थे कि सूर्य, चन्द्रमा की चाल करोड़ों मीलों तक

---

१. धरती होरु परै होरु होरु।।
तिस ते भारु तलै कवणु जोरु।। [जपुजी साहिब]

२. पाताला पाताल लख आगासा आगास।। [जपुजी साहिब]
तारों के खण्डों के विश्वास जो दूरी के हिसाब से बँधे हुए हैं, आकाश, पाताल हैं।

चलती हैं और बेअन्त हैं[१]। सरांश यह कि (Objective Science) 'दृष्टमान पदार्थों के विज्ञान' के संबंध में स्वाभाविक रूप से ही जिस बात का वर्णन आ गया गुर नानक के विचार ग़लत विचार 'Wrong Conception' प्रकट नहीं करते रहे। पर आपका कमाल आपके ठीक विचारों के साथ इस बात में है कि उन्होंने Subjective Science (दृष्टा का विज्ञान) सिखाया है। वह जो हमारे भीतर जीवित बोलने वाली कुछ शक्ति है–जिसने सभी विज्ञानों की खोज की है, उसका अपना विज्ञान भी गुरू ग्रन्थ जी में गुरू नानक देव जी ने सिखाया है। इसलिए कि विज्ञान की खोज करने वाला मनुष्य अपने बारे में, अपने 'आपे' के बारे में भी ठीक विचार Right Conceptions का स्वामी बन सके और इस तरह जीवन सुखी व्यतीत करे और इसका ढंग भी सीख जाये। दृष्टमान के पदार्थों की खोज में केवल चकित हो होकर ही बल हार जाये, पर 'दृष्टा' का यथार्थ विज्ञान जानकर आप ऊँचा उठे, दृढ़ होवे, नीरोग होवे और अगम्य में 'सुगम गंमता' प्राप्त करे। अत: सभी विज्ञानों की मां विज्ञान में कमाल दिखाकर गुरू नानक देव जी ने इस मण्डल के सभी बड़ों में अपनी बड़ाई दिखाई है। ईसा जी ने कहा था कि उस 'मानव को क्या लाभ प्राप्त है कि सारा संसार प्राप्त कर ले, पर अपनी आत्मा का नाश कर ले?' गुरू नानक देव जी ने इस भूल से बचा दिया। कर्ता अर्थात् जानने वाला अंतस का विज्ञान सिखाया और वे नियम बताए कि कैसे अंतस की शक्ति नाश होने से बचकर उन्नत हो और नीरोग उन्नति करे? ये सभी विज्ञान गुरू ग्रन्थ साहब में है, यहां पर विचार उचित नहीं, पर खोज बताती है कि भीतर के जीवित कण के बारे में कमाल के मामले गुय नानक ने बताए हैं और हमें सुखी जीवन के व्यवहारिक मार्ग पर चलाया है। अत: सतगुरू विज्ञान की 'मां' विज्ञान के सिद्धहस्त (Expert) हुए हैं, पर दृष्टमान विज्ञान (Objective Science) के साथ-साथ वर्णन करते हुए कभी ग़लत विचार प्रकट नहीं कर गये, यहां तक कि उस समय के प्राय: फैले हुए विचार ग़लत थे और बाद वाले बुद्धिमान अभी पैदा नहीं हुए थे।

१३. गुरू नानक देव जी, कालिदास, हाफिज, शेक्स्पीयर, गिटे, उम्र ख्याम आदि

पाठक चकित होंगे कि गुरू नानक देव जी का वर्णन कवियों में क्यों किया जा रहा है? पर श्री गुरू ग्रन्थ साहब में "गुरू" नानक देव जी के नाम के साथ 'शायर' (कवि) पद भी लिखा मिलता है। यथा :– "नानक साइर एव कहत है" फकीर सुरत एवं कवि की सुरत कई बार एक द्वार पर जाकर दस्तक देती हैं। कवि की उड़ान कभी-कभी बेबस होती है, फकीर की उड़ान पक्की हुई, प्राय: निरन्तर के चमत्कारों वाली होती है, पर 'अदेशी गुरू' की उड़ान निरंतर है। गुरू नानक ने निज को 'शायर' इसी तरह ही कहा है जैसे 'ढाढी' कहा है। कविता और संगीत दोनों सूक्ष्म रसों में गुरू नानक की पहुंच मानवीय दृष्टिकोण से कमाल रखती थी, उनकी सारी वाणी में राग है, मरदाने का साथ रहना, छ: तारों वाला रबाब अपनी इच्छानुसार एक नए ढंग का बनाना, उनके इस कमाल की साक्षी

---

१. 'कोह करोड़ी चलत न अंतु'। [वा: आ: म: १]

भरता है। उन्हें खास प्यार आसा राग के साथ था, जिसमें उनकी वाणी सबसे अधिक है और कारण यह है कि आप अमृत वेला के रसिक थे और आसा अमृत वेला का राग है।[१] अतः अपनी सुरत को प्रत्येक समय अनंत में रखने में जब उनके अंदर संगीत लहरें उत्पन्न होती थीं और आप उसके रस में कीर्तन किया करते थे, तब उस बेअंत के द्वार पर निज को 'ढाढी' मानकर भक्ति के रस में बहुत झूमते थे। इसी तरह जब उनके अंदर उस बेअंत के लिए 'अकथनीय' पर 'कहने से न रुकने वाले' वलवले उत्पन्न होते थे, तब वे रचना रचा करते थे और उस रस के समय निज को गरीब, शायर, बेअन्त की स्तुति का निर्माता मान कर भक्ति, नम्रता एवं उच्च तरंगों वाले रंग का सुख मानते थे।[२]

कविता वह वस्तु है जिसमें मनुष्य अपने अकथनीय वलवले इस तरह कहता है कि उनमें उनकी टीका नहीं, पर उनकी अनुभवता पढ़ने एवं सुनने के भीतर उसी तरह अकथनीय एवं रसदार वलवले पैदा कर देती है, जिस तरह के कवि के अंदर कविता के समय उत्पन्न हुए थे। कविता अनंत के द्वार पर सुरत के नमस्कार करते समय मस्तिष्क में जो कंपन पैदा होती है, उसका नाम है। अतः कवि फकीर है, कवि पैग़म्बर है और पैग़म्बर (अवतार) कवि है।

संसार के कवियों ने कभी सुन्दरी के वियोग में, कभी प्रियतम के विरह में, कभी सुन्दरता की झलक में, कभी प्रकृति द्वारा उद्दीप्न तरंग में, कभी अपूर्ण लालसाओं में, कभी भक्ति के तरंग में, कभी अनिश्चितता के वैराग में, कभी अमर जीवन की अभिलाषा में, कभी विस्मय में, सूक्ष्म में सूक्ष्म हार्दिक भावों को गुंथा है। पर समस्त संसार की कविता में कालिदास की रचना शकुन्तला के अद्वितीय भावों में, शेक्स्पीयर के मानवीय हृदय के चित्रों में, गेटे की गहराइओं में, हाफ़िज़ की मस्ती में, ख्याम की निराशाओं में, मिलटन के स्वर्ग एवं डाँटे के नर्क' में, ज़ेबुलनिसा की कोयल की सी कूक में, जहाँ तक भी जायें कविता के नीचे एक "भीनी वाणी" का निरंतर स्वर, 'किसी अपूर्णता, किसी न भरे जाने वाले रिक्तपन' क़िसी 'निराशा की झनकार' का अलाप होता है। बल्कि, 'यही वलवलों में एक अपूर्णता की लाग, एक खुशरंगी लालसा की रंगत' कविता के सौंदर्य का एक भाग बन जाती है।

श्री गुरू नानक देव कवि ने अपनी कविता में इस झीनी वाणी के रंग अन्य उच्च कवियों की भाँति दिखाए हैं। उन्होंने विरह, वियोग, वैराग्य निराशा, आशा, अदेशी सौन्दर्य के पीछे लालसा भरी आकांक्षा, अमरता एवं सतत जीवन के पीछे आशा की सूक्षम से सूक्षम तरंगों वाली कविताएँ रची हैं। हां जी, सर्दी के दिन व्यतीत हुए, गर्मी शुरू होते ही केवल ऋतु के परिवर्तन से हृदय विचलित करने वाले सूक्षम भावों को भी अंदर देख लिया और उसका वर्णन कर दिया है।

---

१. खोज बताती है कि आसा राग श्री गुरू नानक देव जी ने स्वयं बनाया था। उनके समय से पूर्व इस नाम के राग का पता पुस्तकों एवं प्रथाओं में हमें कहीं नहीं मिला।

२. ऐसे समय में श्री गुरू नानक देव जी वाणी की रचना किया करते और बेबस कहा करते थे कि 'मरदाना, रबाब बजा, बाणी आई है'।

"आगै घाम पिछै रुति जाडा देखि चलत मन डोले।" [तुखा: छ: म: १]

आप ने भय एवं भाव के चित्र खींचे हैं, निर्मल भय का वर्णन किया है, पर उनकी कविता के अंतर्गत शाश्वत छोटा-छोटा, मधुर-मधुर जारी स्वर 'निश्चित आशा' वाला है। सौंदर्य के गीत जो अपूर्णता की झन्नाहट छेड़कर कलेजे में एक शून्यता छोड़ जाते हैं, गुरू नानक देव की दैवी कविता एक शून्य नहीं छोड़ जाती। कविता का यह कमाल हमें समस्त संसार के कवियों में से एक गुरू नानक देव की रचना में ही दीख पड़ा है। कविता का यह सौंदर्य और रात की भूख को इस निपुण कवियों के सिरोमणि ने पूर्ण किया है। यहाँ पर विस्तार उचित नहीं, पर हमें दीख पड़ता है कि गुरू नानक के हृदय का निरंतर लगाव जो अनंत में निश्चित सीमा का प्रतिपल रहता था, जिस लगाव ने बेअंत सौंदर्य के उस स्रोत के साथ निरंतर अधर लगा रखे थे, उसी लगाव ने-हाँ, अनंत के अटूट लगाव ने, आपकी कविता में उस अनंत में से सुरत में प्रत्येक क्षण में पिये जा रहे अमृत की बूंदें डाल दीं, जिससे कविता की अतृप्त आकांक्षा तृप्ति की झलक मार उठी। प्रत्येक कवि के अंदर के वलवले उस अनंत के साथ अथवा अनंत द्वारा निर्मित सौंदर्य दरसाने वाले प्रकृति के रंगों के साथ ठोकर खाकर सदैव अधर लगाकर उस सूक्ष्म रूप रस को नहीं पी सकते। कवि अधर पास ले जाते हैं, रस चखते हैं, पर चंचल तितली की भाँति, जो फूलों के इर्द-गिर्द घूमती है और बैठ नहीं सकती, दूरी पर ही रहते हैं। यह दूरी उनकी रचना में लालसा की, आकाँक्षा की किसी अपूर्णता की, किसी शून्यता की लाग लगा देती है। गुरू नानक के वलवले भी उठते हैं, दूरी पर रहकर लगन एवं संयोग तड़प के स्वाद चखते हैं, पर सदैव लालसा भरी दूरी पर नहीं रह जाते, सदैव लगन के साथ अपने अमृत स्रोत के साथ लगे रहते हैं। यदि उससे पृथक होते हैं तो इतने कि जैसे माँ की गोद में पड़ा बालक दूध पीना छोड़ दे तो माँ की ओर देखता और मुस्कराता है, पर दूध पीता हुआ अथवा न पीता हुआ माँ की गोद में से बाहर नहीं होता। इतना वियोग ही उनके लिए भारी वियोग है, उस अनंत की गोद के मण्डल के अंदर रहकर गुरू नानक के समस्त विरह, वियोग, भय, निराशा, आशा, आकाँक्षा, लालसा भरी तरंगें उत्पन्न होती हैं, उनमें कविता के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव, रंग; परछाईं एवं लाग हैं, वह सदैव 'अनंत' की गोद में वास करते हैं, उनमें निरंतर आस, एक निरंतर पूर्णता, एक स्वादिष्ट मीठी पक्की आशा की झन्नाहट, एक प्यारा स्वर, एक प्यार भरी झनकार है जो कि संसार के किसी कवि की कविता में नहीं। इसीलिए हम गुरू नानक में काव्य का हाँ जी ऊँचे, स्वच्छ, वास्तविक ईश्वरीय काव्य का एक नया कमाल देखते हैं, इसीलिए गुरू नानक के काव्य को लोग कविता नहीं कहते 'धुर की वाणी' कहते है, और 'नानक शायर' को गुरू नानक देव, सबसे बड़ा अवतार हाँ जी सबसे बड़ा पैगम्बर ज्ञाता हां जी सबसे बड़ा, 'गुरू अवतार' और स्वत: ज्ञानी[१] कहते हैं और धुर की वाणी इसकी साक्षी भरती है :-

'सभ ते वडा सतिगुरु नानकु जिनि कल राखी मेरी'॥

पुनः-**'गुर नानक देव गोविंद रूप'॥**

---

१. शायर का पहला अर्थ 'ज्ञानी' है।

१४. गीत

जय गुरू नानक

जय गुर नानक, जय गुर नानक जय तेरी!
जय हो! जय हो! जय तेरी!
जय दुख हर्ता! जय सुख कर्ता, बंधन हर्ता जय तेरी!
जय गुर नानक, जय गुर नानक जय तेरी!
सूखे काण्ट हरित करता रीते भरता जय तेरी!
जय गुर नानक जय तेरी, जय हो जय हो जय तेरी!
जलता जगत बचाया तैंने, बहती दुनिया पार लगाई,
करम फूट की रक्षा के हित, द्वार पर करी घुमाई
जय गुर नानक जय तेरी, जय हो, जय हो, जय तेरी!
दुष्ट उबारे, कुष्टी तारे, राक्षस भी निसतार लिये,
अन्ध कूप में पड़े अघी भी, खींचे बाहर निकार लिये,
सन्त फकीरों के उद्धारक जय हो, जय हो, जय तेरी।
जय गुर नानक जय तेरी, जय हो, जय हो, जय तेरी।
अटके खड़े मार्गों पर को, मंजिल पर पहुँचाया है,
नदी चढ़ी है, बाढ़ आई है मैंने तुझे बुलाया है,
शोर मचाती, कूक डुबाती, इसने मुझे डराया है,
हे गुर नानक सहस श्रवण से सुन ले यही पुकार मेरी
जय गुर नानक, जय गुर नानक, जय तेरी।
तू अनाथ का नाथ, बान यह धुर की तेरी।
मुझ अनाथ को तार, लगाना मत कुछ देरी।
अपनी चरण शरण में कर ले, सुन करके विनती मेरी
जय गुर नानक, जय गुर नानक, जय तेरी।
जय हो जय हो जय तेरी।

।।इति।।

❑ ❑